सचित्र महाभारत

भाषा-टीका



नवम अङ्क ।

[भीष्मपर्व अ० १–९३]

जिसका संशोधन

महामहोपाध्याय श्री माधव शास्त्री भाण्डारी प्रधानाध्यापक ओरियण्टल कालेज, लाहौर ने अत्यन्त सावधानी के साथ प्रामाणिक और प्राचीन प्रतियों के आधार पर किया है ।

और

जिसकी टीका

काशी निवासी विद्वद्वर श्रीराम शास्त्री तैलंग

ने

बड़े परिश्रम से अत्यन्त सरल हिन्दी-भाषा में की है ।

प्रकाशक—

लक्ष्मणदास प्यारेलाल जैन.

अध्यक्ष—संस्कृत पुस्तकालय, लाहौर ।

प्रथमवार] मूल्य १२॥)

पं० मन्शाराम शर्मा के प्रबन्ध से सज्जन प्रिंटिंग प्रेस लाहौर में छपा ।

❀ विषयानुक्रमणिका ❀

अध्याय	विषय	पृष्ठ

—०—

भीष्म-पर्व

प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

श्रीगणेशाय नमः । श्रीवेदव्यासाय नमः ।



ॐ ॥ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ १ ॥

जनमेजय उवाच
कथं युयुधिरे वीराः कुरुपाण्डवसोमकाः ।
पार्थिवाः सुमहात्मानो नानादेशसमागताः ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच
यथा युयुधिरे वीराः कुरुपाण्डवसोमकाः ।
कुरुक्षेत्रे तपःक्षेत्रे शृणु त्वं पृथिवीपते ॥ २ ॥
तेऽवतीर्य कुरुक्षेत्रं पाण्डवाः सहसोमकाः ।
कौरवाः समवर्त्तन्त जिगीषन्तो महाबलाः ॥ ३ ॥
वेदाध्ययनसम्पन्नाः सर्वे युद्धाभिनन्दिनः ।
आशंसन्तो जयं युद्धे बलेनाऽभिमुखा रणे ॥ ४ ॥
अभियाय च दुर्धर्षां धार्त्तराष्ट्रस्य वाहिनीम् ।
प्राङ्मुखाः पश्चिमे भागे न्यविशन्त ससैनिकाः ॥ ५ ॥

समन्तपञ्चकाद्बाह्यं शिविराणि सहस्रशः ।
कारयामास विधिवत्कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ६ ॥
शून्या च पृथिवी सर्वा बालवृद्धावशेषिता ।
निरश्वपुरुषेवाऽऽसीद्रथकुञ्जरवर्जिता ॥ ७ ॥
यावत्तपति सूर्यो हि जम्बूद्वीपस्य मण्डलम् ।
तावदेव समायातं बलं पार्थिवसत्तम ॥ ८ ॥
एकस्थाः सर्ववर्णास्ते मण्डलं बहुयोजनम् ।
पर्याक्रामन्त देशांश्च नदीः शैलान्वनानि च ॥ ९ ॥
तेषां युधिष्ठिरो राजा सर्वेषां पुरुषर्षभ ।
व्यादिदेश सवाहानां भक्ष्यभोज्यमनुत्तमम् ॥ १० ॥
शय्याश्च विविधास्तात तेषां रात्रौ युधिष्ठिरः ।
एवंवेदी वेदितव्यः पाण्डवेयोऽयमित्युत ॥ ११ ॥
अभिज्ञानानि सर्वेषां संज्ञाश्चाऽऽभरणानि च ।
योजयामास कौरव्यो युद्धकाल उपस्थिते ॥ १२ ॥
दृष्ट्वा ध्वजाग्रं पार्थस्य धार्तराष्ट्रो महामनाः ।
सह सर्वैर्महीपालैः प्रत्यव्यूहत पाण्डवम् ॥ १३ ॥
पाण्डुरेणाऽऽतपत्रेण ध्रियमाणेन मूर्द्धनि ।
मध्ये नागसहस्रस्य भ्रातृभिः परिवारितः ॥ १४ ॥
दृष्ट्वा दुर्योधनं हृष्टाः पञ्चाला युद्धनन्दिनः ।
दध्मुः प्रीता महाशङ्खान्भेर्यश्च मधुरस्वनाः ॥ १५ ॥

पश्चिम भाग में, पूर्वमुख हो, ठहर गये ॥२।५॥ इसके पश्चात् कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर ने समन्तपञ्चक के बाहर विधिपूर्वक हजारों डेरे स्थापित कराये। हे राजेन्द्र! सारी पृथ्वी में योद्धा लोग और सेना यहाँ पर आने लगी। उस समय पृथ्वी भर पर केवल बालक और बूढ़े लोग ही रह गये। पुरुष, घोड़े, रथ और हाथी आदि से सब पृथ्वी शून्य सी जान पड़ने लगी। जम्बूद्वीप में जहाँ तक सूर्य नारायण तपते हैं वहाँ तक के सब देश तथा बलवान् राजागण के युद्ध में सम्मिलित होने के लिए आ गये ॥६।८॥ सब वर्णों के मनुष्य उस युद्ध में सम्मिलित होने के लिए आये। उन्होंने बहुत से देश, नदी, पर्वत, वन आदि को व्याप्त कर लिया। राजा युधिष्ठिर ने उन सबको और उनके वाहनों को बढ़िया खाने-पीने की सामग्री मिलने और रहने की व्यवस्था कर दी ॥९।१०॥ धर्मराज युधिष्ठिर ने अपने पक्ष के सैनिकों को, चिह्नस्वरूप, अनेक 'नाम' और आभूषण भी दिये जिनके द्वारा यह जान पड़े कि ये पाण्डव पक्ष के हैं ॥११।१२॥ उधर राजा दुर्योधन हजार हाथियों के बीच में अपने सौ भाइयों के साथ विराजमान

ततः प्रहृष्टां तां सेनामभिवीक्ष्याऽथ पाण्डवाः ।
बभूवुर्हृष्टमनसो वासुदेवश्च वीर्यवान् ॥ १६ ॥
ततो हर्षं समागम्य वासुदेवधनञ्जयौ ।
दध्मतुः पुरुषव्याघ्रौ दिव्यौ शङ्खौ रथे स्थितौ ॥ १७ ॥
पाञ्चजन्यस्य निर्घोषं देवदत्तस्य चोभयोः ।
श्रुत्वा तु निनदं योधाः शकृन्मूत्रं प्रसुस्रुवुः ॥ १८ ॥
यथा सिंहस्य नदतः स्वनं श्रुत्वेतरे मृगाः ।
त्रसेयुर्निनदं श्रुत्वा तथाऽसीदत तद्बलम् ॥ १९ ॥
उदतिष्ठद्रजो भौमं न प्राज्ञायत किञ्चन ।
अस्तङ्गत इवाऽऽदित्ये सैन्येन सहसाऽऽवृते ॥ २० ॥
ववर्ष तत्र पर्जन्यो मांसशोणितवृष्टिमान् ।
दिक्षु सर्वाणि सैन्यानि तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ २१ ॥
वायुस्ततः प्रादुरभून्नीचैः शर्करकर्षणः ।
विनिघ्नंस्तान्यनीकानि शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २२ ॥
उभे सैन्ये च राजेन्द्र युद्धाय मुदिते भृशम् ।
कुरुक्षेत्रे स्थिते यत्ते सागरक्षुभितोपमे ॥ २३ ॥
तयोस्तु सेनयोरासीदद्भुतः स तु सङ्गमः ।
युगान्ते समनुप्राप्ते द्वयोः सागरयोरिव ॥ २४ ॥

था। उसके सिर पर श्वेत छत्र लगा हुआ था। महामनस्वी दुर्योधन ने भी अर्जुन की ध्वजा के अग्रभाग को देखकर अपने पक्ष के राजाओं के साथ, पाण्डवों के मुकाबले में, सेना की व्यूह-रचना की ॥१३।१४॥ युद्ध चाहनेवाले पाञ्चालगण राजा दुर्योधन को देखकर बहुत प्रसन्न हुए। वे प्रसन्नतापूर्वक शङ्ख और हज़ारों नगाड़े बजाने लगे। अपनी सेना को प्रसन्न और उत्साहित देखकर महात्मा कृष्णचन्द्र और पराक्रमी पाण्डव बहुत प्रसन्न हुए। इसके पश्चात् श्रीकृष्ण और अर्जुन आनन्द के साथ रथ पर चढ़कर अपने-अपने शङ्ख बजाने लगे। श्रीकृष्ण के पाञ्चजन्य शङ्ख और अर्जुन के देवदत्त शङ्ख का गम्भीर शब्द सुनकर कौरवपक्ष के सैनिक दहल उठे। उनका एक साथ मलमूत्र निकल पड़ा ॥१५।१८॥ मृगों के झुण्ड जैसे सिंह का शब्द सुनकर भयभीत हो जाते हैं, वैसे ही वे श्रीकृष्ण और अर्जुन की शङ्खध्वनि को सुनकर अत्यन्त भयभीत हो उठे। सुस्ती के मारे उनके चेहरे उतर गये। इस समय सेना के चलने-फिरने से इतनी धूल उड़ी कि उसमें छिपकर सूर्य अस्त से हो गये ॥१९।२०॥ इसी समय मेघ घिर आये और उनसे जल की जगह मांस और रक्त की वर्षा होने लगी। यह बहुत ही अद्भुत घटना हुई। आँधी उठ खड़ी हुई और सैनिकों के ऊपर कङ्कड़ियाँ-रोड़े बरसाने लगी ॥२१।२२॥ उस समय युद्ध

शून्याऽऽसीत्पृथिवी सर्वा वृद्धबालावशेषिता ।
निरश्वपुरुषेवाऽऽसीद्रथकुञ्जरवर्जिता ॥ २५ ॥
तेन सेनासमूहेन समानीतेनकौरवैः ।
ततस्ते समयं चक्रुः कुरुपाण्डवसोमकाः ॥ २६ ॥
धर्मान्संस्थापयामासुर्युद्धानां भरतर्षभ ।
निवृत्ते विहिते युद्धे स्यात्प्रीतिर्नः परस्परम् ॥ २७ ॥
यथापरं यथायोगं न च स्यात्कस्यचित्पुनः ।
वाचा युद्धप्रवृत्तानां वाचैव प्रतियोधनम् ।
निष्क्रान्ताः पृतनामध्यान्न हन्तव्याः कदाचन ॥ २८ ॥
रथी च रथिना योध्यो गजेन गजधूर्गतः ।
अश्वेनाऽश्वी पदातिश्च पादातेनैव भारत ॥ २९ ॥
यथायोगं यथाकामं यथोत्साहं यथाबलम् ।
समाभाष्य प्रहर्त्तव्यं न विश्वस्ते न विह्वले ॥ ३० ॥
एकेन सह संयुक्तः प्रपन्नो विमुखस्तथा ।
क्षीणशस्त्रो विवर्मा च न हन्तव्यः कदाचन ॥ ३१ ॥

के लिए प्रसन्नता प्रकट कर रही दोनो पक्ष की सेनाएँ उमडे हुए दो समुद्रो के समान कुरुक्षेत्र मे आमने-सामने स्थित हुईं। दोनों सेनाओं का वह अद्भुत समागम देखकर जान पडता था कि प्रलय-काल में दो समुद्र उमड रहे हैं। कौरव पक्ष में भी इतनी सेना आकर एकत्र हुई थी कि पृथ्वी शून्य सी हो गई। केवल बालक और बूढे ही बच गये। जवान पुरुष, रथ, हाथी और घोडा एक भी नहीं रह गया ॥२३।२६॥ इसके पश्चात् कौरवों, पाण्डवो और सोमकों में धर्मानुसार परस्पर, निम्नलिखित, युद्ध के नियम निश्चित हुए। यह निश्चय हुआ कि आरम्भ किया हुआ युद्ध जिस समय बन्द हो जाया करेगा उस समय हम परस्पर पहले की ही तरह मित्रता का व्यवहार करेंगे। परस्पर समान और समान योग्यता रखनेवाले पुरुष ही एक दूसरे से न्याया-नुसार युद्ध करेंगे। कोई किसी से अन्यायपूर्वक युद्ध नहीं करेगा। कोई किसी को युद्ध में धोखा नहीं देगा। वाणी का युद्ध करनेवालों से केवल वाणी का ही युद्ध किया जायगा। जो लोग सेना के व्यूह से भागकर या और किसी कारण से बाहर निकल जायँगे उन पर कोई प्रहार नहीं करेगा। रथी रथी के साथ, हाथी का सवार हाथी के सवार के साथ, घोडे का सवार घुडसवार के साथ और पैदल सिपाही पैदल सिपाही के साथ योग्यता, इच्छा, उत्साह और बल के अनुसार युद्ध करेगा। पहले सावधान करके पीछे प्रहार किया जायगा। विश्वास रहने से असावधान, विह्वल और भयभीत हुए-हुए व्यक्ति पर प्रहार नहीं किया जायगा ॥२७।३०॥ जो पुरुष किसी दूसरे के साथ युद्ध कर रहा होगा, जो असावधान होगा और जो समर से विमुख होगा उस पर कोई

न सूतेषु न धुर्येषु न च शस्त्रोपनायिषु ।
न भेरीशङ्खवादेषु प्रहर्त्तव्यं कथञ्चन ॥ ३२ ॥
एवं ते समयं कृत्वा कुरुपाण्डवसोमकाः ।
विस्मयं परमं जग्मुः प्रेक्षमाणाः परस्परम् ॥ ३३ ॥
निविश्य च महात्मानस्ततस्ते पुरुषर्षभाः ।
हृष्टरूपाः सुमनसो बभूवुः सहसैनिकाः ॥ ३४ ॥

इति श्रीमन्महाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डनिर्माणपर्वणि सैन्यशिक्षणे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

वार नहीं करेगा। जिसका कवच कट गया होगा, जिसका शस्त्र टूट गया होगा या शस्त्र न रह जाने के कारण जो निहत्था होगा, ऐसे लोगों पर कभी कोई प्रहार नहीं करेगा। सारथी पर, जिन पर बोझ लादा जाय ऐसे हाथी-घोड़े-बैल आदि पर, शस्त्रबनाने की जीविकावाले या शस्त्र पहुँचानेवाले पर, और शङ्ख तथा नगाड़े आदि बजानेवाले लोगों पर कभी कोई प्रहार नहीं करेगा। हे महाराज ! इस प्रकार परस्पर युद्ध के नियम निश्चित हो गये। कौरव, पाण्डव और सोमकगण एक दूसरे को देखकर परम प्रसन्न हुए। फिर सब पुरुषश्रेष्ठ वीर प्रसन्नता और उत्साह के साथ अपने-अपने सैनिकों सहित अपने-अपने स्थान में ठहर गये ॥३१।३४॥

—०—

भीष्मपर्व का पहला अध्याय समाप्त हुआ ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

वैशम्पायन उवाच—ततः पूर्वापरे सैन्ये समीक्ष्य भगवानृषिः ।
सर्ववेदविदां श्रेष्ठो व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ १ ॥
भविष्यति रणे घोरे भरतानां पितामहः ।
प्रत्यक्षदर्शी भगवान्भूतभव्यभविष्यवित् ॥ २ ॥
वैचित्रवीर्यं राजानं सरहस्यं ब्रवीदिदम् ।
शोचन्तमार्त्तं ध्यायन्तं पुत्राणामनयं तदा ॥ ३ ॥
व्यास उवाच—राजन्परीतकालास्ते पुत्राश्चाऽन्ये च पार्थिवाः ।
ते हिंसन्तीव संग्रामे समासाद्येतरेतरम् ॥ ४ ॥
तेषु कालपरीतेषु विनश्यत्स्वेव भारत ।
कालपर्यायमाज्ञाय मा स्म शोके मनः कृथाः ॥ ५ ॥

दूसरा अध्याय ॥ २ ॥

वैशम्पायन ने कहा—हे राजा जनमेजय ! इधर सब वेदज्ञ पुरुषों में श्रेष्ठ, त्रिकालज्ञ, प्रत्यक्षदर्शी महर्षि वेदव्यास ने दोनों पक्षों की सेनाओं को देखकर जान लिया कि यह घोर संग्राम होगा। तब वे शोक से व्याकुल और पुत्रों के अन्याय को सोचते हुए, एकान्त में स्थित, महाराज धृतराष्ट्र के पास गये और उनसे कहने लगे—हे राजेन्द्र ! तुम्हारे पुत्रों और अन्य राजाओं के मरने का समय आ गया है। इस

यदि चेच्छसि संग्रामे द्रष्टुमेतान्विशाम्पते ।
चक्षुर्ददामि ते पुत्र युद्धं तत्र निशामय ॥ ६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—न रोचये ज्ञातिवधं द्रष्टुं ब्रह्मर्षिसत्तम ।
युद्धमेतत्त्वशेषेण शृणुयां तव तेजसा ॥ ७ ॥

वैशम्पायन उवाच—एतस्मिन्नेच्छति द्रष्टुं संग्रामं श्रोतुमिच्छति ।
वराणामीश्वरो व्यासः सञ्जयाय वरं ददौ ॥ ८ ॥

व्यास उवाच—एष ते सञ्जयो राजन्युद्धमेतद्वदिष्यति ।
एतस्य सर्वसंग्रामे न परोक्षं भविष्यति ॥ ९ ॥
चक्षुषा सञ्जयो राजन्दिव्येनैव समन्वितः ।
कथयिष्यति ते युद्धं सर्वज्ञश्च भविष्यति ॥ १० ॥
प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा दिवा वा यदि वा निशि ।
मनसा चिन्तितमपि सर्वं वेत्स्यति सञ्जयः ॥ ११ ॥
नैनं शस्त्राणि छेत्स्यन्ति नैनं बाधिष्यते श्रमः ।
गावल्गणिरयं जीवन्युद्धादस्माद्विमोक्ष्यति ॥ १२ ॥
अहं तु कीर्तिमेतेषां कुरूणां भरतर्षभ ।
पाण्डवानां च सर्वेषां प्रथयिष्यामि मा शुचः ॥ १३ ॥
दिष्टमेतन्नरव्याघ्र नाऽभिशोचितुमर्हसि ।
न चैव शक्यं संयन्तुं यतो धर्मस्ततो जयः ॥ १४ ॥

युद्ध में ये परस्पर भिड़कर मारे जायँगे। समय के इस विपरीत भाव को समझकर तुम शोक न करना। हे राजेन्द्र! यदि तुम यह घोर संग्राम देखना चाहो तो मैं तुमको दिव्य दृष्टि देने को तैयार हूँ। तुम यहीं से सब संग्राम देख लेना ॥१।६॥ धृतराष्ट्र ने कहा—हे ब्रह्मर्षिश्रेष्ठ! मैं जाति के हत्याकाण्ड को अपनी आँखों नहीं देखना चाहता। मेरी यह अभिलाषा है कि आपके तेज के प्रभाव से मैं इस युद्ध का सब वृत्तान्त आदि से अन्त तक सुन सकूँ ॥७॥ वर देने में समर्थ महर्षि वेदव्यास ने धृतराष्ट्र को युद्ध का वृत्तान्त सुनने के लिए उत्सुक देखकर सञ्जय को वर देते हुए कहा—हे महाराज! ये सञ्जय तुम्हारे आगे युद्ध का वृत्तान्त आदि से अन्त तक कहेंगे। इनसे युद्ध का वृत्तान्त तनिक भी नहीं छिपा रहेगा ॥८।१०॥ इन्हें दिव्य दृष्टि प्राप्त होगी और ये सर्वज्ञ होंगे। गुप्त या प्रकट सब बातें इन्हें विदित होती रहेंगी। दिन को या रात्रि को जो कुछ होगा और दूसरों के मन की जो बात होगी, वह भी सञ्जय को प्रतीत हो जायगी। इनके शरीर में कोई शस्त्र नहीं छू जायगा। इन्हें थकन भी नहीं होगी। इस युद्ध से केवल ये सञ्जय जीते बचेंगे। हे भरतश्रेष्ठ! मैं शीघ्र ही पाण्डवों और कौरवों की इस कीर्ति को, ग्रन्थ बना करके, प्रसिद्ध कर दूँगा। तुम शोक मत करो। यह सब 'होनी' की लीला

वैशम्पायन उवाच—एवमुक्त्वा स भगवान्कुरूणां प्रपितामहः ।
पुनरेव महाभागो धृतराष्ट्रमुवाच ह ॥ १५ ॥
इह युद्धे महाराज भविष्यति महान्क्षयः ।
तथेह च निमित्तानि भयदान्युपलक्षये ॥ १६ ॥
श्येना गृध्राश्च काकाश्च कङ्काश्च सहिता बकैः ।
सम्पतन्ति नगाग्रेषु समवायांश्च कुर्वते ॥ १७ ॥
अभ्यग्रं च प्रपश्यन्ति युद्धमानन्दिनो द्विजाः ।
क्रव्यादा भक्षयिष्यन्ति मांसानि गजवाजिनाम्॥ १८ ॥
निर्दयं चाऽभिवाशन्तो भैरवा भयवेदिनः ।
कङ्काः प्रयान्ति मध्येन दक्षिणामभितो दिशम् ॥ १९ ॥
उभे पूर्वापरे सन्ध्ये नित्यं पश्यामि भारत ।
उदयास्तमने सूर्यं कबन्धैः परिवारितम् ॥ २० ॥
श्वेतलोहितपर्यन्ताः कृष्णग्रीवाः सविद्युतः ।
त्रिवर्णाः परिघाः सन्धौ भानुमन्तमवारयन् ॥ २१ ॥
ज्वलितार्केन्दु नक्षत्रं निर्विशेषदिनक्षयम् ।
अहोरात्रं मया दृष्टं तद्भयाय भविष्यति ॥ २२ ॥
अलक्ष्यः प्रभया हीनः पौर्णमासीं च कार्तिकीम्।
चन्द्रोऽभूदग्निवर्णश्च पद्मवर्णनभस्थले ॥ २३ ॥

है। तुम या कोई भी इस सर्वनाश को नहीं रोक सकेगा। सत्य समझो, जिधर धर्म है उसी पक्ष की जय होगी ॥११।१४॥ वैशम्पायन ने कहा—हे राजा जनमेजय! कुरुवंश के प्रपितामह भगवान् वेदव्यास ने इतना कहकर फिर राजा धृतराष्ट्र से कहा—हे राजेंद्र! इस युद्ध में बड़ा भारी हत्याकाण्ड होगा। इस समय महाभयङ्कर उत्पात होते देख पड़ते हैं। बाज, गिद्ध, कौए, कङ्क पक्षी और बगले के झुण्ड के झुण्ड ध्वजाओं के अग्रभागों पर गिरते हैं। मांस खानेवाले पक्षी, युद्ध को निकटवर्ती जानकर, आनन्द प्रकट कर रहे हैं। वे अवश्य हाथियों, घोड़ों और मनुष्यों का मांस खाएँगे ॥१५।१८॥ कङ्क पक्षी दोपहर के समय दक्षिण दिशा की ओर दौड़ते हुए भयसूचक भयानक कट-कट शब्द करते हैं। हे भारत! मैं प्रतिदिन देखता हूँ कि उदय और अस्त के समय सूर्य को कबन्ध घेरे हैं ॥१९।२०॥ प्रातः और सायँ को, बीच में काले और किनारों पर श्वेत लाल मण्डल सूर्य को घेरे रहते हैं और आस-पास बिजली चमका करती है। सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र दिन-रात प्रज्वलित रहते हैं। दिन और रात्रि में कुछ अन्तर नहीं देख पड़ता। यह उत्पात तुम्हारे वंश के लिए बहुत ही भयङ्कर हैं। कार्तिक की पूर्णिमा को पद्मवर्ण नभस्थल में अलक्ष्य, प्रभाहीन, लाल रङ्ग के चन्द्रमा का उदय हुआ है। इससे बड़े

स्वप्स्यन्ति निहता वीरा भूमिमावृत्य पार्थिवाः ।
राजानो राजपुत्राश्च शूराः परिघबाहवः ॥ २४ ॥
अन्तरिक्षे वराहस्य वृषदंशस्य चोभयोः ।
प्रणादं युद्ध्यतो रात्रौ रौद्रं नित्यं प्रलक्षये ॥ २५ ॥
देवताप्रतिमाश्चैव कम्पन्ति च हसन्ति च ।
वमन्ति रुधिरं चाऽऽस्यैः खिद्यन्ति प्रपतन्ति च ॥ २६ ॥
अनाहता दुन्दुभयः प्रणदन्ति विशाम्पते ।
अयुक्ताश्च प्रवर्तन्ते क्षत्रियाणां महारथाः ॥ २७ ॥
कोकिलाः शतपत्राश्च चाषा भासाः शुकास्तथा ।
सारसाश्च मयूराश्च वाचो मुञ्चन्ति दारुणाः ॥ २८ ॥
गृहीतशस्त्राः क्रोशन्ति चर्मिणो वाजिपृष्ठगाः ।
अरुणोदये प्रदृश्यन्ते शतशः शलभव्रजाः ॥ २९ ॥
उभे सन्ध्ये प्रकाशन्ते दिशो दाहसमन्विते ।
पर्जन्यः पांसुवर्षी च मांसवर्षी च भारत ॥ ३० ॥
या चैषा विश्रुता राजंस्त्रैलोक्ये साधुसम्मता ।
अरुन्धती तयाऽप्येष वसिष्ठः पृष्ठतः कृतः ॥ ३१ ॥
रोहिणीं पीडयन्नेष स्थितो राजञ्शनैश्चरः ।
व्यावृत्तं लक्ष्म सोमस्य भविष्यति महद्भयम् ॥ ३२ ॥
अनभ्रे च महाघोरः स्तनितः श्रूयते स्वनः ।
वाहनानां च रुदतां निपतन्त्यश्रुबिन्दवः ॥ ३३ ॥

इति श्रीमन्महाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डनिर्माणपर्वणि श्रीवेदव्यासदर्शने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

बलवान् महावीर राजा और राजपुत्र मारे जायँगे ॥२१।२४॥ रात्रि को आकाश मे लड़ते हुए वराह और बिलाव का कठोर शब्द मुझे सुन पड़ता है, जो जन-क्षय की सूचना देता है। देवताओं की मूर्तियाँ कभी काँपती हैं, कभी पसीजने लगती है, कभी मुख से रक्त उगलती है और कभी गिर पड़ती हैं। हे राजेंद्र! बिना बजाये ही नगाड़े बजने लगते है। क्षत्रियों के रथ बिना घोड़े जोते ही चलने लगते हैं ॥२५।२७॥ कोयल, शतपत्र, चाष, भास, तोता, सारस, मोर आदि पक्षी दारुण स्वर से बोल रहे हैं। लोहे के रङ्ग के मुँहवाली एक प्रकार की टीड़ियाँ घोड़ों की पीठों पर उड़ती देख पड़ती हैं। अरुणोदय के समय असंख्य टीड़ियाँ देख पड़ती हैं। प्रातः और सायँ को दिग्दाह देख पड़ता है। मेघो मे धूल और मांस की वर्षा होती है ॥२८।३०॥ त्रिलोकी भर मे जिनके पातिव्रत्य की बड़ाई होती है उन अरुन्धती (तारा) ने भी वशिष्ठ (तारा) को पीछे छोड़ दिया है। शनैश्चर ग्रह रोहिणी नक्षत्र

को पीड़ा पहुँचा रहा है। चन्द्रबिम्ब के भीतर का चिह्न अपने स्थान पर नहीं देख पड़ता। आकाशमण्डल में मेघ न रहने पर भी घोर मेघगर्जन का सा शब्द सुन पड़ता है। घोड़ों की आँखों से आँसू निकल रहे हैं। इसलिए हे राजेन्द्र! निश्चय जानो कि बड़ी विपत्ति आनेवाली है ॥३१।३३॥

भीष्मपर्व का दूसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

व्यास उवाच—खरा गोषु प्रजायन्ते रमन्ते मातृभिः सुताः ।
अनार्तवं पुष्पफलं दर्शयन्ति वनद्रुमाः ॥ १ ॥
गर्भिण्योऽजातपुत्राश्च जनयन्ति विभीषणान् ।
क्रव्यादाः पक्षिभिश्चापि सहाऽश्नन्ति परस्परम् ॥ २ ॥
त्रिविषाणाश्चतुर्नेत्राः पञ्चपादा द्विमेहनाः ।
द्विशीर्षाश्च द्विपुच्छाश्च दंष्ट्रिणः पशवोऽशिवाः ॥ ३ ॥
जायन्ते विवृतास्याश्च व्याहरन्तोऽशिवा गिरः ।
त्रिपदाः शिखिनस्तार्क्ष्याश्चतुर्दंष्ट्रा विषाणिनः ॥ ४ ॥
तथैवाऽन्याश्च दृश्यन्ते स्त्रियो वै ब्रह्मवादिनाम् ।
वैनतेयान्मयूरांश्च जनयन्ति पुरे तव ॥ ५ ॥
गोवत्सं वडवा सूते श्वा सृगालं महीपते ।
कुक्कुरान्करभाश्चैव शुकाश्चाऽशुभवादिनः ॥ ६ ॥
स्त्रियः काश्चित्प्रजायन्ते चतस्रः पञ्च कन्यकाः ।
जातमात्राश्च नृत्यन्ति गायन्ति च हसन्ति च ॥ ७ ॥
पृथग्जनस्य सर्वस्य क्षुद्रकाः प्रहसन्ति च ।
नृत्यन्ति परिगायन्तो वेदयन्तो महद्भयम् ॥ ८ ॥

तीसरा अध्याय ॥ ३ ॥

व्यासजी कहते हैं—हे राजेन्द्र! गायों के गर्भ से गधे उत्पन्न होते हैं। माताओं के साथ पुत्र रमण करते हैं। वनों के वृक्षों में ऋतु के बिना ही उस ऋतु के फूल और फल देख पड़ते हैं। स्त्रियों के भयानक आकार की सन्तानें उत्पन्न होती हैं। मांसभोजी पक्षियों के साथ सियार और कुत्ते, एक ही जगह, खाते हैं। ऐसे विचित्र प्राणी जन्म ले रहे हैं जिनके तीन सींग, चार नेत्र, पांच पांव, दो सिर और दो लिङ्ग, दो पूँछें, तीन पांव और चार दांत हैं। वे मुख फैलाये रहते हैं और अमङ्गलसूचक शब्द करते हैं। गरुड पक्षियों के सींग, तीन पांव और चोटी देख पड़ती है। इसी प्रकार ब्रह्मवादियों की स्त्रियों के गरुड़ पक्षी और मोर, घोड़ियों के गायों के बछड़े, कुतियों के सियार और हथिनियों के कुत्ते उत्पन्न होते हैं। तोते लगातार अशुभ और कर्कश शब्द बोलते हैं ॥१।६॥ किसी-किसी स्त्री के एक साथ चार-चार पाँच-पाँच कन्याएँ उत्पन्न होती हैं। वे कन्याएँ उत्पन्न होते ही नाचती, गाती, बाजे

प्रतिमाश्चाऽऽलिखन्त्येताः सशस्त्राः कालचोदिताः।
अन्योन्यमभिधावन्ति शिशवो दण्डपाणयः ॥ ९ ॥
अन्योन्यमभिमृद्नन्ति नगराणि युयुत्सवः ।
पद्मोत्पलानि वृक्षेषु जायन्ते कुमुदानि च ॥ १० ॥
विष्वग्वाताश्च वान्त्युग्रा रजो नाऽप्युपशाम्यति।
अभीक्ष्णं वर्त्तते भूमिरर्कं राहुरुपैति च ॥ ११ ॥
श्वेतो ग्रहस्तथा चित्रां समतिक्रम्य तिष्ठति ।
अभावं हि विशेषेण कुरूणां तत्र पश्यति ॥ १२ ॥
धूमकेतुर्महाघोरः पुष्यं चाऽऽक्रम्य तिष्ठति ।
सेनयोरशिवं घोरं करिष्यति महाग्रहः ॥ १३ ॥
मघास्वङ्गारको वक्रः श्रवणे च बृहस्पतिः ।
भगं नक्षत्रमाक्रम्य सूर्यपुत्रेण पीड्यते ॥ १४ ॥
शुक्रः प्रोष्ठपदे पूर्वे समारुह्य विरोचते ।
उत्तरे तु परिक्रम्य सहितः समुदीक्षते ॥ १५ ॥
श्वेतो ग्रहः प्रज्वलितः सधूम इव पावकः ।
ऐन्द्रं तेजस्वि नक्षत्रं ज्येष्ठामाक्रम्य तिष्ठति ॥ १६ ॥
ध्रुवं प्रज्वलितो घोरमपसव्यं प्रवर्त्तते ।
रोहिणीं पीडयत्येवमुभौ च शशिभास्करौ ।
चित्रास्वात्यन्तरे चैव विष्ठितः परुषग्रहः ॥ १७ ॥

बजाती और हँसती हैं। चाण्डाल आदि के घर में उत्पन्न काने कुबड़े आदि बालक-बालिका हँसते, नाचते और गाते हैं। यह भी महाभयसूचक उत्पात है। वे सब काल के द्वारा प्रेरित होकर हाथ में शस्त्र लिये हुए मूर्तियाँ लिखते और बनाते हैं। दण्ड हाथ में लिये बालक एक दूसरे को मारने के लिये दौड़ते हैं और युद्ध करने की इच्छा से कृत्रिम नगरों को रौंदते हैं। वृक्षों में कमल और कोकाबेली के फूल निकलते हैं ॥७।१०॥ वायु बड़े वेग से चलती है। धूल इतनी उड़ती है कि किसी तरह शान्त ही नहीं होती। लगातार भूकम्प होता है। राहु सूर्य के पास जाता है। केतु चित्रा नक्षत्र में स्थित है। इसमें सन्देह नहीं कि कुरुवंश के नाश के लिए ही ये उत्पात देख पड़ते हैं। धूमकेतु पुष्य नक्षत्र में स्थित है। इसका परिणाम यह है कि दोनों पक्षों की बहुत सी सेना चौपट होगी। मङ्गल वक्री होकर मघा नक्षत्र में और उसी तरह बृहस्पति श्रवण नक्षत्र में स्थित है। शनैश्चर उत्तराभाद्रपद नक्षत्र में स्थित होकर उसे सता रहा है ॥११।१४॥ शुक्र पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र में है और चारों ओर घूमकर उपग्रह के साथ उत्तराभाद्रपद नक्षत्र को देख रहा है। केतु ग्रह धुएँ से युक्त अग्नि के समान प्रज्वलित होकर, इन्द्र

वक्रानुवक्रं कृत्वा च श्रवणं पावकप्रभः ।
ब्रह्मराशिं समावृत्य लोहिताङ्गो व्यवस्थितः ॥ १८ ॥
सर्वसस्यपरिच्छन्ना पृथिवी सस्यमालिनी ।
पञ्चशीर्षा यवाश्चापि शतशीर्षाश्च शालयः ॥ १९ ॥
प्रधानाः सर्वलोकस्य यास्वायत्तमिदं जगत् ।
ता गावः प्रस्नुता वत्सैः शोणितं प्रक्षरन्त्युत ॥ २० ॥
निश्चेरुरर्चिपश्चापात्खड्गाश्च ज्वलिता भृशम् ।
व्यक्तं पश्यन्ति शस्त्राणि संग्रामं समुपस्थितम् ॥ २१ ॥
अग्निवर्णा यथा भासः शस्त्राणामुदकस्य च ।
कवचानां ध्वजानां च भविष्यति महाक्षयः ॥ २२ ॥
पृथिवी शोणितावर्ता ध्वजोडुपसमाकुला ।
कुरूणां वैशसे राजन्पाण्डवैः सह भारत ॥ २३ ॥
दिक्षु प्रज्वलितास्याश्च व्याहरन्ति मृगद्विजाः ।
अत्याहितं दर्शयन्तो वेदयन्ति महद्भयम् ॥ २४ ॥
एकपक्षाक्षिचरणः शकुनिः खचरो निशि ।
रौद्रं वदति संरब्धः शोणितं छर्दयन्निव ॥ २५ ॥
शस्त्राणि चैव राजेन्द्र प्रज्वलन्तीव सम्प्रति ।
सप्तर्षीणामुदाराणां समवच्छाद्यते प्रभा ॥ २६ ॥

जिसके देवता हैं उस, तेजस्वी ज्येष्ठा नक्षत्र के ऊपर आक्रमण कर रहा है। चित्रा और स्वाति के बीच मे स्थित राहु सदा वक्री होकर रोहिणी और सूर्य-चन्द्र को पीड़ा पहुँचाता हुआ प्रज्वलित होकर ध्रुव की बाईं ओर जा रहा है ॥१५।१७॥ उसी सर्वतोभद्र चक्र के बीच मघा में स्थित पावक-प्रभ मङ्गल ग्रह बारम्बार वक्री होकर बृहस्पतियुक्त श्रवण को पूर्ण दृष्टि से देख रहा है। पृथ्वी सब प्रकार के अन्नों से परिपूर्ण हो रही है। जव के पेड़ों में पाँच-पाँच बालियाँ और धान के पेड़ों मे सैकड़ों बालियाँ देख पड़ती हैं। यही दोनों अन्न प्रधान हैं और इन्हीं के ऊपर सब लोगों का जीवन निर्भर है। बछड़ों के दूध पी चुकने के पश्चात् गायों के थनों से रक्त की धारा निकलती है ॥१८।२०॥ धनुषों से अग्नि की चिनगारियाँ निकलती हैं और खड्ग प्रज्वलित हो रहे हैं। सब शस्त्र मानों उपस्थित संग्राम को स्पष्ट देख रहे हैं। शस्त्रों, कवचों, जल और ध्वजाओं की आभा अग्नि की सी देख पड़ती है। इससे जान पड़ता है कि बड़ा भारी जनक्षय होगा। जिस समय पाण्डवों के साथ कौरवों का घोर संग्राम होगा, उस समय पृथ्वी पर रक्त की नदियाँ बह जायेंगी और उनमें ध्वजाएँ डोंगियों के समान देख पड़ेंगी ॥२१।२३॥ मृगों और पक्षियों के मुखसे अग्नि सी निकल रही है और वे भयानक शब्द कर रहे हैं। यह उत्पात भी कौरवों

संवत्सरस्थायिनौ च ग्रहौ प्रज्वलितावुभौ ।
विशाखायाः समीपस्थौ बृहस्पतिशनैश्चरौ ॥ २७ ॥
चन्द्रादित्यावुभौ ग्रस्तावेकाह्ना हि त्रयोदशीम् ।
अपर्वणि ग्रहं यातौ प्रजासंक्षयमिच्छतः ॥ २८ ॥
अशोभिता दिशः सर्वा पांसुवर्षैः समन्ततः ।
उत्पातमेघा रौद्राश्च रात्रौ वर्षन्ति शोणितम् ॥ २९ ॥
कृत्तिकां पीडयंस्तीक्ष्णैर्नक्षत्रं पृथिवीपते ।
अभीक्ष्णवाता वायन्ते धूमकेतुमवस्थिताः ॥ ३० ॥
विषमं जनयन्त्येत आक्रन्दजननं महत् ।
त्रिषु सर्वेषु नक्षत्रनक्षत्रेषु विशाम्पते ।
गृध्रः सम्पतते शीर्षं जनयन्भयमुत्तमम् ॥ ३१ ॥
चतुर्दशीं पञ्चदशीं भूतपूर्वां च षोडशीम् ।
इमां तु नाऽभिजानेऽहममावास्यां त्रयोदशीम् ।
चन्द्रसूर्यावुभौ ग्रस्तावेकमासीं त्रयोदशीम् ॥ ३२ ॥
अपर्वणि ग्रहेणैतौ प्रजाः संक्षपयिष्यतः ।
मांसवर्षं पुनस्तीव्रमासीत् कृष्णचतुर्दशीम् ।
शोणितैर्वक्त्रसम्पूर्णा अतृप्तास्तत्र राक्षसाः ॥ ३३ ॥

के लिए महाभय की सूचना दे रहा है। एक पङ्ख,एक आँख और पाँववाले आकाशचारी पक्षी रात्रि के समय क्रोधित होकर दारुण शब्द करते हैं और मुख से रक्त उगलते हैं। श्रवण में स्थित बृहस्पति और चित्रामें स्थित शनैश्चर शतपदचक्र में तिर्यग्वेध से विशाखा नक्षत्र को वेध रहे हैं। संवत्सरपर्यन्त एक राशि में रहनेवाले ये दोनों ग्रह अरुणप्रभा के साथ प्रज्वलित से हो रहे हैं। इन्होंने सप्तर्षियों की प्रभा को फीका कर दिया है। भारी धूल उड़कर प्रभा-हीन सब दिशाओं में छा रही है। उत्पातसूचक भयानक मेघ रात्रि को रक्त की वर्षा करते हैं। राहु ग्रह चित्रा के अंश में स्थित होकर रोहिणी को और स्वाती के अंश में स्थित होकर कृत्तिका को पीड़ा पहुँचा रहा है। उत्पातसूचक धूमकेतु का उदय होता है। बारम्बार वेग से आंधी चलती है। इन उत्पातों से भयङ्कर युद्ध होने की सूचना मिल रही है ॥२४।३०॥ पाप ग्रह बुध पूर्वाषाढ, पूर्वाफाल्गुनी और पूर्वाभाद्रपद नक्षत्रों के ऊपर जाकर प्राणियों के लिए महाभय की सूचना दे रहा है। एक तिथि का क्षय होने पर चौदहवें दिन, तिथि का क्षय न होने पर पन्द्रहवें दिन, अथवा एक तिथि बढने पर सोलहवें दिन चन्द्रमा या सूर्य को ग्रहण लगता है। किन्तु एक ही महीने में दो-दो तिथियों का क्षय होकर तेरहवें-तेरहवें दिन पूर्णिमा या अमावस को चन्द्रमा और सूर्य का ग्रहण मैंने कभी नहीं देखा। इस समय बहुत दिनों के पश्चात् यह दुर्योग हुआ है। इससे जान पड़ता है कि बड़ा भारी लोकक्षय होगा। कृष्ण

प्रतिस्रोतो महानद्यः सरितः शोणितोदकाः ।
फेनायमानाः कूपाश्च कूर्दन्ति वृषभा इव ॥ ३४ ॥
पतन्त्युल्काः सनिर्घाताः शक्राशनिसमप्रभाः ।
अद्य चैव निशां व्युष्टामनयं समवाप्स्यथ ॥ ३५ ॥
विनिःसृत्य महोल्काभिस्तिमिरं सर्वतोदिशम् ।
अन्योन्यमुपतिष्ठद्भिस्तत्र चोक्तं महर्षिभिः ॥ ३६ ॥
भूमिपालसहस्राणां भूमिः पास्यति शोणितम् ।
कैलासमन्दराभ्यां तु तथा हिमवता विभो ॥ ३७ ॥
सहस्रशो महाशब्दः शिखराणि पतन्ति च ।
महाभूता भूमिकम्पे चत्वारः सागराः पृथक् ।
वेलामुद्वर्त्तयन्तीव क्षोभयन्तो वसुन्धराम् ॥ ३८ ॥
वृक्षानुन्मथ्य वान्त्युग्रा वाताः शर्करकर्षिणः ।
आभग्नाः सुमहावातैरशनीभिः समाहताः ॥ ३९ ॥
वृक्षाः पतन्ति चैत्यश्चा ग्रामेषु नगरेषु च ।
नीललोहितपीतश्च भवत्यग्निर्हुतो द्विजैः ॥ ४० ॥
वामार्चिर्दुष्टगन्धश्च मुञ्चन्वै दारुणं स्वनम् ।
स्पर्शा गन्धा रसाश्चैव विपरीता महीपते ॥ ४१ ॥

चतुर्दशी के दिन मांस की घोर वर्षा हुई है। राक्षसों के मुख रक्त से परिपूर्ण होने पर भी वे तृप्त नहीं होते ॥३१।३३॥ नदियों का जल लाल हो रहा है और वे उलटी बह रही हैं। कुओं के जल में फेना उतरा रहा है और उनका जल वायु लगने से ऐसा उछल रहा है जैसे बैल कूदते हों। इन्द्र के वज्र के समान प्रभावाले तारे घोर शब्द के साथ टूट-टूटकर गिर रहे हैं। यह रात्रि व्यतीत होने पर तुम्हारे पुत्रों को महा अन्याय का फल भोगना पड़ेगा। इस उत्पात का फल जो महर्षियों ने कहा है वह यह है कि हज़ारों राजाओं का रक्त यह पृथ्वी पियेगी। घोर उल्कापात के साथ चारों ओर अन्धकार छा रहा है। कैलास, मन्दर पर्वत और हिमाचल आदि बड़े पर्वतों से हज़ारों घोर शब्द प्रकट हो रहे हैं और उनके शिखर टूट-टूटकर गिर रहे हैं। भूकम्प होता है और चारों महासागर बढ़कर, अपनी हद को छोड़कर, उमड़ रहे हैं, मानों सारी पृथ्वी को डुबा देंगे ॥३४।३८॥ आंधी वृक्षों को तोड़ती हुई, कङ्कड़ बरसाती हुई, ज़ोर से चल रही है। वज्रपात से टूट-टूटकर वृक्ष और देवमन्दिर गांवों और नगरों में गिर रहे हैं। ब्राह्मणों के हवन करने पर अग्नि की शिखा बाईं ओर को घूमती हुई निकलती है और उसमें नीला, लाल और पीला रङ्ग देख पड़ता है। अग्नि से भयानक शब्द के साथ दुर्गन्ध निकल रही है ॥३९।४०॥ स्पर्श, गन्ध, रस आदि में विपरीत भाव देख पड़ रहा है। ध्वजाएँ बारम्बार हिलती हैं और उनसे धुआं

धूमं ध्वजाः प्रमुञ्चन्ति कम्पमाना मुहुर्मुहुः ।
मुञ्चन्त्यङ्गारवर्षं च भेर्यश्च पटहास्तथा ॥ ४२ ॥
शिखराणां समृद्धानामुपरिष्टात्समन्ततः ।
वायसाश्च रुवन्त्युग्रं वामं मण्डलमाश्रिताः ॥ ४३ ॥
पक्कापक्केति सुभृशं वावाश्यन्ते वयांसि च ।
निलीयन्ते ध्वजाग्रेषु क्षयाय पृथिवीक्षिताम् ॥ ४४ ॥
ध्यायन्तः प्रकिरन्तश्च व्याला वेपथुसंयुताः ।
दीनास्तुरङ्गमाः सर्वे वारणाः सलिलाश्रयाः ॥ ४५ ॥
एतच्छ्रुत्वा भवानत्र प्राप्तकालं व्यवस्यताम् ।
यथा लोकः समुच्छेदं नाऽयं गच्छेत भारत ॥ ४६ ॥
वैशम्पायन उवाच--पितुर्वचो निशम्यैतद्धृतराष्ट्रोऽब्रवीदिदम् ।
दिष्टमेतत्पुरा मन्ये भविष्यति नरक्षयः ॥ ४७ ॥
राजानः क्षत्रधर्मेण यदि वध्यन्ति संयुगे ।
वीरलोकं समासाद्य सुखं प्राप्स्यन्ति केवलम् ॥ ४८ ॥
इह कीर्तिं परे लोके दीर्घकालं महत्सुखम् ।
प्राप्स्यन्ति पुरुषव्याघ्राः प्राणांस्त्यक्त्वा महाहवे ॥ ४९ ॥
वैशम्पायन उवाच—एवं मुनिस्तथेत्युक्त्वा कवीन्द्रो राजसत्तम ।
धृतराष्ट्रेण पुत्रेण ध्यानमन्वगमत्परम् ॥ ५० ॥

निकल रहा है। भेरी और पटह अङ्गारों की वर्षा करते हैं। ऊँचे वृक्षों के ऊपर बाँई ओर से घूम-घूमकर कौए बैठते हैं और अत्यन्त अमङ्गल शब्द कर रहे हैं। कुछ कौए बारम्बार काव-काव करके ध्वजाओं के अग्रभाग पर आ बैठते हैं और राजाओं के विनाश की सूचना दे रहे हैं। दुरन्त हाथी कांपते और चिन्तायुक्त से होकर मल-मूत्र त्याग कर रहे हैं। घोड़े अत्यन्त दीनभाव धारण किये हुए हैं। हाथियों के पसीना निकल रहा है। [इस प्रकार स्वर्ग, आकाश और पृथ्वी पर विविध उत्पात हो रहे हैं जिनमें राजाओं के लिए महाभय की सूचना मिल रही है।] हे राजेन्द्र ! अब तुम इन उत्पातों को देखकर समयानुसार ऐसा कोई उपाय करो जिसमें यह लोक-क्षय न हो ॥४२।४६॥ वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजा जनमेजय ! अपने पिता वेदव्यास के ये वचन सुनकर अब धृतराष्ट्र ने कहा है--भगवन् ! यह लोक-क्षय होना मेरी बुद्धि मे दैवकृत है। राजा लोग क्षत्रिय-धर्म के अनुसार युद्ध में मरकर वीरों के योग्य लोकों में जाकर सुख भोगेंगे। यहा उनकी परम कीर्ति होगी और परलोक मे उन्हे सुख भोगने को मिलेगा ॥४७।४९॥ धृतराष्ट्र के ये वचन सुनकर कवीश्वर व्यासदेव ने दम भर सोचकर कहा—हे राजेन्द्र ! इसमें संशय नहीं कि काल इस संसार का विनाश करता है और फिर जगत् की सृष्टि करता है। इस लोक में कोई वस्तु

स मुहूर्त्तं तथा ध्यात्वा पुनरेवाऽब्रवीद्वचः ।
असंशयं पार्थिवेन्द्र कालः संक्षयते जगत् ॥ ५१ ॥
सृजते च पुनर्लोकान्नेह विद्यति शाश्वतम् ।
ज्ञातीनां वै कुरूणां च सम्बन्धिसुहृदां तथा ॥ ५२ ॥
धर्म्यं देशय पन्थानं समर्थो ह्यसि वारणे ।
क्षुद्रं ज्ञातिवधं प्राहुर्मा कुरुष्व ममाऽप्रियम् ॥ ५३ ॥
कालोऽयं पुत्ररूपेण तव जातो विशाम्पते ।
न वधः पूज्यते वेदे हितं नैव कथञ्चन ॥ ५४ ॥
हन्यात्स एनं यो हन्यात्कुलधर्मं स्विकां तनुम् ।
कालेनोत्पथगन्ताऽसि शक्ये सति यथाऽऽपदि ॥ ५५ ॥
कुलस्याऽस्य विनाशाय तथैव च महीक्षिताम् ।
अनर्थो राज्यरूपेण तव जातो विशाम्पते ॥ ५६ ॥
लुप्तधर्मा परेणाऽसि धर्मं दर्शय वै सुतान् ।
किं ते राज्येन दुर्धर्ष येन प्राप्तोऽसि किल्बिषम् ॥ ५७ ॥
यशो धर्मं च कीर्तिं च पालयन्स्वर्गमाप्स्यसि ।
लभन्तां पाण्डवा राज्यं शमं गच्छन्तु कौरवाः ॥ ५८ ॥
एवं ब्रुवति विप्रेन्द्रे धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।
आक्षिप्य वाक्यं वाक्यज्ञो वाक्यं चैवाऽब्रवीत्पुनः ॥ ५९ ॥

सदा रहनेवाला नहीं है। तुम इस अनिष्ट घटना को रोकने में समर्थ हो। इसलिए इस समय कौरव, पाण्डव, सम्बन्धी और सुहृद् आदि को धर्म का मार्ग दिखाओ और उस पर चलने के लिए उनसे अनुरोध करो। जाति का वध बड़ा ही क्षुद्र और नीच कार्य है। उसे रोको। चुप रहकर मेरा अप्रिय मत करो। वेद में हत्याकाण्ड—जाति-वध—की बड़ी निन्दा की गई है। यह कभी हितकारी नहीं हो सकता। हे राजेन्द्र! साक्षात् काल ही तुम्हारे यहां पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ है। मनुष्य का शरीर कुल-धर्म का पालन करता है। जो कोई अपने कुल-धर्म रूप शरीर को नष्ट करता है उसे यह कुल-धर्म ही चौपट कर देता है। तुम कालप्रेरित होकर, आपत्काल न होने पर भी आपत्काल की तरह, जातिवध में लगे हुए हो। अपने कुल और अन्य राजाओं के संहार के लिए काल की प्रेरणा से तुम कुमार्ग में चलाये जा रहे हो। राज्य का लोभ ही इस महान् अनर्थ का मूल कारण है। तुम एकदम धर्म का लोप करने पर उतारू हुए हो। मेरा कहा मानो, पुत्रों को धर्म का मार्ग दिखाओ। हे राजेन्द्र! तुम यह राज्य लेकर क्या करोगे जिसमें पापभागी होना पड़ेगा और अकीर्ति व्यर्थ में होगी? जो मेरा कहा मानोगे तो तुम्हें यश, धर्म और कीर्ति प्राप्त होगी। अन्त को स्वर्गलोक में जाओगे। इसलिए ऐसा करो, जिसमें पाण्डवों को राज्य मिले और कौरव

धृतराष्ट्र उवाच—यथा भवान्वेत्ति तथैव वेत्ता भावाभावौ विदितौ मे यथार्थौ ।
स्वार्थे हि संमुह्यति तात लोको मां चापि लोकात्मकमेव विद्धि ॥ ६० ॥
प्रसादये त्वामतुलप्रभावं त्वं नो गतिर्दर्शयिता च धीरः ।
न चापि ते मद्वशगा महर्षे न चाऽधर्मं कर्तुमर्हो हि मे मतिः ॥ ६१ ॥
त्वं हि धर्मप्रवृत्तिश्च यशः कीर्तिश्च भारती ।
कुरूणां पाण्डवानां च मान्यश्चापि पितामहः ॥ ६२ ॥
व्यास उवाच—वैचित्रवीर्य नृपते यत्ते मनसि वर्तते ।
अभिधत्स्व यथाकामं छेत्ताऽस्मि तव संशयम् ॥ ६३ ॥
धृतराष्ट्र उवाच—यानि लिङ्गानि संग्रामे भवन्ति विजयिष्यताम् ।
तानि सर्वाणि भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ६४ ॥
व्यास उवाच—प्रसन्नभाः पावक ऊर्ध्वरश्मिः प्रदक्षिणावर्त्तशिखो विधूमः ।
पुण्या गन्धाश्चाऽऽहुतीनां प्रवान्ति जयस्यैतद्भाविनो रूपमाहुः ॥ ६५ ॥
गम्भीरघोषाश्च महास्वनाश्च शङ्खा मृदङ्गाश्च नदन्ति यत्र ।
विशुद्धरश्मिस्तपनः शशी च जयस्यैतद्भाविनो रूपमाहुः ॥ ६६ ॥
इष्टा वाचः प्सृता वायसानां सम्प्रस्थितानां च गमिष्यतां च ।
ये पृष्ठतस्ते त्वरयन्ति राजन्ये चाऽग्रतस्ते प्रतिषेधयन्ति ॥ ६७ ॥

कल्याण तथा सुख प्राप्त करें ॥५४।५८॥ व्यासदेव के यों कहने पर राजा धृतराष्ट्र ने प्रशंसा करके भी उनकी बातों के ऊपर उपेक्षा का भाव दिखाकर कहा—हे भगवन् ! आपकी तरह मैं भी स्थिति और विनाश का यथार्थ हाल जानता हूँ । हे तात ! सब संसार के लोग स्वार्थ-साधन के मोह में पड़कर स्वार्थ साधने की ही धुन में लगे रहते हैं । मैं संसार के ही भीतर हूँ । आपका प्रभाव अतुल है । आप धीर पुरुष हैं । मेरी एक मात्र गति और मुझे उपदेश देनेवाले आप ही हैं । इसी लिए मैं आपको मानता हूँ । हे महर्षि ! मेरे बेटे मेरे वश में नहीं हैं । मैं स्वयं अधर्म करना नहीं चाहता । आप हमारे धर्म, यश, कीर्ति, धैर्य, स्मृति आदि के मूल कारण हैं । आप कौरवों और पाण्डवों के माननीय पितामह हैं । इसलिए पाण्डवों की तरह कौरवों पर भी आपको कृपा करनी चाहिए ॥५९।६२॥ व्यासजी ने कहा—हे राजेन्द्र ! तुम्हारे मन में जो सन्देह है उसे प्रकट करो । मैं तुम्हारे संशयों को मिटा दूंगा ॥६३॥ धृतराष्ट्र ने कहा—हे भगवन् ! युद्ध में विजय प्राप्त करनेवालों को जो शुभ लक्षण देख पड़ते हैं, उन्हें कहिए। उन्हें सुनने की मुझे बड़ी अभिलाषा है ॥६४॥ व्यासजी ने कहा—हे राजेन्द्र ! हवन के उपरान्त अग्नि की निर्मल प्रभा देख पड़ती है । अग्नि की लपट दक्षिणावर्त उठती है । बिना धुएँ की अग्नि की ज्वालाएँ ऊपर उठती हैं । आहुति छोड़ने के समय अग्नि से अत्यन्त पवित्र गन्ध निकलती है । यही विजय का लक्षण है । जिधर शङ्ख और मृदङ्ग का शब्द बड़ा भारी और गम्भीर होता है, सूर्य और चन्द्रमा का प्रकाश अत्यन्त उज्ज्वल होता है उधर ही जय होना निश्चित है । युद्ध में जिनके जाते समय कौए अनुकूल

कल्याणवाचः शकुना राजहंसाः शुकाः क्रौञ्चाः शतपत्राश्च यत्र ।
प्रदक्षिणाश्चैव भवन्ति संख्ये ध्रुवं जयस्तत्र वदन्ति विप्राः ॥ ६८ ॥
अलङ्कारैः कवचैः केतुभिश्च सुखप्रणादैर्हेषितैर्वा हयानाम् ।
भ्राजिष्मती दुष्प्रतिवीक्षणीया येषां चमूस्ते विजयन्ति शत्रून् ॥ ६९ ॥
हृष्टा वाचस्तथा सत्त्वं योधानां यत्र भारत ।
न म्लायन्ति स्रजश्चैव ते तरन्ति रणोदधिम् ॥ ७० ॥
इष्टा वाचः प्रविष्टस्य दक्षिणाः प्रविविक्षतः ।
पश्चात्सन्धारयन्त्यर्थमग्रे च प्रतिषेधिकाः ॥ ७१ ॥
शब्दरूपरसस्पर्शगन्धाश्चाऽविकृताः शुभाः ।
सदा हर्षश्च योधानां जयतामिह लक्षणम् ॥ ७२ ॥
अनुगा वायवो वान्ति तथाऽभ्राणि वयांसि च ।
अनुप्लवन्ति मेघाश्च तथैवेन्द्रधनूंषि च ॥ ७३ ॥
एतानि जयमानानां लक्षणानि विशाम्पते ।
भवन्ति विपरीतानि मुमूर्षूणां जनाधिप ॥ ७४ ॥
अल्पायां वा महत्यां वा सेनायामिति निश्चयः ।
हर्षो योधगणस्यैको जयलक्षणमुच्यते ॥ ७५ ॥

शब्द करते हैं उनकी जय अवश्य होती है। पीछे कौओं का बोलना शुभ है और आगे बोलना अशुभ है ॥६५।६७॥ ब्राह्मणों का कहना है कि राजहंस, तोते, क्रौंच, शतपत्र आदि पक्षी शुभ शब्द करते हुए जिनकी प्रदक्षिणा करते हैं उनको अवश्य जय प्राप्त होती है। अलङ्कार, कवच, ध्वजा, सिंहनाद और घोड़ों के शब्द आदि से जिनकी सेना परम शोभायमान और दुर्निरीक्ष्य होती है उन्हीं को जय प्राप्त होती है। हे भारत! जिधर योद्धाओं के वचन हर्षपूर्ण होते हैं और वीरों के कण्ठ की मालाएँ नहीं मुरझातीं वे ही सुख से संग्राम-सागर के पार पहुँचते हैं ॥६८।७०॥ जो योद्धा शत्रु-सेना में प्रवेश करके "मार डालता हूँ" इत्यादि उत्साह के वाक्य कहते हैं, और शत्रुसेना में प्रवेश होने के लिए उत्सुक होकर "तुम्हारी सेना नष्ट हुई" इत्यादि वाक्य कहते हैं वे जय प्राप्त करने में समर्थ होते हैं। जिस पक्ष के योद्धा कहते हैं कि "युद्ध न करना, मारे जाओगे" वह पक्ष अवश्य ही हार जाता है। जिनकी जय होनेवाली होती है उनके शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि के कार्यों में कुछ भी विकार नहीं देख पड़ता—हृदय में सदा हर्ष बना रहता है। वायु का अनुकूल होकर चलना, अनुकूल वर्षा होना, पक्षियों का अनुकूल चलकर शब्द करना और इन्द्रधनुषों का पीछे उदय होना, ये लक्षण विजय के सूचक हैं। हे राजेन्द्र! इन बातों का प्रतिकूल होना हार का और मृत्यु का लक्षण समझना चाहिए ॥७१।७४॥ सेना थोड़ी हो चाहे अधिक, योद्धा लोगों में हर्ष और उत्साह देख पड़ना ही जय का मुख्य कारण है। एक सैनिक भी यदि उत्साहहीन होकर

एको दीर्णो दारयति सेनां सुमहतीमपि ।
तां दीर्णामनुदीर्यन्ते योधाः शूरतरा अपि ॥ ७६ ॥
दुर्निवर्त्या तदा चैव प्रभग्ना महती चमूः ।
अपामिव महावेगास्त्रस्ता मृगगणा इव ॥ ७७ ॥
नैव शक्या समाधातुं सन्निपाते महाचमूः ।
दीर्णामित्येव दीर्यन्ते सुविद्वांसोऽपि भारत ॥ ७८ ॥
भीतान्भग्नांश्च सम्प्रेक्ष्य भयं भूयोऽभिवर्द्धते ।
प्रभग्ना सहसा राजन्दिशो विद्रवते चमूः ॥ ७९ ॥
नैव स्थापयितुं शक्या शूरैरपि महाचमूः ।
सत्कृत्य महतीं सेनां चतुरङ्गां महीपतिः ।
उपायपूर्वं मेधावी यतेत सततोत्थितः ॥ ८० ॥
उपायविजयं श्रेष्ठमाहुर्भेदेन मध्यमम् ।
जघन्य एष विजयो यो युद्धेन विशाम्पते ॥ ८१ ॥
महान्दोषः सन्निपातस्तस्याऽऽद्यः क्षय उच्यते ।
परस्परज्ञाः संहृष्टा व्यवधूताः सुनिश्चिताः ॥ ८२ ॥
अपि पञ्चाशतं शूरा मृद्नन्ति महतीं चमूम् ।

भाग खड़ा हो तो बहुत सी सेना भी भाग खड़ी होती है। सेना के पांव उखड़ जाने पर बड़े-बड़े शूरवीर भी पीछे हट जाते हैं। जब बड़ी भारी सेना भाग खड़ी होती है तब, भयभीत होकर भागे हुए मृगों के झुण्ड की तरह, जल के महाप्रवाह की तरह, वह लौटाई नहीं जा सकती ॥७५।७७॥ उस संघर्ष के समय बड़े-बड़े चतुर रण-पण्डित सेनापति भी उस बेसिलसिले भागती हुई सेना को सँभालने और एकत्र करने में असमर्थ हो जाते हैं; बल्कि सब सेना को भागते देखकर वे आप ही डरकर, निरुत्साह होकर, भागने को तैयार हो जाते हैं। उन्हें डरे हुए और भागते देखकर बची हुई सेना और भी डर जाती है। तब बड़े-बड़े शूर भी उस महासेना को नहीं रोक सकते। बुद्धिमान् राजा को चाहिए कि सदा सावधान रहकर चतुरङ्गिणी सेना को सत्कारपूर्वक अपने वश में रक्खे, और फिर पहले साम, दान आदि उपायों से विजय प्राप्त करने की चेष्टा करे ॥७८।८०॥ भेद से जय प्राप्त करने का उपाय मध्यम है। युद्ध करके जय प्राप्त करना अधम उपाय है। जब कोई उपाय काम न करे तब युद्ध करना चाहिए। वास्तव में युद्ध में अनेक दोष हैं। सबसे बड़ा और पहला दोष यह है कि उसमें मनुष्यों का नाश होता है। हे राजेन्द्र! एक दूसरे को अच्छी तरह जाननेवाले, उत्साही, स्त्री-पुत्र आदि में आसक्ति न रखनेवाले, दृढ निश्चयवाले, हृष्ट, कभी पीठ न दिखानेवाले पचास वीर पुरुष भी बड़ी भारी सेना को नष्ट कर देते हैं। तत्परता से युद्ध करनेवाले पांच, छः, सात मनुष्य भी विजय प्राप्त कर सकते हैं। इन गुणों से हीन हज़ारों मनुष्य भी

अपि वा पञ्च षट् सप्त विजयन्त्यनिवर्तिनः ॥ ८३ ॥
न वैनतेयो गरुडः प्रशंसति महाजनम् ।
दृष्ट्वा सुपर्णोऽपचितिं महत्या अपि भारत ॥ ८४ ॥
न बाहुल्येन सेनाया जयो भवति नित्यशः ।
अध्रुवो हि जयो नाम दैवं चाऽत्र परायणम् ।
जयवन्तो हि संग्रामे कृतकृत्या भवन्ति हि ॥ ८५ ॥

इति श्री मन्महाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डनिर्माणपर्वणि निमित्ताख्याने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

भाग खड़े होते हैं। असंख्य स्वर्णचूड पक्षियों के झुण्ड को गरुड अकेले ही मार भगाते हैं। इस प्रकार अकेले अपने द्वारा भारी सेना के विनाश को देखकर गरुड बहुत बड़ी सेना की प्रशंसा नहीं करते। हे राजेन्द्र! सेना बहुत होने से ही सदा जय नहीं होती। जय अनिश्चित है। वह दैव के अधीन है। जो लोग संग्राम में विजय प्राप्त करते हैं वे कृतकृत्य हो जाते हैं ॥८१।८५॥

भीष्मपर्व का तीसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

वैशम्पायन उवाच—एवमुक्त्वा ययौ व्यासो धृतराष्ट्राय धीमते ।
धृतराष्ट्रोऽपि तच्छ्रुत्वा ध्यानमेवाऽन्वपद्यत ॥ १ ॥
स मुहूर्तमिव ध्यात्वा विनिःश्वस्य मुहुर्मुहुः ।
सञ्जयं संशितात्मानमपृच्छद्भरतर्षभ ॥ २ ॥
सञ्जयेमे महीपालाः शूरा युद्धाभिनन्दिनः ।
अन्योन्यमभिनिघ्नन्ति शस्त्रैरुच्चावचैरिह ॥ ३ ॥
पार्थिवाः पृथिवीहेतोः समभित्यज्य जीवितम् ।
न च शाम्यन्ति निघ्नन्तो वर्धयन्ति यमक्षयम् ॥ ४ ॥
भौममैश्वर्यमिच्छन्तो न मृष्यन्ते परस्परम् ।
मन्ये बहुगुणा भूमिस्तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ ५ ॥

चौथा अध्याय ॥ ४ ॥

वैशम्पायन ने कहा—हे राजा जनमेजय! महात्मा व्यासदेव जी इतना कहकर जब चले गये तब उनके वचन सुनकर राजा धृतराष्ट्र ने कुछ देर तक सोचा। फिर बारम्बार सांस छोड़ते हुए धृतराष्ट्र ने ज्ञानी संजय से कहा—हे संजय! संग्रामप्रिय महाबली पराक्रमी राजा लोग युद्ध में जीवन का मोह और आशा छोड़कर विविध अस्त्र-शस्त्रों के द्वारा एक दूसरे की हत्या करेंगे। वे परस्पर मार कर यमपुरी को भर मले देंगे, किन्तु शान्त भाव नहीं धारण करेंगे। राजा लोग पृथ्वी के ऐश्वर्य की इच्छा से एक दूसरे को नहीं देख सकते; एक दूसरे का प्राणान्तक शत्रु हो रहा है। इस नीच व्यवहार—युद्ध—से कोई

बहूनि च सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
कोटयश्च लोकवीराणां समेताः कुरुजाङ्गले ॥ ६ ॥
देशानां च परीमाणं नगराणां च सञ्जय ।
श्रोतुमिच्छामि तत्त्वेन यत एते समागताः ॥ ७ ॥
दिव्यबुद्धिप्रदीपेन युक्तस्त्वं ज्ञानचक्षुषा ।
प्रभावात्तस्य विप्रर्षेर्व्यासस्याऽमिततेजसः ॥ ८ ॥
सञ्जय उवाच—यथाप्रज्ञं महाप्राज्ञ भौमान्वक्ष्यामि ते गुणान् ।
शास्त्रचक्षुरवेक्षस्व नमस्ते भरतर्षभ ॥ ९ ॥
द्विविधानीह भूतानि चराणि स्थावराणि च ।
त्रसानां त्रिविधा योनिरण्डस्वेदजरायुजाः ॥ १० ॥
त्रसानां खलु सर्वेषां श्रेष्ठा राजञ्जरायुजाः ।
जरायुजानां प्रवरा मानवाः पशवश्च ये ॥ ११ ॥
नानारूपधरा राजंस्तेषां भेदाश्चतुर्दश ।
वेदोक्ताः पृथिवीपाल येषु यज्ञाः प्रतिष्ठिताः ॥ १२ ॥
ग्राम्याणां पुरुषाः श्रेष्ठाः सिंहाश्चाऽरण्यवासिनाम् ।
सर्वेषामेव भूतानामन्योन्येनोपजीवनम् ॥ १३ ॥

लौटना नहीं चाहता । इससे मुझे जान पड़ता है कि पृथ्वी में बहुत से गुण हैं । तुम मेरे आगे पृथ्वी के गुणों का वर्णन करो । तुम उन अमित तेजस्वी महर्षि व्यासदेव के प्रसाद से दिव्य बुद्धि और ज्ञानमयी दिव्य दृष्टि प्राप्त कर चुके हो ॥१।५॥ कुरुक्षेत्र में हज़ारों, लाखों, करोड़ों वीर क्षत्रिय आकर युद्ध के लिए एकत्र हुए हैं । मैं सुनना चाहता हूँ कि वे कहाँ-कहाँ से आये हैं । उनके देशों और नगरों की आकृति-प्रकृति सुनने की मुझे बड़ी अभिलाषा है ॥६।८॥ सञ्जय ने कहा—हे भरतश्रेष्ठ ! आप बड़े बुद्धिमान् हैं । मैं आपको प्रणाम करके पृथ्वी के गुणों का वर्णन करता हूँ, सुनिए । हे राजेन्द्र ! प्राणी दो प्रकार के हैं । स्थावर और जङ्गम, अर्थात् स्थिर और चलनेवाले जङ्गम तीन प्रकार के हैं । अण्डे से उत्पन्न होनेवाले, पसीने से उत्पन्न होनेवाले और जरायु नाम की झिल्ली से उत्पन्न होनेवाले । सब जङ्गम जीवों में जरायु से उत्पन्न होनेवाले पशु और मनुष्य श्रेष्ठ हैं ॥९।११॥ उनमें विविध रूपधारी यज्ञ के साधन रूप पशु प्रधान हैं । पशु चौदह प्रकार के हैं । उनमें सात पशु वन के रहनेवाले और सात पशु गाँवों के निवासी हैं । सिंह, बाघ, वराह, भैंसे, हाथी, रीछ और वानर, ये सात जङ्गली पशु हैं । गाय, बकरी, भेड़ा, मनुष्य, घोड़े, खच्चर और गधे, ये सात गाँवों के निवासी हैं । हे राजेन्द्र ! वेद में इन चौदह पशुओं का वर्णन है । इनके अनेक उपभेद भी हैं । ग्रामवासियों में मनुष्य और वनवासियों में सिंह प्रधान है । ये सब जीव एक दूसरे के द्वारा अपनी जीविका चलाते हैं । स्थावर प्राणी उद्भिज् (पृथ्वी फोड़कर निकलते)

उद्भिज्जाः स्थावराः प्रोक्तास्तेषां पञ्चैव जातयः ।
वृक्षगुल्मलता वल्ल्यस्त्वक्सारास्तृणजातयः ॥ १४ ॥
तेषां विंशतिरेकोना महाभूतेषु पञ्चसु ।
चतुर्विंशतिरुद्दिष्टा गायत्री लोकसम्मता ॥ १५ ॥
य एतां वेद गायत्रीं पुण्यां सर्वगुणान्विताम् ।
तत्त्वेन भरतश्रेष्ठ स लोके न प्रणश्यति ॥ १६ ॥
अरण्यवासिनः सप्त सप्तैषां ग्रामवासिनः ।
सिंहा व्याघ्रा वराहाश्च महिषा वारणास्तथा ॥ १७ ॥
ऋक्षाश्च वानराश्चैव सप्ताऽऽरण्याः स्मृता नृप ।
गौरजाविमनुष्याश्च अश्वाश्वतरगर्दभाः ॥ १८ ॥
एते ग्राम्याः समाख्याताः पशवः सप्त साधुभिः ।
एते वै पशवो राजन्ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश ॥ १९ ॥
भूमौ च जायते सर्वं भूमौ सर्वं विनश्यति ।
भूमिः प्रतिष्ठा भूतानां भूमिरेव सनातनम् ॥ २० ॥
यस्य भूमिस्तस्य सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
तत्राऽतिगृद्धा राजानो विनिघ्नन्तीतरेतरम् ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि भौमगुणकथने चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

हैं। उनकी पाँच प्रकार की जातियाँ हैं—वृक्ष, लता (जो बहुत दिनों तक पेड़ पर रहें, जैसे गिलोय आदि), गुल्म, वल्ली, (एक वर्ष तक पृथ्वी पर फैलनेवाली कुहड़े आदि की) और त्वक्सार तृण (बाँस आदि) ॥१२।१४॥ ये स्थावर-जङ्गमरूप उन्नीस भूत (प्राणी) हैं। पञ्च महाभूत (आकाश, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु) मिलकर ये चौबीस हैं। चौबीस वर्णवाली गायत्री अपने वर्णों से इन्हीं चौबीस भूतों का बोध कराती है। सब गुणों से युक्त पवित्र वेदमाता गायत्री के इस भेद को जो कोई जानता है उसका विनाश नहीं होता। हे राजेन्द्र! भूमि से ही सबकी उत्पत्ति होती है और भूमि में ही सब लीन हो जाते हैं। भूमि ही सब प्राणियों का अधिष्ठान है। भूमि ही नित्य है। जिसके अधीन भूमि है उसके वश में सब स्थावर-जङ्गमरूप जगत् है। भूमि पर अत्यन्त लोभ होने से ही राजा लोग एक दूसरे की हत्या करने को उद्यत हो जाते हैं ॥१५।२१॥

भीष्मपर्व का चौथा अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—नदीनां पर्वतानां च नामधेयानि सञ्जय ।
तथा जनपदानां च ये चाऽन्ये भूमिमाश्रिताः ॥ १ ॥

प्रमाणं च प्रमाणज्ञ पृथिव्या मम सर्वतः ।
निखिलेन समाचक्ष्व काननानि च सञ्जय ॥ २ ॥

सञ्जय उवाच—पञ्चेमानि महाराज महाभूतानि संग्रहात् ।
जगतीस्थानि सर्वाणि समान्याहुर्मनीषिणः ॥ ३ ॥
भूमिरापस्तथा वायुरग्निराकाशमेव च ।
गुणोत्तराणि सर्वाणि तेषां भूमिः प्रधानतः ॥ ४ ॥
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च पञ्चमः ।
भूमेरेते गुणाः प्रोक्ता ऋषिभिस्तत्त्ववेदिभिः ॥ ५ ॥
चत्वारोऽप्सु गुणा राजन्गन्धस्तत्र न विद्यते ।
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च तेजसोऽथ गुणास्त्रयः ।
शब्दः स्पर्शश्च वायोस्तु आकाशे शब्द एव तु ॥ ६ ॥
एते पञ्च गुणा राजन्महाभूतेषु पञ्चसु ।
वर्तन्ते सर्वलोकेषु येषु भूताः प्रतिष्ठिताः ॥ ७ ॥
अन्योन्यं नाऽभिवर्तन्ते साम्यं भवति वै यदा ॥ ८ ॥
यदा तु विषमीभावमाविशन्ति परस्परम् ।
तदा देहैर्देहवन्तो व्यतिरोहन्ति नाऽन्यथा ॥ ९ ॥
आनुपूर्व्या विनश्यन्ति जायन्ते चाऽनुपूर्वशः ।
सर्वाण्यपरिमेयाणि तदेषां रूपमैश्वरम् ॥ १० ॥

पांचवां अध्याय ॥ ५ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे संजय ! इस पृथ्वी पर जो नदी, पर्वत, जनपद, वन आदि हैं उनके नाम और परिमाण विशेष रूप से कहो। संजय ने कहा—हे राजेन्द्र ! उक्त पञ्च महाभूतों की सन्धि से ही जगत् के सब पदार्थ बने हैं। इसी से बुद्धिमान् विद्वान् लोग पृथ्वी के सब पदार्थों को समान कहते हैं। आकाश, वायु, तेज, जल और भूमि, ये पांचों महाभूत उत्तरोत्तर अधिक गुण-सम्पन्न हैं। तत्त्वज्ञानी ऋषियों का कहना है कि पृथ्वी में शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये पांचों गुण हैं। जल में शब्द, स्पर्श, रूप और रस, ये चार ही गुण हैं; गन्ध नहीं है। तेज में शब्द, स्पर्श और रूप, ये तीन ही गुण हैं। वायु में शब्द और स्पर्श, ये दो गुण हैं। आकाश का गुण केवल शब्द है ॥१।६॥ हे महाराज ! यह सारा संसार पञ्चभूतमय है। जब ये पांचों गुण समभाव से, परस्पर प्रशान्त रूप से, रहते हैं तब सृष्टि की स्थिति बनी रहती है। उसी तरह जब इनमें विषमता हो जाती है तब देहधारियों के शरीर छूट जाते हैं। ये सब गुण क्रमशः एक-एक से उत्पन्न होते हैं और अन्त को उसी क्रम से एक-एक में लीन हो जाते हैं। इन सबका परिमाण करना अत्यन्त कठिन है। इन गुणों का रूप ईश्वरकृत है ॥७।१०॥ पाञ्चभौतिक

तत्र तत्र हि दृश्यन्ते धातवः पाञ्चभौतिकाः ।
तेषां मनुष्यास्तर्केण प्रमाणानि प्रचक्षते ॥ ११ ॥
अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण साधयेत् ।
प्रकृतिभ्यः परं यत्तु तदचिन्त्यस्य लक्षणम् ॥ १२ ॥
सुदर्शनं प्रवक्ष्यामि द्वीपं तु कुरुनन्दन ।
परिमण्डलो महाराज द्वीपोऽसौ चक्रसंस्थितः ॥ १३ ॥
नदीजलप्रतिच्छन्नः पर्वतैश्चाऽभ्रसन्निभैः ।
पुरैश्च विविधाकारै रम्यैर्जनपदैस्तथा ॥ १४ ॥
वृक्षैः पुष्पफलोपेतैः सम्पन्नधनधान्यवान् ।
लवणेन समुद्रेण समन्तात्परिवारितः ॥ १५ ॥
यथा हि पुरुषः पश्येदादर्शे मुखमात्मनः ।
एवं सुदर्शनद्वीपो दृश्यते चन्द्रमण्डले ॥ १६ ॥
द्विरंशे पिप्पलस्तत्र द्विरंशे च शशो महान् ।
सर्वौषधिसमावायः सर्वतः परिवारितः ॥ १७ ॥
आपस्ततोऽन्या विज्ञेयाः शेषः संक्षेप उच्यते ।
ततोऽन्य उच्यते चाऽयमेनं संक्षेपतः शृणु ॥ १८ ॥

इति श्रीमन्महाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डनिर्माणपर्वणि सुदर्शनद्वीपवर्णने पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

धातु सभी स्थानों में देख पड़ते हैं। मनुष्य तर्क के द्वारा उनके प्रमाणों का निर्देश करते हैं। किन्तु जो भाव (संसार की उत्पत्ति-सम्बन्धी पदार्थ) अचिन्त्य हैं उनका निरूपण तर्क के द्वारा न करना चाहिए। जो विषय या पदार्थ इन्द्रियों से परे है उसी को अचिन्त्य समझना चाहिए ॥११।१२॥ हे राजेन्द्र ! अब मैं जम्बूद्वीप का वर्णन करता हूँ; सुनिए। इस जम्बूद्वीप का दूसरा नाम सुदर्शन द्वीप है। यह चक्र के आकार का गोल और दुर्लक्ष्य है। इसके सब स्थानों में नदियां हैं, जल भरा हुआ है। इसमें मेघ की तरह ऊँचे पर्वत, तरह तरह के नगर, रम्य जनपद और फल-पुष्प-पूर्ण वृक्ष असंख्य हैं। इस धनधान्य-पूर्ण द्वीप को चारों ओर से खारी समुद्र घेरे हुए है ॥१३।१५॥ जैसे शीशे में मनुष्य अपना मुख देखता है, वैसे ही सुदर्शनद्वीप का प्रतिबिम्ब चन्द्रमा के मण्डल में देख पड़ता है। जम्बूद्वीप के [दो अंशों में प्लक्षस्थान, दो अंशों में शाल्मलिस्थान] दो अंशों में पिप्पल स्थान और दो अंशों में महाशशस्थान है। इस स्थान में भी सब प्रकार की औषधियां और पर्वत हैं। इसमें नदियां भी हैं। अब मैं जम्बूद्वीप के शेष खण्डों का वर्णन संक्षेप में करता हूँ; सुनिए ॥१६।१८॥

—०—

भीष्मपर्व का पाँचवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५ ॥



अथ षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—उक्तो द्वीपस्य संक्षेपो विधिवद् बुद्धिमंस्त्वया ।
तत्त्वज्ञश्चाऽसि सर्वस्य विस्तरं ब्रूहि सञ्जय ॥ १ ॥
यावान्भूम्यवकाशोऽयं दृश्यते शशलक्षणे ।
तस्य प्रमाणं प्रब्रूहि ततो वक्ष्यसि पिप्पलम् ॥ २ ॥
वैशम्पायन उवाच—एवं राज्ञा स पृष्टस्तु सञ्जयो वाक्यमब्रवीत् ।
सञ्जय उवाच—प्रागायता महाराज षडेते वर्षपर्वताः ।
अवगाढा ह्युभयतः समुद्रौ पूर्वपश्चिमौ ॥ ३ ॥
हिमवान्हेमकूटश्च निषधश्च नगोत्तमः ।
नीलश्च वैदूर्यमयः श्वेतश्च शशिसन्निभः ॥ ४ ॥
सर्वधातुविचित्रश्च शृङ्गवान्नाम पर्वतः ।
एते वै पर्वता राजन्सिद्धचारणसेविताः ॥ ५ ॥
एषामन्तरविष्कम्भो योजनानि सहस्रशः ।
तत्र पुण्या जनपदास्तानि वर्षाणि भारत ॥ ६ ॥
वसन्ति तेषु सत्वानि नानाजातीनि सर्वशः ।
इदं तु भारतं वर्षं ततो हैमवतं परम् ॥ ७ ॥
हेमकूटात्परं चैव हरिवर्षं प्रचक्षते ।
दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु ॥ ८ ॥
प्रागायतो महाभाग माल्यवान्नाम पर्वतः ।
ततः परं माल्यवतः पर्वतो गन्धमादनः ॥ ९ ॥

छठा अध्याय ॥ ६ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे संजय ! तुम संक्षेप में जम्बूद्वीप का वर्णन कर चुके; अब उसका वर्णन विस्तार के साथ करो । तुम सब तत्त्वों को अच्छी प्रकार जानते हो । महाकाश स्थान में जितनी पृथ्वी है उसका परिमाण और हाल पहले कहकर फिर पिप्पल स्थान का वर्णन करना ॥१।२॥ संजय ने कहा—हे राजेन्द्र ! हिमालय, हेमकूट, निषध, वैदूर्यमय नील पर्वत, चन्द्रतुल्य श्वेतपर्वत और सब धातुओं के विचित्र शिखरों से शोभित शृङ्गवान् नाम का पर्वत—ये छः सीमापर्वत पूर्व समुद्र से पश्चिम समुद्र तक फैले हुए हैं । इन पर्वतों पर सिद्धगण और चारण रहते हैं ॥३।५॥ इन पर्वतों के बीच का अन्तर हज़ारों योजन का है । वह बीच का पवित्र स्थान रहने के योग्य है । वे ही भारत खण्ड हैं । उनमें अनेक जातियों के प्राणी वास करते हैं । यह भारतवर्ष है । इसके बाद हैमवत खण्ड है । हेमकूट पर्वत के बाद हरिवर्ष नाम का खण्ड है । नील पर्वत के दक्षिण ओर और निषध पर्वत के उत्तर ओर माल्यवान् नाम का पर्वत

परिमण्डलस्तयोर्मध्ये मेरुः कनकपर्वतः ।
आदित्यतरुणाभासो विधूम इव पावकः ॥ १० ॥
योजनानां सहस्राणि चतुरशीतिरुच्छ्रितः ।
अधस्ताच्चतुरशीतिर्योजनानां महीपते ॥ ११ ॥
ऊर्ध्वमधश्च तिर्यक्च लोकानावृत्य तिष्ठति ।
तस्य पार्श्वेष्वमी द्वीपाश्चत्वारः संस्थिता विभो ॥ १२ ॥
भद्राश्वः केतुमालश्च जम्बूद्वीपश्च भारत ।
उत्तराश्चैव कुरवः कृतपुण्यप्रतिश्रयाः ॥ १३ ॥
विहगः सुमुखो यस्तु सुपर्णस्याऽऽत्मजः किल ।
स वै विचिन्तयामास सौवर्णान्वीक्ष्य वायसान् ॥ १४ ॥
मेरुरुत्तममध्यानामधमानां च पक्षिणाम् ।
अविशेषकरो यस्मात्तस्मादेनं त्यजाम्यहम् ॥ १५ ॥
तमादित्योऽनुपर्येति सततं ज्योतिषां वरः ।
चन्द्रमाश्च सनक्षत्रो वायुश्चैव प्रदक्षिणः ॥ १६ ॥
स पर्वतो महाराज दिव्यपुष्पफलान्वितः ।
भवनैरावृतः सर्वैर्जाम्बूनदपरिष्कृतैः ॥ १७ ॥
तत्र देवगणा राजन्गन्धर्वासुरराक्षसाः ।
अप्सरोगणसंयुक्ताः शैले क्रीडन्ति सर्वदा ॥ १८ ॥

हैं। यह पर्वत पूर्व सागर तक फैला है। गन्धमादन पर्वत पश्चिम समुद्र तक फैला है। माल्यवान् के बाद ही गन्धमादन पर्वत है ॥६।९॥ नील और निषध पर्वत के मध्य में दोपहर के सूर्य के समान प्रभाशाली, बिना धुएँ की अग्नि के तुल्य सुवर्णमय, हज़ारों योजनों तक फैला हुआ, मण्डलाकार सुमेरु पर्वत है। सुमेरु की ऊपर की चोटी बयालीस हजार योजन चौड़ी है। पृथ्वी के नीचे का भाग भी चौरासी हज़ार योजन चौड़ा है। इस पर्वत के ऊपर, नीचे और आसपास सब लोक हैं। सुमेरु के चारों ओर भद्राश्व, केतुमाल, जम्बूद्वीप (अर्थात् भरतखण्ड) और उत्तर कुरु, ये चार द्वीप हैं। उत्तर कुरु द्वीप में पुण्यात्मा लोग रहते हैं ॥१०।१३॥ एक समय पक्षिराज गरुड के पुत्र सुमुख ने सुमेरु पर्वत पर सुवर्ण के शरीरवाले कौओं को देखकर सोचा कि इस सुमेरु पर्वत पर उत्तम, मध्यम और अधम पक्षियों में कुछ भी अन्तर नहीं देख पड़ता। इसलिए मैं इसे छोड़कर चला जाऊँगा [यों सोचकर सुमेरु को छोड़कर पक्षिराज सुमुख उत्तर कुरुदेश को चले गये]। हे महाराज! ज्योतिर्मण्डली में श्रेष्ठ सूर्य, चन्द्रमा, सब नक्षत्र और वायु उस सुमेरु पर्वत की प्रदक्षिणा करते रहते हैं। वहा के वृक्ष सुन्दर फलों और फूलों से लदे रहते हैं। वहां के दिव्य भवन सुवर्णमय और सुवर्ण की सामग्री से सजे हुए हैं ॥१४।१७॥ वहा देवता, गन्धर्व, असुर,

तत्र ब्रह्मा च रुद्रश्च शक्रश्चाऽपि सुरेश्वरः ।
समेत्य विविधैर्यज्ञैर्यजन्तेऽनेकदक्षिणैः ॥ १९ ॥
तुम्बुरुर्नारदश्चैव विश्वावसुर्हहाहुहूः ।
अभिगम्याऽमरश्रेष्ठांस्तुष्टुवुर्विविधैः स्तवैः ॥ २० ॥
सप्तर्षयो महात्मानः कश्यपश्च प्रजापतिः ।
तत्र गच्छन्ति भद्रं ते सदा पर्वणि पर्वणि ॥ २१ ॥
तस्यैव मूर्धन्युशनाः काव्यो दैत्यैर्महीपते ।
इमानि तस्य रत्नानि तस्येमे रत्नपर्वताः ॥ २२ ॥
तस्मात्कुवेरो भगवांश्चतुर्थं भागमश्नुते ।
ततः कलांशं वित्तस्य मनुष्येभ्यः प्रयच्छति ॥ २३ ॥
पार्श्वे तस्योत्तरे दिव्यं सर्वर्तुकुसुमैश्चितम् ।
कर्णिकारवनं रम्यं शिलाजालसमुद्गतम् ॥ २४ ॥
तत्र साक्षात्पशुपतिर्दिव्यैर्भूतैः समावृतः ।
उमासहायो भगवान्रमते भूतभावनः ॥ २५ ॥
कर्णिकारमयीं मालां बिभ्रत्पादावलम्बिनीम् ।
त्रिभिर्नेत्रैः कृतोद्योतस्त्रिभिः सूर्यैरिवोदितैः ॥ २६ ॥
तमुग्रतपसः सिद्धाः सुव्रताः सत्यवादिनः ।
पश्यन्ति न हि दुर्वृत्तैः शक्यो द्रष्टुं महेश्वरः ॥ २७ ॥
तस्य शैलस्य शिखरात्क्षीरधारा नरेश्वर ।
विश्वरूपाऽपरिमिता भीमनिर्घातनिःस्वना ॥ २८ ॥

अप्सरा, राक्षस आदि देवयोनिया नित्य विहार करती हैं। ब्रह्मा, रुद्र और इन्द्र बहुत सी दक्षिणावाले विविध प्रकार के यज्ञ करते हैं। नारद ऋषि तथा तुम्बुरु, विश्वावसु और हाहा-हूहू आदि गन्धर्व उनके गुणों का बखान किया करते हैं। महामनस्वी सप्तर्षिगण और प्रजापति कश्यप वहां हर पर्व पर जाते हैं ॥१८। २१॥ हे राजेन्द्र ! उस सुमेरु पर्वत की चोटी पर दैत्यों के साथ शुक्राचार्य रहते हैं। ये सब रत्न और रत्नों की खान पर्वत उन्हीं के अधिकार में हैं। यक्षराज कुबेर उन्हीं शुक्र से धन का चौथाई भाग पाते हैं और उसका सोलहवा भाग मनुष्यों को देते हैं ॥२२। २३॥ उस सुमेरु पर्वत के उत्तर भाग में सब प्रकार के सब ऋतुओं के दिव्य फूलों से परिपूर्ण, शिलाओं पर स्थित परम रमणीय कर्णिकार वन है। वहां पार्वती के साथ महादेवजी पावों तक लटक रही कनेर के फूलों की माला पहने विचरते और विहार करते हैं। सब भूतगण उनके साथ रहते हैं। उनके तीनों नेत्र उदय हो रहे सूर्य के समान चमकीले हैं ॥२४।२६॥ उत्तम व्रत करनेवाले, उग्र तपस्वी, सत्यवादी, महात्मा सिद्धों को उनके दर्शन मिलते

पुण्या पुण्यतमैर्जुष्टा गङ्गा भागीरथी शुभा ।
प्लवन्तीव प्रवेगेन ह्रदे चन्द्रमसः शुभे ॥ २९ ॥
तया ह्युत्पादितः पुण्यः स ह्रदः सागरोपमः ।
तां धारयामास तदा दुर्धरां पर्वतैरपि ॥ ३० ॥
शतं वर्षसहस्राणां शिरसैव पिनाकधृक् ।
मेरोस्तु पश्चिमे पार्श्वे केतुमालो महीपते ॥ ३१ ॥
जम्बूखण्डे तु तत्रैव महाजनपदो नृप ।
आयुर्दशसहस्राणि वर्षाणां तत्र भारत ॥ ३२ ॥
सुवर्णवर्णाश्च नराः स्त्रियश्चाऽप्सरसोपमाः ।
अनामया वीतशोका नित्यं मुदितमानसाः ॥ ३३ ॥
जायन्ते मानवास्तत्र निष्टप्तकनकप्रभाः ।
गन्धमादनशृङ्गेषु कुबेरः सह राक्षसैः ॥ ३४ ॥
संवृतोऽप्सरसां सङ्घैर्मोदते गुह्यकाधिपः ।
गन्धमादनपार्श्वे तु परे त्वपरगण्डिकाः ॥ ३५ ॥
एकादश सहस्राणि वर्षाणां परमायुषः ।
तत्र हृष्टा नरा राजंस्तेजोयुक्ता महाबलाः ।
स्त्रियश्चोत्पलवर्णाभाः सर्वाः सुप्रियदर्शनाः ॥ ३६ ॥
निलात्परतरं श्वेतं श्वेताद्धैरण्यकं परम् ।
वर्षमैरावतं राजन्नानाजनपदावृतम् ॥ ३७ ॥

हैं। बुरे चरित्रवाले दुष्ट लोग उन महेश्वर के दर्शन नहीं पा सकते। उस सुमेरु के शिखर से वे पवित्र जलवाली गङ्गाजी निकली हैं जिनके तट पर पुण्यात्मा जन रहते हैं। वे लगातार गम्भीर शब्द करती हुई प्रबल वेग से चन्द्रकुण्ड में गिरती हैं। गङ्गाजी से ही वह समुद्र-तुल्य पवित्र कुण्ड उत्पन्न हुआ है। बड़े-बड़े पर्वत जिनके वेग को रोकने में असमर्थ हैं उन गङ्गाजी को भगवान् शङ्कर ने सैकड़ों-हज़ारों वर्षों तक अपने मस्तक पर ही धारण कर रक्खा था ॥२७।३१॥ हे राजेन्द्र! जम्बूखण्ड के बीच सुमेरु के पश्चिम किनारे पर केतुमाल नाम का महा जन-पद है। वहां के पुरुषों के शरीर का रङ्ग तपे हुए सुवर्ण के समान है। वहां की स्त्रियां अप्सराओं के समान होती हैं। उन की आयु दस हज़ार वर्ष की होती है। उन्हें रोग और शोक नहीं होता। वे सदा प्रसन्न देख पड़ते हैं ॥३२।३३॥ उसके पास ही गन्ध-मादन पर्वत के शिखर पर यक्षराज कुबेर राक्षसों और अप्सराओं के साथ विहार करते हैं। गन्धमादन के उत्तर भाग में असंख्य छोटे-छोटे पर्वत हैं। वहां के पुरुष सांवले, तेजस्वी और बड़े पराक्रमी हैं। वहां की स्त्रियों का शरीर नीलकमल के रङ्ग का है—उनकी सूरत देखनेवालों को मोहनेवाली और प्यारी है।

धनुः संस्थे महाराज द्वे वर्षे दक्षिणोत्तरे ।
इलावृत्तं मध्यमं तु पञ्च वर्षाणि चैव हि ॥ ३८ ॥
उत्तरोत्तरमेतेभ्यो वर्षमुद्रिच्यते गुणैः ।
आयुः प्रमाणमारोग्यं धर्मतः कामतोऽर्थतः ॥ ३९ ॥
समन्वितानि भूतानि तेषु वर्षेषु भारत ।
एवमेषा महाराज पर्वतैः पृथिवी चिता ॥ ४० ॥
हेमकूटस्तु सुमहान्कैलासो नाम पर्वतः ।
यत्र वैश्रवणो राजन्गुह्यकैः सह मोदते ॥ ४१ ॥
अस्त्युत्तरेण कैलासं मैनाकं पर्वतं प्रति ।
हिरण्यशृङ्गः सुमहान्दिव्यो मणिमयो गिरिः ॥ ४२ ॥
तस्य पार्श्वे महद्दिव्यं शुभ्रं काञ्चनवालुकम् ।
रम्यं बिन्दुसरो नाम यत्र राजा भगीरथः ॥ ४३ ॥
दृष्ट्वा भागीरथीं गङ्गामुवास बहुलाः समाः ।
यूपा मणिमयास्तत्र चैत्याश्चापि हिरण्मयाः ॥ ४४ ॥
तत्रेष्ट्वा तु गतः सिद्धिं सहस्राक्षो महायशाः ।
स्रष्टा भूतपतिर्यत्र सर्वलोकैः सनातनः ॥ ४५ ॥
उपास्यते तिग्मतेजा यत्र भूतैः समन्ततः ।
नरनारायणौ ब्रह्मा मनुः स्थाणुश्च पञ्चमः ॥ ४६ ॥

उनकी आयु ग्यारह हजार वर्ष की है। नील पर्वत के उत्तर अंश में श्वेतखण्ड है। उसके उत्तर अंश में हिरण्यकखण्ड है। उसके उत्तर अंश में अनेक जनपदों से शोभित ऐरावतखण्ड है ॥३४।३७॥ इन खण्डों के दक्षिण भाग में भरतखण्ड है। इन खण्डों का आकार धनुष का सा है। हे राजेन्द्र! श्वेतखण्ड, हिरण्यकखण्ड, इलावृतखण्ड, हरिखण्ड और हैमवतखण्ड, ये पांच खण्ड मध्य में हैं। दक्षिण ओर भरतखण्ड और उत्तर ओर ऐरावतखण्ड है। इलावृतखण्ड सबके मध्य में है। ये खण्ड उत्तरोत्तर हर एक की अपेक्षा धर्म, अर्थ, काम, आरोग्य, आयु और परिमाण में अधिक हैं। इन खण्डों के निवासी परस्पर किसी तरह का क्लेश न करके बड़े सुख से रहते हैं। हे महाराज! इस तरह यह पृथ्वी बहुत से पर्वतों से घिरी हुई है। हेमकूट अथवा कैलास नाम का जो अत्यन्त विशाल पर्वत है उस पर यक्षराज कुबेर यक्षों के साथ रहकर सदा विहार किया करते हैं ।३८।४१। कैलास के उत्तर ओर मैनाक पर्वत के समीप एक हिरण्यशृङ्ग नाम का बड़ा भारी मणिमय पर्वत है। उसके पास सुवर्ण की बालू से परिपूर्ण परम रमणीय बिन्दुसर नाम का दिव्य सरोवर है। वहीं राजा भगीरथ ने बहुत दिनों तक तप किया और गङ्गाजी के दर्शन पाये थे। उस सरोवर के किनारे पर मणिमय यूप और सुवर्णमय चैत्यभवन हैं ॥४२।४४॥ इन्द्र ने वहीं पर यज्ञ करके सिद्धि

तत्र दिव्या त्रिपथगा प्रथमं तु प्रतिष्ठिता ।
ब्रह्मलोकादपक्रान्ता सप्तधा प्रतिपद्यते ॥ ४७ ॥
वस्वौकसारा नलिनी पावनी च सरस्वती ।
जम्बूनदी च सीता च गङ्गा सिन्धुश्च सप्तमी ॥ ४८ ॥
अचिन्त्या दिव्यसङ्काशा प्रभोरेषैव संविधिः ।
उपासते यत्र सत्रं सहस्रयुगपर्यये ॥ ४९ ॥
दृश्याऽदृश्या च भवति तत्र तत्र सरस्वती ।
एता दिव्याः सप्त गङ्गास्त्रिषु लोकेषु विश्रुताः ॥ ५० ॥
रक्षांसि वै हिमवति हेमकूटे तु गुह्यकाः ।
सर्पा नागाश्च निषधे गोकर्णं च तपोवनम् ॥ ५१ ॥
देवासुराणां सर्वेषां श्वेतपर्वत उच्यते ।
गन्धर्वा निषधे नित्यं नीले ब्रह्मर्षयस्तथा ।
श्रृङ्गवांस्तु महाराज देवानां प्रतिसञ्चरः ॥ ५२ ॥
इत्येतानि महाराज सप्त वर्षाणि भागशः ।
भूतान्युपनिविष्टानि गतिमन्ति ध्रुवाणि च ॥ ५३ ॥
तेषामृद्धिर्बहुविधा दृश्यते दैवमानुषी ।
अशक्या परिसंख्यातुं श्रद्धेया तु बुभूषता ॥ ५४ ॥
यां तु पृच्छसि मां राजन्दिव्यामेतां शशाकृतिम् ।

प्राप्त की है। परम तेजस्वी भगवान् रुद्र ने भी उसी स्थान में रहकर प्रजा की सृष्टी की है। उसी स्थान में नर, नारायण, ब्रह्मा, मनु और परम तेजस्वी शङ्कर की सब लोग उपासना किया करते हैं। त्रिपथगामिनी गङ्गाजी ब्रह्मलोक से चलकर पहले उसी स्थान पर गिरी हैं। वहीं से उनकी वस्वौकसारा, नलिनी, सरस्वती, जम्बूनदी, सीता, गङ्गा और सिन्धु नाम से प्रसिद्ध सात धाराएँ बहीं हैं ॥४५।४८॥ ईश्वर ने ही लोकोपकार के लिए यह अचिन्त्य दिव्य विधान किया है—पवित्र जलवाली गङ्गाजी की सात धाराएँ बहाई हैं। लोग जहाँ पर इन्द्र की उपासना करते हैं वहीं पर, सहस्र युग व्यतीत होने पर, अदृश्य सरस्वती की धारा देख पड़ती है। ये सातों दिव्य गङ्गाएँ तीनों लोकों में प्रसिद्ध हैं। हिमालय पर राक्षस, हेमकूट पर यक्ष, निषध पर साँप और नाग, तपोवन गोकर्ण पर्वत पर तपस्वी और नील पर्वत पर ब्रह्मर्षि लोग रहते हैं। श्रृङ्गवान् पर्वत देवताओं के विचरने का स्थान कहा जाता है ॥४९।५२॥ हे महाराज ! मैंने जिन सात खण्डों का वर्णन किया है, उन्हीं में सब स्थावर-जङ्गम जीव रहते हैं। उनकी दैवी और मानुषी समृद्धि अनेक प्रकार की देख पड़ती है। उसकी संख्या करना असम्भव है; किन्तु हित चाहनेवाले मनुष्य को उसके ऊपर सर्वथा श्रद्धा रखनी चाहिए। हे राजेन्द्र ! अब मैं आपके प्रश्न के अनुसार

पार्श्वे शशस्य द्वे वर्षे उक्ते ये दक्षिणोत्तरे ।
कर्णौ तु नागद्वीपश्च काश्यपद्वीप एव च ॥ ५५ ॥
ताम्रपर्णशिलो राजञ्छ्रीमान्मलयपर्वतः ।
एतद् द्वितीयं द्वीपस्य दृश्यते शशसंस्थितम् ॥ ५६ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि भूम्यादिपरिमाणविवरणे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

महाशशस्थान का वर्णन करता हूँ—सुनिए। शशस्थान के दक्षिण और उत्तर ओर दो खण्ड हैं। उसके आस-पास नागद्वीप और काश्यपद्वीप कानों की तरह स्थित हैं। ताम्रपर्णी नदी और मलयपर्वत उसके सिर के समान जान पड़ते हैं। यह शश (खरगोश) के आकार का द्वीप जम्बूद्वीप के दूसरे द्वीप के समान है ॥५३।५६॥

भीष्मपर्व का छठा अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—मेरोरथोत्तरं पार्श्वं पूर्वं चाऽऽचक्ष्व सञ्जय ।
निखिलेन महाबुद्धे माल्यवन्तं च पर्वतम् ॥ १ ॥
सञ्जय उवाच—दक्षिणेन तु नीलस्य मेरोः पार्श्वे तथोत्तरे ।
उत्तराः कुरवो राजन्पुण्याः सिद्धनिषेविताः ॥ २ ॥
तत्र वृक्षा मधुफला नित्यपुष्पफलोपगाः ।
पुष्पाणि च सुगन्धीनि रसवन्ति फलानि च ॥ ३ ॥
सर्वकामफलास्तत्र केचिद्वृक्षा जनाधिप ।
अपरे क्षीरिणो नाम वृक्षास्तत्र नराधिप ॥ ४ ॥
ये क्षरन्ति सदा क्षीरं षड्रसं चाऽमृतोपमम् ।
वस्त्राणि च प्रसूयन्ते फलेष्वाभरणानि च ॥ ५ ॥
सर्वा मणिमयी भूमिः सूक्ष्मकाञ्चनवालुका ।
सर्वर्तुसुखसंस्पर्शा निष्पङ्का च जनाधिप ।

सातवाँ अध्याय ॥ ७ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! तुम बड़े बुद्धिमान् हो। अब सुमेरु के उत्तर ओर स्थित उत्तर कुरुदेश और पूर्व ओर स्थित स्थान का वर्णन करो। माल्यवान् पर्वत का हाल भी कहो ॥१॥ सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! सुमेरु के उत्तर ओर और नीलगिरी के दक्षिण ओर सिद्ध-जन-सेवित परम पवित्र उत्तरकुरु प्रदेश है। वहाँ के वृक्ष सदा सुमधुर रसयुक्त स्वादिष्ट फलों और सुगन्धित फूलों से शोभित रहते हैं। वहाँ कुछ वृक्ष ऐसे भी हैं जो इच्छाओं को पूर्ण करते हैं। वहाँ के क्षीरी नाम के वृक्ष छः रसों से युक्त अमृत-सदृश दूध की धारा बरसाते हैं। उन वृक्षों में फल के स्थान पर वस्त्र और आभूषण उत्पन्न होते हैं

पुष्करिण्यः शुभास्तत्र सुखस्पर्शा मनोरमाः ॥ ६ ॥
देवलोकच्युताः सर्वे जायन्ते तत्र मानवाः ।
शुक्लाभिजनसम्पन्नाः सर्वे सुप्रियदर्शनाः ॥ ७ ॥
मिथुनानि च जायन्ते स्त्रियश्चाऽप्सरसोपमाः ।
तेषां ते क्षीरिणां क्षीरं पिबन्त्यमृतसन्निभम् ॥ ८ ॥
मिथुनं जायते काले समं तच्च प्रवर्धते ।
तुल्यरूपगुणोपेतं समवेषं तथैव च ॥ ९ ॥
एवमेवाऽनुरूपं च चक्रवाकसमं विभो ।
निरामयाश्च ते लोका नित्यं मुदितमानसाः ॥ १० ॥
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ।
जीवन्ति ते महाराज न चाऽन्योन्यं जहत्युत ॥ ११ ॥
भारुण्डा नाम शकुनास्तीक्ष्णतुण्डा महाबलाः ।
तान्निर्हरन्तीह मृतान्दरीषु प्रक्षिपन्ति च ॥ १२ ॥
उत्तराः कुरवो राजन्व्याख्यातास्ते समासतः ।
मेरोः पार्श्वमहं पूर्वं वक्ष्याम्यथ यथातथम् ॥ १३ ॥
तस्य मूर्धाभिषेकस्तु भद्राश्वस्य विशाम्पते ।
भद्रसालवनं यत्र कालाम्रश्च महाद्रुमः ॥ १४ ॥

कालाम्रस्तु महाराज नित्यपुष्पफलः शुभः ।
द्रुमश्च योजनोत्सेधः सिद्धचारणसेवितः ॥ १५ ॥
तत्र ते पुरुषाः श्वेतास्तेजोयुक्ता महाबलाः ।
स्त्रियः कुमुदवर्णाश्च सुन्दर्यः प्रियदर्शनाः ॥ १६ ॥
चन्द्रप्रभाश्चन्द्रवर्णाः पूर्णचन्द्रनिभाननाः ।
चन्द्रशीतलगात्र्यश्च नृत्यगीतविशारदाः ॥ १७ ॥
दशवर्षसहस्राणि तत्राऽऽयुर्भरतर्षभ ।
कालाम्ररसपीतास्ते नित्यं संस्थितयौवनाः ॥ १८ ॥
दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु ।
सुदर्शनो नाम महाञ्जम्बूवृक्षः सनातनः ॥ १९ ॥
सर्वकामफलः पुण्यः सिद्धचारणसेवितः ।
तस्य नाम्ना समाख्यातो जम्बूद्वीपः सनातनः ॥ २० ॥
योजनानां सहस्रं च शतं च भरतर्षभ ।
उत्सेधो वृक्षराजस्य दिवस्पृङ् मनुजेश्वर ॥ २१ ॥
अरत्नीनां सहस्रं च शतानि दश पञ्च च ।
परिणाहस्तु वृक्षस्य फलानां रसभेदिनाम् ॥ २२ ॥
पतमानानि तान्युर्वी कुर्वन्ति विपुलं स्वनम् ।
मुञ्चन्ति च रसं राजन्तस्मिन्रजतसन्निभम् ॥ २३ ॥

ऊँचा कालाम्र नाम का वृक्ष है । उसके आसपास सिद्ध और चारण रहते हैं । उस शुभ वृक्ष में सदा फूल और फल देख पड़ते हैं ॥१३।१५॥ वहाँ के श्वेत रङ्ग के पुरुष बड़े तेजस्वी और महान् पराक्रमी होते हैं । स्त्रियों के शरीर का रङ्ग कुमुद पुष्प का सा साफ़ और रूप बहुत ही सुन्दर होता है । उनके शरीर चन्द्र के समान, कान्तियुक्त और मुखमण्डल सुशीतल चन्द्रबिम्ब के समान होते हैं । उन सबकी जवानी सदा बनी रहती है । वे नाचने-गाने में निपुण होती हैं । उनकी आयु दश हज़ार वर्ष की है । वहाँ के नर-नारी कालाम्र वृक्ष के फलों का रस पीते हैं ॥१६।१८॥ नीलगिरि के दक्षिण और निषध पर्वत के उत्तर ओर सुदर्शन नाम का, सब इच्छाओं के अनुसार फल देनेवाला एक जामुन का पेड़ है । वह वृक्ष सदा बना रहता है । उसी पेड़ के कारण सुदर्शन द्वीप का दूसरा नाम जम्बूद्वीप भी है । उस वृक्ष के आस-पास सिद्ध और चारण रहते हैं । वह वृक्ष सौ हज़ार योजन ऊँचा है । वह मानों आकाश को छुये लेता है । उस वृक्ष के फलों का विस्तार दो हज़ार पाँच सौ 'अरत्नि' (मुट्ठी से कुछ कम) है ॥१९।२२॥ उन फलों के गिरते समय बड़ा शब्द होता है । उन फलों में रस ही रस भरा रहता है । उन फलों मे सुवर्ण के रङ्ग का रस निकलकर नदी के रूप में बहता है । वह नदी सुमेरु की

तस्या जम्ब्वाः फलरसो नदी भूत्वा जनाधिप ।
मेरुं प्रदक्षिणं कृत्वा सम्प्रयात्युत्तरान्कुरून् ॥ २४ ॥
तत्र तेषां मनःशान्तिर्न पिपासा जनाधिप ।
तस्मिन्फलरसे पीते न जरा बाधते च तान् ॥ २५ ॥
तत्र जाम्बूनदं नाम कनकं देवभूषणम् ।
इन्द्रगोपकसङ्काशं जायते भास्वरं तु तत् ॥ २६ ॥
तरुणादित्यवर्णाश्च जायन्ते तत्र मानवाः ।
तथा माल्यवतः शृङ्गे दृश्यते हव्यवाट् सदा ॥ २७ ॥
नाम्ना संवर्त्तको नाम कालाग्निर्भरतर्षभ ।
तथा माल्यवतः शृङ्गे पूर्वपूर्वानुगण्डिका ॥ २८ ॥
योजनानां सहस्राणि पञ्च षण्माल्यवानथ ।
महारजतसङ्काशा जायन्ते तत्र मानवाः ॥ २९ ॥
ब्रह्मलोकच्युताः सर्वे सर्वे सर्वेषु साधवः ।
तपस्तप्यन्ति ते तीव्रं भवन्ति ह्यूर्ध्वरेतसः ।
रक्षणार्थं तु भूतानां प्रविशन्ते दिवाकरम् ॥ ३० ॥
षष्टिस्तानि सहस्राणि षष्टिरेव शतानि च ।
अरुणस्याऽग्रतो यान्ति परिवार्य दिवाकरम् ॥ ३१ ॥
षष्टिं वर्षसहस्राणि षष्टिमेव शतानि च ।
आदित्यतापतप्तास्ते विशन्ति शशिमण्डलम् ॥ ३२ ॥

इति श्रीमन्महाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डनिर्माणपर्वणि माल्यवद्वर्णने सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

प्रदक्षिणा करती हुई उत्तरकुरु प्रदेश में बहती है। उन फलों का रस पीने से जम्बूद्वीप-निवासियों के मन में शान्ति रहती है। उन्हें प्यास नहीं लगती; वे कभी वृद्ध भी नहीं होते। उस रस के संसर्ग से नदी-किनारे की मिट्टी, बीरवहूटी के रङ्ग का, जाम्बूनद सुवर्ण बन जाती है। देवता और उनकी स्त्रियां उसी सुवर्ण के सुन्दर आभूषण पहनती हैं। वहां के मनुष्य जन्मकाल से ही दोपहर के सूर्य के समान तेजस्वी होते हैं ॥२३।२७॥ हे महाराज! माल्यवान् पर्वत के शिखर पर संवर्तक नाम की कालाग्नि अग्नि सदा देख पड़ती है। माल्यवान् के आस-पास छोटे-छोटे पर्वतों का सिलसिला दूर तक देख पड़ता है। ग्यारह हज़ार योजन तक माल्यवान् पर्वत फैला हुआ है। वहां उत्पन्न होनेवाले मनुष्यों के शरीर का रङ्ग सुवर्ण का सा होता है। वे सब ब्रह्मचारी होते हैं। जो लोग इस लोक में शुभ कर्म करके ब्रह्मलोक को जाते हैं वे ही, पुण्य क्षीण होने पर, ब्रह्मलोक से गिरकर माल्यवान् पर्वत पर उत्पन्न होते हैं। वे सबके साथ अच्छा व्यवहार करनेवाले मनुष्य तीव्र तपस्या करते हैं और लोक-रक्षा के लिए अन्त को सूर्यमण्डल में

प्रवेश करते हैं। उनमें से छाछठ हजार मनुष्य अरुण के आगे सूर्यमण्डल के आस-पास चलते हैं। इस प्रकार छाछठ हजार वर्ष तक सूर्य के ताप में तपकर अन्त को वे चन्द्रमण्डल में प्रवेश करते हैं ॥२८।३२॥

भीष्मपर्व का सातवा अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७ ॥

अथ अष्टमोऽध्याय ॥ ८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—वर्षाणां चैव नामानि पर्वतानां च सञ्जय ।
आचक्ष्व मे यथातत्त्वं ये च पर्वतवासिनः ॥ १ ॥

सञ्जय उवाच— दक्षिणेन तु श्वेतस्य निषधस्योत्तरेण तु ।
वर्षं रमणकं नाम जायन्ते तत्र मानवाः ॥ २ ॥
शुक्लाभिजनसम्पन्नाः सर्वे सुप्रियदर्शनाः ।
निःसपत्नाश्च ते सर्वे जायन्ते तत्र मानवाः ॥ ३ ॥
दशवर्षसहस्राणि शतानि दश पञ्च च ।
जीवन्ति ते महाराज नित्यं मुदितमानसाः ॥ ४ ॥
दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु ।
वर्षं हिरण्मयं नाम यत्र हैरण्वती नदी ॥ ५ ॥
यत्र चाऽयं महाराज पक्षिराट् पतगोत्तमः ।
यक्षानुगा महाराज धनिनः प्रियदर्शनाः ॥ ६ ॥
महाबलास्तत्र जना राजन्मुदितमानसाः ।
एकादश सहस्राणि वर्षाणां ते जनाधिप ॥ ७ ॥
आयुःप्रमाणं जीवन्ति शतानि दश पञ्च च ।
शृङ्गाणि च विचित्राणि त्रीण्येव मनुजाधिप ॥ ८ ॥

आठवां अध्याय ॥ ८ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सजय ! तुम खण्ड, पर्वत और पर्वतनिवासी लोगों के नाम कहो। सजय ने कहा-हे राजेन्द्र ! श्वेत पर्वत के दक्षिण और नील पर्वत के उत्तर में रमणक नाम का एक खण्ड है। इसी का दूसरा नाम श्वेतखण्ड है। वहा के रहनेवाले सब विशुद्ध वशों में उत्पन्न हैं। वे प्रियदर्शन और सदा सतुष्टचित्त हैं। उनका कोई शत्रु नहीं। वे प्रसन्नता-पूर्वक ग्यारह हजार पाच सौ वर्ष तक जीते रहते हैं। नील पर्वत के दक्षिण और निषध पर्वत के उत्तर ओर हिरण्मय नाम का खण्ड है। वहा हैरण्वती नदी बहती है ॥१।५॥ इस खण्ड में पक्षियों के राजा गरुड वास करते हैं। वहा के सब मनुष्य यक्षों की उपासना करनेवाले, धनी, प्रियदर्शन, महाबली, नित्य प्रसन्न रहनेवाले और श्रेष्ठ होते हैं। इन खण्डों के रहनेवालों की आयु दो हजार पाच सौ वर्ष की होती है। हे नरश्रेष्ठ ! शृङ्गवान् पर्वत के तीन विचित्र

एकं मणिमयं तत्र तथैकं रौक्ममद्भुतम् ।
सर्वरत्नमयं चैकं भवनैरुपशोभितम् ॥ ९ ॥
तत्र स्वयम्प्रभा देवी नित्यं वसति शाण्डिली ।
उत्तरेण तु शृङ्गस्य समुद्रान्ते जनाधिप ॥ १० ॥
वर्षमैरावतं नाम तस्माच्छृङ्गमतः परम् ।
न तत्र सूर्यस्तपति न जीर्यन्ते च मानवाः ॥ ११ ॥
चन्द्रमाश्च सनक्षत्रो ज्योतिर्भूत इवाऽऽवृतः ।
पद्मप्रभाः पद्मवर्णाः पद्मपत्रनिभेक्षणाः ॥ १२ ॥
पद्मपत्रसुगन्धाश्च जायन्ते तत्र मानवाः ।
अनिष्यन्दा इष्टगन्धा निराहारा जितेन्द्रियाः ॥ १३ ॥
देवलोकच्युताः सर्वे तथा विरजसो नृप ।
त्रयोदश सहस्राणि वर्षाणां ते जनाधिप ॥ १४ ॥
आयुःप्रमाणं जीवन्ति नरा भरतसत्तम ।
क्षीरोदस्य समुद्रस्य तथैवोत्तरतः प्रभुः ।
हरिर्वसति वैकुण्ठः शकटे कनकामये ॥ १५ ॥
अष्टचक्रं हि तद्यानं भूतयुक्तं मनोजवम् ।
अग्निवर्णं महातेजो जाम्बूनदविभूषितम् ॥ १६ ॥
स प्रभुः सर्वभूतानां विभुश्च भरतर्षभ ।
संक्षेपो विस्तरश्चैव कर्त्ता कारयिता तथा ॥ १७ ॥

शिखर हैं। एक मणिमय है, दूसरा सुवर्णमय है और तीसरा सब रत्नों से परिपूर्ण है। रत्नमय शिखर पर सुन्दर भवन बने हैं, जो उसकी शोभा को और भी बढ़ाते हैं। वहाँ स्वयंप्रभा शाण्डिली नाम की देवी का निवास है। शृङ्गवान् के उत्तर ओर समुद्र के किनारे पर ऐरावत नाम का खण्ड है ॥९।१०॥ न तो वहाँ सूर्य का प्रकाश पहुँचता है और न वहाँ के मनुष्य वृद्ध ही होते हैं। नक्षत्रों सहित चन्द्रमा ही वहाँ प्रकाश पहुँचाते हैं। वहाँ के मनुष्यों का जन्म से ही पद्म का सा रङ्ग और कमल जैसी आँखें होती हैं। उनके शरीर से कमल के फूल की गन्ध निकलती है। वे देवलोक से भ्रष्ट होने पर वहाँ जन्म लेनेवाले पुण्यात्मा होते हैं। वे जितेन्द्रिय और देवतुल्य होते हैं। न तो उन्हें भूख-प्यास सताती है और न उनको पसीना आता है। उन पापरहित पुरुषों को सुगन्ध बहुत प्रिय होती है। उनकी आयु तेरह हजार वर्ष की होती है ॥११।१५॥ हे राजेन्द्र! क्षीरसागर के उत्तर ओर जो स्थान है वहाँ भगवान् पुण्डरीकाक्ष रथ पर विराजमान हैं। वह रथ अग्नि के रङ्ग का, मन के समान वेगवाला, जाम्बूनद सुवर्ण

नदीं पिबन्ति विपुलां गङ्गां सिन्धुं सरस्वतीम् ।
गोदावरीं नर्मदां च बाहुदां च महानदीम् ॥ १४ ॥
शतद्रूं चन्द्रभागां च यमुनां च महानदीम् ।
दृषद्वतीं विपाशां च विपापां स्थूलवालुकाम् ॥ १५ ॥
नदीं वेत्रवतीं चैव कृष्णवेणां च निम्नगाम् ।
इरावतीं वितस्तां च पयोष्णीं देविकामपि ॥ १६ ॥
वेदस्मृतां वेदवतीं त्रिदिवामिक्षुलां कृमिम् ।
करीषिणीं चित्रवाहां चित्रसेनां च निम्नगाम् ॥ १७ ॥
गोमतीं धूतपापां च वन्दनां च महानदीम् ।
कौशिकीं त्रिदिवां कृत्यां निचितां लोहितारणीम् ॥ १८ ॥
रहस्यां शतकुम्भां च सरयूं च तथैव च ।
चर्मण्वतीं वेत्रवतीं हस्तिसोमां दिशं तथा ॥ १९ ॥
शरावतीं पयोष्णीं च वेणां भीमरथीमपि ।
कावेरीं चुलुकां चापि वाणीं शतबलामपि ॥ २० ॥
नीवारामहितां चापि सुप्रयोगां जनाधिप ।
पवित्रां कुण्डलीं सिन्धुं राजनीं पुरमालिनीम् ॥ २१ ॥
पूर्वाभिरामां वीरां च भीमामोघवतीं तथा ।
पाशाशिनीं पापहरां महेन्द्रां पाटलावतीम् ॥ २२ ॥
करीषिणीमसिक्नीं च कुशचीरां महानदीम् ।
मकरीं प्रवरां मेनां हेमां घृतवतीं तथा ॥ २३ ॥

हैं। इन पर्वतों के आस-पास और भी हजारों रत्नपूर्ण, विचित्र शिखरवाले, छोटे-छोटे, अज्ञात पर्वत हैं। उनमें साधारण जातियों के लोग रहते हैं ॥ ११। १३॥ हे महाराज ! इस भारतवर्ष में आर्य, म्लेच्छ और सङ्कर जातिया रहती हैं। उन जातियों के लोग जिन नदियों का जल पीते हैं उन प्रधान और अप्रधान नदियों के नाम मैं कहता हूँ—सुनिए। इस भरतखण्ड में गङ्गा, सिन्धु, सरस्वती, गोदावरी, नर्मदा, बाहुदा, महानदी, शतद्रू, चन्द्रभागा, यमुना, दृषद्वती, विपाशा, विपापा, स्थूलवालुका, कृष्णवेणा, इरावती, वितस्ता, पयोष्णी, देविका, वेदस्मृता, वेदवती, त्रिदिवा, इक्षुला, कृमि, करीषिणी, चित्रसेना, चित्रवाहा, गोमती, धूतपापा, वन्दना, गण्डकी, कौशिकी, कृत्या, निचिता, लोहतारिणी, रहस्या, शतकुम्भा, सरयू, चर्मण्वती, वेत्रवती, हस्तिसोमा, दिक्, शरावती, भीमरथी, वेणा, पयोष्णी, कावेरी, चुलुका, वाणी, शतबला, नीवारा, अहिता, सुप्रयोगा, पवित्रा, कुण्डली, सिन्धु, राजनी, पुरमालिनी, ॥ १४। २१॥ पूर्वाभिरामा, वीरा, भीमा, ओघवती, पाशाशिनी, पापहारिणी महेन्द्रा, पाटलावती, करीषिणी,

पुरावतीमनुष्णां च शैव्यां कापीं च भारत ।
सदानीरामधृष्यां च कुशधारां महानदीम् ॥ २४ ॥
सदाकान्तां शिवां चैव तथा वीरवतीमपि ।
वस्त्रां सुवस्त्रां गौरीं च कम्पनां सहिरण्वतीम् ॥ २५ ॥
वरां वीरकरां चापि पञ्चमीं च महानदीम् ।
रथचित्रां ज्योतिरथां विश्वामित्रां कपिञ्जलाम् ॥ २६ ॥
उपेन्द्रां बहुलां चैव कुवीराम्बुवाहिनीम् ।
विनदीं पिञ्जलां वेणां तुङ्गवेणां महानदीम् ॥ २७ ॥
विदिशां कृष्णवेणां च ताम्रां च कपिलामपि ।
खलुं सुवामां वेदाश्वां हरिश्रावां महापगाम् ॥ २८ ॥
शीघ्रां च पिच्छिलां चैव भारद्वाजीं च निम्नगाम्।
कौशिकीं निम्नगां शोणां बाहुदामथ चन्द्रमाम् ॥ २९ ॥
दुर्गां चित्रशिलां चैव ब्रह्मवेध्यां बृहद्वतीम् ।
यवक्षामथ रोहीं च तथा जाम्बूनदीमपि ॥ ३० ॥
सुनसां तमसां दासीं वसामन्यां वराणसीम् ।
नीलां धृतवतीं चैव पर्णाशां च महानदीम् ॥ ३१ ॥
मानवीं वृषभां चैव ब्रह्ममेध्यां बृहद्ध्वनीम् ।
एताश्चाऽन्याश्च बहुधा महानद्यो जनाधिप ॥ ३२ ॥
सदानिरामयां कृष्णां मन्दगां मन्दवाहिनीम् ।
ब्राह्मणीं च महागौरीं दुर्गामपि च भारत ॥ ३३ ॥
चित्रोपलां चित्ररथां मंजुलां वाहिनीं तथा ।
मन्दाकिनीं वैतरणीं कोपां चापि महानदीम् ॥ ३४ ॥

असिक्नी, कुशचीरा, मकरी, प्रवरा, मेना, हेमा, घृतवती, पुण्यवती, अनुष्णा, शैव्या, कापी, सदानीरा, अधृष्या, कुशधारा, सदाकान्ता, शिवा, वीरवती, वस्त्रा, सुवस्त्रा, गौरी, कम्पना, हिरण्वती, वरा, वीरकरा, पञ्चमी, रथचित्रा, ज्योतिरथा, विश्वामित्रा, कपिञ्जला, उपेन्द्रा, बहुला, कुवीरा, अम्बुवाहिनी, विनदी, पिञ्जला, वेणा, तुङ्गवेणा. विदिशा, कृष्णवेणा, ताम्रा, कपिला, खलु, सुवामा. वेदाश्वा, हरिश्रावा, शीघ्रा, पिच्छिला, भारद्वाजी, कौशिकी, शोणा, चन्द्रमा, दुर्गा, चित्रशिला, ब्रह्मवेध्या, बृहद्वती, यवक्षा, रोही, जाम्बूनदी, ॥२२।३०॥ सुनसा, तमसा, दासी, वसा, वराणसी, नीला, धृतवती, पर्णाशा,

नदीं पिबन्ति विपुलां गङ्गां सिन्धुं सरस्वतीम् ।
गोदावरीं नर्मदां च बाहुदां च महानदीम् ॥ १४ ॥
शतद्रूं चन्द्रभागां च यमुनां च महानदीम् ।
दृषद्वतीं विपाशां च विपापां स्थूलवालुकाम् ॥ १५ ॥
नदीं वेत्रवतीं चैव कृष्णवेणां च निम्नगाम् ।
इरावतीं वितस्तां च पयोष्णीं देविकामपि ॥ १६ ॥
वेदस्मृतां वेदवतीं त्रिदिवामिक्षुलां कृमिम् ।
करीषिणीं चित्रवाहां चित्रसेनां च निम्नगाम् ॥ १७ ॥
गोमतीं धूतपापां च वन्दनां च महानदीम् ।
कौशिकीं त्रिदिवां कृत्यां निचितां लोहितारणीम्॥ १८ ॥
रहस्यां शतकुम्भां च सरयूं च तथैव च ।
चर्मण्वतीं वेत्रवतीं हस्तिसोमां दिशं तथा ॥ १९ ॥
शरावतीं पयोष्णीं च वेणां भीमरथीमपि ।
कावेरीं चुलुकां चापि वाणीं शतबलामपि ॥ २० ॥
नीवारामहितां चापि सुप्रयोगां जनाधिप ।
पवित्रां कुण्डलीं सिन्धुं राजनीं पुरमालिनीम् ॥ २१ ॥
पूर्वाभिरामां वीरां च भीमामोघवतीं तथा ।
पाशाशिनीं पापहरां महेन्द्रां पाटलावतीम् ॥ २२ ॥
करीषिणीमसिक्नीं च कुशचीरां महानदीम् ।
मकरीं प्रवरां मेनां हेमां घृतवतीं तथा ॥ २३ ॥

हैं। इन पर्वतों के आस-पास और भी हजारों रत्नपूर्ण, विचित्र शिखरवाले, छोटे-छोटे, अज्ञात पर्वत हैं। उनमें साधारण जातियों के लोग रहते हैं ॥११।१३॥ हे महाराज ! इस भारतवर्ष में आर्य, म्लेच्छ और सङ्कर जातियां रहती हैं। उन जातियों के लोग जिन नदियों का जल पीते हैं उन प्रधान और अप्रधान नदियों के नाम मैं कहता हूँ—सुनिए। इस भरतखण्ड में गङ्गा, सिन्धु, सरस्वती, गोदावरी, नर्मदा, बाहुदा, महानदी, शतद्रु, चन्द्रभागा, यमुना, दृषद्वती, विपाशा, विपापा, स्थूलवालुका, कृष्णवेणा, इरावती, वितस्ता, पयोष्णी, देविका, वेदस्मृता, वेदवती, त्रिदिवा, इक्षुला, कृमि, करीषिणी, चित्रसेना, चित्रवाहा, गोमती, धूतपापा, वन्दना, गण्डकी, कौशिकी, कृत्या, निचिता, लोहतारिणी, रहस्या, शतकुम्भा, सरयू, चर्मण्वती, वेत्रवती, हस्तिसोमा, दिक्, शरावती, भीमरथी, वेणा, पयोष्णी, कावेरी, चुलुका, वाणी, शतबला, नीवारा, अहिता, सुप्रयोगा, पवित्रा, कुण्डली, सिन्धु, राजनी, पुरमालिनी, ॥१४।२१॥ पूर्वाभिरामा, वीरा, भीमा, ओघवती, पाशाशिनी, पापहारिणी महेन्द्रा, पाटलावती, करीषिणी,

पुरावतीमनुष्णां च शैब्यां कापीं च भारत ।
सदानीरामधृष्यां च कुशधारां महानदीम् ॥ २४ ॥
सदाकान्तां शिवां चैव तथा वीरवतीमपि ।
वस्त्रां सुवस्त्रां गौरीं च कम्पनां सहिरण्वतीम् ॥ २५ ॥
वरां वीरकरां चापि पञ्चमीं च महानदीम् ।
रथचित्रां ज्योतिरथां विश्वामित्रां कपिञ्जलाम् ॥ २६ ॥
उपेन्द्रां बहुलां चैव कुवीरामम्बुवाहिनीम् ।
विनदीं पिञ्जलां वेणां तुङ्गवेणां महानदीम् ॥ २७ ॥
विदिशां कृष्णवेणां च ताम्रां च कपिलामपि ।
खलुं सुवामां वेदाश्वां हरिश्रावां महापगाम् ॥ २८ ॥
शीघ्रां च पिच्छिलां चैव भारद्वाजीं च निम्नगाम्।
कौशिकीं निम्नगां शोणां बाहुदामथ चन्द्रमाम् ॥ २९ ॥
दुर्गां चित्रशिलां चैव ब्रह्मवेध्यां बृहद्वतीम् ।
यवक्षामथ रोहीं च तथा जाम्बूनदीमपि ॥ ३० ॥
सुनसां तमसां दासीं वसामन्यां वराणसीम् ।
नीलां धृतवतीं चैव पर्णाशां च महानदीम् ॥ ३१ ॥
मानवीं वृषभां चैव ब्रह्ममेध्यां बृहद्ध्वनीम् ।
एताश्चाऽन्याश्च बहुधा महानद्यो जनाधिप ॥ ३२ ॥
सदानिरामयां कृष्णां मन्दगां मन्दवाहिनीम् ।
ब्राह्मणीं च महागौरीं दुर्गामपि च भारत ॥ ३३ ॥
चित्रोपलां चित्ररथां मंजुलां वाहिनीं तथा ।
मन्दाकिनीं वैतरणीं कोपां चापि महानदीम् ॥ ३४ ॥

असिक्नी, कुशचीरा, मकरी, प्रवरा, मेना, हेमा, घृतवती, पुण्यवती, अनुष्णा, शैब्या, कापी, सदानीरा, अधृष्या, कुशधारा, सदाकान्ता, शिवा, वीरवती, वस्त्रा, सुवस्त्रा, गौरी, कम्पना, हिरण्वती, वरा, वीरकरा, पञ्चमी, रथचित्रा, ज्योतिरथा, विश्वामित्रा, कपिञ्जला, उपेन्द्रा, बहुला, कुवीरा, अम्बुवाहिनी, विनदी, पिञ्जला, वेणा, तुङ्गवेणा, विदिशा, कृष्णवेणा, ताम्रा, कपिला, खलु, सुवामा, वेदाश्वा, हरिश्रावा, शीघ्रा, पिच्छिला, भारद्वाजी, कौशिकी, शोणा, चन्द्रमा, दुर्गा, चित्रशिला, ब्रह्मवेध्या, बृहद्वती, यवक्षा, रोही, जाम्बूनदी, ॥२२।३०॥ सुनसा, तमसा, दासी, वसा, वराणसी, नीला, घृतवती, पर्णाशा,

शुक्तिमतीमनङ्गां च तथैव वृपसाह्वयाम् ।
लोहित्यां करतोयां च तथैव वृपकाह्वयाम् ॥ ३५ ॥
कुमारीमृषिकुल्यां च मारिषां च सरस्वतीम् ।
मन्दाकिनीं सुपुण्यां च सर्वां गङ्गां च भारत ॥ ३६ ॥
विश्वस्य मातरः सर्वाः सर्वाश्चैव महाफलाः ।
तथा नद्यस्त्वप्रकाशाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३७ ॥
इत्येताः सरितो राजन्समाख्याता यथास्मृति ।
अत ऊर्ध्वं जनपदान्निबोध गदतो मम ॥ ३८ ॥
तत्रेमे कुरुपाञ्चालाः शाल्वा माद्रेयजाङ्गलाः ।
शूरसेनाः पुलिन्दाश्च बोधा मालास्तथैव च ॥ ३९ ॥
मत्स्याः कुशल्याः सौशल्याः कुन्तयः कान्तिकोसलाः ।
चेदिमत्स्यकरूषाश्च भोजाः सिन्धुपुलिन्दकाः ॥ ४० ॥
उत्तमाश्च दशार्णाश्च मेकलाश्चोत्कलैः सह ।
पञ्चालाः कोसलाश्चैव नैकपृष्ठा धुरन्धराः ॥ ४१ ॥
गोधा मद्रकलिङ्गाश्च काशयोऽपरकाशयः ।
जठराः कुकुराश्चैव सदशार्णाश्च भारत ॥ ४२ ॥
कुन्तयोऽवन्तयश्चैव तथैवाऽपरकुन्तयः ।
गोमन्ता मण्डकाः सण्डा विदर्भा रूपवाहिकाः ॥ ४३ ॥
अश्मकाः पाण्डुराष्ट्राश्च गोपराष्ट्राः करीतयः ।
अधिराज्यकुशाद्याश्च मल्लराष्ट्रं च केवलम् ॥ ४४ ॥

मानवी, वृक्षभा, ब्रह्ममेध्या, बृहद्ध्वनि, निरामया, कृष्णा, मन्दगा, मन्दवाहिनी, ब्रह्माणी, महागौरी, दुर्गा, चित्रोत्पला, चित्ररथा, मञ्जुला, वाहिनी, मन्दाकिनी, वैतरणी, कोषा, शुक्तिमती, अनङ्गा, वृषसा, लोहित्या, करतोया, वृषका, कुमारी, ऋषिकुल्या, मारिषा, सरस्वती, मन्दाकिनी, सुपुण्या, सर्वगङ्गा, इतनी नदियां हैं । इनके अतिरिक्त और भी हजारों नदियां हैं, जिन्हें साधारण रूप से सब लोग नहीं जानते । मैंने अपनी स्मरणशक्ति के अनुसार सब जानी हुई नदियों के नाम आपको सुना दिये । ये नदिया विश्व की माता हैं । इनमें स्नान करने से महाफल प्राप्त होता है ॥३१।३८॥ हे महाराज ! अब मैं भारतवर्ष के जनपदों और देशों के नाम आप के आगे कहता हूँ, सुनिए । कुरु-पाञ्चाल, शाल्व, माद्रेय-जाङ्गल, शूरसेन, पुलिन्द, बोध, माल, मत्स्य, कुशल्य, सौशल्य, कुन्ति, कान्तिकोशल, चेदि, मत्स्य, करूष, भोज, सिन्धु-पुलिन्द, ॥३९।४०॥ उत्तम, दशार्ण, मेकल, उत्कल, पाञ्चाल, कोशल, नैकपृष्ठ, धुरन्धर,

वारवास्या यवाहाश्च चक्राश्चक्रातयः शकाः ।
विदेहा मगधाः स्वक्षा मलजा विजयास्तथा ॥ ४५ ॥
अङ्गा वङ्गाः कलिङ्गाश्च यकृल्लोमान एव च ।
मल्लाः सुदेष्णाः प्रह्लादा माहिकाः शशिकास्तथा॥ ४६ ॥
बाह्लिका वाटधानाश्च आभीराः कालतोयकाः ।
अपरान्ताः परान्ताश्च पञ्चालाश्चर्ममण्डलाः ॥ ४७ ॥
अटवीशिखराश्चैव मेरुभूताश्च मारिष ।
उपावृत्तानुपावृत्ताः स्वराष्ट्राः केकयास्तथा ॥ ४८ ॥
कुन्दापरान्ता माहेयाः कक्षाः सामुद्रनिष्कुटाः ।
अन्ध्राश्च बहवो राजन्नन्तर्गिर्यास्तथैव च ॥ ४९ ॥
बहिर्गिर्याङ्गमलजा मगधा मानवर्जकाः ।
समन्तराः प्रावृषेया भार्गवाश्च जनाधिप ॥ ५० ॥
पुण्ड्रा भर्गाः किराताश्च सुदृष्टा यामुनास्तथा ।
शका निषादा निषधास्तथैवाऽऽनर्तनैर्ऋताः ॥ ५१ ॥
दुर्गालाः प्रतिमत्स्याश्च कुन्तलाः कोसलास्तथा ।
तीरग्रहाः शूरसेना ईजिकाः कन्यका गुणाः ॥ ५२ ॥
तिलभारा मसीराश्च मधुमन्तः सुकन्दकाः ।
काश्मीराः सिन्धुसौवीरा गान्धारा दर्शकास्तथा॥ ५३ ॥
अभीसारा उलूताश्च शैवला बाह्लिकास्तथा ।
दार्वीचवा नवा दर्वा वातजामरथोरगाः ॥ ५४ ॥
बहुवाद्याश्च कौरव्य सुदामानः सुमल्लिकाः ।

गोध, मद्रकलिङ्ग, काशि, अपरकाशि, जठर, कुक्कुर, दशार्णकुक्कुर, कुन्ति, अवन्ति, अपरकुन्ति, गोमन्त, मन्दक, सण्ड, विदर्भ, रूपवाहिक, अश्मक, पाण्डुराष्ट्र, गोपराष्ट्र, करीति, अधिराज्य, कुशाद्य. मल्लराष्ट्र, वारवास्य, अयवाह, चक्र, चक्राति, शक, विदेह, मगध, स्वक्ष, मलज, विजय, अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, यकृल्लोम, मल्ल, सुदेष्ण, प्रह्लाद, माहिक, शशिक, बाह्लीक, वाटधान, आभीर, कालतोयक, अपरान्त, परान्त, पञ्चाल, चर्ममण्डल, अटवीशिखर, मेरुभूत, उपावृत्त, अनुपावृत्त, स्वराष्ट्र, केकय, कुन्दापरान्त, माहेय, कक्ष, सामुद्र-निष्कुट, अन्ध्र, अन्तर्गिरी, बहिर्गिरी, अङ्गमलज, मगध, मानवर्जक, समन्तर, प्रावृषेय, भार्गव, ॥४१।५०॥ पुण्ड्र, भर्ग, किरात, सुदृष्ट, यामुन, शक, निषाद, निषध, आनर्त, नैर्ऋत्य, दुर्गाल, प्रतिमत्स्य, कुन्तल, कोशल, तीरग्रह, शूरसेन, ईजिक, कन्यकागुण, तिलभार, मसीर, मधुमन्त, सुकन्दक, काश्मीर,

वभ्राः करीषकाश्चापि कुलिन्दोपत्यकास्तथा ॥ ५५ ॥
वनायवो दशा पार्श्वरोमाणः कुशविन्दवः ।
कच्छा गोपालकक्षाश्च जाङ्गलाः कुरुवर्णकाः ॥ ५६ ॥
किराता वर्वराः सिद्धा वैदेहास्ताम्रलिप्तकाः ।
ओण्ड्रा म्लेच्छाः सैसिरिध्राः पार्वतीयाश्च मारिष॥ ५७ ॥
अथाऽपरे जनपदा दक्षिणा भरतर्षभ ।
द्रविडाः केरलाः प्राच्या भूषिका वनवासिकाः ॥ ५८ ॥
कर्णाटका महिषका विकल्पा भूपकास्तथा ।
झिल्लिकाः कुन्तलाश्चैव सौहृदा नभकाननाः ॥ ५९ ॥
कौकुट्टकास्तथा चोलाः कोङ्कणा मालवा नराः ।
समङ्गाः करकाश्चैव कुकुराङ्गारमारिषाः ॥ ६० ॥
ध्वजिन्युत्सवसङ्केतास्त्रिगर्त्ताः शाल्वसेनयः ।
व्यूकाः कोकवकाः प्रोष्ठाः समवेगवशास्तथा ॥ ६१ ॥
तथैव विन्ध्यचुलिकाः पुलिन्दा वल्कलैः सह ।
मालवा वल्लवाश्चैव तथैवाऽपरवल्लवाः ॥ ६२ ॥
कुलिन्दाःकालदाश्चैव कुण्डलाः करटास्तथा ।
मूपकास्तनवालाश्च सनीपा घटसृञ्जयाः ॥ ६३ ॥
अठिदापाः शिवाटाश्च तनया सुनयास्तथा ।
ऋषिका विदभाः काकास्तङ्गणाः परतङ्गणाः ॥ ६४ ॥
उत्तराश्चाऽपरम्लेच्छाः क्रूरा भरतसत्तम ।
यवनाश्चीनकाम्बोजा दारुणा म्लेच्छजातयः ॥ ६५ ॥
सकृद्ग्रहाः कुलत्थाश्च हूणाः पारसिकैः सह ।

सिन्धुसौवीर, गान्धार, दर्शक, अभीसार, उलूत, शैवाल, वाह्लीक, दार्वी, वानव, दर्व, वातज, आमरथ, उरग, बहुबाध, सुदाम, सुमल्लिक, वभ्र, करीषक, कुलिन्द, उपत्यक, वनायु, पार्श्वरोम, कुशबिन्दु दश, कच्छ, गोपालकक्ष, जाङ्गल, कुरुवर्णक, किरात, बर्बर, सिद्ध, वैदेह, ताम्रलिप्तक, उड्र, म्लेच्छ, सैसिरिध, और पार्वतीय इत्यादि ॥५१।५७॥ हे राजेन्द्र ! इनके अतिरिक्त दक्षिण दिशा के जनपदों के नाम सुनिये। द्रविड, केरल, प्राच्य, भूषिक, वनवासिक, कर्णाटक, माहिषक, विकल्प, मूषक, झिल्लिक, कुन्तल, सौहृद, नभकानन, कौकुट्टक, चोल कोकण, मालव, समङ्ग, करक, कुक्कुर, अङ्गार, मारिष, ध्वजिनी, उत्सवसङ्केत, त्रिगर्त, शाल्वसेनि, व्यूक, कोकवक, प्रोष्ठ, समवेगवश, विन्ध्यचुलिक, पुलिन्द, वल्कल,

तथैव रमणाश्चीनास्तथैव दशमालिकाः ॥ ६६ ॥
क्षत्रियोपनिवेशाश्च वैश्यशूद्रकुलानि च ।
शूद्राभीराश्च दरदाः काश्मीराः पशुभिः सह ॥ ६७ ॥
खाशीराश्चाऽन्तचाराश्च पह्लवा गिरिगह्वराः ।
आत्रेयाः सभरद्वाजास्तथैव स्तनपोषिकाः ॥ ६८ ॥
प्रोषकाश्च कलिङ्गाश्च किरातानां च जातयः ।
तोमरा हन्यमानाश्च तथैव करभञ्जकाः ॥ ६९ ॥
एते चाऽन्ये जनपदाः प्राच्योदीच्यास्तथैव च ।
उद्देशमात्रेण मया देशाः सङ्कीर्तिता विभो ॥ ७० ॥
यथागुणवलं चापि त्रिवर्गस्य महाफलम् ।
दुह्येत धेनुः कामधुक् भूमिः सम्यगनुष्ठिता ॥ ७१ ॥
तस्यां गृद्ध्यन्ति राजानः शूरा धर्मार्थकोविदाः ।
ते त्यजन्त्याहवे प्राणान्वसुगृद्धास्तरस्विनः ॥ ७२ ॥
देवमानुषकायानां कामं भूमिः परायणम् ।
अन्योन्यस्याऽवलुम्पन्ति सारमेया यथाऽऽमिषम् ॥ ७३ ॥
राजानो भरतश्रेष्ठ भोक्तुकामा वसुन्धराम् ।
न चाऽपि तृप्तिः कामानां विद्यतेऽद्यापि कस्यचित् ॥ ७४ ॥
तस्मात्परिग्रहे भूमेर्यतन्ते कुरुपाण्डवाः ।

मालव, वल्लव, अपरवल्लव, कुलिन्द, कालद, कुण्डल, करट, मूषक, तननाल, सनीप, घट, सृञ्जय, आठिद, पाशिवाट, तनय, सुनय, ऋषिक, विदभ, काक, तङ्गण, अपरतङ्गण ॥५८।६४॥ उत्तर और अपर म्लेच्छ, यवन, चीन, काम्बोज, दारुण, सकृद्ग्रह, कुलत्थ, हूण, पारसीक, रमण-चीन, दशमालिक, क्षत्रियों के सीमान्त पर उपनिवेश, वैश्यों और शूद्रों के जनपद शूद्र, आभीर, दरद, काश्मीर, पत्ति. खाशीर, अन्तचार, पह्लव, गिरिगह्वर, आत्रेय, भरद्वाज, स्तनपोषिक, प्रोषक, कलिङ्ग, किरात, तोमर हन्यमान और करभञ्जक इत्यादि । हे राजेन्द्र ! इन सब देशों में क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, आभीर और अन्य म्लेच्छ जातियाँ रहती हैं । यह देशों की नामावली मैंने संक्षेप में आपको सुना दी है । इन देशों के अतिरिक्त और भी अनेक देश पूर्व और उत्तर में हैं ॥६५।७०॥ हे महाराज ! अच्छी तरह भूमि का पालन करने से वह कामधेनु के समान धन-सम्पत्ति और सुख देती है । पृथ्वी से ही धर्म, अर्थ, काम का महाफल प्राप्त होता है । इसी लिए धर्म और अर्थ के ज्ञाता महावली शूर राजा लोग वसु (धन) और वसुन्धरा (पृथ्वी) के लिए लड़कर युद्ध में प्राण त्याग देते हैं । देवताओं और मनुष्यों की सब इच्छाएँ पृथ्वी से ही पूर्ण होती हैं । हे भरतश्रेष्ठ ! मांस के टुकड़े के लिए जैसे कुत्ते लड़ते देख पड़ते हैं, वैसे ही राजा लोग पृथ्वी के टुकड़ों

साम्ना भेदेन दानेन दण्डेनैव च भारत ॥ ७५ ॥
पिता भ्राता च पुत्राश्च खं द्यौश्च नरपुङ्गव ।
भूमिर्भवति भूतानां सम्यगच्छिद्रदर्शिना ॥ ७६ ॥

इति श्री मन्महाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि भारतीयवर्षादेशादिनामकथने नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

के लिए आपस में लड़ते-झगड़ते हैं। सृष्टि के आदि से अब तक कोई भी भोग करके तृप्त नहीं हुआ। वास्तव में मनुष्य की इच्छाओं का अंत ही नहीं है। इसी कारण इस समय कौरव और पाण्डव भी साम, दान, भेद, दण्ड आदि उपायों से भूमि प्राप्त करने के यत्न में लगे हुए हैं। हे पुरुषश्रेष्ठ महाराज! अच्छी तरह पालित और सुरक्षित पृथ्वी ही प्राणियों के लिए पिता, भाई, पुत्र, स्वर्ग और सर्वस्व है ॥७१।७६॥

भीष्मपर्व का नवां अध्याय समाप्त हुआ ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्याय ॥ १० ॥

धृतराष्ट्र उवाच—भारतस्याऽस्य वर्षस्य तथा हैमवतस्य च ।
प्रमाणमायुषः सूत बलं चापि शुभाशुभम् ॥ १ ॥
अनागतमतिक्रान्तं वर्त्तमानं च सञ्जय ।
आचक्ष्व मे विस्तरेण हरिवर्षं तथैव च ॥ २ ॥
सञ्जय उवाच—चत्वारि भारते वर्षे युगानि भरतर्षभ ।
कृतं त्रेता द्वापरं च तिष्यं च कुरुवर्द्धन ॥ ३ ॥
पूर्वं कृतयुगं नाम ततस्त्रेतायुगं प्रभो ।
संक्षेपाद् द्वापरस्याऽथ ततस्तिष्यं प्रवर्त्तते ॥ ४ ॥
चत्वारि तु सहस्राणि वर्षाणां कुरुसत्तम ।
आयुःसंख्या कृतयुगे संख्याता राजसत्तम ॥ ५ ॥
तथा त्रीणि सहस्राणि त्रेतायां मनुजाधिप ।
द्वे सहस्रे द्वापरे तु भुवि तिष्ठन्ति साम्प्रतम् ॥ ६ ॥
न प्रमाणस्थितिर्ह्यस्ति तिष्येऽस्मिन्भरतर्षभ ।
गर्भस्थाश्च म्रियन्तेऽत्र तथा जाता म्रियन्ति च॥ ७ ॥
महाबला महासत्वाः प्रज्ञागुणसमन्विताः ।

दशवां अध्याय ॥ १० ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सूत संजय! इस भारत वर्ष, हैमवतवर्ष और हरिवर्ष के मनुष्यों की आयु बल, और भूत भविष्य-वर्तमान शुभाशुभ फल आदि मुझे सुनाओ ॥१।२॥ संजय ने कहा—हे भारतेन्द्र! इस भारतवर्ष में क्रमश सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग नाम के चार युग होते हैं। सत्ययुग के लोगों की आयु चार हजार वर्ष की, त्रेतायुग के लोगों की आयु तीन हजार वर्ष की और द्वापर युग के

प्रजायन्ते च जाताश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ८ ॥
जाताः कृतयुगे राजन्धनिनः प्रियदर्शनाः ।
प्रजायन्ते च जाताश्च मुनयो वै तपोधनाः ॥ ९ ॥
महोत्साहा महात्मानो धार्मिकाः सत्यवादिनः ।
प्रियदर्शना वपुष्मन्तो महावीर्या धनुर्द्धराः ॥ १० ॥
वरार्हा युधि जायन्ते क्षत्रियाः शूरसत्तमाः ।
त्रेतायां क्षत्रिया राजन्सर्वे वै चक्रवर्तिनः ॥ ११ ॥
सर्ववर्णाश्च जायन्ते सदा चैव च द्वापरे ।
महोत्साहा वीर्यवन्तः परस्परजयैषिणः ॥ १२ ॥
तेजसाऽल्पेन संयुक्ताः क्रोधनाः पुरुषा नृप ।
लुब्धा अनृतकाश्चैव तिष्ये जायन्ति भारत ॥ १३ ॥
ईर्ष्या मानस्तथा क्रोधो मायाऽसूया तथैव च ।
तिष्ये भवति भूतानां रागो लोभश्च भारत ॥ १४ ॥
संक्षेपो वर्त्तते राजन्द्वापरेऽस्मिन्नराधिप ।
गुणोत्तरं हैमवतं हारिवर्षं ततः परम् ॥ १५ ॥

इति श्रीमन्महाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डनिर्माणपर्वणि भारतवर्षे कृताद्यनुरोधेनायुर्निरूपणे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥
समाप्त जम्बूखण्डविनिर्माणपर्व ।

लोगों की आयु दो हज़ार वर्ष की होती है । कलियुग के लोगों की आयु का कुछ ठीक नहीं है । इस युग में कुछ जीव गर्भावस्था में ही और कुछ उत्पन्न होते ही मर जाते हैं ॥३।७॥ सत्ययुग में महाबली, महासत्त्व, प्रज्ञासम्पन्न, धनी, प्रियदर्शन, मुनि लोग उत्पन्न होते हैं । उनकी सन्तानें भी ऐसी ही होती हैं । त्रेतायुग में उत्साही, महात्मा, परम धार्मिक, सत्यवादी, प्रियदर्शन, लम्बे-चौड़े डील-डौल के, महावीर्य, युद्ध-विशारद, चक्रवर्ती क्षत्रिय लोग उत्पन्न होते हैं॥८।११॥ द्वापरयुग में सभी वर्ण उत्पन्न होते हैं । वे बड़े उत्साही, वीर्यशाली और एक दूसरे को जीतने की इच्छा रखनेवाले हुआ करते हैं । द्वापरयुग में ही मनुष्यों के गुण घटने लगते हैं । कलियुग में जो लोग जन्म लेते हैं वे थोड़े तेजवाले, क्रोधी, लोभी, क्रूर और मिथ्यावादी होते हैं । उनके मन में सदा ईर्ष्या, अभिमान, क्रोध, कपट, असूया, राग-द्वेष और लोभ का आविर्भाव हुआ करता है । उत्तम गुणसम्पन्न हैमवतवर्ष और हरिवर्ष की स्थिति भी ऐसी ही जानिए ॥१२।१५॥

भीष्मपर्व का दसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १० ॥

अथ एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—जम्बूखण्डस्त्वया प्रोक्तो यथावदिह सञ्जय ।
विष्कम्भमस्य प्रब्रूहि परिमाणं तु तत्त्वतः ॥ १ ॥

समुद्रस्य प्रमाणं च सम्यगच्छिद्रदर्शनम् ।
शाकद्वीपं च मे ब्रूहि कुशद्वीपं च सञ्जय ॥ २ ॥
शाल्मलिं चैव तत्त्वेन क्रौञ्चद्वीपं तथैव च ।
ब्रूहि गावल्गणे सर्वं राहोः सोमार्कयोस्तथा ॥ ३ ॥

सञ्जय उवाच—राजन्सुबहवो द्वीपा यैरिदं सन्ततं जगत् ।
सप्त द्वीपान्प्रवक्ष्यामि चन्द्रादित्यौ ग्रहं तथा ॥ ४ ॥
अष्टादशसहस्राणि योजनानि विशाम्पते ।
षट्शतानि च पूर्णानि विष्कम्भो जम्बुपर्वतः ॥ ५ ॥
लावणस्य समुद्रस्य विष्कम्भो द्विगुणः स्मृतः ।
नानाजनपदाकीर्णो मणिविद्रुमचित्रितः ॥ ६ ॥
नैकधातुविचित्रैश्च पर्वतैरुपशोभितः ।
सिद्धचारणसङ्कीर्णः सागरः परिमण्डलः ॥ ७ ॥
शाकद्वीपं च वक्ष्यामि यथावदिह पार्थिव ।
शृणु मे त्वं यथान्यायं ब्रुवतः कुरुनन्दन ॥ ८ ॥
जम्बूद्वीपप्रमाणेन द्विगुणः स नराधिप ।
विष्कम्भेण महाराज सागरोऽपि विभागशः ॥ ९ ॥
क्षीरोदो भरतश्रेष्ठ येन सम्परिवारितः ।
तत्र पुण्या जनपदास्तत्र न म्रियते जनः ॥ १० ॥
कुत एव हि दुर्भिक्षं क्षमातेजोयुता हि ते ।
शाकद्वीपस्य संक्षेपो यथावद्भरतर्षभ ॥ ११ ॥

ग्यारहवाँ अध्याय ॥ ११ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे संजय ! तुमने जम्बूखण्ड का हाल तो सुना दिया । अब जम्बूखण्ड का परिमाण और विस्तार, समुद्र का परिमाण, शाकद्वीप, कुशद्वीप, शाल्मलिद्वीप, क्रौञ्चद्वीप और चन्द्र, सूर्य, राहु आदि का सब हाल मुझसे कहो ॥१।३॥ संजय ने कहा—हे राजेन्द्र ! इस पृथ्वी को बहुत से द्वीपों ने घेर रक्खा है । अब मैं आपसे सातों द्वीप, चन्द्र, सूर्य और राहु का वर्णन करता हूँ ॥४॥ जम्बूद्वीप का परिमाण अठारह हज़ार छः सौ योजन का है । उसे खारी समुद्र घेरे हुए है । खारी समुद्र का परिमाण उससे दूना, अर्थात् सैंतीस हज़ार दो सौ योजन का है । इस समुद्र में अनेक जनपद और मणि-विद्रुम आदि रत्न हैं । अनेक धातुओं से शोभित और सिद्ध-चारण-सेवित बहुत से पर्वत भी इसमें हैं । हे राजेन्द्र ! अब शाकद्वीप का वर्णन सुनिए ॥५।८॥ शाकद्वीप का विस्तार जम्बूद्वीप से द्विगुण है । शाकद्वीप को क्षीर-सागर घेरे हुए है । इस द्वीप में बहुत से पवित्र जन-पद हैं । वहाँ रहनेवाले लोग अमर हैं । वे सब तेजस्वी

उक्त एष महाराज किमन्यत्कथयामि ते ।
धृतराष्ट्र उवाच—शाकद्वीपस्य संक्षेपो यथावदिह सञ्जय ॥ १२ ॥
उक्तस्त्वया महाप्राज्ञ विस्तरं ब्रूहि तत्त्वतः ।
सञ्जय उवाच—तथैव पर्वता राजन्सप्ताऽत्र मणिभूषिताः ॥ १३ ॥
रत्नाकरास्तथा नद्यस्तेषां नामानि मे शृणु ।
अतीव गुणवत्सर्वं तत्र पुण्यं जनाधिप ॥ १४ ॥
देवर्षिगन्धर्वयुतः प्रथमो मेरुरुच्यते ।
प्रागायतो महाराज मलयो नाम पर्वतः ॥ १५ ॥
ततो मेघाः प्रवर्तन्ते प्रभवन्ति च सर्वशः ।
ततः परेण कौरव्य जलधारो महागिरिः ॥ १६ ॥
ततो नित्यमुपादत्ते वासवः परमं जलम् ।
ततो वर्षं प्रभवति वर्षकाले जनेश्वर ॥ १७ ॥
उच्चैर्गिरी रैवतको यत्र नित्यं प्रतिष्ठिता ।
रेवती दिवि नक्षत्रं पितामहकृतो विधिः ॥ १८ ॥
उत्तरेण तु राजेन्द्र श्यामो नाम महागिरिः ।
नवमेघप्रभः प्रांशुः श्रीमानुज्ज्वलविग्रहः ॥ १९ ॥
यतः श्यामत्वमापन्नाः प्रजा जनपदेश्वर ।
धृतराष्ट्र उवाच—सुमहान्संशयो मेऽद्य प्रोक्तोऽयं सञ्जय त्वया ॥ २० ॥
प्रजाः कथं सूतपुत्र सम्प्राप्ताः श्यामतामिह ।
सञ्जय उवाच—सर्वेष्वेव महाराज द्वीपेषु कुरुनन्दन ॥ २१ ॥

और क्षमाशील हैं। वहा दुर्भिक्ष कभी नहीं पड़ता। हे महाराज! मैंने आपसे सक्षेप मे शाकद्वीप का हाल कहा है। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं ॥९।१२॥ धृतराष्ट्र ने कहा— हे महाप्राज्ञ ! तुमने सक्षेप से शाकद्वीप का वर्णन कहा। अब विस्तार के साथ इसका वर्णन करो ॥१३॥ सजय ने कहा— हे महाराज ! शाकद्वीप में विविध मणिरत्न शोभित सात पर्वत और विविध रत्नों की खानें तथा नदिया भी हैं। वहा के सब पदार्थ बहुगुणपूर्ण हैं। वहा का श्रेष्ठ पर्वत मेरु है उसमें देवता और ऋषि रहते हैं। मेरु के पश्चिम में, पूर्व को विस्तीर्ण, मलय नाम का पर्वत है। वहीं से मेघ उत्पन्न होकर सर्वत्र जल की वर्षा करते हैं। उसके पश्चात् जलधार नाम का पर्वत है। इन्द्र वहीं से जल लेकर वर्षा ऋतु में बरसाते हैं ॥१४।१७॥ उसके पास ही बहुत ऊँचा रैवतक नाम का पर्वत है। ब्रह्माजी के विधान के अनुसार रेवती नक्षत्र वहा दिव्य रूप से विराजमान है। सुमेरु के उत्तर ओर अत्यन्त ऊँचा, नवीन मेघ के रङ्ग का, उज्ज्वल कान्तिवाला श्याम नाम का महा-पर्वत है। वहा रहने से ही प्रजा का रङ्ग श्याम हुआ

गौरः कृष्णश्च पतगस्तयोर्वर्णान्तरे नृप ।
श्यामो यस्मात्प्रवृत्तो वै तस्माच्छ्यामो गिरिः स्मृतः॥२२ ॥
ततः परं कौरवेन्द्र दुर्गशैलो महोदयः ।
केसरः केसरयुतो यतो वातः प्रवर्त्तते ॥ २३ ॥
तेषां योजनविष्कम्भो द्विगुणः प्रविभागशः ।
वर्षाणि तेषु कौरव्य सप्तोक्तानि मनीषिभिः ॥ २४ ॥
महामेरुर्महाकाशो जलदः कुमुदोत्तरः ।
जलधारो महाराज सुकुमार इति स्मृतः ॥ २५ ॥
रैवतस्य तु कौमारः श्यामस्य मणिकाञ्चनः ।
केसरस्याऽथ मौदाकी परेण तु महापुमान् ॥ २६ ॥
परिवार्य तु कौरव्य दैर्घ्यं ह्रस्वत्वमेव च ।
जम्बूद्वीपेन संख्यातस्तस्य मध्ये महाद्रुमः ॥ २७ ॥
शाको नाम महाराज प्रजा तस्य सदाऽनुगा ।
तत्र पुण्या जनपदाः पूज्यते तत्र शङ्करः ॥ २८ ॥
तत्र गच्छन्ति सिद्धाश्च चारणा दैवतानि च ।
धार्मिकाश्च प्रजा राजंश्चत्वारोऽतीव भारत ॥ २९ ॥
वर्णाः स्वकर्मनिरता न च स्तेनोऽत्र दृश्यते ।
दीर्घायुषो महाराज जरामृत्युविवर्जिताः ॥ ३० ॥

है। धृतराष्ट्र ने कहा—हे संजय! तुम्हारे इस कथन पर मुझे बड़ा सन्देह हो रहा है। वहां के मनुष्य किस तरह सांवले हो गये ॥१८।२१॥ संजय ने कहा–हे महाराज! सभी द्वीपों में ब्राह्मण गोरे, क्षत्रिय सांवले और वैश्य मिश्र रङ्ग के होते हैं। हे भरतश्रेष्ठ! श्यामगिरि में अर्थात् उसके पास की भूमि में उत्पन्न होने के कारण वहां के लोग सांवले होते हैं। इसी से उस पर्वत का नाम श्याम है। अब अन्य पर्वतों का वर्णन सुनिए। श्यामगिरि के पश्चात् अत्यन्त ऊँचा दुर्गशैल है। उस पर्वत पर बड़े-बड़े सिंह रहते हैं। उसके पश्चात् केसर पर्वत है, वहां से वायु प्रकट होता है। ये सब पर्वत क्रमशः एक दूसरे से दूने हैं। इन पहले कहे गये सातों पर्वतों में महामेरु, महाकाश, जलद, कुमुद, उत्तर, जलधार और सुकुमार नाम के सात वर्ष हैं। रैवतक पर्वत का कौमारवर्ष, श्यामगिरि का मणिकाञ्चनवर्ष केसर का मौदाकीवर्ष है। उसके पश्चात् महापुमान् नाम का एक पर्वत है। यह पर्वत शाकद्वीप की लम्बाई और चौड़ाई को घेरे हुए है। इस खण्ड में एक ऐसा शाकवृक्ष है जिसका परिमाण जम्बूद्वीप के समान है। सब प्रजा उस वृक्ष के अधीन है। उक्त पर्वत में अत्यन्त पवित्र जनपद बसे हुए हैं। वहां के लोग महादेवजी की उपासना करते हैं। उस द्वीप में सिद्ध, चारण और देवगण आया-जाया करते हैं। वहां चारों वर्णों की प्रजा है।

प्रजास्तत्र विवर्द्धन्ते वर्षास्विव समुद्रगाः ।
नद्यः पुण्यजलास्तत्र गङ्गा च बहुधा गता ॥ ३१ ॥
सुकुमारी कुमारी च शीताशी वेणिका तथा ।
महानदी च कौरव्य तथा मणिजला नदी ॥ ३२ ॥
चक्षुर्वर्धनिका चैव नदी भरतसत्तम ।
तत्र प्रवृत्ताः पुण्योदा नद्यः कुरुकुलोद्वह ॥ ३३ ॥
सहस्राणां शतान्येव यतो वर्षति वासवः ।
न तासां नामधेयानि परिमाणं तथैव च ॥ ३४ ॥
शक्यन्ते परिसंख्यातुं पुण्यास्ता हि सरिद्वराः ।
तत्र पुण्या जनपदाश्चत्वारो लोकसम्मताः ॥ ३५ ॥
मङ्गाश्च मशकाश्चैव मानसा मन्दगास्तथा ।
मङ्गा ब्राह्मणभूयिष्ठाः स्वकर्मनिरता नृप ॥ ३६ ॥
मशकेषु तु राजन्या धार्मिकाः सर्वकामदाः ।
मानसाश्च महाराज वैश्यधर्मोपजीविनः ॥ ३७ ॥
सर्वकामसमायुक्ताः शूरा धर्मार्थनिश्चिताः ।
शूद्रास्तु मन्दगा नित्यं पुरुषा धर्मशीलिनः ॥ ३८ ॥
न तत्र राजा राजेन्द्र न दण्डो न च दण्डिकः ।
स्वधर्मेणैव धर्मज्ञास्ते रक्षन्ति परस्परम् ॥ ३९ ॥
एतावदेव शक्यं तु तत्र द्वीपे प्रभाषितुम् ।
एतदेव च श्रोतव्यं शाकद्वीपे महौजसि ॥ ४० ॥

इति श्री म महाभारते भीष्मपर्वाण भूमिपर्वणि शाकद्वीपवर्णने एकादशोऽध्याय ॥ ११ ॥

उन सबकी आयु बहुत बडी हे । वे अपने-अपने धर्म में अत्यन्त अनुराग रखते हैं । वहा न तो चोरों का भय है, न बुढापा है ओर न मृत्यु है ॥२२।३०॥ जैसे वर्षाकाल में नदिया बढती हैं, वेसे ही वहा की प्रजा क्रमश बढती हे । वहा असंख्य शाखाओंवाली गङ्गा, सुकुमारी, कुमारी, शीताशी, वेणिका, मणिजला, महानदी ओर चक्षुर्वर्धनिका आदि महानदिया बहती हैं । इनके अतिरिक्त ओर भी सैंकड़ों-हजारो पवित्र जलवाली नदिया हैं । इन्द्र उन नदियो का जल लेकर वर्षा करते हैं । उन श्रेष्ठ नदियों के नाम गिनाना ओर उनके परिमाण का वर्णन करना सहज नहीं हे ॥३१।३४॥ वहा लोक-सम्मत चार जनपद हैं, जिनके नाम मङ्ग, मशक, मानस ओर मन्दग हैं । मङ्ग प्रदेश में अपने कर्मों में निरत ब्राह्मण रहते हैं । मशक प्रदेश में सर्वकामप्रद धार्मिक-श्रेष्ठ क्षत्रिय रहते हैं । मानस प्रदेश में सर्वकाम-सम्पन्न वैश्य और मन्दग

प्रदेश में परम धार्मिक शूद्र रहते हैं। हे राजेन्द्र! इन प्रदेशों में न तो राजा है, न राजदण्ड है और न दण्ड के योग्य काम करनेवाले लोग हैं। वहां के रहनेवाले धर्मज्ञ लोग अपने-अपने धर्म का पालन करते हुए एक दूसरे की रक्षा करते हैं। हे महाराज! उज्ज्वल प्रभासम्पन्न शाकद्वीप का इतना ही हाल कहा जा सकता है और इतना ही सुनने का विषय है ॥३५।४०॥

—०—

भीष्मपर्व का ग्यारहवां अध्याय समाप्त हुआ ॥ ११ ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

सञ्जय उवाच—उत्तरेषु च कौरव्य द्वीपेषु श्रूयते कथा ।
एवं तत्र महाराज ब्रुवतश्च निबोध मे ॥ १ ॥
घृततोयः समुद्रोऽत्र दधिमण्डोदकोऽपरः ।
सुरोदः सागरश्चैव तथाऽन्यो जलसागरः ॥ २ ॥
परस्परेण द्विगुणाः सर्वे द्वीपा नराधिप ।
पर्वताश्च महाराज समुद्रैः परिवारिताः ॥ ३ ॥
गौरस्तु मध्यमे द्वीपे गिरिर्मानः शिलो महान् ।
पर्वतः पश्चिमे कृष्णो नारायणसखो नृप ॥ ४ ॥
तत्र रत्नानि दिव्यानि स्वयं रक्षति केशवः ।
प्रसन्नश्चाऽभवत्तत्र प्रजानां व्यदधत्सुखम् ॥ ५ ॥
कुशस्तम्बः कुशद्वीपे मध्ये जनपदैः सह ।
सम्पूज्यते शाल्मलिश्च द्वीपे शाल्मलिके नृप ॥ ६ ॥
क्रौञ्चद्वीपे महाक्रौञ्चो गिरी रत्नचयाकरः ।
सम्पूज्यते महाराज चातुर्वर्ण्येन नित्यदा ॥ ७ ॥
गोमन्तः पर्वतो राजन्सुमहान्सर्वधातुकः ।
यत्र नित्यं निवसति श्रीमान्कमललोचनः ॥ ८ ॥

बारहवां अध्याय ॥ १२ ॥

संजय ने कहा—हे राजेन्द्र! अब मैं उत्तर दिशा में स्थित द्वीपों का वर्णन करता हूँ, सुनिए। इन द्वीपों में घृत के समुद्र, दधि के समुद्र, सुरा के समुद्र और जल के समुद्र हैं। इन द्वीपों और सागरों का परिमाण परस्पर एक-एक से द्विगुण है। इनमें समुद्रों से घिरे हुए द्वीप भी हैं। मध्यम द्वीप में मनःशिला धातु का गौर नामक पर्वत है। पश्चिम द्वीप में कृष्ण पर्वत है, जिसमें नारायण रहते हैं ॥१।४॥ भगवान् नारायण स्वयं वहां के रत्नों की रक्षा करते हैं और प्रसन्न होकर वहां के निवासियों को सुख देते हैं। कुशद्वीप में वहां की प्रजा कुशस्तम्ब की और शाल्मलि द्वीप में वहां की प्रजा शाल्मलि वृक्ष की पूजा करती है। क्रौञ्चद्वीप में श्रेष्ठ रत्नों की खान महाक्रौञ्च पर्वत है। वहां के चारों वर्ण उसी पर्वत की पूजा करते

मोक्षिभिः सङ्गतो नित्यं प्रभुर्नारायणो हरिः ।
कुशद्वीपे तु राजेन्द्र पर्वतो विद्रुमैश्चितः ॥ ९ ॥
स्वनामनामा दुर्द्धर्षो द्वितीयो हेमपर्वतः ।
द्युतिमान्नाम कौरव्य तृतीयः कुमुदो गिरिः ॥ १० ॥
चतुर्थः पुष्पवान्नाम पञ्चमस्तु कुशेशयः ।
षष्ठो हरिगिरिर्नाम षडेते पर्वतोत्तमाः ॥ ११ ॥
तेषामन्तरविष्कम्भो द्विगुणः सर्वभागशः ।
औद्भिदं प्रथमं वर्षं द्वितीयं वेणुमण्डलम् ॥ १२ ॥
तृतीयं सुरथाकारं चतुर्थं कम्बलं स्मृतम् ।
धृतिमत्पञ्चमं वर्षं षष्ठं वर्षं प्रभाकरम् ॥ १३ ॥
सप्तमं कापिलं वर्षं सप्तैते वर्षलम्भकाः ।
एतेषु देवगन्धर्वाः प्रजाश्च जगतीश्वर ॥ १४ ॥
विहरन्ते रमन्ते च न तेषु म्रियते जनः ।
न तेषु दस्यवः सन्ति म्लेच्छजात्योऽपि वा नृप ॥ १५ ॥
गौरप्रायो जनः सर्वः सुकुमारश्च पार्थिव ।
अवशिष्टेषु सर्वेषु वक्ष्यामि मनुजेश्वर ॥ १६ ॥
यथाश्रुतं महाराज तदव्यग्रमनाः शृणु ।
क्रौञ्चद्वीपे महाराज क्रौञ्चो नाम महागिरिः ॥ १७ ॥
क्रौञ्चात्परो वामनको वामनादन्धकारकः ।
अन्धकारात्परो राजन्मैनाकः पर्वतोत्तमः ॥ १८ ॥

हैं। हे राजेन्द्र ! कुशद्वीप में विविध धातु-मण्डित और विद्रुमयुक्त प्रथम पर्वत गोमन्त है। इस पर्वत पर भगवान् नारायण मुक्त पुरुषों के संग सदा निवास करते हैं ॥५।९॥ इस द्वीप में दूसरा पर्वत हेममय हेमगिरि है। तीसरा पर्वत दीप्तिशाली कुमुद गिरि है। चौथा पर्वत पुष्पवान् है। पाचवा पर्वत कुशेशय है। छठा पर्वत हरिगिरि है। कुशद्वीप में ये छः श्रेष्ठ पर्वतराज हैं। इनका फासला परस्पर दूना है ॥९।१२॥ कुशद्वीप के पहले वर्ष का नाम उद्भिद् है। दूसरे वर्ष का नाम वेणुमण्डल है। तीसरे वर्ष का नाम सुरथाकार है। चौथे वर्ष का नाम कम्बल है। पाचवें वर्ष का नाम धृतिमान् है। छठे वर्ष का नाम प्रभाकर है। सातवें वर्ष का नाम कापिल है। वहा यही सात वर्ष अर्थात् खण्ड प्रधान हैं। इन सब वर्षों में देवता, गन्धर्व और मनुष्य प्रसन्नचित्त से विहार किया करते हैं। इनमें रहनेवाले लोग अजर-अमर हैं। इन वर्षों (खण्डों) में दस्यु या म्लेच्छ जाति के लोग नहीं रहते। इन वर्षों के लोग गोरे रङ्ग के और सुकुमार हैं ॥१३।१६॥ हे महाराज ! अब मैं अन्य द्वीपों का वर्णन, जैसा सुन रक्खा है, सुनाता हूँ। क्रौञ्चद्वीप

मैनाकात्परतो राजन्गोविन्दो गिरिरुत्तमः ।
गोविन्दात्परतो राजन्निविडो नाम पर्वतः ॥ १९ ॥
परस्तु द्विगुणस्तेषां विष्कम्भो वंशवर्द्धन ।
देशांस्तत्र प्रवक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु ॥ २० ॥
क्रौञ्चस्य कुशलो देशो वामनस्य मनोनुगः ।
मनोनुगात्परश्चोष्णो देशः कुरुकुलोद्वह ॥ २१ ॥
उष्णात्परः प्रावरकः प्रावारादन्धकारकः ।
अन्धकारकदेशात्तु मुनिदेशः परः स्मृतः ॥ २२ ॥
मुनिदेशात्परश्चैव प्रोच्यते दुन्दुभिस्वनः ।
सिद्धचारणसङ्कीर्णो गौरप्रायो जनाधिप ॥ २३ ॥
एते देशा महाराज देवगन्धर्वसेविताः ।
पुष्करे पुष्करो नाम पर्वतो मणिरत्नवान् ॥ २४ ॥
तत्र नित्यं प्रभवति स्वयं देवः प्रजापतिः ।
तं पर्युपासते नित्यं देवाः सर्वे महर्षयः ॥ २५ ॥
वाग्भिर्मनोनुकूलाभिः पूजयन्तो जनाधिप ।
जम्बूद्वीपात्प्रवर्तन्ते रत्नानि विविधान्युत ॥ २६ ॥
द्वीपेषु तेषु सर्वेषु प्रजानां कुरुसत्तम ।
ब्रह्मचर्येण सत्येन प्रजानां हि दमेन च ॥ २७ ॥
आरोग्यायुःप्रमाणाभ्यां द्विगुणं द्विगुणं ततः ।
एको जनपदो राजन्द्वीपेष्वेतेषु भारत ।

उक्ता जनपदा येषु धर्मश्चैकः प्रदृश्यते ॥ २८ ॥
ईश्वरो दण्डमुद्यम्य स्वयमेव प्रजापतिः ।
द्वीपानेतान्महाराज रक्षंस्तिष्ठति नित्यदा ॥ २९ ॥
स राजा स शिवो राजन्स पिता प्रपितामहः ।
गोपायति नरश्रेष्ठ प्रजाः सजडपण्डिताः ॥ ३० ॥
भोजनं चाऽत्र कौरव्य प्रजाः स्वयमुपस्थितम् ।
सिद्धमेव महाबाहो तद्धि भुञ्जन्ति नित्यदा ॥ ३१ ॥
ततः परं समा नाम दृश्यते लोकसंस्थितिः ।
चतुरस्रं महाराज त्रयस्त्रिंशत्तु मण्डलम् ॥ ३२ ॥
तत्र तिष्ठन्ति कौरव्य चत्वारो लोकसम्मताः ।
दिग्गजा भरतश्रेष्ठ वामनैरावतादयः ॥ ३३ ॥
सुप्रतीकस्तथा राजन्प्रभिन्नकरटामुखः ।
तस्याऽहं परिमाणं तु न संख्यातुमिहोत्सहे ॥ ३४ ॥
असंख्यातः स नित्यं हि तिर्यगूर्ध्वमधस्तथा ।
तत्र वै वायवो वान्ति दिग्भ्यः सर्वाभ्य एव हि ॥ ३५ ॥
असम्बद्धा महाराज तान्निगृह्णन्ति ते गजाः ।
पुष्करैः पद्मसङ्काशैर्विकसद्भिर्महाप्रभैः ॥ ३६ ॥
शतधा पुनरेवाऽऽशु ते तान्मुञ्चन्ति नित्यशः ।
श्वसद्भिर्मुच्यमानास्तु दिग्गजैरिह मारुताः ॥ ३७ ॥
आगच्छन्ति महाराज ततस्तिष्ठन्ति वै प्रजाः ।

द्वीपों के रहनेवाले लोगो में ब्रह्मचर्य, सत्य, दम, आरोग्य और आयु आदि बाते उत्तरोत्तर दूनी हैं ॥२४।२८॥ इन द्वीपों मे एक ही जनपद, एक ही कार्यक्रम और एक ही धर्म है। सब लोको के ईश्वर प्रजापति स्वयं दण्ड धारण किये हुए इन द्वीपों की रक्षा करते है। हे राजेन्द्र ! वे प्रजापति ही राजा हैं, कल्याणस्वरूप हैं, कल्याणदायक हैं। वही पिता हैं, वही पितामह हैं। चेतन और जड़, दोनों प्रकार की प्रजा की रक्षा वही करते हैं। इन द्वीपों के निवासियों के पास पका-पकाया भोजन स्वयं ही उपस्थित होता है और वे उसे ही खाकर रहते हैं ॥२९।३१॥ हे राजेन्द्र ! श्वेतद्वीप के पश्चात् समा नाम की, चौकोर और तेंतीस मण्डलवाली, बस्ती देख पड़ती है। हे कौरव ! इस स्थान में लोकप्रसिद्ध वामन, ऐरावत, सुप्रतीक और प्रभिन्नकरटामुख नाम के चार दिग्गज हैं। इन दिग्गजों के परिमाण और आधार का अनुमान करना असम्भव है। वे नीचे, ऊपर और आस-पास अनन्त विस्तृत हैं ॥३२।३५॥ वहा चारों ओर से बडे वेग से वायु चलती है। वे गज पहले उस वायु को रोकते हैं और फिर प्रफुल्ल-

धृतराष्ट्र उवाच—परो वै विस्तरोऽस्त्यर्थं त्वया सञ्जय कीर्तितः ॥ ३८ ॥
दर्शितं द्वीपसंस्थानमुत्तरं ब्रूहि सञ्जय ।
सञ्जय उवाच—उक्ता द्वीपा महाराज ग्रहं वै शृणु तत्त्वतः ॥ ३९ ॥
स्वर्भानोः कौरवश्रेष्ठ यावदेव प्रमाणतः ।
परिमण्डलो महाराज स्वर्भानुः श्रूयते ग्रहः ॥ ४० ॥
योजनानां सहस्राणि विष्कम्भो द्वादशाऽस्य वै ।
परिणाहेन षट्त्रिंशद्विपुलत्वेन चाऽनघ ॥ ४१ ॥
षष्टिमाहुः शतान्यस्य बुधाः पौराणिकास्तथा ।
चन्द्रमास्तु सहस्राणि राजन्नेकादश स्मृतः ॥ ४२ ॥
विष्कम्भेण कुरुश्रेष्ठ त्रयस्त्रिंशत्तु मण्डलम् ।
एकोनषष्टिविष्कम्भं शीतरश्मेर्महात्मनः ॥ ४३ ॥
सूर्यस्त्वष्टौ सहस्राणि द्वे चाऽन्ये कुरुनन्दन ।
विष्कम्भेण ततो राजन्मण्डलं त्रिंशता समम् ॥ ४४ ॥
अष्टपञ्चाशतं राजन्विपुलत्वेन चाऽनघ ।
श्रूयते परमोदारः पतगोऽसौ विभावसुः ॥ ४५ ॥
एतत्प्रमाणमर्कस्य निर्दिष्टमिह भारत ।
स राहुश्छादयत्येतौ यथाकालं महत्तया ॥ ४६ ॥
चन्द्रादित्यौ महाराज संक्षेपोऽयमुदाहृतः ।
इत्येतत्ते महाराज पृच्छतः शास्त्रचक्षुषा ॥ ४७ ॥
सर्वमुक्तं यथातत्त्वं तस्माच्छममवाप्नुहि ।
यथोद्दिष्टं मया प्रोक्तं सनिर्माणमिदं जगत् ॥ ४८ ॥

कमठ-तुल्य अपनी सूँड़ों से उस वायु को सघन रूप से फेंकते हैं। वही वायु जगत् में फैलकर सब प्रजा के प्राणों की रक्षा करती है ॥३६।३८॥ धृतराष्ट्र ने कहा—हे संजय! तुमने द्वीपों की स्थिति का वर्णन तो विस्तार के साथ किया; अब चन्द्र, सूर्य और राहु आदि का वर्णन करो ॥३९॥ संजय ने कहा—हे महाराज! मैं द्वीपों का वर्णन कर चुका, अब राहु का वर्णन सुनिए। सुना है, राहु ग्रह का आकार गोल है। उसका व्यास बारह हज़ार योजन और परिधि छत्तीस हजार योजन है। अन्यान्य पौराणिक पण्डितों का कहना है कि राहु का परिमाण छः हजार योजन है। चन्द्रमा का व्यास ग्यारह हज़ार योजन और परिधि तैंतीस हज़ार योजन है। किसी-किसी के मत में चन्द्रमा का परिमाण उनसठ हज़ार योजन है ॥४०।४३॥ सूर्य का व्यास दस हज़ार योजन और परिधि तीस हज़ार योजन है। किसी-

तस्मादाश्वस कौरव्य पुत्रं दुर्योधनं प्रति ।
श्रुत्वेदं भरतश्रेष्ठ भूमिपर्व मनोनुगम् ॥ ४९ ॥
श्रीमान् भवति राजन्यः सिद्धार्थः साधुसम्मतः।
आयुर्बलं च कीर्तिश्च तस्य तेजश्च वर्धते ॥ ५० ॥
यः शृणोति महीपाल पर्वणीदं यतव्रतः ।
प्रीयन्ते पितरस्तस्य तथैव च पितामहाः ॥ ५१ ॥
इदं तु भारतं वर्षं यत्र वर्त्तामहे वयम् ।
पूर्वैः प्रवर्तितं पुण्यं तत्सर्वं श्रुतवानसि ॥ ५२ ॥

इति श्री म महाभारते भीष्मपर्वणि भूमिपर्वणि उत्तरद्वीपादिसंस्थानवर्णने द्वादशोऽध्याय ॥ १२ ॥

समाप्तमिदं भूमिपर्व ।

किसी के मत में सूर्य का परिमाण अट्ठावन योजन है। सूर्यमण्डल का परिमाण इतना ही निर्दिष्ट है। राहु दोनों से बड़ा है, इसलिए चन्द्रमा ओर सूर्य के मण्डलों को ढक लेता है। हे महाराज! चन्द्रमा ओर सूर्य तथा राहु का हाल संक्षेप से मैंने सुना दिया ॥४४।४८॥ *अब आप स्वयं शान्त भाव धारण* करके अपने पुत्र दुर्योधन को आश्वासन दीजिए। जो क्षत्रिय इस भूमिपर्व को सुनता है उसे लक्ष्मी और सिद्धि प्राप्त होती है। उसकी आयु, तेज ओर बल बढ़ता है। जो राजा पर्व के दिन संयत होकर इस कथा को सुनता है उसके पिता, पितामह आदि पुरखे प्रसन्न होते हैं। हम लोग जिस भारतवर्ष में बसते हैं, उसमें *रहनेवाले पहले के लोग जिन पुण्यकार्यों* को कर गये हैं, वे सब आपके सुने हुए हैं ॥४९।५२॥

भीष्मपर्व का बारहवां अध्याय समाप्त हुआ ॥ १२ ॥



अथ भगवद्गीतापर्व ।

अथ त्रयोदशोऽध्याय ॥ १३ ॥

वैशम्पायन उवाच—**अथ गावल्गणिर्विद्वान्संयुगादेत्य भारत ।**
प्रत्यक्षदर्शी सर्वस्य भूतभव्यभविष्यवित् ॥ १ ॥
ध्यायते धृतराष्ट्राय सहसोत्पत्य दुःखितः ।
आचष्ट निहतं भीष्मं भरतानां पितामहम् ॥ २ ॥
सञ्जय उवाच—**सञ्जयोऽहं महाराज नमस्ते भरतर्षभ ।**
हतो भीष्मः शान्तनवो भरतानां पितामहः ॥ ३ ॥

तेरहवां अध्याय ॥ १३ ॥

वैशम्पायन ने कहा—हे राजा जनमेजय! अब भूत-भविष्य के ज्ञाता, प्रत्यक्षदर्शी, संजय समर भूमि से लौटकर एकाएक चिन्ताकुल धृतराष्ट्र के पास पहुँचे ओर कहने लगे—हे महाराज! मैं संजय आपको प्रणाम करता हूँ। हे भरतश्रेष्ठ! भरतवंश के पितामह, महाराज शान्तनु के पुत्र, भीष्मजी मारे गये। जो योद्धाओं के अगुआ और धनुर्द्धर वीरों के रक्षक आश्रय-स्वरूप थे, वही कुरु-पितामह भीष्मजी इस समय

ककुदं सर्वयोधानां धाम सर्वधनुष्मताम् ।
शरतल्पगतः सोऽद्य शेते कुरुपितामहः ॥ ४ ॥
यस्य वीर्यं समाश्रित्य द्यूतं पुत्रस्तवाऽकरोत् ।
स शेते निहतो राजन्संख्ये भीष्मः शिखण्डिना ॥ ५ ॥
यः सर्वान्पृथिवीपालान्समवेतान्महामृधे ।
जिगायैकरथेनैव काशिपुर्यां महारथः ॥ ६ ॥
जामदग्न्यं रणे रामं यो युध्यदपसम्भ्रमः ।
न हतो जामदग्न्येन स हतोऽद्य शिखण्डिना ॥ ७ ॥
महेन्द्रसदृशः शौर्ये स्थैर्ये च हिमवानिव ।
समुद्र इव गाम्भीर्ये सहिष्णुत्वे धरासमः ॥ ८ ॥
शरदंष्ट्रो धनुर्वक्त्रः खड्गजिह्वो दुरासदः ।
नरसिंहः पिता तेऽद्य पाञ्चाल्येन निपातितः ॥ ९ ॥
पाण्डवानां महासैन्यं यं दृष्ट्वोद्यतमाहवे ।
प्रावेपत भयोद्विग्नं सिंहं दृष्ट्वेव गोगणः ॥ १० ॥
परिरक्ष्य स सेनां ते दशरात्रमनीकहा ।
जगामाऽस्तमिवाऽऽदित्यः कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ॥ ११ ॥
यः स शक्र इवाऽक्षोभ्यो वर्षन्बाणान्सहस्रशः ।
जघान युधि योधानामर्बुदं दशभिर्दिनैः ॥ १२ ॥
स शेते निहतो भूमौ वातभग्न इव द्रुमः ।
तव दुर्मन्त्रिते राजन्यथा नाऽर्हः स भारत ॥ १३ ॥

इति श्रीमन्महाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि भीष्मवधश्रवणे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

अस्त हो गये। जिन्होंने इन्द्र की तरह बेखटके हजारों बाण बरसाकर दस दिन में दस करोड़ (या लाख) योद्धाओं को मार डाला वही भीष्म आज, आपकी कुमन्त्रणा के कारण, आंधी में टूटे हुए पेड़ की तरह पृथ्वी पर पड़े हुए हैं। वे कदापि ऐसी दशा के योग्य न थे ॥८।१३॥

भीष्मपर्व का तेरहवां अध्याय समाप्त हुआ ॥ १३ ॥



अथ चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—कथं कुरुणामृषभो हतो भीष्मः शिखण्डिना ।
कथं रथात्स न्यपतत्पिता मे वासवोपमः ॥ १ ॥
कथमाचक्ष्व मे योधा हीना भीष्मेण सञ्जय ।
बलिना देवकल्पेन गुर्वर्थे ब्रह्मचारिणा ॥ २ ॥
तस्मिन्हते महाप्राज्ञे महेष्वासे महाबले ।
महासत्त्वे नरव्याघ्रे किमु आसीन्मनस्तव ॥ ३ ॥
आर्त्तिं परामाविशति मनः शंससि मे हतम् ।
कुरूणामृषभं वीरमकम्पं पुरुषर्षभम् ॥ ४ ॥
के तं यान्तमनुप्राप्ताः के वाऽस्याऽऽसन्पुरोगमाः ।
केऽतिष्ठन्के न्यवर्त्तन्त केऽन्ववर्त्तन्त सञ्जय ॥ ५ ॥
के शूरा रथशार्दूलमच्युतं क्षत्रियर्षभम् ।
तथाऽनीकं गाहमानं सहसा पृष्ठतोऽन्वयुः ॥ ६ ॥
यस्तमोऽर्क इवाऽपोहन्परसैन्यममित्रहा ।
सहस्ररश्मिप्रतिमः परेषां भयमादधत् ॥ ७ ॥
अकरोद्दुष्करं कर्म रणे पाण्डुसुतेषु यः ।
ग्रसमानमनीकानि य एनं पर्यवारयन् ॥ ८ ॥

चौदहवां अध्याय ॥ १४ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे संजय ! इन्द्र-सदृश, कुरु-कुल-चूड़ामणि, मेरे चचा भीष्म किस तरह शिखण्डी के हाथों मारे गये और रथ से गिरे ? पिता की प्रसन्नता के लिए जन्म भर ब्रह्मचारी रहनेवाले देवतुल्य भीष्म के बिना इस समय मेरे पुत्रों और योद्धाओं का क्या हाल है ? महाप्राज्ञ, बड़े उत्साही, महाबली, महात्मा भीष्म के मारे जाने पर तुम्हारे मन की क्या दशा हुई थी ? उन कुरुकुलाग्रगण्य पुरुषश्रेष्ठ भीष्म के मरने की सूचना सुनने से मुझे घोर दुःख उत्पन्न हो रहा है ॥१।४॥ भीष्मजी जब युद्धयात्रा पर थे तब कौन-कौन वीर उनके पीछे गये थे, कौन-कौन वीर उनके आगे चले थे, कौन-कौन उनके साथ बने रहे और कौन-कौन लौट आये ? जब वे शत्रुसेना में घुसे थे तब किन-किन वीरों ने उनके पृष्ठभाग की रक्षा की थी ? जैसे सूर्यदेव अंधकार को दूर करते हैं वैसे ही महावीर भीष्म जब शत्रुसेना को मारने और शत्रु

ककुदं सर्वयोधानां धाम सर्वधनुष्मताम् ।
शरतल्पगतः सोऽद्य शेते कुरुपितामहः ॥ ४ ॥
यस्य वीर्यं समाश्रित्य द्यूतं पुत्रस्तवाऽकरोत् ।
स शेते निहतो राजन्संख्ये भीष्मः शिखण्डिना ॥ ५ ॥
यः सर्वान्पृथिवीपालान्समवेतान्महामृधे ।
जिगायैकरथेनैव काशिपुर्यां महारथः ॥ ६ ॥
जामदग्न्यं रणे रामं यो युध्यदपसम्भ्रमः ।
न हतो जामदग्न्येन स हतोऽद्य शिखण्डिना ॥ ७ ॥
महेन्द्रसदृशः शौर्ये स्थैर्ये च हिमवानिव ।
समुद्र इव गाम्भीर्ये सहिष्णुत्वे धरासमः ॥ ८ ॥
शरदंष्ट्रो धनुर्वक्त्रः खड्गजिह्वो दुरासदः ।
नरसिंहः पिता तेऽद्य पाञ्चाल्येन निपातितः ॥ ९ ॥
पाण्डवानां महासैन्यं यं दृष्ट्वोद्यतमाहवे ।
प्रावेपत भयोद्विग्नं सिंहं दृष्ट्वेव गोगणः ॥ १० ॥
परिरक्ष्य स सेनां ते दशरात्रमनीकहा ।
जगामाऽस्तमिवाऽऽदित्यः कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ॥ ११ ॥
यः स शक्र इवाऽक्षोभ्यो वर्षन्बाणान्सहस्रशः ।
जघान युधि योधानामर्बुदं दशभिर्दिनैः ॥ १२ ॥
स शेते निहतो भूमौ वातभग्न इव द्रुमः ।
तव दुर्मन्त्रिते राजन्यथा नाऽर्हः स भारत ॥ १३ ॥

इति श्रीमन्महाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि भीष्ममृत्युश्रवणे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

शर-शय्या पर पड़े हुए हैं। आपके पुत्र दुर्योधन ने जिनके भरोसे जुआ खेला था, उन्हीं भीष्म को समर मे शिखण्डी ने मार गिराया। जिन महारथी ने काशी पुरी मे अकेले रथ पर बैठकर सब राजाओं को परास्त किया, जिन्होंने परशुराम से बिना किसी प्रकार के क्षोभ के निडर होकर युद्ध किया, जिन्हें साक्षात् परशुराम भी नहीं मार सके, वही महारथी भीष्म आज शिखण्डी के हाथों मरे पड़े हैं ॥१।७॥ जो शूरता में महेन्द्र के तुल्य, स्थिरता में हिमालय के सदृश, गम्भीरता में समुद्र के समान और सहनशीलता में पृथ्वी के बराबर थे, वही बाणरूपी दाढ़, धनुषरूपी मुख और खड्गरूपी जिह्वा से भयानक वीर आज शिखण्डी के हाथों मारे गये। जिन्हें युद्ध के लिए उद्यत देखकर पाण्डवों की सेना भय और व्याकुलता के मारे वैसे ही काँप उठी थी जैसे सिंह को देखकर गाय काँपने लगती है वहीं शत्रुवीर-घाती महावीर भीष्म दस दिन आपकी सेना की रक्षा करते हुए, अनेक कठिन कर्म करके, अब सूर्य के समान

कथं च नाऽजयद्भीष्मो द्रोणे जीवति सञ्जय ॥ १८ ॥
कृपे सन्निहिते तत्र भरद्वाजात्मजे तथा ।
भीष्मः प्रहरतां श्रेष्ठः कथं स निधनं गतः ॥ १९ ॥
कथं चाऽतिरथस्तेन पाञ्चाल्येन शिखण्डिना ।
भीष्मो विनिहतो युद्धे देवैरपि दुरासदः ॥ २० ॥
यःस्पर्द्धते रणे नित्यं जामदग्न्यं महाबलम् ।
अजितं जामदग्न्येन शक्रतुल्यपराक्रमम् ॥ २१ ॥
तं हतं समरे भीष्मं महारथकुलोदितम् ।
सञ्जयाऽऽचक्ष्व मे वीरं येन शर्म न विद्महे ॥ २२ ॥
मामकाः के महेष्वासा नाऽजहुः सञ्जयाऽच्युतम् ।
दुर्योधनसमादिष्टाः के वीराः पर्यवारयन् ॥ २३ ॥
यच्छिखण्डिमुखाः सर्वे पाण्डवा भीष्ममभ्ययुः ।
कच्चित्ते कुरवः सर्वे नाऽजहुः सञ्जयाऽच्युतम् ॥ २४ ॥
अश्मसारमयं नूनं हृदयं सुदृढं मम ।
यच्छ्रुत्वा पुरुषव्याघ्रं हतं भीष्मं न दीर्यते ॥ २५ ॥
यस्मिन्सत्यं च मेधा च नीतिश्च भरतर्षभे ।
अप्रमेयाणि दुर्धर्षे कथं स निहतो युधि ॥ २६ ॥
मौर्वीघोषस्तनयित्नुः पृषत्कपृषतो महान् ।
धनुर्ह्रादमहाशब्दो महामेघ इवोन्नतः ॥ २७ ॥

करने में प्रवृत्त हुए ? द्रोणाचार्य के जीते-जी भीष्म क्यों नहीं जय प्राप्त कर सके ? भारद्वाज द्रोणाचार्य और कृपाचार्य के समीप रहने पर भी श्रेष्ठ योद्धा भीष्म किस तरह मारे गये ? पाञ्चालराज के पुत्र शिखण्डी ने किस तरह उन अतिरथी भीष्म को युद्ध में मारा, जिनका सामना देवता भी नहीं कर सकते थे ॥१८।२०॥ युद्ध में महापराक्रमी परशुरामजी की बराबरी का दावा रखनेवाले, समर में परशुरामजी से भी न हारनेवाले, इन्द्र के समान पराक्रमी भीष्म युद्ध में किस तरह मारे गये ? हे संजय ! मैं उनके मरने का समाचार पाकर बहुत ही दुःखित हूँ। तुम सब वृत्तान्त विस्तार के साथ मुझे सुनाओ। दुर्योधन की आज्ञा से मेरे पक्ष के कौन-कौन वीर भीष्म की सहायता कर रहे थे ? जिस समय शिखण्डी आदि पाण्डव पक्ष के योद्धा भीष्म के सामने आये थे उस समय कौरव वीर क्या भीष्म को छोड़कर हट गये थे ? मेरा हृदय अत्यन्त कठिन और पत्थर का बना हुआ है, इसी कारण श्रेष्ठ वीर भीष्म के मरने का समाचार सुनकर भी फट नहीं जाता। उन अप्रमेय बलशाली भरतश्रेष्ठ भीष्म में सत्य, मेधा, नीति आदि सद्गुण सदा विराजमान रहते थे। फिर वे किस तरह युद्ध में मारे गये ! ॥२१।२६॥ जिन महामेघ-

कृतिनं तं दुराधर्षं सञ्जयाऽस्य त्वमन्तिके ।
कथं शान्तनवं युद्धे पाण्डवाः प्रत्यवारयन् ॥ ९ ॥
निकृन्तन्तमनीकानि शरदंष्ट्रं मनस्विनम् ।
चापव्यात्ताननं घोरमसिजिह्वं दुरासदम् ॥ १० ॥
अनर्हं पुरुषव्याघ्रं ह्रीमन्तमपराजितम् ।
पातयामास कौन्तेयः कथं तमजितं युधि ॥ ११ ॥
उग्रधन्वानमुग्रेषुं वर्त्तमानं रथोत्तमे ।
परेषामुत्तमाङ्गानि प्रचिन्वन्तमथेषुभिः ॥ १२ ॥
पाण्डवानां महत्सैन्यं यं दृष्ट्वोद्यतमाहवे ।
कालाग्निमिव दुर्धर्षं समचेष्टत नित्यशः ॥ १३ ॥
परिकृष्य स सेनां तु दशरात्रमनीकहा ।
जगामाऽस्तमिवाऽऽदित्यः कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ॥ १४ ॥
यः स शक्र इवाऽक्षय्यवर्षं शरमयं क्षिपन् ।
जघान युधि योधानामर्बुदं दशभिर्दिनैः ॥ १५ ॥
स शेते निहतो भूमौ वातभुग्न इव द्रुमः ।
मम दुर्मन्त्रितेनाऽऽजौ यथा नाऽर्हति भारत ॥ १६ ॥
कथं शान्तनवं दृष्ट्वा पाण्डवानामनीकिनी ।
प्रहर्तुमशकत्तत्र भीष्मं भीमपराक्रमम् ॥ १७ ॥
कथं भीष्मेण संग्रामं प्राकुर्वन्पाण्डुनन्दनाः ।

के हृदय में भय उत्पन्न करनेवाले दुष्कर कर्म करने लगे थे तब शत्रुसेना के किन-किन वीरों ने उनका सामना किया ॥५।८॥ हे संजय ! तुमने क्या समीप रहकर सब युद्ध देखा था ? पाण्डवों ने किस तरह पितामह को रोका ? पाण्डवों की महासेना जिन भीष्म को युद्ध के लिए उद्यत और कालानल के समान दुर्धर्ष देखकर मर रहे पुरुष की तरह तड़पने लगती थी वे, दस दिन तक शत्रुसेना को मारकर, दुष्कर कर्म करके, कैसे सूर्य की तरह अस्त हो गये ? अर्जुन ने किस तरह उन उत्तम रथ पर बैठे हुए, शत्रुओं के सिरों को तीक्ष्ण बाणों से काटनेवाले, वेगशाली, ह्रीमान्, अपराजित, असाधारण, पुरुषसिंह, दुर्धर्ष भीष्म को रोका ? पितामह के बाण ही दांत थे, धनुष ही मुख था, और खड्ग ही जिह्वा थी। उग्र धनुष और तीक्ष्ण बाण धारण करनेवाले तथा इन्द्र की तरह असंख्य बाण बरसाकर दस दिन में दस करोड़ (या लाख) योद्धाओं के मारनेवाले भीष्म पितामह, मेरी कुमन्त्रणा के कारण, मरकर आज आंधी से टूटे हुए पेड़ की तरह अपने अयोग्य गति को पहुँचे। हे संजय ! पाञ्चाल-सेना के वीर किस तरह भीमपराक्रमी भीष्म को रोकने में समर्थ हुए ॥९।१७॥ पाण्डव लोग किस तरह भीष्म से युद्ध

कथं च नाऽजयद्भीष्मो द्रोणे जीवति सञ्जय ॥ १८ ॥
कृपे सन्निहिते तत्र भरद्वाजात्मजे तथा ।
भीष्मः प्रहरतां श्रेष्ठः कथं स निधनं गतः ॥ १९ ॥
कथं चाऽतिरथस्तेन पाञ्चाल्येन शिखण्डिना ।
भीष्मो विनिहतो युद्धे देवैरपि दुरासदः ॥ २० ॥
यःस्पर्द्धते रणे नित्यं जामदग्न्यं महाबलम् ।
अजितं जामदग्न्येन शक्रतुल्यपराक्रमम् ॥ २१ ॥
तं हतं समरे भीष्मं महारथकुलोदितम् ।
सञ्जयाऽऽचक्ष्व मे वीरं येन शर्म न विद्महे ॥ २२ ॥
मामकाः के महेष्वासा नाऽजहुः सञ्जयाऽच्युतम् ।
दुर्योधनसमादिष्टाः के वीराः पर्यवारयन् ॥ २३ ॥
यच्छिखण्डिमुखाः सर्वे पाण्डवा भीष्ममभ्ययुः ।
कच्चित्ते कुरवः सर्वे नाऽजहुः सञ्जयाऽच्युतम् ॥ २४ ॥
अश्मसारमयं नूनं हृदयं सुदृढं मम ।
यच्छ्रुत्वा पुरुषव्याघ्रं हतं भीष्मं न दीर्यते ॥ २५ ॥
यस्मिन्सत्यं च मेधा च नीतिश्च भरतर्षभे ।
अप्रमेयाणि दुर्धर्षे कथं स निहतो युधि ॥ २६ ॥
मौर्वीघोषस्तनयित्नुः पृषत्कपृषतो महान् ।
धनुर्ह्रादमहाशब्दो महामेघ इवोन्नतः ॥ २७ ॥

करने में प्रवृत्त हुए ? द्रोणाचार्य के जीते-जी भीष्म क्यों नहीं जय प्राप्त कर सके ? भारद्वाज द्रोणाचार्य और कृपाचार्य के समीप रहने पर भी श्रेष्ठ योद्धा भीष्म किस तरह मारे गये ? पाञ्चालराज के पुत्र शिखण्डी ने किस तरह उन अतिरथी भीष्म को युद्ध में मारा, जिनका सामना देवता भी नहीं कर सकते थे ॥१८।२०॥ युद्ध में महापराक्रमी परशुरामजी की बराबरी का दावा रखनेवाले, समर में परशुरामजी से भी न हारनेवाले, इन्द्र के समान पराक्रमी भीष्म युद्ध में किस तरह मारे गये ? हे सञ्जय ! मैं उनके मरने का समाचार पाकर बहुत ही दुःखित हूँ । तुम सब वृत्तान्त विस्तार के साथ मुझे सुनाओ । दुर्योधन की आज्ञा से मेरे पक्ष के कौन-कौन वीर भीष्म की सहायता कर रहे थे ? जिस समय शिखण्डी आदि पाण्डव पक्ष के योद्धा भीष्म के सामने आये थे उस समय कौरव वीर क्या भीष्म को छोड़कर हट गये थे ? मेरा हृदय अत्यन्त कठिन और पत्थर का बना हुआ है इसी कारण श्रेष्ठ वीर भीष्म के मरने का समाचार सुनकर भी फट नहीं जाता । उन अप्रमेय बलशाली भरतश्रेष्ठ भीष्म में सत्य, मेधा, नीति आदि सद्गुण सदा विराजमान रहते थे । फिर वे किस तरह युद्ध में मारे गये ? ॥२१।२६॥ जिन महामेघ-

योऽभ्यवर्षत कौन्तेयान्सपाञ्चालान्ससृञ्जयान् ।
निघ्नन्पररथान्वीरो दानवानिव वज्रभृत् ॥ २८ ॥
इष्वस्त्रसागरं घोरं बाणग्राहं दुरासदम् ।
कार्मुकोर्मिणमक्षय्यमद्वीपं चलमप्लवम् ॥ २९ ॥
गदासिमकरावासं हयावर्त्तं गजाकुलम् ।
पदातिमत्स्यकलिलं शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनम् ॥ ३० ॥
हयान्गजपदातींश्च रथांश्च तरसा बहून् ।
निमज्जयन्तं समरे परवीरापहारिणम् ॥ ३१ ॥
विद्ह्यमानं कोपेन तेजसा च परन्तपम् ।
वेलेव मकरावासं के वीराः पर्यवारयन् ॥ ३२ ॥
भीष्मो यदकरोत्कर्म समरे सञ्जयाऽरिहा ।
दुर्योधनहितार्थाय के तस्याऽस्य पुरोऽभवन् ॥ ३३ ॥
केऽरक्षन्दक्षिणं चक्रं भीष्मस्याऽमिततेजसः ।
पृष्ठतः के परान्वीरानपासेधन्यतव्रताः ॥ ३४ ॥
के पुरस्तादवर्तन्त रक्षन्तो भीष्ममन्तिके ।
केऽरक्षन्नुत्तरं चक्रं वीरा वीरस्य युध्यतः ॥ ३५ ॥
वामे चक्रे वर्त्तमानाः केऽघ्नन्सञ्जय सृञ्जयान् ।
अग्रतोऽभ्यमनीकेषु केऽभ्यरक्षन्दुरासदम् ॥ ३६ ॥

सदृश भीष्म ने प्रत्यञ्चा के शब्दरूपी गम्भीर गर्जन के साथ धनुष के टङ्कारशब्द-रूपी बिजली की कड़क से सब दिशाओं को प्रतिध्वनित कर दिया, जलधारा सदृश बाणवर्षा से सृञ्जयों, पाञ्चालों और पाण्डवों की सेना को छा लिया, और दानव-दलन इन्द्र के समान शत्रुपक्ष के रथी, अतिरथी आदि योद्धाओं को मारकर तहस-नहस कर दिया, वे वीर भीष्म कैसे मारे गये। उनके अस्त्रों का सागर अपार था। उसमें बाण ही ग्राह थे, धनुष ही तरङ्गें थीं, गदा और खड्ग ही मगर थे, हाथी और घोड़े ही आवर्त (भँवर) थे, पैदल सिपाही ही मछली के समान थे, शङ्ख और दुन्दुभि आदि का शब्द ही गर्जन था। उस द्वीप और नौका-रहित अस्त्रसागर में भीष्म ने वेग के साथ शत्रुपक्ष के हाथी, घोड़े, रथ, पैदल आदि को डुबा दिया होगा। वही भीष्म किस तरह मारे गये? जिनका क्रोध अग्नि से भी बढ़कर भीषण था, जिनका तेज शत्रुओं के लिए असह्य और ताप पहुँचानेवाला था, उन भीष्म के वेग को, समुद्र के वेग को तट की भूमि के समान, किस-किस वीर ने रोका? ॥२७।३२॥ शत्रुनिघाती भीष्म जब दुर्योधन के हित के लिए युद्ध में प्रवृत्त हुए तब कौन वीर उनके आगे-आगे थे? किन वीरों ने उनके रथ के दक्षिण चक्र की रक्षा की थी? किन वीरों ने दृढ़ प्रतिज्ञा के साथ उनके पीछे आक्रमण करनेवाले शत्रुओं को रोका था?

पार्श्वतः केऽभ्यरक्षन्त गच्छन्तो दुर्गमां गतिम् ।
समूहे के परान्वीरान्प्रत्ययुध्यन्त सञ्जय ॥ ३७ ॥
रक्ष्यमाणः कथं वीरैर्गोप्यमानाश्च तेन ते ।
दुर्जयानामनीकानि नाऽजयंस्तरसा युधि ॥ ३८ ॥
सर्वलोकेश्वरस्येव परमेष्ठी प्रजापतेः ।
कथं प्रहर्तुमपि ते शेकुः सञ्जय पाण्डवाः ॥ ३९ ॥
यस्मिन्द्वीपे समाश्वास्य युध्यन्ते कुरवः परैः ।
तं निमग्नं नरव्याघ्रं भीष्मं शंससि सञ्जय ॥ ४० ॥
यस्य वीर्यं समाश्रित्य मम पुत्रो बृहद्बलः ।
न पाण्डवानगणयत्कथं स निहतः परैः ॥ ४१ ॥
यः पुरा विबुधैः सर्वैः सहाये युद्धदुर्मदः ।
कांक्षितो दानवान्घ्नद्भिः पिता मम महाव्रतः ॥ ४२ ॥
यस्मिञ्जाते महावीर्ये शान्तनुर्लोकविश्रुतः ।
शोकं दैन्यं च दुःखं च प्राजहात्पुत्रलक्ष्मणि ॥ ४३ ॥
प्रोक्तं परायणं प्राज्ञं स्वधर्मनिरतं शुचिम् ।
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञं कथं शंससि मे हतम् ॥ ४४ ॥
सर्वास्त्रविनयोपेतं शान्तं दान्तं मनस्विनम् ।
हतं शान्तनवं श्रुत्वा मन्ये शेषं हतं बलम् ॥ ४५ ॥

किन वीरों ने उनके बायें पहिये की रक्षा की थी ! किन वीरों ने उनके बायें पहिये का बचाव करते समय सृञ्जय वीरों से युद्ध किया था ? किन वीरों ने अत्यन्त दुर्गम अग्रगामी सेना के अग्रभाग की रक्षा की थी ! किन वीरों ने कष्ट और दुर्गति सहकर भी भीष्म पितामह के पार्श्व भाग की रक्षा की थी ! किन-किन वीरों ने हमारे पक्ष की सेना में रहकर शत्रुदल के वीरों का सामना किया था ? हे संजय ! सब वीरों ने भीष्म की किस तरह रक्षा की ? भीष्म पितामह के बाहुबल से सुरक्षित होकर भी कौरवपक्ष के वीर किस कारण पाण्डव-सेना को परास्त नहीं कर सके ॥३३।३८॥ पाण्डव ही किस तरह प्रजापति-तुल्य प्रतापी पितामह के ऊपर प्रहार कर सके ? जिन द्वीपस्वरूप भीष्म के सहारे कौरवों ने शत्रुपक्ष की सागर-समान सेना में प्रवेश करने का साहस किया था उन्हीं भीष्म के डूबने की सूचना तुम दे रहे हो। मेरा बलवान् पुत्र जिन भीष्म के बल का आश्रय लेकर पाण्डवों को कुछ नहीं समझता था वही भीष्म किस तरह शत्रुओं के हाथों मारे गये ? ॥३९।४१॥ पूर्व समय में दानव-दमन के लिए देवताओं ने जिन महाव्रत-धारी युद्धदुर्मद भीष्म से सहायता प्राप्त करने की इच्छा की थी, जिन भीष्म के जन्म के समय लोक-प्रसिद्ध शान्तनु का शोक, दुःख और दीनता दूर हो गई थी, उन महाप्राज्ञ अपने धर्म में

धर्माद्धर्मो बलवान्सम्प्राप्त इति मे मतिः ।
यत्र वृद्धं गुरुं हत्वा राज्यमिच्छन्ति पाण्डवाः ॥ ४६ ॥
जामदग्न्यः पुरा रामः सर्वास्त्रविदनुत्तमः ।
अम्बार्थमुद्यतः संख्ये भीष्मेण युधि निर्जितः ॥ ४७ ॥
तमिन्द्रसमकर्माणं ककुदं सर्वधन्विनाम् ।
हतं शंससि मे भीष्मं किं नु दुःखमतः परम् ॥ ४८ ॥
असकृत्क्षत्रियव्राताः संख्ये येन विनिर्जिताः ।
जामदग्न्येन वीरेण परवीरनिघातिना ॥ ४९ ॥
न हतो यो महाबुद्धिः स हतोऽद्य शिखण्डिना।
तस्मान्नूनं महावीर्याद्भार्गवाद्युद्धदुर्मदात् ॥ ५० ॥
तेजोवीर्यबलैर्भूयाञ्शिखण्डी द्रुपदात्मजः ।
यः शूरं कृतिनं युद्धे सर्वशास्त्रविशारदम् ॥ ५१ ॥
परमास्त्रविदं वीरं जघान भरतर्षभम् ।
के वीरास्तमभित्रघ्नमन्वयुः शस्त्रसंसदि ॥ ५२ ॥
शंस मे तद्यथा चाऽऽसीद्युद्धं भीष्मस्य पाण्डवैः ।
योषेव हतवीरा मे सेना पुत्रस्य सञ्जय ॥ ५३ ॥
अगोपमिव चोद्भ्रान्तं गोकुलं तद्बलं मम ।
पौरुषं सर्वलोकस्य परं यस्मिन्महाहवे ॥ ५४ ॥
परासक्ते च वस्तस्मिन्कथमासीन्मनस्तदा ।
जीवितेऽप्यद्य सामर्थ्यं किमिवाऽस्मासु सञ्जय ॥ ५५ ॥

तत्पर, वेद-वेदाङ्ग के तत्त्व के ज्ञाता भीष्म के मरने की बात तुम कैसे कह रहे हो ॥४२।४४॥ सब अस्त्रों की विद्या में पारदर्शी, शान्त, दान्त, मनस्वी भीष्मजी क्या मरे, मेरे पक्ष की बची हुई सब सेना चौपट हो गई। वृद्ध कुलगुरु भीष्म को मारकर पाण्डव लोग राज्य प्राप्त करने की इच्छा कर रहे हैं, यह देखकर मुझे जान पड़ता है कि धर्म की अपेक्षा अधर्म ही प्रबल है। सब अस्त्रों के जाननेवाले परशुरामजी भी एक समय अम्बा के लिए युद्ध ठानकर जिनसे परास्त हो चुके हैं उन देवराज-सदृश धनुर्द्धर श्रेष्ठ भीष्म की मृत्यु का समाचार सुनने की अपेक्षा अधिक दुःख का समाचार मेरे लिए और क्या हो सकता है ? ॥४५।४८॥ शत्रुवीरदलन क्षत्रियकुल-नाशकारी परशुरामजी के हाथ से भी जो पितामह नहीं मरे, वही आज शिखण्डी के हाथ से मारे गये! इससे जान पड़ता है कि शिखण्डी तेज और बल में परशुरामजी से भी बढ़कर है। उसने जब दिव्य अस्त्रों के ज्ञाता महावीर भरतश्रेष्ठ भीष्म को मारा था तब कौन-कौन वीर उसके साथ थे ? ॥४९।५२॥ हे सञ्जय! पाण्डवों के साथ भीष्म ने जैसा युद्ध किया सो मुझसे

घातयित्वा महावीर्यं पितरं लोकधार्मिकम् ।
अगाधे सलिले मग्नां नावं दृष्ट्वेव पारगाः ॥ ५६ ॥
भीष्मे हते भृशं दुःखान्मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ।
अद्रिसारमयं नूनं हृदयं मम सञ्जय ॥ ५७ ॥
यच्छ्रुत्वा पुरुषव्याघ्रं हतं भीष्मं न दीर्यते ।
यस्मिन्नस्त्राणि मेधा च नीतिश्च पुरुषर्षभे ॥ ५८ ॥
अप्रमेयाणि दुर्धर्षे कथं स निहतो युधि ।
न चाऽस्त्रेण न शौर्येण तपसा मेधया न च ॥ ५९ ॥
न धृत्या न पुनस्त्यागान्मृत्योः कश्चिद्विमुच्यते ।
कालो नूनं महावीर्यः सर्वलोकदुरत्ययः ॥ ६० ॥
यत्र शान्तनवं भीष्मं हतं शंससि सञ्जय ।
पुत्रशोकाभिसन्तप्तो महद्दुःखमचिन्तयम् ॥ ६१ ॥
आशंसेऽहं परं त्राणं भीष्माच्छान्तनुनन्दनात् ।
यदाऽऽदित्यमिवाऽपश्यत्पतितं भुवि सञ्जय ॥ ६२ ॥
दुर्योधनः शान्तनवं किं तदा प्रत्यपद्यत ।
नाऽहं स्वेषां परेषां वा बुद्ध्या सञ्जय चिन्तयन् ॥ ६३ ॥
शेषं किञ्चित्प्रपश्यामि प्रत्यनीके महीक्षिताम् ।
दारुणः क्षत्रधर्मोऽयमृषिभिः सम्प्रदर्शितः ॥ ६४ ॥

कहो। इस समय मेरे पुत्र की सारी सेना अनाथ विधवा की तरह, रक्षकहीन गो-कुल की तरह, बहुत ही व्याकुल हो गई होगी। युद्धकाल में सब वीरों को जिनके बाहुबल का भरोसा था उन भीष्म को परलोकवासी हुआ सुनकर मेरा हृदय व्याकुल हो रहा है ॥५३।५५॥ उन महावीर भीष्म के जीवनकाल में हम कैसे समर्थ और शक्तिशाली थे! अगाध जल में नाव के डूब जाने पर पार जाने की इच्छा रखनेवाले लोग जैसे दुःखित होते हैं, भीष्म के मरने से वैसे ही खिन्न और दुःखित मेरे पुत्र हो रहे होंगे। हे संजय! पुरुषश्रेष्ठ भीष्म के मरने की सूचना सुनकर भी मेरा हृदय नहीं फटता, इसलिए उसे अवश्य ही पत्थर का कहना चाहिए। अस्त्रविद्या, मेधा और नीतिज्ञान में अप्रमेय भीष्म युद्ध में कैसे मारे गये? ॥५६।६०॥ हे संजय! भीष्म को भी समर में मरा हुआ सुनकर मुझे निश्चय हो गया कि कोई अस्त्रविद्या, शौर्य, तप, मेधा या धृति के द्वारा मृत्यु के हाथ से बच नहीं सकता। महावीर्यशाली दुरतिक्रम काल सभी को ग्रस लेता है। मैं पुत्र-शोक से अत्यन्त सन्तप्त होने पर भी आनेवाले महान् दुःख का उपाय न करके भीष्म के द्वारा अपने पक्ष के बचाव की आशा किये हुए था। मुझे भीष्म का बड़ा निश्चय था। हे संजय! दुर्योधन ने जब भीष्म को सूर्य की तरह पृथ्वी पर गिरे देखा तब उसने क्या

यत्र शान्तनवं हत्वा राज्यमिच्छन्ति पाण्डवाः ।
वयं वा राज्यमिच्छामो घातयित्वा महाव्रतम् ॥ ६५ ॥
क्षत्रधर्मे स्थिताः पार्था नाऽपराध्यन्ति पुत्रकाः ।
एतदार्येण कर्तव्यं कृच्छ्रास्वापत्सु सञ्जय ॥ ६६ ॥
पराक्रमः परा शक्तिस्तत्तु तस्मिन्प्रतिष्ठितम् ।
अनीकानि विनिघ्नन्तं ह्रीमन्तमपराजितम् ॥ ६७ ॥
कथं शान्तनवं तातं पाण्डुपुत्रा न्यवारयन् ।
यथा युक्तान्यनीकानि कथं युद्धं महात्मभिः ॥ ६८ ॥
कथं वा निहतो भीष्मः पिता सञ्जय मे परैः ।
दुर्योधनश्च कर्णश्च शकुनिश्चापि सौबलः ॥ ६९ ॥
दुःशासनश्च कितवो हते भीष्मे किमब्रुवन् ।
यच्छरीरैरुपास्तीर्णां नरवारणवाजिनाम् ॥ ७० ॥
शरशक्तिमहाखड्गतोमराक्षां महाभयाम् ।
प्राविशन्कितवा मन्दाः सभां युद्धदुरासदाम् ॥ ७१ ॥
प्राणद्यूते प्रतिभये केऽदीव्यन्त नरर्षभाः ।
के जीयन्ते जितास्तत्र कृतलक्ष्या निपातिताः ॥ ७२ ॥
अन्ये भीष्माच्छान्तनवात्तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ।
न हि मे शान्तिरस्तीह श्रुत्वा देवव्रतं हतम् ॥ ७३ ॥

कहा ! ॥६०।६३॥ मुझे जान पड़ता है कि इस युद्ध में दोनों पक्षों के राजाओं की सेना न बचेगी। ऋषियों ने क्षत्रिय-धर्म बड़ा कठोर बनाया है। क्योंकि उसी क्षत्रिय-धर्म के अनुसार पाण्डव लोग भीष्म को मारकर राज्य प्राप्त करने की इच्छा करते हैं; अथवा यों कहो कि हम लोग ही महाव्रती भीष्म की हत्या कराकर राज्य करने की इच्छा करते हैं ॥६४।६५॥ पाण्डवों ने तो क्षत्रिय-धर्म का पालन मात्र किया है, उनका कुछ अपराध नहीं। कष्ट-समय अर्थात् आपत्काल में आर्य को यही करना चाहिए। पराक्रम ही परम शक्ति है। भीष्मजी महापराक्रमी थे। उन महापराक्रमी, धीमान्, अपराजित और शत्रुसेना को मारनेवाले भीष्म को पाण्डवों ने किस तरह रोका ? किस तरह उन पर आक्रमण किया ? उस समय सब सेना किस तरह संयुक्त हुई थी ? नामी वीरों ने परस्पर किस तरह युद्ध किया ? ॥६६।६८॥ कुरुपितामह भीष्म को शत्रुओं ने किस तरह मारा ? भीष्म के मरने पर दुर्योधन, कर्ण, दुःशासन और मायावी शकुनि ने क्या कहा ? जिस भयङ्कर युद्ध-सभा में मनुष्यों, हाथियों और घोड़ों के शरीर चौसर की बिसात की तरह बिछे थे, बाण शक्ति महाखड्ग तोमर आदि शस्त्र पासे के समान थे और प्राणों की बाज़ी लगी थी, उसमें पुरुषश्रेष्ठ भीष्म के सिवा और किन युद्धविशारद क्षत्रियों ने क्रीड़ा की थी ? उनमें कौन जीते,

पितरं भीमकर्माणं भीष्ममाहवशोभिनम् ।
आर्तिं मे हृदये रूढां महतीं पुत्रहानिजाम् ॥ ७४ ॥
त्वं हि मे सर्पिषेवाऽग्निमुद्दीपयसि सञ्जय ।
महान्तं भारमुद्यम्य विश्रुतं सार्वलौकिकम् ॥ ७५ ॥
दृष्ट्वा विनिहतं भीष्मं मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ।
श्रोष्यामि तानि दुःखानि दुर्योधनकृतान्यहम् ॥ ७६ ॥
तस्मान्मे सर्वमाचक्ष्व यद्वृत्तं तत्र सञ्जय ।
यद्वृत्तं तत्र संग्रामे मन्दस्याऽबुद्धिसम्भवम् ॥ ७७ ॥
अपनीतं सुनीतं यत्तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ।
यत्कृतं तत्र संग्रामे भीष्मेण जयमिच्छता ॥ ७८ ॥
तेजोयुक्तं कृतास्त्रेण शंस तच्चाऽप्यशेषतः ।
तथा तदभवद्युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः ॥ ७९ ॥
क्रमेण येन यस्मिंश्च काले यच्च यथाऽभवत् ॥ ८० ॥

इति श्रीमन्महाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि धृतराष्ट्रप्रश्ने चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

कौन हारे और कौन मरकर गिरे ? ये सब बातें मेरे आगे कहो ॥६९।७३॥ युद्धभूमि के आभूषण-स्वरूप भीमकर्मा भीष्म के मरने की सूचना सुनकर मेरे हृदय में अशान्ति की अग्नि सुलग उठी है । मेरे हृदय में जो पुत्रों की हानि की अग्नि उठी है उसे मानों घी डालकर तुम प्रज्वलित कर रहे हो । सब लोकों में प्रसिद्ध जिन महापुरुष भीष्म ने सेनापति-पद का भारी बोझ अपने सिर पर लिया था उन्हें मरा हुआ देखकर जिस तरह मेरे पुत्रों ने पश्चाताप किया, सो मुझे सुनाओ । उस घोर संग्राम में जो घटनाएँ हुई हैं, वे मेरे आगे कहो । दुरात्मा दुर्योधन की बुद्धि के कारण जो नीतिसङ्गत या अनीतिपूर्ण घटनाएँ हुई हैं, जय-लाभ की इच्छा रखनेवाले अस्त्रधारी भीष्म ने जो-जो तेजस्विता के कार्य किये हैं और कौरव-पाण्डवों की सेना में जिसने जिससे जैसा युद्ध किया है, सो सब मेरे आगे विस्तार के साथ कहो ॥७४।८०॥

भीष्मपर्व का चौदहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

सञ्जय उवाच—त्वद्युक्तोऽयमनुप्रश्नो महाराज यथाऽर्हसि ।
न तु दुर्योधने दोषमिममासंक्तुमर्हसि ॥ १ ॥
य आत्मनो दुश्चरितादशुभं प्राप्नुयान्नरः ।
एनसा तेन नाऽन्यं स उपाशङ्कितुमर्हति ॥ २ ॥

पन्द्रहवाँ अध्याय ॥ १५ ॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! आपने अपने योग्य ही प्रश्न किये; किन्तु इस कुफल के लिए केवल दुर्योधन के सिर पर दोष की गठरी लादना ठीक नहीं । जो मनुष्य अपने दोषों के कारण अशुभ

महाराज मनुष्येषु निन्द्यं यः सर्वमाचरेत् ।
स वध्यः सर्वलोकस्य निन्दितानि समाचरन् ॥ ३ ॥
निकारो निकृतिप्रज्ञैः पाण्डवैस्त्वत्प्रतीक्षया ।
अनुभूतः सहाऽमात्यैः क्षान्तश्च सुचिरं वने ॥ ४ ॥
हयानां च गजानां च राज्ञां चाऽमिततेजसाम् ।
प्रत्यक्षं यन्मया दृष्टं दृष्टं योगबलेन च ॥ ५ ॥
शृणु तत्पृथिवीपाल मा च शोके मनः कृथाः ।
दिष्टमेतत्पुरा नूनमिदमेव नराधिप ॥ ६ ॥
नमस्कृत्वा पितुस्तेऽहं पाराशर्याय धीमते ।
यस्य प्रसादाद्दिव्यं तत्प्राप्तं ज्ञानमनुत्तमम् ॥ ७ ॥
दृष्टिश्चाऽतीन्द्रिया राजन्दूराच्छ्रवणमेव च ।
परचित्तस्य विज्ञानमतीतानागतस्य च ॥ ८ ॥
व्युत्थितोत्पत्तिविज्ञानमाकाशे च गतिः शुभा ।
अस्त्रैरसङ्गो युद्धेषु वरदानान्महात्मनः ॥ ९ ॥
शृणु मे विस्तरेणेदं विचित्रं परमाद्भुतम् ।
भरतानामभूद्युद्धं यथा तल्लोमहर्षणम् ॥ १० ॥
तेष्वनीकेषु यत्तेषु व्यूढेषु च विधानतः ।
दुर्योधनो महाराज दुःशासनमथाऽब्रवीत् ॥ ११ ॥
दुःशासन रथास्तूर्णं युज्यन्तां भीष्मरक्षिणः ।

फल भोगना है उसका, और के ऊपर उस पाप की आशङ्का करना अनुचित है। हे राजेन्द्र ! जो व्यक्ति मनुष्य-समाज में निन्दनीय व्यवहार करता है, वह सबका वध्य है। आपकी और आपके मन्त्रियों की धूर्तता को बुद्धिमान् पाण्डव अच्छी तरह जानते हैं; किन्तु केवल आपका ही मुख देखकर वे बहुत समय तक वन में रहे और सब दुःख सहते रहे ॥३।४॥ हे राजेन्द्र ! मैंने प्रत्यक्ष और योगबल से हाथी, घोड़े, राजा आदि का जो हाल देखा है सो सुनिए। वृथा शोक न कीजिए। हे नराधिप ! इस समय जो हो रहा है सो मैं पहले से ही योगदृष्टि से देख चुका हूँ ॥५।६॥ मैंने जिनके प्रभाव से दिव्य ज्ञान, अतीन्द्रिय दृष्टि, परचित्त-विज्ञान, आकाशगति, दूर-श्रवण, शास्त्रबहिर्भूत व्यक्तियों की उत्पत्ति का ज्ञान और त्रिकाल का ज्ञान प्राप्त किया है उन्हीं महात्मा व्यासदेव के वरदान से अस्त्र-शस्त्र मेरे शरीर को स्पर्श नहीं कर सकते। अब उन्हीं आपके पिता बुद्धिमान् व्यासदेवजी को प्रणाम करके कौरवों और पाण्डवों के अद्भुत रोमहर्षण युद्ध का वृत्तान्त वर्णन करता हूँ सुनिए। ॥७।१०॥ हे महाराज ! दोनों ओर की सेनाएँ जब मोर्चेबन्दी करके अपने-अपने स्थान में युद्ध के लिए उद्यत हुईं तब दुर्योधन ने

अनीकानि च सर्वाणि शीघ्रं त्वमनुचोदय ॥ १२ ॥
अयं स मामभिप्राप्तो वर्षपूगाभिचिन्तितः ।
पाण्डवानां ससैन्यानां कुरूणां च समागमः ॥ १३ ॥
नाऽतः कार्यतमं मन्ये रणे भीष्मस्य रक्षणात् ।
हन्यादगुप्तो ह्यसौ पार्थान्सोमकांश्च ससृञ्जयान् ॥ १४ ॥
अब्रवीच्च विशुद्धात्मा नाऽहं हन्यां शिखण्डिनम्।
श्रूयते स्त्री ह्यसौ पूर्वं तस्माद्वर्ज्यो रणे मम ॥ १५ ॥
तस्माद्भीष्मो रक्षितव्यो विशेषेणेति मे मतिः ।
शिखण्डिनो वधे यत्ताः सर्वे तिष्ठन्तु मामकाः ॥ १६ ॥
तथा प्राच्याः प्रतीच्याश्च दाक्षिणात्योत्तरापथाः ।
सर्वथाऽस्त्रेषु कुशलास्ते रक्षन्तु पितामहम् ॥ १७ ॥
अरक्ष्यमाणं हि वृको हन्यात्सिंहं महाबलम् ।
मा सिंहं जम्बुकेनेव घातयामः शिखण्डिना ॥ १८ ॥
वामं चक्रं युधामन्युरुत्तमौजाश्च दक्षिणम् ।
गोप्तारौ फाल्गुनं प्राप्तौ फाल्गुनोऽपि शिखण्डिनाः ॥ १९ ॥
संरक्ष्यमाणः पार्थेन भीष्मेण च विवर्जितः ।
यथा न हन्याद्गाङ्गेयं दुःशासन तथा कुरु ॥ २० ॥

इति श्रीमन्महाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि दुर्योधनदुःशासनसंवादे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

कहा—हे दुःशासन ! तुम भीष्म पितामह की रक्षा के लिए शीघ्र रथों को तैयार कराओ; सेना को सुसज्जित और सावधान होने की आज्ञा दो । बहुत दिनों से मैंने सेना सहित कौरवों और पाण्डवों की जिस भिड़न्त को सोच रक्खा था वह आज उपस्थित है । इस युद्ध में महारथी भीष्म की रक्षा करना ही हमारा प्रधान कार्य है । सुरक्षित रहने पर वे पाण्डव, सोमक और सृञ्जय आदि का विनाश अवश्य कर सकेंगे ॥११।१४॥ विशुद्ध-स्वभाव भीष्म ने यह प्रतिज्ञा की है कि "मैं युद्ध में शिखण्डी पर वार नहीं करूँगा । मैंने सुना है कि शिखण्डी पहले स्त्री था; इसी लिए युद्ध में शिखण्डी को मैं नहीं मारूँगा" । पितामह की इस प्रतिज्ञा के कारण मेरे पक्ष के सब वीर मिलकर उनकी रक्षा और शिखण्डी को मारने का प्रयत्न करें । पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर दिशा से आये हुए सब वीर, सब अस्त्र-कुशल योद्धा, पितामह की रक्षा करें । महाबली सिंह भी अरक्षित दशा में तुच्छ भेड़िये के हाथ मारा जा सकता है । इस समय हमें यह यत्न करना चाहिए कि सिंहरूप भीष्म को शृगालरूप शिखण्डी मार न सके । देखो, युद्धस्थल में अर्जुन शिखण्डी की रक्षा कर रहे हैं । युधामन्यु अर्जुन के बायें पहिये की और उत्तमौजा उनके दहिने पहिये की रक्षा कर रहे हैं । इस समय ऐसा उपाय करो जिसमें पितामह के द्वारा उपेक्षित, और अर्जुन के द्वारा सुरक्षित, शिखण्डी भीष्म को मार न सके ॥१५।२०॥

भीष्मपर्व का पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १५ ॥

अथ षोडशोऽध्याय ॥ १६ ॥

सञ्जय उवाच—ततो रजन्यां व्युष्टायां शब्दः समभवन्महान् ।
क्रोशतां भूमिपालानां युज्यतां युज्यतामिति ॥ १ ॥
शङ्खदुन्दुभिघोषैश्च सिंहनादैश्च भारत ।
हयहेषितनादैश्च रथनेमिस्वनैस्तथा ॥ २ ॥
गजानां बृंहतां चैव योधानां चापि गर्जताम् ।
क्ष्वेलितास्फोटितोत्क्रुष्टैस्तुमुलं सर्वतोऽभवत् ॥ ३ ॥
उदतिष्ठन्महाराज सर्वं युक्तमशेषतः ।
सूर्योदये महत्सैन्यं कुरुपाण्डवसेनयोः ॥ ४ ॥
राजेन्द्र तव पुत्राणां पाण्डवानां तथैव च ।
दुष्प्रधृष्याणि चाऽस्त्राणि सशस्त्रकवचानि च ॥ ५ ॥
ततः प्रकाशे सैन्यानि समदृश्यन्त भारत ।
त्वदीयानां परेषां च शस्त्रवन्ति महान्ति च ॥ ६ ॥
तत्र नागा रथाश्चैव जाम्बूनदपरिष्कृताः ।
विभ्राजमाना दृश्यन्ते मेघा इव सविद्युतः ॥ ७ ॥
रथानीकान्यदृश्यन्त नगराणीव भूरिशः ।
अतीव शुशुभे तत्र पिता ते पूर्णचन्द्रवत् ॥ ८ ॥
धनुर्भिर्ऋष्टिभिः खड्गैर्गदाभिः शक्तितोमरैः ।
योधाः प्रहरणैः शुभ्रैस्तेष्वनीकेष्ववस्थिताः ॥ ९ ॥
गजाः पदाता रथिनस्तुरगाश्च विशांपते ।
व्यतिष्ठन्वागुराकाराः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १० ॥

सोलहवाँ अध्याय ॥ १६ ॥

सजय कहते हैं—हे राजेन्द्र ! रात्रि व्यतीत होने पर राजाओं के "तैयार हो जाओ, तैयार हो जाओ" इस शब्द से, शङ्खों और दुन्दुभियों की ध्वनि से, सैनिकों के सिंहनाद से और रथों के पहियों की घरघराहट से दसों दिशाएँ प्रतिध्वनित हो उठीं। घोड़ों के हिनहिनाने से, हाथियों के चिग्घाड़ने से, योद्धाओं के गम्भीर गर्जन और खम ठोकने के शब्द से दसों दिशाएँ भर गईं ॥१।३॥ सूर्योदय के उपरान्त दोनों पक्ष की सेना दुर्द्धर्ष अस्त्र-शस्त्र और कवच आदि से सन्नद्ध होकर युद्ध के मैदान में डट गई। युद्ध-भूमि में सुवर्ण-शोभित हाथी दामिनीयुक्त मेघों के समान, सैनिकों से घिरे हुए रथ विविध नगरों के समान और पितामह भीष्म पूर्णचन्द्र के समान शोभायमान हुए। धनुष, ऋष्टि, खड्ग, गदा, तोमर और अन्यान्य चमकीले शस्त्र धारण किये योद्धा, लाखों हाथी, रथी, घोड़े और पैदल सिपाही मण्डल

ध्वजा बहुविधाकारा व्यदृश्यन्त समुच्छ्रिताः ।
स्वेषां चैव परेषां च द्युतिमन्तः सहस्रशः ॥ ११ ॥
काञ्चना मणिचित्राङ्गा ज्वलन्त इव पावकाः ।
अर्चिष्मन्तो व्यरोचन्त गजारोहाः सहस्रशः ॥ १२ ॥
महेन्द्रकेतवः शुभ्रा महेन्द्रसदनेष्विव ।
सन्नद्धास्ते प्रवीराश्च ददृशुर्युद्धकांक्षिणः ॥ १३ ॥
उद्यतैरायुधैश्चित्रास्तलबद्धाः कलापिनः ।
ऋषभाक्षा मनुष्येन्द्राश्चमूमुखगता बभुः ॥ १४ ॥
शकुनिः सौबलः शल्य आवन्त्योऽथ जयद्रथः ।
विन्दानुविन्दौ कैकेयाः काम्बोजश्च सुदक्षिणः ॥ १५ ॥
श्रुतायुधश्च कालिङ्गो जयत्सेनश्च पार्थिवः ।
बृहद्बलश्च कौशल्यः कृतवर्मा च सात्वतः ॥ १६ ॥
दशैते पुरुषव्याघ्राः शूराः परिघबाहवः ।
अक्षौहिणीनां पतयो यज्वानो भूरिदक्षिणाः ॥ १७ ॥
एते चाऽन्ये च बहवो दुर्योधनवशानुगाः ।
राजानो राजपुत्राश्च नीतिमन्तो महारथाः ॥ १८ ॥
सन्नद्धाः समदृश्यन्त स्वेष्वनीकेष्ववस्थिताः ।
बद्धकृष्णाजिनाः सर्वे बलिनो युद्धशालिनः ॥ १९ ॥
हृष्टा दुर्योधनस्याऽर्थे ब्रह्मलोकाय दीक्षिताः ।
समर्था दश वाहिन्यः परिगृह्य व्यवस्थिताः ॥ २० ॥

बाँधकर खड़े हुए ॥४।१०॥ विविध आकार की ध्वजाएँ फहरा रही थीं। दोनों ओर की मणि-सुवर्ण-मण्डित हज़ारों ध्वजाएँ जलती हुई अग्नि के समान और अमरावती में स्थित इन्द्र की पताका के समान शोभित हुईं। युद्ध की इच्छा रखनेवाले वीर, अस्त्र-शस्त्र लिये, उत्सुकता के साथ उन पताकाओं की शोभा देख रहे थे ॥११।१३॥ प्रधान योद्धा लोग कवच, शस्त्र, तल, तूणीर आदि से सज्जित होकर सेना के अगले भाग में खड़े हुए थे। सुबल के बेटे शकुनि, शल्य, जयद्रथ, अवन्ति के राजा विन्द और अनुविन्द, केकय-गण, काम्बोजराज सुदक्षिण, कलिङ्ग-राज श्रुतायुध, राजा जयत्सेन, बृहद्बल और कृतवर्मा यादव, ये बड़ी-बड़ी दक्षिणा देकर यज्ञ करनेवाले, परिघतुल्य भुजदण्डवाले पुरुषश्रेष्ठ दस राजा आपकी ओर दस अक्षौहिणी सेना के नायक बनाये गये ॥१४।१७॥ इनके अतिरिक्त दुर्योधन के वशवर्ती नीति-विशारद अनेक राजा तथा राजपुत्र अपनी-अपनी सेना लिये वहाँ उपस्थित देख पड़े। वे सब मनोहर माला पहने, कृष्णाजिन-शोभित, ब्रह्मलोक जाने की दीक्षा लिये हुए प्रसन्नचित होकर दस

एकादशी धार्त्तराष्ट्री कौरवाणां महाचमूः ।
अग्रतः सर्वसैन्यानां यत्र शान्तनवोऽग्रणीः ॥ २१ ॥
श्वेतोष्णीषं श्वेतहयं श्वेतवर्माणमच्युतम् ।
अपश्याम महाराज भीष्मं चन्द्रमिवोदितम् ॥ २२ ॥
हेमतालध्वजं भीष्मं राजते स्यन्दने स्थितम् ।
श्वेताभ्र इव तीक्ष्णांशुं ददृशुः कुरुपाण्डवाः ॥ २३ ॥
सृञ्जयाश्च महेष्वासा धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ।
जृम्भमाणं महासिंहं दृष्ट्वा क्षुद्रमृगा यथा ॥ २४ ॥
धृष्टद्युम्नमुखाः सर्वे समुद्विविजिरे मुहुः ।
एकादशैताः श्रीजुष्टा वाहिन्यस्तव पार्थिव ॥ २५ ॥
पाण्डवानां तथा सप्त महापुरुषपालिताः ।
उन्मत्तमकरावर्तौ महाग्राहसमाकुलौ ॥ २६ ॥
युगान्ते समवेतौ द्वौ दृश्येते सागराविव ।
नैव नस्तादृशो राजन्दृष्टपूर्वो न च श्रुतः ।
अनीकानां समेतानां कौरवाणां तथाविधः ॥ २७ ॥

इति श्रीमन्महाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि सैन्यवर्णने षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

अक्षौहिणी सेना के साथ युद्धभूमि में खड़े थे ॥१८।२०॥ इनके अतिरिक्त पितामह भीष्म की अधिनायकता में दुर्योधन की एक अक्षौहिणी सेना खड़ी हुई। हे राजेन्द्र! महारथी भीष्म श्वेत पगड़ी और श्वेत कवच धारण किये श्वेत घोड़ों से शोभित रथ पर पूर्ण चन्द्रमा के समान विराजमान हुए। तालचिह्न-युक्त ध्वजा से शोभित रजतमय रथ पर चढ़े हुए, श्वेत मेघ के बीच स्थित चन्द्रमा के समान, पितामह भीष्म को दोनों पक्ष के योद्धा देखने लगे ॥२१।२३॥ भीष्म को सेनापति के रूप से सेना के अग्रभाग में देखकर धृष्टद्युम्न आदि सृञ्जय और पाण्डव व्याकुल हो गये। सिंह को देखकर जैसे क्षुद्र मृग व्याकुल हो जाते हैं वैसे ही धृष्टद्युम्न आदि सृञ्जय-गण भीष्म को देखकर चिन्तित हो गये। हे महाराज! जैसे आपके पक्ष की समृद्धि-सम्पन्न ग्यारह अक्षौहिणी सेना प्रधान-प्रधान पुरुषों के द्वारा रक्षित थी, वैसे ही पाण्डव-पक्ष की सात अक्षौहिणी सेना भी प्रधान पुरुषों के बाहुबल से सुरक्षित थी। हे राजेन्द्र! दोनों पक्ष की सेना उन्मत्त मकरवृन्दयुक्त, महाग्राहपरिवृत, युगान्तकाल के क्षोभ को पहुँचे हुए दो महासागरों के समान देख पड़ रही थी। हे राजेन्द्र! मैंने कौरवों की इतनी बड़ी सेना एकत्र होते कभी न तो देखी है और न सुनी है ॥२४।२७॥

—०—

भीष्मपर्व का सोलहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १६ ॥



अथ सप्तदशो अध्याय ॥ १७ ॥

सञ्जय उवाच;—यथा स भगवान्व्यासः कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत् ।
तथैव सहिताः सर्वे समाजग्मुर्महीक्षितः ॥ १ ॥
मघाविषयगः सोमस्तद्दिनं प्रत्यपद्यत ।
दीप्यमानाश्च सम्पेतुर्दिवि सप्त महाग्रहाः ॥ २ ॥
द्विधाभूत इवाऽऽदित्य उदये प्रत्यदृश्यत ।
ज्वलन्त्या शिखया भूयो भानुमानुदितो रविः ॥ ३ ॥
ववाशिरे च दीप्तायां दिशि गोमायुवायसाः ।
लिप्समानाः शरीराणि मांसशोणितभोजनाः ॥ ४ ॥
अहन्यहनि पार्थानां वृद्धः कुरुपितामहः ।
भरद्वाजात्मजश्चैव प्रातरुत्थाय संयतो ॥ ५ ॥
जयोऽस्तु पाण्डुपुत्राणामित्यूचतुररिन्दमौ ।
युयुधाते तवाऽर्थाय यथा स समयः कृतः ॥ ६ ॥
सर्वधर्मविशेषज्ञः पिता देवव्रतस्तव ।
समानीय महीपालानिदं वचनमब्रवीत् ॥ ७ ॥
इदं वः क्षत्रिया द्वारं स्वर्गायाऽपावृतं महत् ।
गच्छध्वं तेन शक्रस्य ब्रह्मणः सहलोकताम् ॥ ८ ॥
एष वः शाश्वतः पन्थाः पूर्वैः पूर्वतरैः कृतः ।
सम्भावयध्वमात्मानमव्यग्रमनसो युधि ॥ ९ ॥
नाभागोऽथ ययातिश्च मान्धाता नहुषो नृगः ।
संसिद्धाः परमं स्थानं गताः कर्मभिरीदृशैः ॥ १० ॥

सत्रहवाँ अध्याय ॥ १७ ॥

संजय ने कहा—हे महाराज ! व्यासजी ने जो कहा था उसी के अनुसार सब राजा लोग एकत्र होकर युद्ध के लिए आये। उस दिन चन्द्रमा पितृ-लोक के निकटवर्ती हुए। सातों महाग्रह अग्नि के समान प्रज्वलित होकर आकाश में देख पड़े। उदय होने पर सूर्यमण्डल प्रज्वलित ज्वालाओं से युक्त और बीच से दो टुकड़े हुआ सा देख पड़ा ॥१।३॥ मांस और रक्त खाने-पीनेवाले सियारों और कौओं के झुण्ड मुर्दों और घायलों का मांस खाने के लिए उत्सुकता दिखाते हुए, दिग्दाह-युक्त दिशा की ओर मुख करके घोर अशुभ शब्द करने लगे। पितामह भीष्म और आचार्य द्रोण नित्य प्रातः उठकर शुद्ध-चित्त से जय तो पाण्डवों की मनाते थे, किन्तु अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार आपकी ओर से पाण्डवों के साथ युद्ध करते थे ॥४।६॥ पितामह ने पहले सब राजाओं को बुला-कर कहा—हे नरपतियो ! क्षत्रिय के लिए स्वर्ग जाने

अधर्मः क्षत्रियस्यैष यद्व्याधिमरणं गृहे ।
यदयोनिधनं याति सोऽस्य धर्मः सनातनः ॥ ११ ॥
एवमुक्ता महीपाला भीष्मेण भरतर्षभ ।
निर्ययुः स्वान्यनीकानि शोभयन्तो रथोत्तमैः ॥ १२ ॥
स तु वैकर्त्तनः कर्णः सामात्यः सह बन्धुभिः ।
न्यासितः समरे शस्त्रं भीष्मेण भरतर्षभ ॥ १३ ॥
अपेतकर्णाः पुत्रास्ते राजानश्चैव तावकाः ।
निर्ययुः सिंहनादेन नादयन्तो दिशो दश ॥ १४ ॥
श्वेतैश्छत्रैः पताकाभिर्ध्वजवारणवाजिभिः ।
तान्यनीकानि शोभन्ते गजै रथपदातिभिः ॥ १५ ॥
भेरीपणवशब्दैश्च दुन्दुभीनां च निःस्वनै ।
रथनेमिनिनादैश्च बभूवाऽऽकुलिता मही ॥ १६ ॥
काञ्चनाङ्गदकेयूरैः कार्मुकैश्च महारथाः ।
भ्राजमाना व्यराजन्त साग्नयः पर्वता इव ॥ १७ ॥
तालेन महता भीष्मः पञ्चतारेण केतुना ।
विमलादित्यसङ्काशस्तस्थौ कुरुचमूपरि ॥ १८ ॥
ये त्वदीया महेष्वासा राजानो भरतर्षभ ।
अवर्त्तन्त यथादेशं राजञ्शान्तनवस्य ते ॥ १९ ॥

की खुली राह संग्राम ही है। उसी द्वार से तुम लोग इन्द्रलोक और ब्रह्मलोक को जाओ। नाभाग, ययाति, मान्धाता, नहुष नृग आदि प्राचीन राजा लोग इसी तरह के कार्य से सिद्धि प्राप्त करके उक्त परम पवित्र स्थानों को गये हैं ॥७।१०॥ रोगी होकर घर में पड़े-पड़े मरना क्षत्रिय के लिए अधर्म है। युद्ध में प्राणत्याग करना ही क्षत्रिय का सनातन धर्म है। हे महाराज! भीष्म के यों कहने पर राजा लोग उत्तम-उत्तम रथों पर सवार हो-होकर अपनी-अपनी सेना के अगले भाग में आ गये। उस समय उनकी बड़ी शोभा हुई। केवल कर्ण अपने सहचरों और मित्रों के साथ युद्ध-भूमि की ओर नहीं गये। भीष्म से उनकी कहा-सुनी हो चुकी थी, और भीष्म के जीते-जी युद्ध न करने की प्रतिज्ञा वे कर चुके थे। कर्ण के सिवा अन्य सब राजा और आपके सब पुत्र सिंहनाद से दसों दिशाओं को कँपाते हुए युद्ध के लिए खड़े हुए ॥११।१४॥ श्वेत छत्र, पताका, ध्वजा, हाथी, घोड़े, रथ, पैदल आदि के द्वारा सेना की बड़ी शोभा हुई। भेरी, पणव, दुन्दुभि और रथों के पहियों का शब्द गूँज उठा। सुवर्ण के बजुल्ले पहने हुए महारथी लोग अग्नियुक्त पर्वत के समान शोभायमान हुए। कौरवसेना के अधिपति पितामह भीष्म पञ्चतारामण्डित महातालकेतु-युक्त आदित्यवर्ण रथ पर सूर्य के समान शोभा को प्राप्त हुए ॥१५।

स तु गोवासनः शैब्यः सहितः सर्वराजभिः ।
ययौ मातङ्गराजेन राजार्हेण पताकिना ।
पद्मवर्णस्त्वनीकानां सर्वेषामग्रतः स्थितः ॥ २० ॥
अश्वत्थामा ययौ यत्तः सिंहलांगूलकेतुना ।
श्रुतायुधश्चित्रसेनः पुरुमित्रो विविंशतिः ॥ २१ ॥
शल्यो भूरिश्रवाश्चैव विकर्णश्च महारथः ।
एते सप्त महेष्वासा द्रोणपुत्रपुरोगमाः ॥ २२ ॥
स्यन्दनैर्वरवर्माणो भीष्मस्याऽऽसन्पुरोगमाः ।
तेषामपि महोत्सेधाः शोभयन्तो रथोत्तमान् ॥ २३ ॥
भ्राजमाना व्यरोचन्त जाम्बूनदमया ध्वजाः ।
जाम्बूनदमयी वेदी कमण्डलुविभूषिता ॥ २४ ॥
केतुराचार्यमुख्यस्य द्रोणस्य धनुषा सह ।
अनेकशतसाहस्रमनीकमनुकर्षतः ॥ २५ ॥
महान्दुर्योधनस्याऽऽसीन्नागो मणिमयो ध्वजः ।
तस्य पौरवकालिङ्गकाम्बोजाः ससुदक्षिणाः ॥ २६ ॥
क्षेमधन्वा च शल्यश्च तस्थुः प्रमुखतो रथाः ।
स्यन्दनेन महार्हेण केतुना वृषभेण च ।
प्रकर्षन्नेव सेनाग्रं मागधस्य कृपो ययौ ॥ २७ ॥
तदङ्गपतिना गुप्तं कृपेण च मनस्विना ।
शारदाम्बुधरप्रख्यं प्राच्यानां सुमहद्बलम् ॥ २८ ॥

१८॥ हे राजेन्द्र ! आपके पक्ष के राजा लोग भीष्म के चारों ओर अपनी-अपनी जगह पर तैनात हो गये । गोवासन देश के महाराज शैब्य, राजोचित पताका से शोभित गजराज पर सवार होकर, अपने अधीन राजाओं के साथ युद्ध के लिए चले । पद्मवर्ण अश्वत्थामा रथ पर सवार होकर सबके आगे चलने लगे । उनकी पताका में सिंह की पूँछ का चिह्न था। श्रुतायुध, चित्रसेन, पुरुमित्र, विविंशति, शल्य, भूरिश्रवा और विकर्ण, ये सात महाधनुर्धर योद्धा श्रेष्ठ कवच पहनकर अश्वत्थामा और भीष्म के आगे-आगे चले । उनकी सुवर्णदण्ड-मण्डित ऊँची ध्वजाएँ रथों पर फहरा रही थीं ॥१९।२४॥ आचार्य-प्रधान द्रोण की ध्वजा सुवर्णमय वेदी, कमण्डलु और धनुष के चिह्न से युक्त देख पड़ती थी। विपुल सेना का सञ्चालन करनेवाले दुर्योधन की ध्वजा में मणिमय नाग का चिह्न था । दुर्योधन के आगे पौरव, कलिङ्गराज, काम्बोजराज सुदक्षिण, महाबली क्षेमधन्वा और शल्य चले । मगध-नरेश वृषध्वज महामूल्य रथ पर सवार होकर शरद् ऋतु के मेघ के समान पूर्व दिशा की सेना के आगे-आगे शत्रु-सेना के सामने आये ॥२५।२७॥

अनीकप्रमुखे तिष्ठन्वराहेण महायशाः ।
शुशुभे केतुमुख्येन राजतेन जयद्रथः ॥ २९ ॥
शतं रथसहस्राणां तस्याऽऽसन्वशवर्त्तिनः ।
अष्टौ नागसहस्राणि सादिनामयुतानि षट् ॥ ३० ॥
तत्सिन्धुपतिना राज्ञा पालितं ध्वजिनीमुखम् ।
अनन्तरथनागाश्वमशोभत महद्बलम् ॥ ३१ ॥
षष्ट्या रथसहस्रैस्तु नागानामयुतेन च ।
पतिः सर्वकलिङ्गानां ययौ केतुमता सह ॥ ३२ ॥
तस्य पर्वतसङ्काशा व्यरोचन्त महागजाः ।
यन्त्रतोमरतूणीरैः पताकाभिः सुशोभिताः ॥ ३३ ॥
शुशुभे केतुमुख्येन पावकेन कलिङ्गकः ।
श्वेतच्छत्रेण निष्केण चामरव्यजनेन च ॥ ३४ ॥
केतुमानपि मातङ्गं विचित्रपरमांकुशम् ।
आस्थितः समरे राजन्मेघस्थ इव भानुमान् ॥ ३५ ॥
तेजसा दीप्यमानस्तु वारणोत्तममास्थितः ।
भगदत्तो ययौ राजा यथा वज्रधरस्तथा ॥ ३६ ॥
गजस्कन्धगतावास्तां भगदत्तेन सम्मितौ ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ केतुमन्तमनुव्रतौ ॥ ३७ ॥
स रथानीकवान्व्यूहो हस्त्यङ्गो नृपशीर्षवान् ।
वाजिपक्षः पतत्युग्रः प्रहसन्सर्वतोमुखः ॥ ३८ ॥

अङ्गदेश के राजा वृषकेतु और महात्मा कृपाचार्य सब सेनाओं की रक्षा करने लगे। यशस्वी जयद्रथ रथ पर बैठकर चले। उनकी ध्वजा में चांदी के वराह का चिह्न था। एक लाख रथ, आठ हजार हाथी और साठ हजार घुड़सवार उनके साथ थे। वे सेना के आगे रहकर असंख्य रथ, हाथी और घोड़ों से शोभित सेना की रक्षा करने लगे ॥२८।३१॥ कलिङ्गेश्वर के साथ साठ हजार रथ और यन्त्र-तोमर-तूणीर-पताका आदि से शोभित पर्वताकार दस हजार हाथी थे। वे भी अग्निवर्ण ध्वजा, श्वेत छत्र, कण्ठाभरण, चमर, व्यजन आदि से शोभित होकर युद्ध के लिए चले ॥३२।३५॥ इन्द्र के समान तेजस्वी राजा भगदत्त अपने हाथी पर चढ़कर चले। राजा केतुमान् भी विचित्र अंकुश से शोभित हाथी पर चढ़कर मेघ के ऊपर विराजमान आदित्य के समान शोभायमान हुए। भगदत्त के ही समान तेजस्वी वीर विन्द और अनुविन्द नाम के दोनों भाई भी गजराजों पर चढ़कर चले। द्रोणाचार्य, पितामह भीष्म, गुरु-पुत्र अश्वत्थामा, बाह्लीक और कृपाचार्य ने उस व्यूह की रचना की थी। उस व्यूह में असंख्य रथ और हाथी उसके आगे जान

द्रोणेन विहितो राजन्राज्ञा शान्तनवेन च ।
तथैवाऽऽचार्यपुत्रेण वाह्लीकेन कृपेण च ॥ ३९ ॥

इति श्रीमन्महाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि सैन्यवर्णने सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

पड़ते थे। राज-समाज उस व्यूह का सिर था। घोड़े उसके पङ्ख थे। वह सर्वतोमुख सेना का व्यूह हँसता हुआ सा आगे बढ़ने लगा ॥३६।३९॥

—०—

भीष्मपर्व का सत्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १७ ॥

अथ अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

सञ्जय उवाच—ततो मुहूर्त्तात्तुमुलः शब्दो हृदयकम्पनः ।
अश्रूयत महाराज योधानां प्रयुयुत्सताम् ॥ १ ॥
शङ्खदुन्दुभिघोषैश्च वारणानां च बृंहितैः ।
नेमिघोषै रथानां च दीर्यतीव वसुन्धरा ॥ २ ॥
हयानां हेषमाणानां योधानां चैव गर्जताम् ।
क्षणेनैव नभो भूमिः शब्देनाऽऽपूरितं तदा ॥ ३ ॥
पुत्राणां तव दुर्धर्ष पाण्डवानां तथैव च ।
समकम्पन्त सैन्यानि परस्परसमागमे ॥ ४ ॥
तत्र नागा रथाश्चैव जाम्बूनदविभूषिताः ।
भ्राजमाना व्यदृश्यन्त मेघा इव सविद्युतः ॥ ५ ॥
ध्वजा बहुविधाकारास्तावकानां नराधिप ।
काञ्चनाङ्गदिनो रेजुर्ज्वलिता इव पावकाः ॥ ६ ॥
स्वेषां चैव परेषां च समदृश्यन्त भारत ।
महेन्द्रकेतवः शुभ्रा महेन्द्रसदनेष्विव ॥ ७ ॥
काञ्चनैः कवचैर्वीरा ज्वलनार्कसमप्रभैः ।
सन्नधाः समदृश्यन्त ज्वलनार्कसमप्रभाः ॥ ८ ॥

अठारहवाँ अध्याय ॥ १८ ॥

सजय कहते हैं—हे महाराज! इसके पश्चात् दम भर में योद्धा लोगों का कोलाहल सुन पड़ने लगा। क्षण भर में ही शङ्खों और दुन्दुभियों की ध्वनि, हाथियों की चिग्घाड़, घोड़ों की हिनहिनाहट, योद्धाओं के गर्जन और रथों के पहियों की घरघराहट से पृथ्वी मानों फटने लगी और आकाशमण्डल गूँज उठा ॥१।३॥ दोनों पक्षों की सेना परस्पर की भिड़न्त से काँप उठी। उस समय युद्ध-भूमि में सुवर्ण-भूषित हाथी और रथ बिजली-समेत मेघों के समान देख पड़ने लगे। दोनों ओर की—प्रज्वलित अग्नि के समान—अनेक प्रकार की ध्वजाएँ इन्द्रभवन में स्थित महेन्द्रकेतु के समान शोभायमान हुईं ॥४।७॥ अग्नि

कुरुयोधवरा राजन्विचित्रायुधकार्मुकाः ।
उद्यतैरायुधैश्चित्रैस्तलबद्धाः पताकिनः ॥ ९ ॥
ऋषभाक्षा महेष्वासाश्चमूमुखगता बभुः ।
पृष्ठगोपास्तु भीष्मस्य पुत्रास्तव नराधिप ।
दुःशासनो दुर्विषहो दुर्मुखो दुःसहस्तथा ॥ १० ॥
विविंशतिश्चित्रसेनो विकर्णश्च महारथः ।
सत्यव्रतः पुरुमित्रो जयो भूरिश्रवाः शलः ॥ ११ ॥
रथा विंशतिसाहस्रास्तथैषामनुयायिनः ।
अभीषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वसातयः ॥ १२ ॥
शाल्वा मत्स्यास्तथाऽम्बष्ठास्त्रैगर्त्ताः केकयास्तथा ।
सौवीराः कैतवाः प्राच्याः प्रतीच्योदीच्यवासिनः ॥ १३ ॥
द्वादशैते जनपदाः सर्वे शूरास्तनुत्यजः ।
महता रथवंशेन ते ररक्षुः पितामहम् ॥ १४ ॥
अनीकं दशसाहस्रं कुञ्जराणां तरस्विनाम् ।
मागधो यत्र नृपतिस्तद्रथानीकमन्वयात् ॥ १५ ॥
रथानां चक्ररक्षाश्च पादरक्षाश्च दन्तिनाम् ।
अभवन्वाहिनीमध्ये शतानामयुतानि षट् ॥ १६ ॥
पादाताश्चाऽग्रतोऽगच्छन्धनुश्चर्मासिपाणयः ।
अनेकशतसाहस्रा नखरप्रासयोधिनः ॥ १७ ॥
अक्षौहिण्यो दशैका च तव पुत्रस्य भारत ।
अदृश्यन्त महाराज गङ्गेव यमुनान्तरा ॥ १८ ॥

इति श्रीमन्महाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि सैन्यवर्णने अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

और सूर्य के समान प्रभायुक्त कवचों से भूषित वीर अग्नि और सूर्य के समान देख पड़ने लगे। कौरव पक्ष के योद्धाओं ने विचित्र आयुध, धनुष और प्रत्यञ्चा आदि को सँभाला। महाधनुर्द्धर ऋषभाक्षगण सेना के अगले भाग में स्थित हुए। हे महाराज! आपके पुत्र दुर्जय, दुःशासन, दुर्मुख, दुःसह, विविंशति, चित्रसेन, विकर्ण, सत्यव्रत, पुरुमित्र, जय, भूरिश्रवा, शल और इनके अधीन बीस हजार रथी भीष्म के पिछले भाग की रक्षा करने लगे ॥८।१२॥ अभीषाह, शूरसेन, शिबि, वसाति, शाल्व, मत्स्य, अम्बष्ठ, त्रिगर्त, केकय, सौवीर, कैतव और पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, इन बारह देशों के वीर जीवन की आशा छोड़कर रथों के द्वारा पितामह की रक्षा करने लगे। मगधराज दस हजार वेगशाली कुरुसेना साथ लेकर, भीष्म के

पास रहकर, उनकी रक्षा करने लगे। इस सारी सेना के साठ लाख मनुष्य रथों के पहियों की और हाथियो के पांवों की रक्षा करने लगे। लाखों पैदल सिपाही धनुष, ढाल-तलवार, नखर और प्रास आदि शस्त्र लेकर युद्ध के लिए आगे बढ़े। हे राजेन्द्र! आपके पुत्र की ग्यारह अक्षौहिणी सेना यमुना से मिलने को चली हुई गङ्गा के समान देख पड़ने लगी ॥१३।१८॥

भीष्मपर्व का अठारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १८ ॥

अथ एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—अक्षौहिण्यो दशैका च व्यूढा दृष्ट्वा युधिष्ठिरः ।
कथमल्पेन सैन्येन प्रत्यव्यूहत पाण्डवः ॥ १ ॥
यो वेद मानुषं व्यूहं दैवं गान्धर्वमासुरम् ।
कथं भीष्मं स कौन्तेयः प्रत्यव्यूहत सञ्जय ॥ २ ॥

सञ्जय उवाच—धार्तराष्ट्राण्यनीकानि दृष्ट्वा व्यूढानि पाण्डवः ।
अभ्यभाषत धर्मात्मा धर्मराजो धनञ्जयम् ॥ ३ ॥
महर्षेर्वचनात्तात वेदयन्ति बृहस्पतेः ।
संहतान्योधयेदल्पान्कामं विस्तारयेद्बहून् ॥ ४ ॥
सूचीमुखमनीकं स्यादल्पानां बहुभिः सह ।
अस्माकं च तथा सैन्यमल्पीयः सुतरां परैः ॥ ५ ॥
एतद्वचनमाज्ञाय महर्षेर्व्यूह पाण्डव ।
एतच्छ्रुत्वा धर्मराजं प्रत्यभाषत पाण्डवः ॥ ६ ॥
एष व्यूहामि ते व्यूहं राजसत्तम दुर्जयम् ।
अचलं नाम वज्राख्यं विहितं वज्रपाणिना ॥ ७ ॥

उन्नीसवाँ अध्याय ॥ १९ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे संजय! इस ग्यारह अक्षौहिणी सेना को व्यूह-रचना करके खड़े देखकर और मानुष, दैव, गान्धर्व, आसुर आदि व्यूहों की रचना के ज्ञाता पितामह भीष्म को युद्ध के लिए तैयार देखकर भी बुद्धिमान् युधिष्ठिर ने अपनी सेना थोड़ी होने पर क्या ख्याल करके भीष्म से युद्ध की तैयारी और व्यूह की रचना की? ॥१।२॥ संजय ने कहा कि हे महाराज! राजा दुर्योधन की सेना को व्यूह-रचनापूर्वक सुसज्जित देखकर धर्मराज युधिष्ठिर ने अपने भाई से कहा—हे अर्जुन! महर्षि बृहस्पति का मत है कि शत्रु-सेना की अपेक्षा अपनी सेना थोड़ी हो तो उस सेना को समेटकर शत्रु से युद्ध करना चाहिए। यदि शत्रु-सेना से अपनी सेना अधिक हो तो सेनापति को अधिकार है कि वह इच्छानुसार अपनी सेना को फैलाकर शत्रु से युद्ध करे। जब थोड़ी सेना को बहुत सेना से युद्ध करना पड़े तब उसे सूचीमुख व्यूह की रचना करनी चाहिए। हमारी सेना शत्रुसेना की अपेक्षा संख्या में थोड़ी है; इसलिए तुम भी, बृहस्पति की नीति के अनुसार, सूचीमुख व्यूह की रचना करो ॥३।६॥ यह सुन-

यः स वात इवोद्धूतः समरे दुःसहः परैः ।
स नः पुरो योत्स्यते वै भीमः प्रहरतां वरः ॥ ८ ॥
तेजांसि रिपुसैन्यानां मृद्नन्पुरुषसत्तमः ।
अग्रेऽग्रणीर्योत्स्यति नो युद्धोपायविचक्षणः ॥ ९ ॥
यं दृष्ट्वा कुरवः सर्वे दुर्योधनपुरोगमाः ।
निवर्तिष्यन्ति सन्त्रस्ताः सिंहं क्षुद्रमृगा यथा ॥ १० ॥
तं सर्वे संश्रयिष्यामः प्राकारमकुतोभयाः ।
भीमं प्रहरतां श्रेष्ठं देवराजमिवाऽमराः ॥ ११ ॥
न हि सोऽस्ति पुमाँल्लोके यः संक्रुद्धं वृकोदरम् ।
द्रष्टुमत्युग्रकर्माणं विषहेत नरर्षभम् ॥ १२ ॥
एवमुक्त्वा महाबाहुस्तथा चक्रे धनञ्जयः ।
व्यूह्य तानि बलान्याशु प्रययौ फाल्गुनस्तथा ॥ १३ ॥
सम्प्रयातान्कुरून्दृष्ट्वा पाण्डवानां महाचमूः ।
गङ्गेव पूर्णा स्तिमिता स्पन्दमाना व्यदृश्यत ॥ १४ ॥
भीमसेनोऽग्रणीस्तेषां धृष्टद्युम्नश्च वीर्यवान् ।
नकुलः सहदेवश्च धृष्टकेतुश्च पार्थिवः ॥ १५ ॥
विराटश्च ततः पश्चाद्राजाऽथाऽक्षौहिणीवृतः ।
भ्रातृभिः सह पुत्रैश्च सोऽभ्यरक्षत पृष्ठतः ॥ १६ ॥
चक्ररक्षौ तु भीमस्य माद्रीपुत्रौ महाद्युति ।
द्रौपदेयाःससौभद्राः पृष्ठगोपास्तरस्विनः ॥ १७ ॥

कर अर्जुन ने युधिष्ठिर से कहा—हे महाराज ! मैं आपके लिए इन्द्र के बताये अचल दुर्जय दुर्भेद्य वज्र नाम के व्यूह की रचना करता हूँ । संग्राम में शत्रु-पक्ष के लिए आंधी की तरह दुःसह, युद्धलक्षण-निपुण, योद्धा पुरुषों में अग्रगण्य, महाबली भीमसेन हमारे पक्ष के अग्र योद्धा होकर शत्रुपक्ष के तेज को नष्ट करेंगे ॥६।९॥ क्षुद्र मृग जैसे सिंह को देखकर भय से भाग खड़े होते हैं वैसे ही दुर्योधन आदि कौरव भीमसेन के सामने नहीं ठहर सकेंगे । देवता जैसे इन्द्र का आश्रय लेते हैं वैसे ही हम लोग बेखटके होकर अपने पक्ष के रक्षक, योद्धाओं में श्रेष्ठ, भीम-सेन का आश्रय लेंगे । इस पृथ्वी पर ऐसा कोई नहीं है जो क्रोधित भीमसेन से नेत्र मिला सके ॥१०।१२॥ अब महावीर अर्जुन अपनी सेना का व्यूह बनाने लगे । परिपूर्ण और स्थिर गङ्गाप्रवाह की तरह पाण्डवों की महासेना, कौरव-सेना को अपनी ओर आते देखकर, मन्द गति से आगे बढ़ने लगी । महापरा-क्रमी भीमसेन, धृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव और धृष्टकेतु उस सेना के आगे-आगे चलने लगे । महाराज विराट और एक अक्षौहिणी सेना के साथ धर्मराज युधिष्ठिर

धृष्टद्युम्नश्च पाञ्चाल्यस्तेषां गोप्ता महारथः ।
सहितः पृतनाशूरै रथमुख्यैः प्रभद्रकैः ॥ १८ ॥
शिखण्डी तु ततः पश्चादर्जुनेनाऽभिरक्षितः ।
यत्तो भीष्मविनाशाय प्रययौ भरतर्षभ ॥ १९ ॥
पृष्ठतोऽप्यर्जुनस्याऽऽसीद्युयुधानो महाबलः ।
चक्ररक्षौ तु पाञ्चाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ ॥ २० ॥
कैकेयो धृष्टकेतुश्च चेकितानश्च वीर्यवान् ।
भीमसेनो गदां बिभ्रद्वज्रसारमयीं दृढाम् ॥
चरन्वेगेन महता समुद्रमपि शोषयेत् ॥ २१ ॥
एते तिष्ठन्ति सामात्याः प्रेक्षन्तस्ते जनाधिप ।
धृतराष्ट्रस्य दायादा इति बीभत्सुरब्रवीत् ॥ २२ ॥
भीमसेनं तदा राजन्दर्शयस्व महाबलम् ।
ब्रुवाणं तु तथा पार्थं सर्वसैन्यानि भारत ॥ २३ ॥
अपूजयंस्तदा वाग्भिरनुकूलाभिराहवे ।
राजा तु मध्यमानीके कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ २४ ॥
बृहद्भिःकुञ्जरैर्मत्तैश्चलद्भिरचलैरिव ।
अक्षौहिण्याऽथ पाञ्चाल्यो यज्ञसेनो महामनाः ।
विराटमन्वयात्पश्चात्पाण्डवार्थं पराक्रमी ॥ २५ ॥
तेषामादित्यचन्द्राभाः कनकोत्तमभूषणाः ।
नानाचित्रधरा राजन्रथेष्वासन्महाध्वजाः ॥ २६ ॥

चले। उनके साथ पुत्र और भाई भी चले ॥१३। १६॥ महातेजस्वी नकुल और सहदेव भीमसेन की दहनी-बाईं ओर उनके रथ के पहियों की रक्षा करते चले। अभिमन्यु और द्रौपदी के पुत्र उनके पिछले भाग की रक्षा में नियुक्त हुए। महारथी धृष्टद्युम्न प्रभद्रकगण के साथ उन सबकी रक्षा करने लगे। अर्जुन के द्वारा सुरक्षित शिखण्डी भी भीष्म-वध के लिए बड़े यत्न के साथ उनके पीछे चले। महारथी युयुधान अर्जुन के पिछले भाग की रक्षा करने लगे। पाञ्चालनन्दन युधामन्यु, उत्तमौजा, कैकेय, धृष्टकेतु और महावीर चेकितान अपने अनुचरों सहित उनके रथ के पहियों की रक्षा करने लगे ॥१७।२१॥ ये सब योद्धा ध्यान से आपकी सेना को देखने लगे। हे महाराज! फिर अर्जुन ने भीमसेन से कहा—ये सब धृतराष्ट्र के पुत्र हैं। ये आपके भाग में हैं। यह सुनकर पाण्डवों की सेना के सब लोग उनकी प्रशंसा करने लगे ॥२२।२४॥ महाराज युधिष्ठिर बहुत बड़े मस्त हाथी पर चढ़कर बीच की सेना में

समुत्सार्य ततः पश्चाद्धृष्टद्युम्नो महारथः ।
भ्रातृभिः सह पुत्रैश्च सोऽभ्यरक्षद्युधिष्ठिरम् ॥ २७ ॥
त्वदीयानां परेषां च रथेषु विपुलान्ध्वजान् ।
अभिभूयाऽर्जुनस्यैको रथे तस्थौ महाकपिः ॥ २८ ॥
पदातास्त्वग्रतोऽगच्छन्नसिशक्त्यृष्टिपाणयः ।
अनेकशतसाहस्रा भीमसेनस्य रक्षिणः ॥ २९ ॥
वारणा दशसाहस्राःप्रभिन्नकरटामुखाः ।
शूरा हेममयैर्जालैर्दीप्यमाना इवाऽचलाः ॥ ३० ॥
क्षरन्त इव जीमूता महार्हाः पद्मगन्धिनः ।
राजानमन्वयुः पश्चाज्जीमूता इव वार्षिकाः ॥ ३१ ॥
भीमसेनो गदां भीमां प्रकर्षन्परिघोपमाम् ।
प्रचकर्ष महासैन्यं दुराधर्षो महामनाः ॥ ३२ ॥
तमर्कमिव दुष्प्रेक्ष्यं तपन्तमिव वाहिनीम् ।
न शेकुः सर्वयोधास्ते प्रतिवीक्षितुमन्तिके ॥ ३३ ॥
वज्रो नामैष स व्यूहो निर्भयः सर्वतोमुखः ।
चापविद्युद्ध्वजो घोरो गुप्तो गाण्डीवधन्वना ॥ ३४ ॥
यं प्रतिव्यूह्य तिष्ठन्ति पाण्डवास्तव वाहिनीम् ।
अजेयो मानुषे लोके पाण्डवैरभिरक्षितः ॥ ३५ ॥

विराजमान हुए। महामनस्वी राजा द्रुपद एक अक्षौहिणी सेना साथ लिये महापराक्रमी राजा विराट के साथ चले। इन वीरों के रथों में सूर्य और चन्द्र के समान प्रभाशाली, सुवर्णमण्डित, विविध चिह्नों से युक्त पताकाएँ लगी हुई थीं। इसके पश्चात् महारथी धृष्टद्युम्न सब सेना, भाई और पुत्र आदि को साथ लेकर महाराज युधिष्ठिर की रक्षा करने लगे। अर्जुन का वानरचिह्न-युक्त ध्वजावाला रथ पाण्डव-सेना के सब रथों से श्रेष्ठ था। उसकी ध्वजा सब ध्वजाओं से ऊँची थी ॥२५।२८॥ असंख्य पैदल सेना भीमसेन की रक्षा करने के लिए खड्ग, शक्ति और ऋष्टि आदि अनेक शस्त्र लिये आगे-आगे चलने लगी। सुवर्णजालमण्डित गजराजों के कपोलों पर मद बह रहा था, उससे कमल की सुगन्ध निकल रही थी। बरसते हुए मेघ या पर्वत के समान दस हजार हाथी महाराज युधिष्ठिर के पीछे चले ॥२९।३०॥ महाबाहु भीमसेन परिघ-सदृश भयानक गदा हाथमें लेकर महासेना को लिये हुए शत्रुसेना के सामने जाने के लिए उद्यत हुए। जिस समय वे शत्रुसेना का संहार करने लगे उस समय सूर्य के समान दुष्प्रेक्ष्य हो उठे। किसी में साहस न था कि उनकी ओर नेत्र उठाकर देख भी लेता ॥३१।३३॥ अर्जुन ने वज्रव्यूह की रचना की थी। वह व्यूह निर्भय, सर्वतोमुख और घोर था। धनुष उसमें बिजली के समान चमकते थे। उस व्यूह

सन्ध्यां तिष्ठत्सु सैन्येषु सूर्यस्योदयनं प्रति ।
प्रावात्सपृषतो वायुर्निरभ्रे स्तनयित्नुमान् ॥ ३६ ॥
विष्वग्वाताश्च विववुर्नीचैः शर्करकर्षिणः ।
रजश्चोद्धूयत महत्तम आच्छादयज्जगत् ॥ ३७ ॥
पपात महती चोल्का प्राङ्मुखी भरतर्षभ ।
उद्यन्तं सूर्यमाहत्य व्यशीर्यत महास्वना ॥ ३८ ॥
अथ संनह्यमानेषु सैन्येषु भरतर्षभ ।
निष्प्रभोऽभ्युद्ययौ सूर्यः सघोषं भूश्चचाल च ॥ ३९ ॥
व्यशीर्यत सनादा च भूस्तदा भरतर्षभ ।
निर्घाता बहवो राजन्दिक्षु सर्वासु चाऽभवन् ॥ ४० ॥
प्रादुरासीद्रजस्तीव्रं न प्राज्ञायत किंचन ।
ध्वजानां धूयमानानां सहसा मातरिश्वना ॥ ४१ ॥
किङ्किणीजालबद्धानां काञ्चनस्रग्वराम्बरैः ।
महतां सपताकानामादित्यसमतेजसाम् ॥ ४२ ॥
सर्वं झणझणीभूतमासीत्तालवनेष्विव ।
एवं ते पुरुषव्याघ्राः पाण्डवा युद्धनन्दिनः ॥ ४३ ॥
व्यवस्थिताः प्रतिव्यूह्य तव पुत्रस्य वाहिनीम् ।
ग्रसन्त इव मज्जानो योधानां भरतर्षभ ॥ ४४ ॥
दृष्ट्वाऽग्रतो भीमसेनं गदापाणिमवस्थितम् ॥ ४५ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि पाण्डवसैन्यव्यूहे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

की रक्षा स्वयं अर्जुन कर रहे थे । मनुष्यों के लिए अजेय उस व्यूह में अपनी सेना को सुरक्षित रखकर पाण्डव लोग आपकी सेना के सामने डट गये । अब सूर्योदय होने पर सब सैनिक सन्ध्यावन्दन करने लगे । उस समय आकाशमण्डल में मेघ न रहने पर भी बिजली कड़कने लगी और सामने से वेग के साथ धूल उड़ाती और कङ्कड़ियाँ बरसाती घोर आँधी चलने लगी । सारे जगत् में अँधेरा सा छा गया ॥३६।३७॥ पूर्व दिशा में भारी उल्कापात हुआ । सूर्य की ओर शब्द करके वह उल्का पृथ्वी पर गिरी । हे भरतश्रेष्ठ ! सेना के सुसज्जित होने पर सूर्यदेव प्रभाहीन हो गये । पृथ्वी महाशब्द के साथ काँपने और फटने लगी ॥३८।४०॥ सब दिशाओं में बारम्बार निर्घात शब्द होने लगा और ऐसी धूल छा गई कि कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता था । किंकिणीजालशोभित, सुवर्ण-मालायुक्त, कोमली वस्त्रों और छोटी पताकों से अलंकृत, सूर्य के समान तेज से युक्त ध्वजाएँ एकाएक वायु के वेग से फड़कने लगीं । आँधी चलने पर ताड़ के वन की जो दशा होती है वही दशा सारे जगत् की हो गई । हे महाराज ! पुरुषश्रेष्ठ युद्धप्रिय पाण्डव लोग

गदा हाथ में लिये भीमसेन को आगे चलते देखकर प्रसन्न हुए और अपनी सेना के विरोधियों के विरुद्ध व्यूहरचना करके इस तरह स्थित हुए मानों शत्रुसेना को निगल जायँगे ॥४१।४५॥

भीष्मपर्व का उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १९ ॥



अथ विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

धृतराष्ट्र उवाच—सूर्योदये सञ्जय के नु पूर्वं युयुत्सवो हृष्यमाणा इवाऽऽसन् ।
मामका वा भीष्मनेत्राः समीपे पाण्डवा वा भीमनेत्रास्तदानीम् ॥ १ ॥
केषां जघन्यौ सोमसूर्यौ सवायू केषां सेनां श्वापदाश्चाऽभषन्त ।
केषां यूनां मुखवर्णाः प्रसन्नाः सर्वं मे त्वं ब्रूहि मेवं यथावत् ॥ २ ॥
सञ्जय उवाच—उभे सेने तुल्यमिवोपयाते उभे व्यूहे हृष्टरूपे नरेन्द्र ।
उभे चित्रे वनराजिप्रकाशे तथैवोभे नागरथाश्वपूर्णे ॥ ३ ॥
उभे सेने बृहत्यौ भीमरूपे तथैवोभे भारत दुर्विषह्ये ।
तथैवोभे स्वर्गजयाय सृष्टे तथैवोभे सत्पुरुषोपजुष्टे ॥ ४ ॥
पश्चान्मुखाःकुरवो धार्तराष्ट्राःस्थिताःपार्थाःप्राङ्मुखा योत्स्यमानाः ।
दैत्येन्द्रसेनेव च कौरवाणां देवेन्द्रसेनेव च पाण्डवानाम् ॥ ५ ॥
चक्रे वायुः पृष्ठतः पाण्डवानां धार्तराष्ट्राञ्श्वापदा व्याहरन्त ।
गजेन्द्राणां मदगन्धांश्च तीव्रान्न सेहिरे तव पुत्रस्य नागाः ॥ ६ ॥
दुर्योधनो हस्तिनं पद्मवर्णं सुवर्णकक्षं जालवन्तं प्रभिन्नम् ।
समास्थितो मध्यगतः कुरूणां संस्तूयमानो वन्दिभिर्मागधैश्च ॥ ७ ॥

बीसवाँ अध्याय ॥ २० ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे संजय ! सूर्योदय के पश्चात् सेनापति भीष्म की अनुगामिनी कौरव-सेना और भीमसेन के द्वारा सुरक्षित पाण्डवों की सेना, दोनों में से किस पक्ष की सेना ने पहले प्रसन्नतापूर्वक युद्ध के लिए ललकारा ? चन्द्र, सूर्य और वायु किसके अनुकूल और किसके प्रतिकूल देख पड़े ? मांसभोजी पशु-पक्षी किस सेना की ओर चिल्लाने लगे ? किस पक्ष के नौजवानों में प्रसन्नता और उत्साह देख पड़ता था ? ये सब बातें विस्तार के साथ मुझसे कहो ॥१।२॥ संजय ने कहा—हे राजेन्द्र ! दोनों पक्ष की सेना जब परस्पर समीप पहुँच गई तब दोनों पक्ष के वीर व्यूह बना करके जङ्गलों की कतार के समान जान पड़ने लगे। दोनों ओर की सेना प्रसन्न और उत्साहित थी। दोनों ओर विचित्र हाथी, घोड़े और रथ असंख्य थे। दोनों पक्ष के सैनिक अपरिमित, भयङ्कर, दुर्विषह देख पड़ते थे। दोनों पक्षों में सत्पुरुष थे जो स्वर्ग प्राप्त करने के लिए तैयार थे। आपके पुत्र पश्चिमाभिमुख और पाण्डव पूर्वाभिमुख थे ॥३।४॥ कौरवों की सेना दैत्येन्द्र-सेना की तरह और पाण्डवों की सेना देव-सेना की तरह शोभित हो रही थी। वायु पाण्डवों के पीछे की ओर चल रही थी। मांसाहारी पशु-पक्षी आपकी सेना की ओर मुख करके गरज रहे थे। दुर्योधन-पक्ष के हाथी पाण्डवों के गजराजों की तीव्र

चन्द्रप्रभं श्वेतमथाऽऽतपत्रं सौवर्णस्रग्भ्राजति चोत्तमाङ्गे ।
तं सर्वतः शकुनिः पार्वतीयैः सार्द्धं गान्धारैर्याति गान्धारराजः ॥ ८ ॥
भीष्मोऽग्रतः सर्वसैन्यस्य वृद्धः श्वेतच्छत्रः श्वेतधनुः सखड्गः ।
श्वेतोष्णीषः पाण्डुरेण ध्वजेन श्वेतैरश्वैः श्वेतशैलप्रकाशैः ॥ ९ ॥
तस्य सैन्ये धार्त्तराष्ट्राश्च सर्वे वाह्लीकानामेकदेशः शलश्च ।
ये चाऽम्बष्ठाः क्षत्रिया ये च सिन्धोस्तथा सौवीराः पञ्चनदाश्च शूराः ॥ १० ॥
शोणैर्हयै रुक्मरथो महात्मा द्रोणो धनुष्पाणिरदीनसत्वः ।
आस्ते गुरुः प्रायशः सर्वराज्ञां पश्चाच्च भूमीन्द्र इवाऽभियाति ॥ ११ ॥
वार्धक्षत्रिः सर्वसैन्यस्य मध्ये भूरिश्रवाः पुरुमित्रो जयश्च ।
शाल्वा मत्स्याः केकयाश्चेति सर्वे गजानीकैर्भ्रातरो योत्स्यमानाः ॥ १२ ॥
शारद्वतश्चोत्तरधूर्महात्मा महेष्वासो गौतमश्चित्रयोधी ।
शकैः किरातैर्यवनैः पल्हवैश्च सार्धं चमूमुत्तरतोऽभियाति ॥ १३ ॥
महारथैर्वृष्णिभोजैः सुगुप्तं सुराष्ट्रकैर्विहितैरात्तशस्त्रैः ।
बृहद्बलं कृतवर्माभिगुप्तं बलं त्वदीयं दक्षिणेनाऽभियाति ॥ १४ ॥
संशप्तकानामयुतं रथानां मृत्युर्जयो वाऽर्जुनस्येति सृष्टः ।
येनाऽर्जुनस्तेन राजन्कृतास्त्राः प्रयातारस्ते त्रिगर्ताश्च शूराः ॥ १५ ॥

मद-गन्ध के सहने में असमर्थ थे ॥५।६॥ कौरव-सेना के बीच पद्मवर्ण, सुवर्ण की जंजीर से शोभित और जाल-मण्डित मस्त गजराज पर दुर्योधन विराजमान थे। बन्दी और मागध उनकी स्तुति कर रहे थे। सुवर्ण की माला और चन्द्रमा की तरह श्वेत छत्र उनके मस्तक पर था। गान्धारराज शकुनि पहाड़ी गान्धार देश के लोगों की सेना साथ लिये दुर्योधन को चारों ओर से घेरे हुए चलते थे। श्वेत छत्र, धनुष, पगड़ी, ध्वजा, कैलाससदृश श्वेत घोड़े और खड्ग आदि युद्धसामग्री से सुशोभित होकर पितामह भीष्म सब सेना के आगे चल रहे थे ॥७।९॥ उनके साथ की सेना में आपके पुत्र, वाह्लीक, शल, अम्बष्ठ, सैन्धव, सौवीर और महाशूर पञ्चनदप्रदेश के श्रेष्ठ शूर थे। महात्मा द्रोणाचार्य लाल घोड़ोंवाले रथ पर चढ़कर धनुष हाथ में लिये सब राजाओं के पीछे-पीछे महाराज के समान चलने लगे। वृद्धक्षत्र के पुत्र, भूरिश्रवा, पुरुमित्र और जय, ये सेना के बीच में और युद्ध की इच्छा रखनेवाले शाल्व, मत्स्य, केकय आदि देशों के वीर भी हाथियों की सेना साथ लिये युद्धभूमि में डटे हुए थे ॥१०।१२॥ प्रधान धनुर्द्धर, विचित्र युद्ध में प्रवीण, महात्मा कृपाचार्य अपने साथ में शक, किरात, यवन आदि की सेना लिये सेना के उत्तर भाग में स्थित हुए। अर्जुन की मृत्यु या अर्जुन को जीतने के लिए ही जिनकी सृष्टि हुई है और अर्जुन के अस्त्रविद्या के गुरु ने ही जिन्हें अस्त्र-विद्या सिखाई है, वे संशप्तकों के अयुत रथी और शूर त्रिगर्तगण बहुत सी सेनासहित दुर्योधन के साथ चले ॥१३।१५॥ हे राजेन्द्र! अत्यन्त उत्तम एक

साग्रं शतसहस्रं तु नागानां तव भारत ।
नागे नागे रथशतं शतमश्वा रथे रथे ॥ १६ ॥
अश्वेऽश्वे दश धानुष्का धानुष्के शतचर्मिणः ।
एवं व्यूढान्यनीकानि भीष्मेण तव भारत ॥ १७ ॥
संव्यूह्य मानुषं व्यूहं दैवं गान्धर्वमासुरम् ।
दिवसे दिवसे प्राप्ते भीष्मः शान्तनवोऽग्रणीः ॥ १८ ॥
महारथौघविपुलः समुद्र इव घोषवान् ।
भीष्मेण धार्त्तराष्ट्राणां व्यूहः प्रत्यङ्मुखो युधि ॥ १९ ॥
अनन्तरूपा ध्वजिनी नरेन्द्र भीमा त्वदीया न तु पाण्डवानाम् ।
तां चैव मन्ये बृहतीं दुष्प्रधर्षां यस्या नेता केशवश्चाऽर्जुनश्च ॥ २० ॥

इति श्रीमन्महाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि सैन्यवर्णने विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

लाख हाथियों का व्यूह पितामह ने बनाया था। एक-एक हाथी के साथ सौ-सौ रथ थे। एक-एक रथ के साथ सौ-सौ घोड़े थे। प्रत्येक घोड़े के साथ दस-दस धनुर्द्धर वीर थे। हर धनुर्द्धर योद्धा के साथ चार-चार ढालवाले थे। इस प्रकार व्यूह-रचना करके पितामह भीष्म युद्ध में प्रवृत्त हुए। वे एक ही प्रकार के व्यूह से नहीं लड़े। कभी मानुष, कभी दैव, कभी गान्धर्व और कभी आसुर व्यूह की रचना करके उन्होंने घोर युद्ध किया। समुद्र के समान शब्दपूर्ण महारथों से युक्त उन व्यूहों की सेना पश्चिमाभिमुख स्थित थी। हे महाराज! आपकी सेना जैसी असंख्य और भयानक है वैसी पाण्डवों की सेना नहीं है। किन्तु श्रीकृष्ण और अर्जुन जिसके अगुआ हैं वही, मेरी सम्मति में, बड़ा और दुर्जय है॥१६।२०॥

भीष्मपर्व का बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २० ॥

अथ एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

सञ्जय उवाच—बृहतीं धार्त्तराष्ट्रस्य सेनां दृष्ट्वा समुद्यताम् ।
विषादमगमद्राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १ ॥
व्यूहं भीष्मेण चाऽभेद्यं कल्पितं प्रेक्ष्य पाण्डवः ।
अभेद्यमिव सम्प्रेक्ष्य विवर्णोऽर्जुनमब्रवीत् ॥ २ ॥
धनञ्जय कथं शक्यमस्माभिर्योद्धुमाहवे ।
धार्त्तराष्ट्रैर्महाबाहो येषां योद्धा पितामहः ॥ ३ ॥

इक्कीसवाँ अध्याय ॥ २१ ॥

संजय कहते हैं कि हे महाराज! दुर्योधन की भारी सेना को युद्ध के लिए तैयार और भीष्म को अभेद्य व्यूह की रचना करते देखकर राजा युधिष्ठिर ने खिन्न स्वर में कहा—हे अर्जुन! पितामह भीष्म जिनके पक्ष के योद्धा हैं उनसे हम लोग किस तरह युद्ध कर सकेंगे? शत्रुदमन महावीर महात्मा

अक्षोभ्योऽयमभेद्यश्च भीष्मेणाऽमित्रकर्षिणा ।
कल्पितः शास्त्रदृष्टेन विधिना भूरिवर्चसा ॥ ४ ॥
ते वयं संशयं प्राप्ताः ससैन्याः शत्रुकर्षण ।
कथमस्मान्महाव्यूहादुत्थानं नो भविष्यति ॥ ५ ॥
अथाऽर्जुनोऽब्रवीत्पार्थं युधिष्ठिरमामित्रहा ।
विषण्णमिव सम्प्रेक्ष्य तव राजन्ननीकिनीम् ॥ ६ ॥
प्रज्ञयाऽभ्यधिकाञ्शूरान्गुणयुक्तान्बहूनपि ।
जयन्त्यल्पतरा येन तन्निबोध विशाम्पते ॥ ७ ॥
तत्र ते कारणं राजन्प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ।
नारदस्तमृषिर्वेद भीष्मद्रोणौ च पाण्डव ॥ ८ ॥
एनमेवाऽर्थमाश्रित्य युद्धे देवासुरेऽब्रवीत् ।
पितामहः किल पुरा महेन्द्रादीन्दिवौकसः ॥ ९ ॥
न तथा बलवीर्याभ्यां जयन्ति विजिगीषवः ।
यथा सत्यानृशंस्याभ्यां धर्मेणैवोद्यमेन च ॥ १० ॥
ज्ञात्वा धर्ममधर्मं च लोभं चोत्तममास्थिताः ।
युध्यध्वमनहंकारा यतो धर्मस्ततो जयः ॥ ११ ॥
एवं राजन्विजानीहि ध्रुवोऽस्माकं रणे जयः ।
यथा तु नारदः प्राह यतः कृष्णस्ततो जयः ॥ १२ ॥
गुणभूतो जयः कृष्णे पृष्ठतोऽभ्येति माधवम् ।
तद्यथा विजयश्चाऽस्य सन्नतिश्चाऽपरो गुणः ॥ १३ ॥

भीष्म के रचे हुए, शास्त्रानुसार कल्पित, अक्षोभ्य और अभेद्य व्यूह को देखकर हम लोग अपनी सेना-सहित प्राणों के सङ्कट में पड़ गये हैं। अब बताओ, इस समय हम कैसे इस महाव्यूह से अपनी रक्षा कर सकेंगे ॥१।५॥ हे महाराज! युधिष्ठिर को कौरव-सेना के कारण यों विषाद में पड़े देखकर अर्जुन ने कहा—हे महाराज! संख्या में थोड़े लोग जिस ढङ्ग से प्रज्ञा, शौर्य, गुण और संख्या में अधिक लोगों को हरा सकते हैं वह ढङ्ग सुनिए। महर्षि नारद, पितामह भीष्म और द्रोणाचार्य इसे जानते हैं ॥६।८॥ पहले देवासुर-संग्राम में पितामह ब्रह्मा ने महेन्द्र आदि देवताओं से कहा था कि विजय की इच्छा रखनेवाले लोग जैसे सत्य, दया, धर्म के द्वारा जय प्राप्त करते हैं वैसे बल और वीर्य के द्वारा नहीं। इसलिए धर्मा-धर्म और लोभ के विषय को अच्छी तरह जानकर, अहङ्कार-शून्य होकर, उद्यम के साथ युद्ध करो। जहाँ धर्म है वहीं जय है ॥९।१२॥ महर्षि नारद का कहना है कि जहाँ कृष्ण है वहीं जय है। अन्यान्य

अनन्ततेजा गोविन्दः शत्रुपूगेषु निर्व्यथः ।
पुरुषः सनातनमयो यतः कृष्णस्ततो जयः ॥ १४ ॥
पुरा ह्येष हरिर्भूत्वा विकुण्ठोऽकुण्ठसायकः ।
सुरासुरानवस्फूर्जन्नब्रवीत्के जयन्त्विति ॥ १५ ॥
कथं कृष्ण जयेमेति यैरुक्तं तत्र तैर्जितम् ।
तत्प्रसादाद्धि त्रैलोक्यं प्राप्तं शक्रादिभिः सुरैः ॥ १६ ॥
तस्य ते न व्यथां काञ्चिदिह पश्यामि भारत ।
यस्य ते जयमाशास्ते विश्वभुक् त्रिदिवेश्वरः ॥ १७ ॥

इति श्रीमन्महाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि युधिष्ठिरार्जुनसंवादे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

गुण जैसे श्रीकृष्ण में हैं वैसे ही विजय भी उनमें है। वे जहां जाते हैं वहीं विजय भी उनके साथ जाती है। अतएव जहां शत्रुओं के बीच श्रीकृष्ण हमारे साथी हैं वहां हमारी ही जय निश्चित है। श्रीकृष्ण कभी व्यथित होनेवाले नहीं हैं। उनका तेज अनन्त है। अव्यर्थलक्ष्य, इन्हीं श्रीकृष्ण ने पहले जनार्दन हरि का रूप रखकर, देवताओं और असुरों के सामने प्रकट होकर, पूछा था कि कौन जय प्राप्त करेगा। इस प्रश्न के उत्तर में जिन्होंने कहा था कि हम श्रीकृष्ण के अनुगत हैं, हमीं जय प्राप्त करेंगे, वे ही विजयी हुए थे। इन्द्र आदि देवताओं ने श्रीकृष्ण के ही प्रसाद से त्रैलोक्य का राज्य प्राप्त किया है। हे भरतकुलश्रेष्ठ! वही त्रिदिवेश्वर वासुदेव जब आपकी विजय की आशा कर रहे हैं तब आपको किस प्रकार की चिन्ता है? आप क्यों व्याकुल हो रहे हैं? ॥१३।१७॥

भीष्मपर्व का इक्कीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥ २१ ॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

संजय उवाच— ततो युधिष्ठिरो राजा स्वां सेनां समनोदयत् ।
प्रतिव्यूहन्ननीकानि भीष्मस्य भरतर्षभ ॥ १ ॥
यथोद्दिष्टान्यनीकानि प्रत्यव्यूहन्त पाण्डवाः ।
स्वर्गं परममिच्छन्तः सुयुद्धेन कुरूद्वहाः ॥ २ ॥
मध्ये शिखण्डिनोऽनीकं रक्षितं सव्यसाचिना ।
धृष्टद्युम्नश्चरन्नग्रे भीमसेनेन पालितः ॥ ३ ॥
अनीकं दक्षिणं राजन्युयुधानेन पालितम् ।
श्रीमता सात्वताग्र्येण शक्रेणेव धनुष्मता ॥ ४ ॥

बाईसवां अध्याय ॥ २२ ॥

संजय कहते हैं—हे महाराज! इसके उपरान्त कुरुकुल-प्रधान युधिष्ठिर आदि पाण्डव अपनी सारी सेना का, भीष्म के विरुद्ध, व्यूह बनाकर धर्मयुद्ध के द्वारा स्वर्ग या राज्य प्राप्त करने के लिए तैयार हुए।

महेन्द्रयानप्रतिमं रथं तु सोपस्करं हाटकरत्नचित्रम् ।
युधिष्ठिरः काञ्चनभाण्डयोक्त्रं समास्थितो नागपुरस्य मध्ये ॥ ५ ॥
समुच्छ्रितं दन्तशलाकमस्य सुपाण्डुरं छत्रमतीव भाति ।
प्रदक्षिणं चैनमुपाचरन्त महर्षयः संस्तुतिभिर्महेन्द्रम् ॥ ६ ॥
पुरोहिताः शत्रुवधं वदन्तो ब्रह्मर्षिसिद्धाः श्रुतवन्त एनम् ।
जप्यैश्च मन्त्रैश्च महौषधीभिः समन्ततः स्वस्त्ययनं ब्रुवन्तः ॥ ७ ॥
ततः स वस्त्राणि तथैव गाश्च फलानि पुष्पाणि तथैव निष्कान् ।
कुरूत्तमो ब्राह्मणसान्महात्मा कुर्वन्ययौ शक्र इवाऽमरेशः ॥ ८ ॥
सहस्रसूर्यः शतकिङ्किणीकः परार्ध्यजाम्बूनदहेमचित्रः ।
रथोऽर्जुनस्याऽग्निरिवाऽर्चिमाली विभ्राजते श्वेतहयः सुचक्रः ॥ ९ ॥
तमास्थितः केशवसंगृहीतं कपिध्वजो गाण्डिवबाणपाणिः ।
धनुर्धरो यस्य समः पृथिव्यां न विद्यते नो भविता कदाचित् ॥ १० ॥
उद्वर्तयिष्यंस्तव पुत्र सेनामतीव रौद्रं स बिभर्ति रूपम् ।
अनायुधो यः सुभुजो भुजाभ्यां नराश्वनागान्युधि भस्म कुर्यात् ॥ ११ ॥
स भीमसेनः सहितो यमाभ्यां वृकोदरो वीररथस्य गोप्ता ।
तं तत्र सिंहर्षभमत्तखेलं लोके महेन्द्रप्रतिमानकल्पम् ॥ १२ ॥

सबके बीच में शिखण्डी को रखकर स्वयं अर्जुन उनकी रक्षा करने लगे। भीमसेन सेना के अगले भाग में स्थित धृष्टद्युम्न की और इन्द्र के समान प्रधान धनुर्द्धर युयुधान दक्षिण भाग से सब सेना की रक्षा करने लगे। राजा युधिष्ठिर हाथियों के झुण्ड के बीच महेन्द्रयान सदृश, युद्ध की सामग्री से परिपूर्ण, सुवर्णरत्नचित्रित, सुवर्णभाण्डयुक्त श्रेष्ठ रथ पर सवार हुए। उनके माथे पर हाथीदांत की मूठवाला, ऊँचा, श्वेत छत्र लगा हुआ था। महर्षिगण स्तुति करते हुए उनकी प्रदक्षिणा करने लगे ॥१।६॥ पुरोहित लोग शत्रुवध की घोषणा के साथ आशीर्वाद देने लगे। महर्षि और सिद्धगण जप, मन्त्र और महौषधियों के द्वारा स्वस्त्ययन और स्तुति करने लगे। इसके पश्चात् कुरुश्रेष्ठ युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों को हजारों गायें, कण्ठाभरण और अनेक प्रकार के फल-फूल आदि से सन्तुष्ट करके देवराज इन्द्र की तरह युद्धयात्रा की। हे महाबाहु! पृथ्वी पर अद्वितीय धनुर्द्धर योद्धा, महावीर अर्जुन ने भयानक रूप धारण किये हुए आपके पुत्रों की सेना को नष्ट करने की इच्छा से बायें हाथ में गाण्डीव धनुष लिया; और हजार सूर्यों की तरह उज्ज्वल, अग्नि की तरह शिखायुक्त, शतकिङ्किणी-शोभित, सुवर्णमण्डित, अच्छे पहियोंवाले, श्वेत घोड़ों से युक्त, कपिध्वज रथ पर चढ़कर युद्धयात्रा की। उनके रथ पर स्वयं श्रीकृष्ण सवार हुए ॥७।१०॥ सिंह के समान निर्भय, इन्द्र के समान पराक्रमी, मस्त हाथी के समान दर्पी, महाबली, पराक्रमी और बिना शस्त्र लिये केवल बाहुओं से ही मनुष्यों और हाथियों का संहार करने में समर्थ भीमसेन—नकुल

समीक्ष्य सेनाग्रगतं दुरासदं संविव्यथुः पङ्कगता यथा द्विपाः।
वृकोदरं वारणराजदर्पं योधास्त्वदीया भयविग्नसत्त्वाः ॥१३॥
अनीकमध्ये तिष्ठन्तं राजपुत्रं दुरासदम् ।
अब्रवीद्भरतश्रेष्ठं गुडाकेशं जनार्दनः ॥ १४ ॥

वासुदेव उवाच—य एष रोषात्प्रतपन्बलस्थो यो नः सेनां सिंह इवेक्षते च ।
स एष भीष्मः कुरुवंशकेतुर्येनाऽऽहृतास्त्रिशतं वाजिमेधाः ॥१५॥
एतान्यनीकानि महानुभावं गूहन्ति मेघा इव रश्मिमन्तम्।
एतानि हत्वा पुरुषप्रवीर कांक्षस्व युद्धं भरतर्षभेण ॥१६॥

इति श्रीमन्महाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि श्रीकृष्णार्जुनसंवादे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

और सहदेव के साथ—अर्जुन के रथ की रक्षा करने लगे। सेना के अगले भाग में भीमसेन को आते देखकर आपके दल के योद्धाओं की दशा भय के मारे दलदल में फँसे हुए हाथियों की सी हुई॥११। १३॥ अब भगवान् श्रीकृष्ण ने सेना के बीच में स्थित दुर्द्धर्ष राजकुमार अर्जुन से कहा—हे अर्जुन! वह देखो, सेना के मध्य में सूर्य के समान तप रहे और हमारी सेना को सिंह के समान देख रहे कुरुकुलकेतु पितामह भीष्म खड़े हैं। इन्होंने तीन सौ अश्वमेध यज्ञ किये हैं। मेघ जैसे सूर्य को छिपाये हों, वैसे ही यह कौरवपक्ष की सेना उनके चारों ओर रहकर उनकी रक्षा कर रही है। हे पुरुषश्रेष्ठ! इस सेना को मारकर भरतश्रेष्ठ भीष्म के साथ युद्ध करो ॥१४।१६॥

भीष्मपर्व का बाईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २२ ॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

सञ्जय उवाच—धार्त्तराष्ट्रबलं दृष्ट्वा युद्धाय समुपस्थितम् ।
अर्जुनस्य हितार्थाय कृष्णो वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच—शुचिर्भूत्वा महाबाहो संग्रामाभिमुखे स्थितः ।
पराजयाय शत्रूणां दुर्गास्तोत्रमुदीरय ॥ २ ॥

सञ्जय उवाच—एवमुक्तोऽर्जुनः संख्ये वासुदेवेन धीमता ।
अवतीर्य रथात्पार्थः स्तोत्रमाह कृताञ्जलिः ॥ ३ ॥

तेईसवाँ अध्याय ॥ २३ ॥

संजय कहते हैं कि हे राजेन्द्र! इसके पश्चात् दुर्योधन की सेना को युद्ध के लिए तैयार देखकर श्रीकृष्ण ने अर्जुन के हित के लिए कहा—हे अर्जुन! संग्राम के आरम्भ में, शत्रुओं की पराजय के लिए, पवित्रतापूर्वक दुर्गास्तोत्र का पाठ करो ॥१।२॥ हे महाराज! बुद्धिमान् श्रीकृष्ण के उपदेश करने पर अर्जुन रथ से उतरकर, हाथ जोड़कर, भगवती कात्यायनी की स्तुति इस प्रकार करने लगे—हे सिद्धसेनानि! हे आर्ये! हे मन्दराचल पर निवास करनेवाली! हे कुमारी! हे काली! हे कपालिनी! हे कपिला!

अर्जुन उवाच—नमस्ते सिद्धसेनानि आर्ये मन्दरवासिनि ।
कुमारि कालि कापालि कपिले कृष्णपिङ्गले ॥ ४ ॥
भद्रकालि नमस्तुभ्यं महाकालि नमोऽस्तु ते ।
चण्डि चण्डे नमस्तुभ्यं तारिणि वरवर्णिनि ॥ ५ ॥
कात्यायनि महाभागे करालि विजये जये ।
शिखिपिच्छध्वजधरे नानाभरणभूषिते ॥ ६ ॥
अट्टशूलप्रहरणे खड्गखेटकधारिणि ।
गोपेन्द्रस्याऽनुजे ज्येष्ठे नन्दगोपकुलोद्भवे ॥ ७ ॥
महिषासृक्प्रिये नित्यं कौशिकि पीतवासिनि ।
अट्टहासे कोकमुखे नमस्तेऽस्तु रणप्रिये ॥ ८ ॥
उमे शाकम्भरि श्वेते कृष्णे कैटभनाशिनि ।
हिरण्याक्षि विरूपाक्षि सुधूम्राक्षि नमोऽस्तु ते ॥ ९ ॥
वेदश्रुति महापुण्ये ब्रह्मण्ये जातवेदसि ।
जम्बूकटकचैत्येषु नित्यं सन्निहितालये ॥ १० ॥
त्वं ब्रह्मविद्या विद्यानां महानिद्रा च देहिनाम् ।
स्कन्दमातर्भगवति दुर्गे कान्तारवासिनि ॥ ११ ॥
स्वाहाकारः स्वधा चैव कला काष्ठा सरस्वती ।
सावित्री वेदमाता च तथा वेदान्त उच्यते ॥ १२ ॥
स्तुताऽसि त्वं महादेवि विशुद्धेनाऽन्तरात्मना ।
जयो भवतु मे नित्यं त्वत्प्रसादाद्रणाजिरे ॥ १३ ॥

हे कृष्णपिङ्गला ! हे भगवती ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ । हे तारिणी ! हे वरवर्णिनी ! हे भद्रकाली ! हे महाकाली ! हे चण्डी ! हे चण्डरूपिणी ! हे कात्यायनी ! हे महाभागा ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ । हे कराली ! हे विजया ! हे जया ! हे मयूरपिच्छध्वजा-धारिणी ! हे अनेक आभूषण पहननेवाली ! हे अत्यन्त उत्कट त्रिशूल-खड्ग और खेटक धारण करनेवाली ! हे श्रीकृष्ण की बड़ी बहन ! हे नन्दगोप के कुल में जन्म लेनेवाली ! हे महिष का रक्त पीनेवाली ! हे कौशिकी ! हे पीताम्बर पहननेवाली ! हे अट्टहास करनेवाली ! हे कोक-मुखा ! हे रणप्रिया ! हे देवी ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥३।८॥ हे उमा ! हे शाकम्भरी ! हे श्वेता ! हे कृष्णा ! हे कैटभनाशिनी ! हे हिरण्याक्षी ! हे विरूपाक्षी ! हे धूम्राक्षी ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ । हे वेदश्रुति ! हे महापुण्या ! हे ब्रह्मण्या ! हे अग्निवधू ! हे जम्बूकटक-चैत्य आदि स्थानों में नित्य रहनेवाली देवी ! आप सब विद्याओं में ब्रह्मविद्या और सब शरीरधारियों में महानिद्रा के स्वरूप से स्थित हैं । हे भगवती !

कान्तारभयदुर्गेषु भक्तानां चाऽऽलयेषु च ।
नित्यं वससि पाताले युद्धे जयसि दानवान् ॥ १४ ॥
त्वं जम्भनी मोहिनी च माया ह्रीः श्रीस्तथैव च ।
सन्ध्या प्रभावती चैव सावित्री जननी तथा ॥ १५ ॥
तुष्टिः पुष्टिर्धृतिर्दीप्तिश्चन्द्रादित्यविवर्धिनी ।
भूतिर्भूतिमतां सङ्ख्ये वीक्ष्यसे सिद्धचारणैः ॥ १६ ॥

सञ्जय उवाच—ततः पार्थस्य विज्ञाय भक्तिं मानववत्सला ।
अन्तरिक्षगतोवाच गोविन्दस्याऽग्रतः स्थिता ॥ १७ ॥

देव्युवाच—स्वल्पेनैव तु कालेन शत्रूञ्जेष्यासि पाण्डव ।
नरस्त्वमसि दुर्धर्ष नारायणसहायवान् ॥ १८ ॥
अजेयस्त्वं रणेऽरीणामपि वज्रभृतः स्वयम् ।
इत्येवमुक्त्वा वरदा क्षणेनाऽन्तरधीयत ॥ १९ ॥
लब्ध्वा वरं तु कौन्तेयो मेने विजयमात्मनः ।
आरुरोह ततः पार्थो रथं परमसम्मतम् ॥ २० ॥
कृष्णार्जुनावेकरथौ दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः ।
य इदं पठते स्तोत्रं कल्य उत्थाय मानवः ॥ २१ ॥
यक्षरक्षः पिशाचेभ्यो न भयं विद्यते सदा ।
नऽचापि रिपवस्तेभ्यः सर्पाद्या ये च दंष्ट्रिणः ॥ २२ ॥

हे स्कन्दजननी ! हे दुर्गा ! हे दुर्गम स्थान में रहनेवाली ! आप स्वाहा, स्वधा, कला, काष्ठा, सरस्वती, सावित्री, वेदमाता और वेदान्तस्वरूपिणी हैं। मैं विशुद्ध चित्त से आपकी स्तुति करता हूँ। आशीर्वाद दीजिए कि मैं आपकी कृपा से विजय प्राप्त कर सकूं ॥९।१३॥ भक्तों की रक्षा के लिए आप सदा दुर्गम मार्ग और भयानक स्थान तथा पाताल-तल में रहती हैं और संग्राम-भूमि में दानवों को हराती हैं। आप जम्भनी, मोहिनी, माया, ह्री, श्री, सन्ध्या, प्रभावती, सावित्री, जननी, तुष्टि, पुष्टि धृति, चन्द्र-सूर्य-विवर्द्धिनी, दीप्ति और सम्पन्न पुरुषों की सम्पत्ति हो। सिद्ध-चारण सदा रणक्षेत्र में आपके दर्शन पाते हैं ॥१४।१६॥ अर्जुन की भक्ति देखकर मनुष्य-वत्सला कात्यायनी प्रसन्न हुईं और श्रीकृष्ण के आगे प्रकट होकर अर्जुन से कहने लगीं—"हे पाण्डव ! तुम नारायण की सहायता से शीघ्र ही संग्राम में शत्रुओं को जीत लोगे। तुम युद्ध में शत्रुओं के लिए अजेय हो। तुमको तो साक्षात् इन्द्र भी नहीं जीत सकते।" अब वरदायिनी भगवती अन्तर्द्धान हो गईं। वरदान पाकर अर्जुन ने अपने को विजयी समझ लिया। वे श्रीकृष्ण के साथ रथ पर बैठकर दिव्य शङ्ख बजाने लगे ॥१७।२०॥ जो कोई प्रातःकाल उठकर इस दुर्गास्तव को पढ़ता है उसे यक्ष, राक्षस, पिशाच, शत्रु, सर्प, हिंसक पशु और राजकुल आदि से भय की आशङ्का

न भयं विद्यते तस्य सदा राजकुलादपि ।
विवादे जयमाप्नोति बद्धो मुच्यति बन्धनात् ॥ २३ ॥
दुर्गं तरति चाऽवश्यं तथा चोरैर्विमुच्यते ।
संग्रामे विजयेन्नित्यं लक्ष्मीं प्राप्नोति केवलाम् ॥ २४ ॥
आरोग्यबलसम्पन्नो जीवेद्वर्षशतं तथा ।
एतद् दृष्टं प्रसादात्तु मया व्यासस्य धीमतः ॥ २५ ॥
मोहादेतौ न जानन्ति नरनारायणावृषी ।
तव पुत्रा दुरात्मानः सर्वे मन्युवशानुगाः ॥ २६ ॥
प्राप्तकालमिदं वाक्यं कालपाशेन गुण्ठिताः ।
द्वैपायनो नारदश्च कण्वो रामस्तथाऽनघः ।
अवारयंस्तव सुतं न चाऽसौ तद्गृहीतवान् ॥ २७ ॥
यत्र धर्मो द्युतिः कान्तिर्यत्र ह्रीः श्रीस्तथा मतिः ।
यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः ॥ २८ ॥

इति श्रीमन्महाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि दुर्गास्तोत्रे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

नहीं रहती। वह मनुष्य विवाद में विजय प्राप्त करता है, बन्धन से छुटकारा पाता है तथा सङ्कट और आपत्ति से छूट जाता है। यदि चोर डाकू घेर लें तो इस स्तोत्र को पढ़ने से वे सब भाग जाते है। यह स्तोत्र पढ़ने से युद्ध में विजय, लक्ष्मी, आरोग्य, बल और दीर्घ जीवन प्राप्त होता है॥२१।२५॥ हे राजेन्द्र! मैंने बुद्धिमान् महात्मा व्यासदेव की कृपा से युद्ध का सब हाल देखा है। आपके दुरात्मा पुत्र कालपाश में फँसे हुए हैं। इसीसे मोह-वश होकर वे महर्षि नर और नारायण (अर्जुन और श्रीकृष्ण) को नहीं पहचान सके। व्यास, नारद, कण्व, परशुराम आदि महर्षियों ने आपके पुत्र को बहुत समझाया, परन्तु अपनी मूढ़ता के कारण दुर्योधन ने उनका कहा नहीं माना। हे महाराज! जहा धर्म है वहीं द्युति और कान्ति है। जहा लोकलज्जा है वहीं श्री और बुद्धि है। सत्य तो यह है कि जहा धर्म है वहीं श्रीकृष्ण हैं और जहा श्रीकृष्ण हैं वहीं जय है॥२६।२८॥

भीष्मपर्व का तेईसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥ २३ ॥



अथ चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—केषां प्रहृष्टास्तत्राऽग्रे योधा युध्यन्ति सञ्जय ।
उदग्रमनसः के वा के वा दीना विचेतसः ॥ १ ॥

चौबीसवां अध्याय ॥ २४ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय! किस पक्ष के वीरों ने पहले प्रसन्नतापूर्वक युद्धभूमि में प्रवेश और आक्रमण किया? किस पक्ष के लोग उत्साहित और किस पक्ष के लोग व्याकुल देख पड़े? किस दल के

के पूर्वं प्राहरंस्तत्र युद्धे हृदयकम्पने ।
मामकाः पाण्डवेया वा तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ २ ॥
कस्य सेनासमुदये गन्धमाल्यसमुद्भवः ।
वाचः प्रदक्षिणाश्चैव योधानामभिगर्जताम् ॥ ३ ॥

सञ्जय उवाच—उभयोः सेनयोस्तत्र योधा जहृषिरे तदा ।
स्रजः समाः सुगन्धानामुभयत्र समुद्भवः ॥ ४ ॥
संहतानामनीकानां व्यूढानां भरतर्षभ ।
संसर्गात्समुदीर्णानां विमर्दः सुमहानभूत् ॥ ५ ॥
वादित्रशब्दस्तुमुलः शङ्खभेरीविमिश्रितः ।
शूराणां रणशूराणां गर्जतामितरेतरम् ॥ ६ ॥
उभयोः सेनयो राजन्महान्व्यतिकरोऽभवत् ।
अन्योन्यं वीक्ष्यमाणानां योधानां भरतर्षभ ।
कुञ्जराणां च नदतां सैन्यानां च प्रहृष्यताम् ॥ ७ ॥

इति श्रीमन्महाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि धृतराष्ट्रसञ्जयसंवादे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

वीरों ने हृदय को कँपा देनेवाले उस युद्ध में पहले-पहल प्रहार किया? किस ओर के गरज रहे योद्धाओं की मालाएँ नहीं सूखीं? किस पक्ष के लोगों की मालाओं की सुगन्ध में विकार नहीं आया? किस दल के वीरों के अनुकूल वायु चल रही थी? तुम ये सब बातें मुझे सुनाओ ॥१।३॥ संजय ने कहा—हे राजेन्द्र! उस समय दोनों पक्ष के योद्धा प्रसन्न और उत्साहित दिखाई पड़ रहे थे। दोनों ओर के वीरों की मालाएँ और उनकी गन्ध पहले की सी थीं। दोनों पक्ष के लोग व्यूह बनाकर एकत्र हो परस्पर घोर युद्ध कर रहे थे। हे भरतश्रेष्ठ! दोनों ओर के वीर एक दूसरे को देखकर सिंहनाद कर रहे थे। दोनों पक्ष के योद्धा रण में शूरता दिखानेवाले थे। शङ्ख, नगाड़े आदि बाजों का शब्द चारों ओर गूँज रहा था। उस शब्द को हाथियों, घोड़ों, रथों और पैदलों का शब्द और भी बढ़ा रहा था। वह दृश्य अद्भुत ही था ॥४।७॥

—०—

भीष्मपर्व का चौबीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २४ ॥







श्रीमद्भगवद्गीता ॥

धृतराष्ट्र उवाच—धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय ॥ १ ॥

सञ्जय उवाच—दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा ।
आचार्यमुपसङ्गम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥
पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम् ।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥ ३ ॥
अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि ।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥ ४ ॥
धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान् ।
पुरुजित्कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुङ्गवः ॥ ५ ॥
युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान् ।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ॥ ६ ॥
अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम ।
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते ॥ ७ ॥
भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिञ्जयः ।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिर्जयद्रथः ॥ ८ ॥
अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः ।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ९ ॥

पच्चीसवाँ अध्याय ॥ २५ ॥—[गीता का पहला अध्याय]

धृतराष्ट्र ने पूछा—हे संजय ! धर्मभूमि कुरुक्षेत्र मे युद्ध के लिए एकत्र हुए कौरवों और पाण्डवों ने आगे फिर क्या किया ? ॥१॥ संजय ने कहा कि हे राजेन्द्र ! राजा दुर्योधन पाण्डव-सेना को व्यूह-रचना किये खड़ी देखकर द्रोणाचार्य के पास जाकर कहने लगे—॥२॥ हे आचार्य ! देखिए, आपके शिष्य बुद्धिमान् द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न ने पाण्डवों की महती सेना को व्यूह बना करके उचित स्थान पर स्थापित किया है ॥३॥ इस सेना में भीम और अर्जुन के समान युद्ध करनेवाले शूर और धनुर्द्धर देख पड़ते हैं ॥४॥ युयुधान, विराट, महारथी द्रुपद, धृष्टकेतु, चेकितान, महाबली काशिराज, पुरुजित्, कुन्तिभोज पुरुषश्रेष्ठ शैब्य, ॥५॥ विक्रमशाली युधामन्यु, महावीर उत्तमौजा, अभिमन्यु, द्रौपदी के पाँचों पुत्र आदि सब महारथी वीर पाण्डवों की सेना में हैं ॥६॥ अब हमारी सेना के प्रधान जो वीर सेनापति हैं उनके नाम भी

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥ १० ॥
अयनेषु च सर्वेषु यथा भागमवस्थिताः ।
भीष्ममेवाऽभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि ॥ ११ ॥
तस्य सञ्जनयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शङ्खं दध्मौ प्रतापवान् ॥ १२ ॥
ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः ।
सहसैवाऽभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥ १३ ॥
ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ ।
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः ॥ १४ ॥
पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः ।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्खं भीमकर्मा वृकोदरः ॥ १५ ॥
अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥ १६ ॥
काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः ।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चाऽपराजितः ॥ १७ ॥
द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते ।
सौभद्रश्च महाबाहुः शङ्खान्दध्मुः पृथक् पृथक् ॥ १८ ॥

सुनिए ॥७॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! आप, भीष्म पितामह, कर्ण, युद्ध में जय प्राप्त करनेवाले कृपाचार्य, अश्वत्थामा, विकर्ण, सोमदत्त के पुत्र भूरिश्रवा, जयद्रथ ॥८॥ और अन्य बहुत से शूरवीर अनेक अस्त्र-शस्त्र लिये मेरे निमित्त प्राण तक दे देने को तैयार हैं। वे सब युद्ध में निपुण हैं ॥९॥ भीष्म-द्वारा रक्षित हमारी सेना अपार है और भीमसेन द्वारा रक्षित पाण्डवों की सेना, उसके मुकाबिले में, थोड़ी है ॥१०॥ इस समय आप लोग अपने-अपने निर्दिष्ट स्थान पर, व्यूह के प्रवेश-द्वारों में, स्थित होकर भीष्म पितामह की ही रक्षा करें ॥११॥ अब महाप्रतापी कुरुवृद्ध पितामह ने दुर्योधन को प्रसन्न करने के लिए सिंहनाद करने के साथ ही ऊँचे स्वर से शङ्ख बजाया ॥१२॥ इसके पश्चात् शङ्ख, भेरी, पणव, नगाड़े, गोमुख आदि हज़ारों बाजे एकाएक बजाये जाने लगे। इससे बड़ा शब्द हुआ ॥१३॥ उधर श्वेत घोड़ों से युक्त बड़े रथ पर बैठे हुए माधव और अर्जुन ने अपने दिव्य शङ्ख बजाये ॥१४॥ श्रीकृष्ण ने पाञ्चजन्य शङ्ख, अर्जुन ने देवदत्त शङ्ख, भीमसेन ने पौण्ड्र नाम का महाशङ्ख, ॥१५॥ राजा युधिष्ठिर ने अनन्तविजय नाम का शङ्ख, नकुल ने सुघोष शङ्ख और सहदेव ने मणिपुष्पक शङ्ख बजाया ॥१६॥ इसी प्रकार काशिराज, शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, विराट, सात्यकि ॥१७॥ द्रुपद, अभिमन्यु और द्रौपदी के पुत्रों ने अलग-अलग अपने-अपने

स घोषो धार्त्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत् ।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन् ॥ १९ ॥
अथ व्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान्कपिध्वजः ।
प्रवृत्ते शस्त्रसम्पाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः ॥ २० ॥
हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते ।
अर्जुन उवाच—सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥ २१ ॥
यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान् ।
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन्रणसमुद्यमे ॥ २२ ॥
योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः ।
धार्त्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ॥ २३ ॥
सञ्जय उवाच—एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥ २४ ॥
भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम् ।
उवाच पार्थ पश्यैतान्समवेतान्कुरूनिति ॥ २५ ॥
तत्राऽपश्यत्स्थितान्पार्थः पितॄनथ पितामहान् ।
आचार्यान्मातुलान्भ्रातॄन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा ॥ २६ ॥
श्वशुरान्सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि ।
तान्समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान्बन्धूनवस्थितान् ॥ २७ ॥
कृपया परयाऽऽविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत् ।
अर्जुन उवाच—दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ॥ २८ ॥

शङ्ख बजाये ॥१८॥ वह शङ्खों की तुमुल ध्वनि पृथ्वी-मण्डल और आकाशमण्डल को प्रतिध्वनित करती हुई आपके पुत्रों के हृदयों को चीरने लगी ॥१९॥ हे महाराज ! अब कपिध्वज अर्जुन कौरवों को यथा-स्थान स्थित देखकर, शस्त्रों का चलना आरम्भ होने समय, अपने धनुष को उठाकर, श्रीकृष्ण से कहने लगे—हे वासुदेव ! दोनों सेनाओं के मध्य में मेरा रथ ले चलिए ॥२०।२१॥ मैं देखना चाहता हूँ कि दुर्बुद्धि दुर्योधन का प्रिय करने की इच्छा से युद्ध के लिए यहाँ पर कौन लोग आये हैं। इस समय किन लोगों के साथ मुझे युद्ध करना होगा और कौन लोग मुझसे युद्ध करेंगे, यही मैं जानना चाहता हूँ ॥२२।२३॥ सञ्जय कहते हैं कि गुडाकेश अर्जुन के ये वचन सुनकर श्रीकृष्ण ने रथ को दोनों सेनाओं के मध्य में ले जाकर खड़ा कर दिया और अर्जुन से कहा—हे पार्थ ! भीष्म, द्रोण आदि सब योद्धा, राजा लोग और कौरव ये सब एकत्र हैं, देख लो ॥२४।२५॥ अर्जुन ने देखा कि उनके पिता, पितामह, आचार्य, मामा, भाई, पुत्र, पौत्र, मित्र, ॥२६॥ ससुर और सुहृद् आदि सब आत्मीय और माननीय लोग

सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति ।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ॥ २९ ॥
गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते ।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ॥ ३० ॥
निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥ ३१ ॥
न कांक्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च ।
किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा ॥ ३२ ॥
येषामर्थे कांक्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च ।
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ॥ ३३ ॥
आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः ।
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः स्यालाःसम्बन्धिनस्तथा॥ ३४ ॥
एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन ।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किन्नु महीकृते ॥ ३५ ॥
निहत्य धार्त्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन ।
पापमेवाऽऽश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः ॥ ३६ ॥
तस्मान्नाऽर्हा वयं हन्तुं धार्त्तराष्ट्रान्सबान्धवान् ।
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव ॥ ३७ ॥

मरने-मारने के लिए तैयार खड़े हैं ॥२७॥ तब करुणा के आवेश से खिन्न होकर अर्जुन ने कहा—हे वासुदेव ! ये सब स्वजन युद्ध के लिए उपस्थित हैं ॥२८॥ इन्हें देखकर मेरा शरीर काँप रहा है, हाथ-पाँव सुन्न हुए जाते हैं, रोमाञ्च हो आया है ॥२९॥ हाथ से गाण्डीव धनुष गिर पड रहा है, मुख सूखा जा रहा है, त्वचा मानो जली जा रही है। मेरा मन भ्रान्त सा हो रहा है। मुझसे रथ पर बैठे नहीं रहा जाता ॥३०॥ हे केशव ! मुझे सब लक्षण विपरीत ही देख पड़ते हैं। युद्ध में भाई-बन्धुओं को मारने से मुझे कुछ कल्याण नहीं देख पडता ॥३१॥ हे श्रीकृष्ण ! इस तरह मैं न तो विजय चाहता हूँ, न राज्य और न सुख ही। हे गोविन्द ! हम लोग भाई-बन्धुओं को मारकर राज्य, सुखभोग या जीवन लेकर क्या करेंगे ? ॥३२॥ जिनके लिए हम राज्य, भोग और सुख की चाह करते हैं ये आचार्य, पिता, पुत्र, पितामह, मामा, ससुर, पोते, साले, समधी, नातेदार आदि सब तो युद्ध में, प्राणों की और धन की ममता छोड़कर, लड़ने को तैयार हैं ॥३३।३४॥ हे मधुसूदन ! इस तुच्छ पृथ्वी की कौन कहे, मैं तो त्रिलोकी के राज्य के लिए भी इन लोगों को मारना नहीं चाहता, ये लोग मुझे भले ही मार डालें ॥३५॥ हे जनार्दन ! धृतराष्ट्र के पुत्रों को मारने से ही हमें क्या प्रसन्नता होगी ? इन आततायियों को

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः ।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ॥ ३८ ॥
कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्त्तितुम् ।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥ ३९ ॥
कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः ।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ॥ ४० ॥
अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः ।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसङ्करः ॥ ४१ ॥
सङ्करो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥ ४२ ॥
दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसङ्करकारकैः ।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ॥ ४३ ॥
उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन ।
नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥ ४४ ॥
अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम् ।
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः ॥ ४५ ॥
यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः ।
धार्त्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥ ४६ ॥

मारकर हम पाप के ही भागी होंगे ॥३६॥ इसलिए बन्धु-बान्धवों सहित धृतराष्ट्र के पुत्रों को मारना उचित नहीं है। हे माधव! इन लोगों को मारकर हम कैसे सुखी हो सकेंगे? ॥३७॥ इन लोगों का चित्त लोभ के वश में हो रहा है, इसी कारण यद्यपि ये लोग कुलक्षय के दोष और मित्रद्रोह के पातक को नहीं देख पाते, ॥३८॥ तथापि हमको तो इस पाप से अलग हो जाना चाहिए, क्योंकि हम कुलक्षय के दोष को अच्छी तरह जानते हैं ॥३९॥ हे भगवन्! कुल का नाश होने पर सनातन कुलधर्मों का नाश होता है। कुलधर्म के नष्ट होने पर कुल को अधर्म छा लेता है ॥४०॥ अधर्म के बढ़ने पर कुलस्त्रियां दूषित होती हैं। हे वार्ष्णेय! कुलस्त्रियों के दूषित होने पर वर्णसङ्कर संतान उत्पन्न होती है ॥४१॥ वर्णसङ्कर सन्तान उत्पन्न होने पर कुल का संहार करनेवालों सहित सारा कुल नरकगामी होता है। कुल का विनाश करनेवालों के पितर, पिंड और तर्पण लुप्त हो जाने के कारण, नरक में गिरते हैं ॥४२॥ कुलनाशक लोगों के इन वर्णसङ्करकारी दोषों से सनातन जातिधर्म और कुलधर्म मिट जाते हैं ॥४३॥ हे जनार्दन! हम लोगों ने सुना है कि जिन मनुष्यों के कुलधर्म नष्ट हो जाते हैं वे चिरकाल तक नरक में पड़े रहते हैं। बड़े खेद की बात है कि हम राज्यसुख के लोभ से स्वजनों को मारने का पाप करने को उद्यत हैं ॥४५॥

सञ्जय उवाच—एवमुक्त्वाऽर्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत् ।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ॥ ४७ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादेऽर्जुनविषादयोगो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १॥
पर्वणि तु पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

यदि मैं किसी प्रकार से अपना बचाव न करूँ, निहत्था खडा रहूँ और उस दशा में ये धृतराष्ट्र के पुत्र शस्त्र लेकर मुझको मार डालें तो यह मेरे लिए बहुत ही श्रेष्ठ होगा ॥४६॥ सञ्जय कहते हैं-हे महाराज! युद्धभूमि मे श्रीकृष्ण से यो कहकर, धनुष और बाण फेंककर, शोकाकुल अर्जुन रथ पर बैठ गये ॥४७॥

भीष्मपर्व का पचीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २५ ॥—गीता का पहला अध्याय समाप्त हुआ।

अथ षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सञ्जय उवाच—तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥ १ ॥
श्रीभगवानुवाच—कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥ २ ॥
क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप ॥ ३ ॥
अर्जुन उवाच—कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन ।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥ ४ ॥
गुरूनहत्वा हि महानुभावाञ्छ्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके ।
हत्वाऽर्थकामांस्तु गुरूनिहैव भुञ्जीय भोगान्रुधिरप्रदिग्धान् ॥ ५ ॥
न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः ।
यानेव हत्वा न जिजीविषामस्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्त्तराष्ट्राः ॥ ६ ॥

छब्बीसवाँ अध्याय ॥ २६ ॥—[गीता का दूसरा अध्याय]

सञ्जय कहते हैं कि हे राजेन्द्र! इस प्रकार करुणा के वशीभूत होकर, नेत्रों में आसू भरे हुए, खिन्न अर्जुन से श्रीकृष्ण ने कहा—॥१॥ हे अर्जुन! इस बुरे समय में तुम्हें यह कापुरुषों का सा निन्दनीय, स्वर्ग की गति में विघ्न डालनेवाला मोह कैसे हुआ? हे अर्जुन! तुम इस समय यह कायरपना, यह क्लीबों का सा भाव, छोडो। तुम ऐसे वीर पुरुषों के योग्य यह भाव नहीं है। हे परन्तप! हृदय की क्षुद्र दुर्बलता को छोडकर उठो ॥२।३॥ अर्जुन ने कहा—हे शत्रुनाशन! पूजा के योग्य भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य के ऊपर मैं किस तरह प्रहार करूँगा? किस तरह उनसे युद्ध करूँगा? ॥४॥ महानुभाव बडे-बूढों की हत्या न करके जो इस लोक में भीख मागकर खाना पडे तो वह बहुत अच्छा है। लालची गुरुजन का वध करके इस लोक में रुधिर-लिप्त भोग भोगने को मिलेंगे। मैं वैसा सुख नहीं चाहता ॥५॥ मुझे पता नहीं कि इस युद्ध में किस पक्ष की हार-जीत होगी, और मेरे लिए हार अच्छी है या जीत। जिनको

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः ।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ७
नहि प्रपश्यामि ममाऽपनुद्याद्यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम् ।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं राज्यं सुराणामपि चाऽऽधिपत्यम् ॥ ८ ॥

सञ्जय उवाच—एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परन्तप ।
न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ॥ ९ ॥
तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः ॥ १० ॥

श्रीभगवानुवाच—अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासूनगतासूंश्च नाऽनुशोचन्ति पण्डिताः ॥ ११ ॥
न त्वेवाऽहं जातु नाऽऽसं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।
नचैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥ १२ ॥
देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥ १३ ॥
मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः ।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥ १४ ॥

मारे जाने पर हम स्वयं जीना नहीं चाहते वे ही धृतराष्ट्र के पुत्र हमारे सामने युद्ध करने को खड़े हैं ॥६॥ हे भगवन् ! मेरी प्रवृत्ति इस समय करुणा के दोष से बेकाम हो रही है और मेरा चित्त धर्म के विषय में कुछ काम नहीं देता। मैं आपका शरणागत शिष्य हूँ। मैं आपसे पूछता हूँ, मेरे लिए जो निश्चित रूप से सबसे अच्छा हो उसी का उपदेश कीजिए ॥७॥ पृथ्वी का निष्कण्टक समृद्ध राज्य और देवताओं का आधिपत्य प्राप्त होने पर भी मेरे इस, इन्द्रियों को निकम्मा करनेवाले, शोक को मिटानेवाला कोई उपाय नहीं देख पड़ता। इसलिए मैं युद्ध न करूँगा ॥८॥ सञ्जय कहते हैं कि हे शत्रुदमन ! हृषीकेश गोविन्द से यों कहकर अर्जुन चुप हो गये ॥९॥ तब श्रीकृष्ण ने हँसकर दोनों सेनाओं के बीच खड़े हो रहे अर्जुन से कहा—॥१०॥ हे अर्जुन ! जिनका शोक न करना चाहिए उनका शोक करते हुए तुम ऐसी बातें कह रहे हो जो सुनने में तो अच्छी जान पड़ती हैं, परन्तु वास्तव में अच्छी हैं नहीं। देखो, जो पण्डित हैं वे जीते या मरे किसी के लिए शोक नहीं करते ॥११॥ पहले भी मैं, तुम और ये सब राजा लोग उपस्थित थे, और इसके पश्चात् भी मैं, तुम और ये सब रहेंगे ॥१२॥ देहधारी आत्मा को इस देह में जैसे बचपन, जवानी, बुढ़ापा आदि दशाएँ प्राप्त होती हैं वैसे ही एक शरीर छोड़कर दूसरे शरीर को प्राप्त होना है। जो धीर पुरुष हैं वह उसमें व्याकुलता को प्राप्त नहीं होता ॥१३॥ विषयों के साथ इन्द्रियों का सम्बन्ध ही शीत-उष्ण, सुख-दुःख आदि का देनेवाला है। हे अर्जुन ! उनका सम्बन्ध कभी होता है और कभी नष्ट हो जाता है, अतएव अनित्य है। हे भारत ! इसलिए तुम उन्हें सहन करो ॥१४॥ हे

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥ १५ ॥
नाऽसतो विद्यते भावो नाऽभावो विद्यते सतः ।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ १६ ॥
अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ।
विनाशमव्ययस्याऽस्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ॥ १७ ॥
अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ॥ १८ ॥
य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नाऽयं हन्ति न हन्यते ॥ १९ ॥
न जायते म्रियते वा कदाचिन्नाऽयं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ २० ॥
वेदाऽविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् ।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम् ॥ २१ ॥
वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥ २२ ॥
नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥ २३ ॥

पुरुषश्रेष्ठ ! यह अनित्य सम्बन्ध अपने संयोग-वियोग से जिस पुरुष को दुखी नहीं कर पाता वही सुख और दुःख को समान समझनेवाला धीर पुरुष अमृत-भाव अर्थात् मुक्ति को प्राप्त होता है ॥१५॥ तत्त्वदर्शी पुरुषों ने यह सिद्धान्त किया है कि जो नहीं (असत्) है वह हो नहीं सकता, और जो है (सत्) उसका अभाव नहीं होता । आत्मा सर्वत्र व्याप्त है, उसका विनाश नहीं है । उस अव्यय पुरुष को कोई नष्ट नहीं कर सकता । यह देह अनित्य है, किन्तु शरीरी जीवात्मा नित्य है । वह अविनाशी और अप्रमेय है। इसलिए हे भारत ! तुम युद्ध करो ॥१६।१८॥ जो कोई इस जीवात्मा को मारनेवाला समझता है, और जो कोई इसे मरनेवाला समझता है, वे दोनों अज्ञानी हैं; क्योंकि जीवात्मा न तो किसी को मारता है और न किसी के द्वारा मारा जाता है ॥१९॥ जीवात्मा का न तो जन्म या मरण है और न वह बारम्बार उत्पन्न या वर्द्धित होता है । वह अजन्मा, नित्य और पुराणपुरुष है । शरीर के नष्ट हो जाने पर भी जीवात्मा का विनाश नहीं होता ॥२०॥ जो पुरुष जीवात्मा को अविनाशी, अज, अव्यय और नित्य जानता है वह न तो किसी को मारता है और न किसी के द्वारा किसी को मरवाता है ॥२१॥ मनुष्य जैसे मलिन वस्त्र उतारकर नये वस्त्र पहनता है वैसे ही यह आत्मा जीर्ण शरीर को छोड़कर दूसरा नया

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥ २४ ॥
अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ।
तस्मादेवं विदित्वैनं नाऽनुशोचितुमर्हसि ॥ २५ ॥
अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ।
तथापि त्वं महाबाहो नैनं शोचितुमर्हसि ॥ २६ ॥
जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ २७ ॥
अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥ २८ ॥
आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चाऽन्यः ।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः श्रृणोति श्रुत्वाऽप्येनं वेद न चैव कश्चित् ॥ २९ ॥
देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत ।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ ३० ॥
स्वधर्ममपि चाऽवेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि ।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ॥ ३१ ॥

शरीर ग्रहण कर लेता है ॥२२॥ आत्मा को शस्त्र काट नहीं सकते, अग्नि उसे जला नहीं सकती, जल उसे गीला नहीं कर सकता, वायु उसे सुखा नहीं सकती ॥२३॥ वह अच्छेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य और अशोष्य है। वह नित्य, सर्वव्यापी, स्थिर, अचल और सनातन है ॥२४॥ वह नेत्र आदि इन्द्रियों की पहुँच से बाहर, अचिन्त्य और विकार-रहित है। इस कारण तुम जीवात्मा को ऐसा समझकर शोक और मोह न करो ॥२५॥ जीवात्मा को जो तुम नित्यजात समझते हो, या नित्यमृत ही समझते हो, तो भी हे महाबाहु! उसके लिए तुमको शोक न करना चाहिए, ॥२६॥ क्योंकि जो उत्पन्न हुआ है उसकी मृत्यु निश्चित है और वैसे ही जो मरता है उसका जन्म निश्चित है। अतएव इस अवश्य होनेवाली बातों के लिए शोक करना अयोग्य है ॥२७॥ हे भारत! सब प्राणियों का आदि और अन्त अव्यक्त है केवल जन्म और मृत्यु के मध्य का समय व्यक्त (प्रकट) है। इसलिए उसके बारे में शोक करना वृथा है। ॥२८॥ कोई इस जीवात्मा को आश्चर्य सा देखता है, कोई आश्चर्य सा वर्णन करता है और कोई आश्चर्य सा सुनता है। कोई ऐसे भी हैं कि जीवात्मा का वर्णन सुनकर भी इसके बारे में कुछ नहीं जान सकते ॥२९॥ हे भारत! यह देहधारी जीवात्मा सभी देहों में नित्य अवध्य है। इस कारण किसी प्राणी के लिए शोक करना तुम्हें उचित नहीं ॥३०॥ इसके अतिरिक्त अपने अर्थात् क्षत्रिय के धर्म का भी ख्याल करके तुम्हें इस तरह मोहाभिभूत या कातर न होना चाहिए। क्षत्रिय के लिए धर्म-युद्ध

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् ।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ॥ ३२ ॥
अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि ।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि ॥ ३३ ॥
अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम् ।
सम्भावितस्य चाऽकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥ ३४ ॥
भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः ।
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ॥ ३५ ॥
अवाच्यवादांश्च बहून्वदिष्यन्ति तवाऽहिताः ।
निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम् ॥ ३६ ॥
हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥ ३७ ॥
सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥ ३८ ॥
एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु ।
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि ॥ ३९ ॥
नेहाऽभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥ ४० ॥

से बढ़कर और कोई श्रेष्ठ काम हो ही नहीं सकता ॥३१॥ *हे पार्थ ! युद्ध तो आप से ही प्राप्त, खुला* हुआ स्वर्ग का द्वार है, वह बड़भागी क्षत्रियों को प्राप्त होता है ॥३२॥ जो तुम यह धर्मयुद्ध नहीं करोगे तो अपने कर्तव्य और कीर्ति को गँवाकर पाप के भागी बनोगे । ॥३३॥ चिरकाल तक लोगों में तुम्हारी निन्दा की चर्चा होती रहेगी । तुम्हें यह प्रतीत ही है कि प्रतिष्ठित और कीर्तिशाली पुरुष के लिए निन्दा मृत्यु से भी बढ़कर है ॥३४॥ जो लोग अब तक तुम्हारा बहुत सम्मान करते आये हैं वही महारथी योद्धा समझेंगे कि तुम भय के मारे युद्ध नहीं करते हो । जिनकी दृष्टि में तुम बहुत कुछ थे उन्हीं की दृष्टि में तुम कुछ भी न रहोगे ॥३५॥ *शत्रु-पक्ष के लोग तरह-तरह से तुम्हारी निन्दा करेंगे।* तुम्हारी सामर्थ्य की निन्दा होने से बढ़कर दुःख की बात और क्या है ? ॥३६॥ मारे जाओगे तो स्वर्ग प्राप्त होगा और जो शत्रुओं पर विजय पाओगे तो पृथ्वी-मण्डल का राज्य करोगे । इसलिए हे अर्जुन ! युद्ध का दृढ़ निश्चय करके तैयार हो जाओ ॥३७॥ सुख-दुःख, लाभ हानि, जय-पराजय को समान समझकर युद्ध करो । इस तरह तुम पाप के भागी नहीं बनोगे ॥३८॥ हे पार्थ ! यह मैंने तुमको सांख्यशास्त्र (आत्मतत्त्व के ज्ञान) की बुद्धि बताई है । अब इसी बुद्धि को कर्मयोग के अनुसार तुमसे कहता हूँ ॥३९॥

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन ।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥ ४१ ॥
यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः ।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः ॥ ४२ ॥
कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम् ।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ॥ ४३ ॥
भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयाऽपहृतचेतसाम् ।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥ ४४ ॥
त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ॥ ४५ ॥
यावानर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके ।
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥ ४६ ॥
कर्मण्येवाऽधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥ ४७ ॥

इस बुद्धि से युक्त होकर तुम कर्म-बन्धन से छूट जाओगे। यह कर्मयोग का अनुष्ठान कभी निष्फल नहीं होता और इसमें दोष भी नहीं होता। इस धर्म का थोड़ासा अनुष्ठान भी मनुष्य को बड़ी बड़ी विपत्तियों से बचा लेता है ॥४०॥ हे कुरुनन्दन! इस कर्मयोग में निश्चयात्मिका एक ही बुद्धि होती है। किन्तु जिन लोगों में निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं है, अर्थात् जो विवेकहीन या अव्यवस्थित चित्त हैं, उनकी बुद्धियाँ अनन्त और बहुत शाखाओंवाली होती हैं ॥४१॥ जो लोग लम्बी-चौड़ी और कानों को सुख देनेवाली वाक्यावली पर लट्टू हैं, बहुफलदायक कर्मकाण्डमूलक वेदवाक्य ही जिन्हें प्रतिग्रह हैं, जो लोग फलसाधन के सिवा और कुछ भी नहीं स्वीकार करते और इच्छाओं के दास हैं उन अविवेकी मूढ पुरुषों की बुद्धि एकाग्रता के विषय में स्थिर नहीं होती, जो लोग स्वर्ग को ही परम पुरुषार्थसाधक समझते हैं, जन्म-कर्म फलदायक और भोग तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति के साधन स्वरूप बहुविध क्रिया प्रकाशक वाक्यों की ओर जिनका चित्त आकृष्ट हो रहा है और जो भोग तथा ऐश्वर्य के भूखे हैं, उन अविवेकी मूढ पुरुषों की बुद्धि समाधि या एकाग्रता के विषय में स्थिर नहीं होती। कामनापरतन्त्र लोगों के लिए वेद-शास्त्र कर्मफल का प्रतिपादन करते हैं। हे अर्जुन! तुम शीत-उष्ण, सुख दुःख आदि द्वन्द्व धर्मों को सहते हुए धैर्यवान्, योगक्षेम-रहित, प्रमाद-शून्य और निष्काम बनो ॥४२।४५॥ यद्यपि बड़े भारी जलाशय में बहुत अधिक जल रहता है फिर भी मनुष्य उस सब जल को अपने व्यवहार में नहीं लाता, वह तो उतने ही जल से काम लेता है जितने में नित्यकर्म स्नान आदि करने और खाने-पीने आदि का काम हो जाय, बस, इतना ही प्रयोजन व्युत्पन्न मनीषी ब्राह्मण का सब वेदों में है, अर्थात् वेद के एक अङ्ग उपनिषद् का श्रवण करने से ही सम्पूर्ण वेदों का प्रयोजन सिद्ध हो जायगा क्योंकि

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥ ४८ ॥
दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनञ्जय ।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ॥ ४९ ॥
बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ॥ ५० ॥
कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः ।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ॥ ५१ ॥
यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ॥ ५२ ॥
श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥ ५३ ॥
अर्जुन उवाच—स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव ।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ॥ ५४ ॥
श्रीभगवानुवाच—प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान् ।
आत्मन्येवाऽऽत्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥ ५५ ॥

सिद्धि के लिए पूरे वेदों के अनुष्ठान की न तो आवश्यकता है और न एक जन्म में उनका अनुष्ठान ही पूर्ण हो सकता है ॥४६॥ हे अर्जुन ! तुम्हें कर्म करने का ही अधिकार है। कर्म करो, किन्तु कर्मफल की इच्छा मत करो। तुम कर्मफल का कारण मत बनो और कर्म-त्याग में तुम्हारी आसक्ति न हो ॥४७॥ तुम आसक्ति छोड़कर, ईश्वरानुरक्त होकर, सिद्धि और असिद्धि को समान समझते हुए, कर्म के अनुष्ठान में प्रवृत्त होओ। सिद्धि और असिद्धि को समान समझना ही तो योग है ॥४८॥ हे धनञ्जय ! बुद्धियोग की अपेक्षा फलापेक्षी कर्म अत्यन्त निकृष्ट है। इसलिए तुम फल की इच्छा छोड़कर बुद्धि का ही आश्रय लो। फल की चाह रखनेवाले कृपण या दीन हैं ॥४९॥ कर्मयोग-विषयिणी बुद्धि से युक्त पुरुष इस लोक में पुण्य और पाप दोनों को छोड़ देता है। इसलिए तुम कर्मयोग के लिए यत्न करो। ईश्वर की आराधना और कर्तव्य कर्म के संपादन द्वारा बन्धन के कारण रूप कर्मों से अपने को मुक्त करने का कौशल ही योग है ॥५०॥ कर्मयोगी ज्ञानी पुरुष कर्म के फल को त्यागकर, जन्म-मरण के बन्धन से मुक्ति प्राप्त करते हुए, अनामय अमृत पद को प्राप्त होते हैं ॥५१॥ जब तुम्हारी बुद्धि मोह की दलदल से निकल आवेगी तब तुम्हें सुनने योग्य और सुने हुए विषय से वैराग्य उत्पन्न हो जायगा ॥५२॥ तुम्हारी बुद्धि अनेक प्रकार के वैदिक और लौकिक विषयों को सुनकर चकरा सी गई है। जब तुम्हारी बुद्धि निश्चल होकर समाधि में स्थित होगी तब तुम्हें योग अर्थात् तत्त्वज्ञान प्राप्त होगा ॥५३॥ अर्जुन ने पूछा—

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ ५६ ॥
यः सर्वत्राऽनभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।
नाऽभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ५७ ॥
यदा संहरते चाऽयं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ५८ ॥
विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्त्तते ॥ ५९ ॥
यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः ।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥ ६० ॥
तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ६१ ॥
ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते ।
सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥ ६२ ॥
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥ ६३ ॥

हे वासुदेव ! समाधिस्थ और स्थितप्रज्ञ व्यक्ति का लक्षण क्या है ? स्थितबुद्धि पुरुष की भाषा, अथवा तथा व्यवहार क्या और कैसा होता है ? ॥५४॥ वासुदेव ने कहा — हे अर्जुन ! जो व्यक्ति सब तरह की कामनाओं को त्याग देता है, जिसकी आत्मा अपने में ही सन्तुष्ट रहती है, वही स्थितप्रज्ञ कहलाता है ॥५५॥ जिसका चित्त दुःख से खिन्न नहीं होता और जो सुख की इच्छा नहीं रखता वही स्थितप्रज्ञ है ॥५६॥ जो पुत्र आदि पर ममता या स्नेह नहीं रखता और जो इष्ट या अनिष्ट विषय उपस्थित होने पर हर्ष या द्वेष नहीं प्रकट करता, वही स्थितप्रज्ञ है ॥५७॥ जो पुरुष इन्द्रियों को उनके विषयों से इसी तरह खींच लेता है जैसे कछुआ अपने अंगों को समेट लेता है उसकी प्रज्ञा स्थिर समझनी चाहिए ॥५८॥ निराहार देहधारी व्यक्ति की इन्द्रियाँ भी विषयों को छोड़ देती हैं, आतुर या निराहार व्यक्ति सामर्थ्य न होने के कारण विषयों से हट जाता है, किन्तु वह स्थितप्रज्ञ नहीं कहा जा सकता ॥५९॥ हे अर्जुन ! ये प्रबल इन्द्रियाँ विषयत्याग के लिए लगातार यत्न करनेवाले विद्वान् पुरुष के भी मन को विषयों की ओर खींच लेती हैं ॥६०॥ योगी या निराहार पुरुष की इन्द्रियाँ विषयसेवन में असमर्थ होकर विषयों को छोड़ देती हैं सही, किन्तु विषयों की वासना नहीं हटती । स्थितप्रज्ञ पुरुष ईश्वर का साक्षात्कार कर विषयवासना से छूट जाते हैं । इसे भी कहा जा सकता है कि लगातार [illegible] पुरुष के भी मन को इन्द्रियाँ बलपूर्वक खींच कर लेती हैं । इसलिए उन इन्द्रियों को वश में करके

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥ ६४ ॥
प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥ ६५ ॥
नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चाऽयुक्तस्य भावना ।
न चाऽभावयत शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ॥ ६६ ॥
इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते ।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाऽम्भसि ॥ ६७ ॥
तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ६८ ॥
या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥ ६९ ॥
आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ॥ ७० ॥
विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः ।

ईश्वरपरायण और समाहित होने पर जिसकी इन्द्रिया विषयों की ओर चलायमान नहीं होतीं उसी की प्रज्ञा निश्चल है, वही स्थितप्रज्ञ है। विषयों के चिन्तन से उधर आसक्ति होती है। आसक्ति से इच्छा होती है, इच्छासे क्रोध, क्रोध से मोह, मोह से स्मृतिभ्रंश, स्मृतिभ्रंश से बुद्धिनाश और बुद्धिनाश से विनाश होता है ॥६१।६३॥ जिसने आत्मा या मन को वश में कर लिया है, वह राग-द्वेष-हीन और आत्मवशीभूत इन्द्रियों के द्वारा विषय भोग करके भी आत्मप्रसाद (सतोष) प्राप्त करता है ॥६४॥ सन्तोष के अवलम्बन से सब प्रकार के दुःख नष्ट हो जाते हैं। जिसे सन्तोष प्राप्त हो जाता है उसकी बुद्धि शीघ्र ही स्थिर हो जाती है ॥६५॥ जो अयुक्त अर्थात् अजितेन्द्रिय है वह बुद्धिहीनता के कारण कुछ विचार नहीं कर सकता। जो विचार नहीं कर सकता उसे शान्ति नहीं प्राप्त होती और जो अशान्त है उसे सुख कहा ? ॥६६॥ विषयों में विचरनेवाली इन्द्रियों का अनुगामी मन मनुष्य की प्रज्ञा को वैसे ही चारों ओर डावाडोल करता रहता है, जैसे नदी में नाव आदि को आधी इधर-उधर हिलाती रहती है॥६७॥ इसलिए हे महाबाहु अर्जुन ! स्थिरबुद्धि और दृढप्रज्ञ वही है जिसकी कि इन्द्रिया विषयों से हटाई जाकर वश में कर ली गई हैं। जिनकी बुद्धि अज्ञान से अन्धकार से ढकी हुई है उनके लिए यह ब्रह्मनिष्ठा रात्रि के समान है ॥६८॥ उस ब्रह्मनिष्ठा की रात में जितेन्द्रिय योगी जागते रहते हैं। और सब प्राणी जिस विषयनिष्ठा रूप दिन में जागते रहते हैं, वह दिन ही तत्त्वदर्शी मुनि के लिए रात्रिरूप है ॥६९॥ सब नदिया जैसे अचलप्रतिष्ठ आपूर्यमाण समुद्र में जाकर मिल जाती हैं वैसे ही सब काम (अर्थात् विषयकामनाएँ) जिसमें लीन हो जाते हैं वही योगी शान्ति पाता है—मुक्त होता है। कामकामी अर्थात्

निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति ॥ ७१ ॥
एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वाऽस्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥ ७२ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे सांख्ययोगो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥
पर्वणि तु षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

भोगार्थी पुरुष उस शान्ति या मुक्ति को नहीं प्राप्त कर सकता ॥७०॥ हे पार्थ ! जो पुरुष सब इच्छाएँ त्यागकर निःस्पृह, निरहङ्कार, निर्मम होकर—इन्द्रिय-विषयों का उपभोग करता है वही शान्ति प्राप्त करता है ॥७१॥ हे अर्जुन ! यह ब्राह्मी स्थिति (ब्रह्म में लीन होने की अवस्था) है । ब्रह्मज्ञाननिष्ठ पुरुष इस स्थिति को पाकर मोहित नहीं होते । अन्तकाल में भी इस ब्रह्मनिष्ठा में स्थित होनेवाला पुरुष ब्रह्म को प्राप्त होता है ॥७२॥

भीष्मपर्व का छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २६ ॥—[गीता का दूसरा अध्याय समाप्त हुआ]



अथ सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अर्जुन उवाच
ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन ।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव ॥ १ ॥
व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे ।
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥ २ ॥

श्रीभगवानुवाच
लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ॥ ३ ॥
न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते ।
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ॥ ४ ॥
न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥ ५ ॥

सत्ताईसवाँ अध्याय ॥ २७ ॥—[गीता का तीसरा अध्याय]

अर्जुन ने कहा—हे केशव ! यदि तुम्हारा यह सिद्धान्त है कि कर्म की अपेक्षा ज्ञान ही श्रेष्ठ है, तो फिर मुझे इस घोर कर्म, हत्याकाण्ड, में क्यों नियुक्त करते हो ? ॥१॥ तुम कभी तो ज्ञान की और कभी कर्म की प्रशंसा करके मेरी बुद्धि को मानों मोह में डाल रहे हो । इसलिए निश्चय करके मुझसे एक ही बात कहो, जिससे मुझे कल्याण प्राप्त हो ॥२॥ श्रीकृष्ण ने कहा—हे अर्जुन ! मैं पहले ही कह चुका हूँ कि इस लोक में निष्ठा दो प्रकार की है । निर्मल चित्तवाले सांख्य मतावलम्बियों का ज्ञानयोग और कर्मयोगियों का कर्मयोग मार्ग है ॥३॥ पुरुष कर्म किये बिना नैष्कर्म्य (ज्ञान) को नहीं प्राप्त होता । ज्ञान प्राप्त किये बिना केवल संन्यास से भी सिद्धि नहीं प्राप्त की जा सकती ॥४॥ कोई पुरुष पल भर भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता । इच्छा न रहने पर भी प्रकृति के गुण विवश करके

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥ ६ ॥
यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्याऽऽरभतेऽर्जुन ।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥ ७ ॥
नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ।
शरीरयात्राऽपि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः ॥ ८ ॥
यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः ।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर ॥ ९ ॥
सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा सहोवाच प्रजापतिः ।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥ १० ॥
देवान्भावयताऽनेन ते देवा भावयन्तु वः ।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥ ११ ॥
इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञ भाविताः ।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एव सः ॥ १२ ॥
यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥ १३ ॥
अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः ।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥ १४ ॥

उससे कर्म करा लेते हैं ॥५॥ जो व्यक्ति कर्मेन्द्रियों को संयन करके मन ही मन इन्द्रियों के विषयों का ध्यान करता है, वह मूढात्मा पुरुष कपटाचारी कहलाता है ॥६॥ जो व्यक्ति ज्ञानेन्द्रियों को वश मे करके अनासक्त भाव से कर्मेन्द्रियों से कर्म करता है वही कर्मयोगी श्रेष्ठ है ॥७॥ इमसे तुम नियमित कर्म का निर्वाह करो । कर्म छोड़ देने से तो कर्म करना ही श्रेष्ठ है । कर्मत्याग कर देने मे तुम शरीर धारण भी नहीं कर सकते ॥८॥ यज्ञ या विष्णु के लिए जो कर्म किया जाता है उसके अतिरिक्त और सब कर्म बन्धनस्वरूप हैं । इस कारण तुम आसक्ति छोड़कर भगवत्प्रीत्यर्थ कर्म करो ॥९॥ पूर्व समय मे प्रजापति ब्रह्मा ने यज्ञ सहित सब प्रजा को उत्पन्न करके कहा कि तुम इसी यज्ञ के द्वारा फलो-फलो । यह यज्ञ ही तुम्हारे मनोरथों को पूर्ण करेगा ॥१०॥ तुम लोग यज्ञ के द्वारा देवताओं को सन्तुष्ट करो और वे देवता तुम्हारी वृद्धि करें । इस तरह एक दूसरे को परिवर्द्धित अथवा सन्तुष्ट करने से दोनो को परम कल्याण प्राप्त होगा ॥११॥ यज्ञ से सन्तुष्ट देवगण तुम्हें अभिलषित फल देंगे । जो पुरुष देवताओं के दिये हुए भोग्य पदार्थों को, देवताओं को अर्पण किये बिना, स्वयं भोग करता है वह चोर है ॥१२॥ सज्जन पुरुष यज्ञ से बचा हुआ पदार्थ खा करके सब पातकों से छुटकारा पा जाते हैं । जो लोग

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माऽक्षरसमुद्भवम् ।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥
एवं प्रवर्तितं चक्रं नाऽनुवर्तयतीह यः ।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ॥ १६ ॥
यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ।
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥ १७ ॥
नैव तस्य कृतेनाऽर्थो नाऽकृतेनेह कश्चन ।
न चाऽस्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥ १८ ॥
तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥ १९ ॥
कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।
लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि ॥ २० ॥
यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ २१ ॥
न मे पार्थाऽस्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन ।
नाऽनवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ॥ २२ ॥
यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः ।
मम वर्त्माऽनुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥ २३ ॥

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम् ।
सङ्करस्य च कर्त्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥ २४ ॥
सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत ।
कुर्याद्विद्वांस्तथाऽसक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ॥ २५ ॥
न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम् ।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन् ॥ २६ ॥
प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।
अहङ्कारविमूढात्मा कर्त्ताऽहमिति मन्यते ॥ २७ ॥
तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः ।
गुणा गुणेषु वर्त्तन्त इति मत्वा न सज्जते ॥ २८ ॥
प्रकृतेर्गुणसंमूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु ।
तानकृत्स्नविदो मन्दान्कृत्स्नविन्न विचालयेत् ॥ २९ ॥
मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याऽध्यात्मचेतसा ।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः ॥ ३० ॥
ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः ।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः ॥ ३१ ॥

लिए पृथ्वीमण्डल में अप्राप्य कुछ नहीं देखता इसी से मेरे लिए कर्तव्य कर्म भी कुछ नहीं है, तो भी मैं कर्म करता हूँ ॥२२॥ यदि मैं आलस्य छोड़कर कर्म न करूँ तो सभी लोग, मेरे अनुगामी होकर, कर्म करना छोड़ दें ॥२३॥ इस प्रकार मेरे कर्म न करने से इन सब लोगों के नष्ट होने की आशङ्का है। ऐसा करने से मैं वर्णसङ्कर का करनेवाला और प्रजा की मलिनता का मूल कारण बन जा सकता हूँ ॥२४॥ इसलिए, मूढ लोग जैसे फल की कामना से कर्म करते हैं वैसे ही ज्ञानी पुरुष आसक्ति त्यागकर, लोगों के धर्म की रक्षा के लिए, कर्म करते रहते हैं ॥२५॥ ज्ञानी लोग कर्म में आसक्त, निर्बोध पुरुषों की बुद्धि को भ्रम में न डालकर स्वयं तरह-तरह के कर्म करते हुए, उन्हें कर्म करने में लगाते हैं ॥२६॥ सभी कर्म प्रकृति के गुणरूप इन्द्रियों के द्वारा होते हैं, किन्तु जिनकी बुद्धि अहङ्कार से अभिभूत हो रही है वे लोग अपने को ही उन कर्मों का करनेवाला समझते हैं ॥२७॥ इन्द्रियाँ ही विषयों की इच्छा करती हैं, यह जानकर गुण-कर्म-विभाग के तत्त्व को जाननेवाला पुरुष विषयों में आसक्त नहीं होता ॥२८॥ जो लोग प्रकृति के सत्त्व आदि गुणों से विमुग्ध होकर इन्द्रियों के वशीभूत होते हैं वैसे अल्पदर्शी विमूढ व्यक्तियों को, सर्वज्ञ पुरुष का कर्तव्य है कि, कभी कर्म से विचलित न करे ॥२९॥ तुम मुझमें सब कर्म अर्पण करके तथा यह सोचकर कि मैं अन्तर्यामी पुरुष के अधीन होकर कर्म करता हूँ,—कामना, ममता और शोक त्यागकर—समर के लिए तैयार हो जाओ ॥३०॥ जो लोग असूयाहीन और श्रद्धायुक्त होकर सदा मेरे अनुगामी होते हैं, वे सब कर्मों के बन्धन से छुटकारा पा जाते हैं ॥३१॥ जो लोग

ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नाऽनुतिष्ठन्ति मे मतम् ।
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः ॥ ३२ ॥
सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ॥ ३३ ॥
इन्द्रियस्येन्द्रियस्याऽर्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ ॥ ३४ ॥
श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥ ३५ ॥
अर्जुन उवाच — अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः ।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ॥ ३६ ॥
श्रीभगवानुवाच काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥ ३७ ॥
धूमेनाऽऽव्रियते वह्निर्यथाऽऽदर्शो मलेन च ।
यथोल्बेनाऽऽवृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥ ३८ ॥
आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणाऽनलेन च ॥ ३९ ॥
इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याऽधिष्ठानमुच्यते ।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥ ४० ॥

असूया के वश होकर इस मेरे मन को ईर्ष्या की दृष्टि से देखते हैं और मेरे मत के अनुसार नहीं चलते, उन सर्वज्ञान-विमूढ़ पुरुषों को अचेत और नष्ट समझो; अर्थात् वे ब्रह्म और कर्म के विषय में विमोहित होकर नष्ट होते हैं ॥३२॥ ज्ञानी व्यक्ति भी अपने स्वभाव के अनुरूप कर्म करते हैं । इसलिए जब सभी प्राणी स्वभाव के अनुगामी होते हैं तब इन्द्रियनिग्रह करने से क्या हो सकता है ? ॥३३॥ हर एक इन्द्रिय में अनुकूल विषय के प्रति आसक्ति और प्रतिकूल विषय के प्रति द्वेष है । ये दोनों बातें मोक्षप्राप्ति में बाधक हैं । इसलिए इनके वशीभूत होना उचित नहीं ॥३४॥ अच्छी तरह अनुष्ठित पराये धर्म की अपेक्षा कुछ गुण-हीन होने पर भी अपना धर्म श्रेष्ठ है । पराया धर्म अत्यन्त भयङ्कर है । इसलिए अपने धर्म के पालन में मर मिटना भी श्रेयस्कर है ॥३५॥ अर्जुन ने पूछा—हे वासुदेव ! यह पुरुष किसकी प्रेरणा से, इच्छा न होने पर भी, बलपूर्वक नियुक्त सा होकर पापकर्म करता है ? ॥३६॥ वासुदेव ने कहा—हे अर्जुन ! यह काम ही क्रोध के रूप में परिणत, रजोगुण से उत्पन्न, अत्यन्त उग्र और महापापरूप है । इसे तृप्त करना बहुत ही कठिन काम है । यही मुक्ति के मार्ग में बाधा पहुँचानेवाला शत्रु है ॥३७॥ जैसे धुएँ से अग्नि, मैल से दर्पण और जरायु (एक प्रकार की महीन झिल्ली) से

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा ।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते ॥ १४ ॥
एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः ।
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ॥ १५ ॥
किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः ।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥ १६ ॥
कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः ।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥ १७ ॥
कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः ।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥ १८ ॥
यस्य सर्वे समारम्भाः कामसङ्कल्पवर्जिताः ।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः ॥ १९ ॥
त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः ।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्चित्करोति सः ॥ २० ॥
निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाऽऽप्नोति किल्बिषम् ॥ २१ ॥

उसी प्रकार भजता हूँ । हे पार्थ ! सभी मनुष्य मेरे ही मार्ग का अनुगमन करते हैं ॥११॥ मनुष्य-लोक में सब कर्म शीघ्र ही सफल होते हैं और उनकी सिद्धि प्राप्त होती है । इसी कारण मनुष्य, कर्मों की सिद्धि चाहते हुए, इस लोक में देवताओं की पूजा करते हैं, किन्तु वास्तव में वे सब मेरे ही उपासक हैं ॥१२॥ हे पार्थ ! गुण और कर्म के विभाग के अनुसार मैंने ही ब्राह्मण आदि चारों वर्णों की सृष्टि की है । मैं उनका कर्ता भी हूँ और अकर्ता भी ॥१३॥ मैं संसार की सृष्टि करनेवाला होकर भी अलिप्त हूँ । कर्म मुझे स्पर्श नहीं कर सकते, क्योंकि मुझमें कर्म फल की इच्छा ही नहीं है । जो पुरुष मुझे इस तरह जानता है, वह कर्मबन्धन में नहीं बँधता ॥१४॥ मोक्ष की इच्छा रखनेवाले पूर्वकाल के लोगों ने मुझे इसी तरह जानकर कर्म किये हैं । बड़े-बूढ़े जिस तरह कर्म करते आये हैं उसी तरह तुम भी कर्म करो ॥१५॥ इस लोक में क्या कर्म है और क्या अकर्म है, इसकी मीमांसा करने में ज्ञानी लोग भी मोहित हैं । मैं अब वही कर्म तुमसे कहता हूँ जिसे जानकर तुम अशुभ से, संसार से, मुक्त हो जाओगे, सुनो ॥१६॥ कर्म की गति बहुत ही अगम्य है, इस कारण मनुष्य को कर्म (विहित कर्म), अकर्म (निषिद्ध कर्म) और विकर्म (कर्मत्याग) तीनों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए ॥१७॥ जो मनुष्य कर्म करते रहते भी अपने को कर्म न करनेवाला और कर्म के न करते रहने भी कर्मयुक्त समझता है, वही मनुष्यों में धीमान्, योगी और सब कर्म करनेवाला है ॥१८॥ फल की कामना से जिसके सब

यदृच्छालाभसन्तुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः ।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वाऽपि न निबध्यते ॥ २२ ॥
गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः ।
यज्ञायाऽऽचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते ॥ २३ ॥
ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥ २४ ॥
दैवमेवाऽपरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते ।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति ॥ २५ ॥
श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति ।
शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति ॥ २६ ॥
सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चाऽपरे ।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते ॥ २७ ॥
द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथाऽपरे ।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ॥ २८ ॥
अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथाऽपरे ।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥ २९ ॥

अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति ।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥ ३० ॥
यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम् ।
नाऽयं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ॥ ३१ ॥
एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे ।
कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे ॥ ३२ ॥
श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप ।
सर्वं कर्माऽखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ॥ ३३ ॥
तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥ ३४ ॥
यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव ।
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि ॥ ३५ ॥
अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः ।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि ॥ ३६ ॥
यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥ ३७ ॥

आत्मध्यानरूप योगाग्नि में ज्ञानेन्द्रियों के, कर्मेन्द्रियों के और प्राणवायु के कर्मों की आहुति दे देते हैं॥२७॥ कोई-कोई व्रतधारी यतिगण द्रव्यदान, कृच्छ्र-चान्द्रायण आदि तपस्यारूप यज्ञ, चित्त वृत्ति-निवारण द्वारा समाधिरूप यज्ञ, वेदाध्ययनरूप यज्ञ और वेदार्थज्ञान-रूप यज्ञ आदि कई एक यज्ञ करते हैं ॥२८॥ कोई प्रयत्नशील तीक्ष्णव्रतधारी पुरुष अपान वायु में प्राण वायु का हवन करके पूरक, तथा प्राण में अपान वायु का हवन करके रेचक और प्राण तथा अपान की गति रोककर कुम्भकरूप प्राणायाम करते हैं ॥२९॥ और, कोई नियताहारी होकर अन्तःकरण वृत्ति में प्राणेन्द्रियों की आहुति देते हैं। ये सब यज्ञवेत्ता ज्ञानी इन यज्ञों के द्वारा पाप का नाश करते हैं ॥३०॥ ये सब पुरुष यज्ञ करते हुए 'यज्ञशेष' रूप अमृत भोजन करके सनातन ब्रह्म को प्राप्त होते हैं। हे कुरुश्रेष्ठ! यज्ञहीन व्यक्ति के लिए यह अल्पसुखवाला मनुष्यलोक ही नहीं रहता, फिर उसके लिए स्वर्ग आदि के सुख की सम्भावना कहाँ ॥३१॥ इस प्रकार तरह-तरह के यज्ञों का वर्णन वेद में विस्तार के साथ किया गया है। ये सब यज्ञ कर्म से उत्पन्न हैं, आत्मा के साथ इनका कोई संसर्ग नहीं है। तुम यह जानकर मुक्ति प्राप्त करोगे ॥३२॥ हे शत्रुदमन पार्थ! द्रव्यमय दैव आदि यज्ञों की अपेक्षा ज्ञानयज्ञ ही श्रेष्ठ है, क्योंकि फलसहित सभी कर्मों की समाप्ति ज्ञान में ही होती है ॥३३॥ हे अर्जुन! तुम तत्त्वदर्शी ज्ञानियों के समीप जाकर प्रणाम, प्रश्न और सेवा करके ज्ञान सीखो। वे तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न होकर तुम्हें ज्ञान का उपदेश देंगे ॥३४॥ हे

नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनाऽऽत्मनि विन्दति ॥ ३८ ॥
श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाऽधिगच्छति ॥ ३९ ॥
अज्ञश्चाऽश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ।
नाऽयं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ॥ ४० ॥
योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम् ।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय ॥ ४१ ॥
तस्मादज्ञानसम्भूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनाऽऽत्मनः ।
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ॥ ४२ ॥

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न कांक्षति ।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते ॥ ३ ॥
सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः ।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ॥ ४ ॥
यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते ।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ॥ ५ ॥
संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः ।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म न चिरेणाऽधिगच्छति ॥ ६ ॥
योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः ।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥ ७ ॥
नैव किञ्चित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित् ।
पश्यञ्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपञ्श्वसन् ॥ ८ ॥
प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन् ॥ ९ ॥
ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाऽम्भसा ॥ १० ॥

उनतीसवा अध्याय ॥ २९ ॥—[गीता का पाचवा अध्याय]

अर्जुन ने कहा—हे श्रीकृष्ण ! आप कर्मों का न्यास (त्याग) और कर्मयोग दोनों का उपदेश कर रहे हैं । इनमें कौन श्रेष्ठ है, सो निश्चय करके कहिए ॥१॥ भगवान् ने कहा—हे पार्थ ! कर्मत्याग और कर्मयोग, दोनों के द्वारा मुक्ति प्राप्त होती है, किन्तु दोनों में कर्मयोग ही प्रधान है ॥२॥ द्वेष और इच्छा से शून्य व्यक्ति ही नित्य सन्यासी है । क्योंकि इस तरह के निर्द्वन्द्व पुरुष ही ससार के बन्धन से बचे रहते हैं ॥३॥ मूढ लोग ही सन्यास और योग के जुदे-जुदे फल बतलाते हैं, ज्ञानी लोग नहीं । जो व्यक्ति सन्यास और योग, दोनों में से केवल एक का ही अनुष्ठान विशेष रूप से करते हैं, वे दोनों के ही यथार्थ फल को प्राप्त करते हैं ॥४॥ सन्यासियों को मिलनेवाला मोक्षपद कर्मयोगी पुरुष को भी मिलता है । जो लोग कर्मसन्यास और कर्मयोग दोनों को एक भाव से देखते हैं, वे ही सचमुच तत्त्वदर्शी हैं, ॥५॥ किन्तु कर्मयोग के बिना केवल सन्यास से मोक्ष की प्राप्ति बडी कठिनाई से होती है । कर्मयोगी बहुत शीघ्र ब्रह्म को प्राप्त हो जाते हैं ॥६॥ जो व्यक्ति योगी होकर विशुद्धात्मा बन चुका है, जिसने शरीर और इन्द्रियो को वश में कर लिया है और जो अपने आत्मा को सब प्राणियों के आत्मा के समान जानता है, वह ससार-निर्वाह के लिए कर्म करके भी उसमें लिप्त नहीं होता ॥७॥ तत्त्वदर्शी कर्मयोगी पुरुष देखकर, सुनकर, छूकर, सूँघकर, खाकर, चलकर, सोकर, बातचीत कर और त्याग,

कायेन मनसा बुद्धया केवलैरिन्द्रियैरपि ।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वाऽऽत्मशुद्धये ॥ ११ ॥
युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम् ।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते ॥ १२ ॥
सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्याऽऽस्ते सुखं वशी ।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ॥ १३ ॥
न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥ १४ ॥
नाऽऽदत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः ।
अज्ञानेनाऽऽवृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ॥ १५ ॥
ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः ।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ॥ १६ ॥
तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥ १७ ॥
विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥ १८ ॥

ग्रहण, उन्मेष-निमेष आदि सभी प्रकार के कर्म करके समझता है कि मैं कुछ भी नहीं करता —इन्द्रियाँ ही अपने-अपने विषय में प्रवृत्त होती हैं ॥८।९॥ जो आसक्ति से बचकर, ब्रह्म मे कर्मफलों को समर्पण करता हुआ कर्म करता है, वह उसी तरह पाप में लिप्त नहीं होता जैसे कमल का पत्ता जल में नहीं लिप्त होता ॥१०॥ कर्मयोगी पुरुष आसक्ति त्याग-कर --मन की शुद्धि के लिए -- शरीर, मन, बुद्धि और विशुद्ध इन्द्रियों के द्वारा कर्म किया करते हैं ॥११॥ ईश्वर-परायण व्यक्ति कर्मफल-परित्यागपूर्वक मुक्ति प्राप्त करते हैं । किन्तु ईश्वर-विमुख व्यक्ति कर्म-फल की इच्छा करके कामनावश संसार-बन्धन में बँध जाता है ॥१२॥ देहधारी लोग इन्द्रियों को वश में करके, मन से सब कर्मों का त्याग करके, नव-द्वार-युक्त देहपुर में सुख से रहते हैं । वे कर्म में अपने को या अन्य को प्रवृत्त नहीं करते ॥१३॥ लोककर्ता ईश्वर सब जीवों के कर्तृत्व और कर्मों की सृष्टि नहीं करता, और किसी को कर्मफल का भागी नहीं बनाता । अविद्या प्रकृति ही जीव को कर्म में प्रवृत्त करती है ॥१४॥ ईश्वर किसी के पाप या पुण्य का ग्राहक नहीं है. ज्ञान पर अज्ञान का पर्दा रहने से सब जीव मोह के द्वारा बन्धन को प्राप्त होते हैं ॥१५॥ जिनका ज्ञान अपने अज्ञभार को नष्ट कर चुकता है, उनका ब्रह्मज्ञान सूर्य के समान प्रकाशमान होता है ॥१६॥ ईश्वर में ही जिनकी अचल बुद्धि और निष्ठा है, जो ईश्वर को ही आत्मा मानते हैं और जिनका ईश्वर ही परम आश्रय है, वे ज्ञान के द्वारा पापशून्य होकर मुक्ति प्राप्त करते हैं

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः ॥ १९ ॥
न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाऽप्रियम् ।
स्थिरबुद्धिरसम्मूढो ब्रह्मविद्ब्रह्मणि स्थितः ॥ २० ॥
बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम् ।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षय्यमश्नुते ॥ २१ ॥
ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते ।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥ २२ ॥
शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक् शरीरविमोक्षणात् ।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः ॥ २३ ॥
योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथाऽन्तर्ज्योतिरेव यः ।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥ २४ ॥
लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः ।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥ २५ ॥
कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ॥ २६ ॥
स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवाऽन्तरे भ्रुवोः ।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ ॥ २७ ॥

॥१७॥ ब्रह्मज्ञानी लोग विद्या-विनय-सम्पन्न ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ते और चाण्डाल को समान दृष्टि से देखते हैं अर्थात् सब में ब्रह्म को देखते हैं ॥१८॥ इस प्रकार जिनका चित्त सर्वत्र तुल्यभाव से स्थित है वे जीवन्मुक्त होते हैं। समदर्शी पुरुष ब्रह्मभाव को प्राप्त होते हैं, क्योंकि निर्दोष ब्रह्म सर्वत्र समभाव से स्थित है ॥१९॥ जो व्यक्ति ब्रह्म के ज्ञाता होकर ब्रह्म में स्थित होते हैं, वे प्रिय या अप्रिय वस्तु के मिलने-न मिलने में हर्ष या उद्वेग नहीं प्रकट करते, क्योंकि वे मोह त्यागकर स्थिर बुद्धि को प्राप्त हो चुकते हैं ॥२०॥ जो बाह्य विषय में आसक्त नहीं होते उनका चित्त सदा शान्ति-सुख का अनुभव करता है और वे अन्त को ब्रह्म में समाधि लगाकर अविनाशी सुख भोगने को समर्थ होते हैं ॥२१॥ पण्डित लोग विषयों से उत्पन्न सुख में आसक्त नहीं होते, क्योंकि वे सुख तो दुःख ही का कारण और नष्ट होनेवाले होते हैं ॥२२॥ जो पुरुष इस लोक में, जीवित अवस्था में, काम और क्रोध के वेग को सह सकते हैं वे ही योगी और सुखी हैं ॥२३॥ जो लोग आत्मा में ही सुख पाते हैं, आत्माराम हैं और आत्मा में ही दृष्टि रखते हैं, वे ब्रह्मनिष्ठ योगी ब्रह्म में लीन हो जाते हैं ॥२४॥ जो लोग पाप के नाश करने, संशय के छेदन करने, चित्त को वश में करने और सबका हित करने में तत्पर हैं वे तत्त्वदर्शी पुरुष ही

यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥ २८ ॥
भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥ २९ ॥

इति श्रीमन्महाभारते० भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे सांख्ययोगो नाम पञ्चमोऽध्यायः॥५॥ पर्वणि तु ऊनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

मुक्ति प्राप्त करते हैं ॥२५॥ जिन संन्यासियों ने चित्त को वश में कर लिया है तथा काम और क्रोध से छुटकारा पाकर आत्मतत्त्व का ज्ञान प्राप्त कर लिया है, वे इस लोक और परलोक दोनों में मुक्ति प्राप्त करते हैं ॥२६॥ जो मोक्षपरायण मुनि इन्द्रिय, मन और बुद्धि को वश में करके इच्छा, भय और क्रोध को दूर कर चुके हैं और जो चित्त से बाह्य विषयों को बहिष्कृत, दोनों नेत्रों को भौंहों के बीच में स्थापित तथा नाक के भीतर विचरनेवाले प्राणवायु और अपानवायु की वृत्ति को तुल्यभावापन्न कर चुके हैं, वे ही जीवन्मुक्त हैं ॥२७।२८॥ सभी लोग मुझे यज्ञ और तपस्या का भोग करनेवाला, सब प्राणियों का महान् ईश्वर और सुहृद् समझकर शान्ति पाते हैं ॥२९॥

—०—

भीष्मपर्व का उनतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥२९॥—[गीता का पाँचवाँ अध्याय समाप्त हुआ।]

अथ त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

श्रीभगवानुवाच
अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः॥ १ ॥
यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव ।
न ह्यसंन्यस्तसङ्कल्पो योगी भवति कश्चन ॥ २ ॥
आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥ ३ ॥
यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते ।
सर्वसङ्कल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ॥ ४ ॥

तीसवाँ अध्याय ॥ ३० ॥—[गीता का छठा अध्याय]

भगवान् ने कहा—हे अर्जुन ! जो कर्मफल की इच्छा न रखकर कर्तव्य कर्म करता है, वही संन्यासी और वही योगी है। केवल अग्निहोत्र और कर्मों का त्याग करनेवाला पुरुष कभी योगी या संन्यासी नहीं कहा जा सकता ॥१॥ पण्डित लोग कर्मफल-त्याग-रूप संन्यास को ही योग कहते हैं। इसलिए कर्मफल की इच्छा रखनेवाला पुरुष कभी योगी नहीं हो सकता है ॥२॥ ज्ञानयोग के दर्जे पर चढ़ने की इच्छा रखनेवाले व्यक्ति के लिए उसका कारण या उपाय कर्मयोग ही है। इसी प्रकार ज्ञानयोग में आरूढ़ हो जाने पर सब कर्मों की निवृत्ति ही ज्ञान-परिपाक का कारण कही गई है ॥३॥ आसक्ति का मूल जो विषयभोग और उसका महत्त्व है, उसका त्याग करके जो मनुष्य इन्द्रिय-भोग्य विषयों में, या उनके साधनों में, आसक्त

यं लब्ध्वा चाऽपरं लाभं मन्यते नाऽधिकं ततः ।
यस्मिंस्थितो न दुःखेन गुरुणाऽपि विचाल्यते ॥ २२ ॥
तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् ।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगो निर्विण्णचेतसा ॥ २३ ॥
सङ्कल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः ।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः ॥ २४ ॥
शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया ।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥ २५ ॥
यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥ २६ ॥
प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ॥ २७ ॥
युञ्जन्नेवं सदाऽऽत्मानं योगी विगतकल्मषः ।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते ॥ २८ ॥
सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चाऽऽत्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥ २९ ॥
यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याऽहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥ ३० ॥

योगी का अन्तःकरण किसी विषय की ओर न डिगकर सर्वथा उपरत रहता है, जिस अवस्था में ज्ञानी पुरुष समाधि में ज्योतिःस्वरूप आत्मा की उपलब्धि करके अपने आत्मा में ही सन्तुष्ट रहता है, ॥२०॥ जिस अवस्था में योगी विषय और इन्द्रिय के परे तथा आत्मरूप बुद्धि के विषयीभूत नित्य सुख का अनुभव करता हुआ आत्मस्वरूप से विचलित नहीं होता और जिस अवस्था में जाड़ा-गर्मी आदि दुःख अभिभूत नहीं कर सकते तथा जिस अवस्था में दुःख का लेश भी नहीं रहता, उस अवस्था का नाम योगावस्था है ॥२१।२३॥ सङ्कल्प-जनित इच्छाओं और सब काम्य वस्तुओं का त्याग करके, विषयदोषदर्शी अन्तःकरण के द्वारा सर्वत्र विचरनेवाली इन्द्रियों को संयत कर, अत्यन्त प्रयत्न के साथ, साधक शास्त्र और आचार्य के उपदेश से उत्पन्न निश्चय के बल से योगाभ्यास करे । स्थिर बुद्धि के द्वारा अन्तःकरण को आत्मसमाहित करके धीरे-धीरे विषयों से निवृत्त हो, अन्य किसी विषय का चिन्तन न करे ॥२४।२५॥ अन्तःकरण चञ्चल हो तो उसे, विषयों से हटाकर, आत्मा में समाहित करे ॥२६॥ इसके द्वारा रजोगुण तिरोहित, चित्त प्रशान्त और संसार-दोष विनष्ट होता तथा ब्रह्मभाव की प्राप्ति के कारण निरतिशय सुख की प्राप्ति होती है ॥२७॥ इस तरह चित्त को वश में करने से योगी व्यक्ति पापशून्य होकर ब्रह्मसाक्षात्-

एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः ।
त्वदन्यः संशयस्याऽस्य छेत्ता नह्युपपद्यते ॥ ३९ ॥

श्रीभगवानुवाच—पार्थ नैवेह नाऽमुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
नहि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति ॥ ४० ॥

प्राप्य पुण्यकृतांल्लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥ ४१ ॥

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥ ४२ ॥

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ॥ ४३ ॥

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः ।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्माऽतिवर्तते ॥ ४४ ॥

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगात्संशुद्धकिल्बिषः ।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥ ४५ ॥

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाऽधिको योगी तस्माद्योगी भवाऽर्जुन ॥ ४६ ॥

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनाऽन्तरात्मना ।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥ ४७ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अध्यात्मयोगो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥
पर्वणि तु त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

करता है ? ॥३७॥ कर्मफल की इच्छा और कर्म के अनुष्ठान से रहित व्यक्ति क्या छिन्न-भिन्न हुए मेघ की तरह विनष्ट हो जाता है ? ॥३८॥ हे मधुसूदन ! आपके सिवा और कोई मेरे संशय को दूर करने में समर्थ नहीं है। इसलिए आप ही मेरे सन्देह को दूर कीजिए ॥३९॥ भगवान् ने कहा—हे पार्थ ! शुभ अनुष्ठान में लगे रहने से कभी दुर्गति नहीं होती। इसलिए इस तरह के योगभ्रष्ट पुरुष इस लोक में पतित या परलोक में नरकगामी नहीं होते ॥४०॥ वे तो अश्वमेध यज्ञ आदि शुभ अनुष्ठान करनेवाले व्यक्तियों के उपभोग्य स्वर्गलोक में जाकर, वहां सैकड़ों वर्ष तक रहकर, अन्त को सदाचारी धनी पुरुषों के घर में या बुद्धिमान् योगियों के वंश में उत्पन्न होते हैं ॥४१॥ योगियों के कुल में जन्म पाना अत्यन्त ही दुर्लभ है ॥४२॥ हे भारत ! योगभ्रष्ट व्यक्ति उसी कुल में जन्म लेकर—पूर्व जन्म की स्मृति बनी रहने के कारण—मुक्ति पाने के लिए पहले की अपेक्षा और भी अधिक यत्न करते हैं ॥४३॥ वे यदि विवश वैसा करने की इच्छा नहीं करते तो पूर्व देहकृत अभ्यास या पूर्वसंस्कार उन्हें ब्रह्मनिष्ठ बनाते हैं ॥४४॥

तब वे योग-जिज्ञासु होकर वेदोक्त कर्मफल से भी बढ़कर फल को प्राप्त होते हैं। तात्पर्य यह है कि निष्पाप योगी बड़े यत्न से इसी तरह कई जन्मों में सिद्धि प्राप्त कर अन्त को श्रेष्ठ गति प्राप्त करता है ॥४५॥ हे अर्जुन ! मेरे मत से योगी पुरुष तपस्वी से भी श्रेष्ठ है, ज्ञानी से भी श्रेष्ठ है और कर्म करनेवालों से भी श्रेष्ठ है। इसलिए तुम भी योगी बनो ॥४६॥ जो श्रद्धा-सम्पन्न होकर मुझमें हृदय लगाकर मुझे भजता है, वह सब प्रकार के योगियों से श्रेष्ठ है ॥४७॥

भीष्मपर्व का तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३० ॥—[गीता का छठा अध्याय समाप्त हुआ]

अथ एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

श्रीभगवानुवाच

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः ।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥ १ ॥
ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥ २ ॥
मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥ ३ ॥
भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥ ४ ॥
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥ ५ ॥
एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥ ६ ॥
मत्तः परतरं नाऽन्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय ।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥ ७ ॥

इकतीसवाँ अध्याय । ३१ ॥—[गीता का सातवाँ अध्याय]

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः ।
परं भावमजानन्तो ममाऽव्ययमनुत्तमम् ॥ २४ ॥
नाऽहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।
मूढोऽयं नाऽभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥ २५ ॥
वेदाऽहं समतीतानि वर्तमानानि चाऽर्जुन ।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन ॥ २६ ॥
इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत ।
सर्वभूतानि संमोहं सर्गे यान्ति परन्तप ॥ २७ ॥
येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥ २८ ॥
जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये ।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाऽखिलम् ॥ २९ ॥
साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः ।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः ॥ ३० ॥

इति श्रीमन्महाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानयोगो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥
पर्वणि तु एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

अव्यक्त हूँ और प्रपञ्च से परे हूँ। किन्तु अनभिज्ञ पुरुष मेरे नित्य और शुद्ध स्वरूप को न जानने के कारण मेरे मनुष्य, मीन, कच्छप आदि रूपों की कल्पना करते हैं ॥२४॥ मैं योगमाया के प्रभाव से सदा आच्छन्न हूँ; कभी सब लोगों के निकट प्रकाशमान नहीं होता। इसी कारण लोग मायामूढ होकर मुझे नहीं जान पाते ॥२५॥ हे अर्जुन! मुझे कोई नहीं जानता; परन्तु मैं सब भूत, भविष्य, वर्तमान चराचर प्राणियों के विषय में पूर्ण ज्ञान रखता हूँ ॥२६॥ सब प्राणी संसार में जन्म पाकर इच्छा-द्वेष और शीत-उष्ण आदि द्वन्द्व धर्मों से उत्पन्न मोह में अभिभूत होते हैं ॥२७॥ जिन पुण्यात्मा पुरुषों के पाप का अन्त हो चुका है, शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वों से उत्पन्न मोह मिट चुका है, वे दृढव्रत महात्मा मुझे भजते हैं ॥२८॥ जो लोग मेरा आश्रय लेकर अजर-अमर होने के लिए यत्न करते हैं वे सम्पूर्ण कर्मयोग और अखण्ड ब्रह्म को जानते हैं ॥२९॥ जो लोग अधिदैव, अधिभूत और अधियज्ञ सहित मुझको जानते हैं, वे योगी मृत्यु-समय में भी मुझे नहीं भूलते ॥३०॥

—०—

भीष्मपर्व का इकतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३१ ॥—[गीता का सातवाँ अध्याय समाप्त हुआ]

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

अर्जुन उवाच—किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम ।
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते ॥ १ ॥

अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन ।
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः ॥ २ ॥
श्रीभगवानुवाच —अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥ ३ ॥
अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाऽधिदैवतम् ।
अधियज्ञोऽहमेवाऽत्र देहे देहभृतां वर ॥ ४ ॥
अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नाऽस्त्यत्र संशयः ॥ ५ ॥
यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥ ६ ॥
तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥ ७ ॥
अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नाऽन्यगामिना ।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थाऽनुचिन्तयन् ॥ ८ ॥
कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥ ९ ॥

प्रयाणकाले मनसाऽचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव ।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्॥ १० ॥
यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥ ११ ॥
सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च ।
मूर्ध्न्याधायाऽऽत्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम्॥ १२ ॥
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥ १३ ॥
अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।
तस्याऽहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥ १४ ॥
मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।
नाऽऽप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥ १५ ॥
आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥ १६ ॥
सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः ।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥ १७ ॥

को मुझमें अर्पित करके निःसन्देह मुझे ही प्राप्त होओगे ॥७॥ हे पार्थ ! जो मनुष्य अभ्यास-योगयुक्त और अनन्यगामी चित्त से प्रकाशमय परम पुरुष का चिन्तन करता है, वह उन्हीं में लीन होता है ॥८॥ वह परम पुरुष सर्वज्ञ, सनातन, सबका नियामक, सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतम, सबका विधाता, बुद्धि और मन से अगोचर, सूर्य के समान प्रकाश पूर्ण और अज्ञान-रूप मोहान्धकार से परे है ॥९॥ जो पुरुष अन्त-समय में सावधान और भक्तियुक्त होकर, योग-बल से प्राणवायु को दोनों भौंहों के बीच स्थापित करके, विक्षेप-विहीन हृदय में ध्यान करता है वह उन्हीं परम पुरुष परमेश्वर को प्राप्त करता है ॥१०॥ हे पार्थ ! वेदज्ञ लोगों के मन से जो अक्षय ब्रह्म है, वीतराग यति लोग जिसमें अपने चित्त को लगाते हैं और जिसे जानने के लिए लोग गुरुकुल में ब्रह्मचर्य व्रत धारण करते हैं, उस परब्रह्म के पद को प्राप्त करने का उपाय मैं तुम्हारे आगे संक्षेप में कहता हूँ—सुनो ॥११॥ जो पुरुष चक्षु आदि सब इन्द्रियों के द्वारों को रोक करके अन्तःकरण को हृदय में समाहित करता है और प्राणवायु को दोनों भौंहों के बीच स्थापित करके योगधारण-पूर्वक, एकाक्षर-सम्पन्न प्रणव का उच्चारण और प्रणव का प्रतिपाद्य जो मैं हूँ उसका स्मरण करता हुआ, शरीर त्यागता है वह उत्तम गति प्राप्त करता है ॥१२।१३॥ जो प्रतिदिन लगातार अनन्य भाव से हृदय में मेरा स्मरण करता है, उस नित्ययुक्त योगी के लिए मैं सुलभ हूँ ॥१४॥ वह महापुरुष मुझे पा जाने पर, मोक्षलाभ के उपरान्त फिर दुःखपूर्ण नश्वर जन्म नहीं प्राप्त करता ॥१५॥ हे पार्थ ! ब्रह्मलोक पर्यन्त सब लोक ऐसे हैं कि वहाँ से आकर जीव को फिर जन्म लेना पड़ता है,

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे ।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाऽव्यक्तसंज्ञके ॥ १८ ॥
भूतग्रामः स एवाऽयं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते ।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे ॥ १९ ॥
परस्तस्मात्तु भावोऽन्यो व्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः ।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ॥ २० ॥
अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् ।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥ २१ ॥
पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ।
यस्याऽन्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ॥ २२ ॥
यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः ।
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥ २३ ॥
अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥ २४ ॥
धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम् ।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्त्तते ॥ २५ ॥
शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययाऽऽवर्त्तते पुनः ॥ २६ ॥

नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन ।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवाऽर्जुन ॥ २७ ॥
वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम् ।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा योगी परं स्थानमुपैति चाऽऽद्यम् ॥२८॥

इति श्रीमन्महाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अक्षरब्रह्मयोगो नाम अष्टमोऽध्यायः ॥८॥ भीष्मपर्वणि तु द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

का वर्णन सुनो जिसमें गमन करने से योगी लोग आवृत्ति और अनावृत्ति को प्राप्त होते हैं ॥२३॥ जिस स्थान में दिन शुक्लवर्ण और अग्नि की तरह प्रभायुक्त होता है और छः महीने उत्तरायण होता है, वहाँ जाने से ब्रह्मज्ञ लोग ब्रह्म को प्राप्त होते हैं ॥२४॥ जिस स्थान में रात्रि धूमवर्ण और कृष्णवर्ण तथा छः महीने दक्षिणायन होता है, वहाँ गमन करने से कर्मयोगी पुरुष चन्द्रज्योति स्वर्ग को प्राप्त होकर फिर लौटते हैं ॥२५॥ इस तरह जगत् की, शुक्ल और कृष्ण, दो सनातन गतियाँ निरूपित हुई हैं। एक में जाने से अनावृत्ति और दूसरी में जाने से पुनरावृत्ति होती है ॥२६॥ हे पार्थ! इन दोनों गतियों को जाननेवाला योगी कभी मोह को प्राप्त नहीं होता। इसलिए तुम सदा योगयुक्त रहो ॥२७॥ अधिक क्या, योगी पुरुष इस ज्ञान के प्रभाव से वेद, यज्ञ, तप और दान के निर्दिष्ट सब पुण्यफलों को अतिक्रम करके आदि में परम पद को प्राप्त होता है ॥२८॥

भीष्मपर्व का बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥३२॥—[गीता का आठवाँ अध्याय समाप्त हुआ]

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

श्रीभगवानुवाच—इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥ १ ॥
राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥ २ ॥
अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्याऽस्य परन्तप ।
अप्राप्य मां निवर्त्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥ ३ ॥
मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाऽहं तेष्ववस्थितः ॥ ४ ॥

तैंतीसवाँ अध्याय ॥ ३३ ॥—[गीता का नवाँ अध्याय]

भगवान् ने कहा—हे पार्थ! तुममें असूया नहीं है; इसलिए मैं तुमसे विज्ञान-समन्वित गुह्यतम ज्ञान कहता हूँ, सुनो। इसे जान लेने से सब अमङ्गलों से बच जाओगे ॥१॥ यह सब विद्याओं से श्रेष्ठ है; यह गुह्य से भी गुह्यतम, परम पवित्र, धर्मसङ्गत और अविनाशी है ॥२॥ हे शत्रुओं के दमन करनेवाले अर्जुन! जो लोग इस धर्म में अश्रद्धा करते हैं वे मुझे प्राप्त न होकर, मृत्यु और संसार के मार्ग में भटकते हैं ॥३॥ मैं आत्मा के रूप से सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त हूँ, सब प्राणी मुझमें ही स्थित हैं; किन्तु

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममाऽऽत्मा भूतभावनः ॥ ५ ॥
यथाऽऽकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् ।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥ ६ ॥
सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम् ।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥ ७ ॥
प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः ।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ॥ ८ ॥
न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय ।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ॥ ९ ॥
मयाऽध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।
हेतुनाऽनेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ॥ १० ॥
अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् ।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ॥ ११ ॥
मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः ।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः ॥ १२ ॥
महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः ।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥ १३ ॥

कोई भी मेरा अधिष्ठान नहीं है। हे पार्थ ! मेरी 'ऐसी' शक्ति देखो ॥४॥ मैं अलिप्त हूँ, इसलिए कोई भी प्राणी मुझमें स्थित नहीं है। यद्यपि मैं सबको धारण किये हुए हूँ, किन्तु किसी में अधिष्ठित नहीं हूँ। मेरे आत्मा ने ही सब प्राणियों की सृष्टि की है ॥५॥ वायु जैसे सर्वत्र जानेवाला होने पर भी नित्य आकाश में स्थित है, वैसे ही सब प्राणियों को मुझमें स्थित समझो ॥६॥ हे अर्जुन ! प्रलयकाल में सब प्राणी मेरी अधिष्ठित प्रकृति में लीन होते हैं, और कल्प के आरम्भ में मैं फिर उनकी सृष्टि करता हूँ ॥७॥ इसी तरह मैं अपनी प्रकृति का आश्रय लेकर इन प्राणियों की बारम्बार सृष्टि करता हूँ। प्रकृति के वश में होने के कारण ये अवश हैं ॥८॥ परन्तु मैं सब कर्मों से अलिप्त रहकर उदासीन भाव से स्थित हूँ, इसी से मैं कभी सृष्टि आदि कार्यों का विषय नहीं बनता। मैं अविकल ज्ञानस्वरूप हूँ ॥९॥ मेरे अधिष्ठान के प्रभाव से प्रकृति सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न करती है और यह संसार बार-बार उत्पन्न होता है ॥१०॥ जिनकी आशा, कर्म और ज्ञान निष्फल हैं, जिनके अन्तःकरण में विवेक का लेश भी नहीं है और जो लोग राक्षसी आसुरी आदि मोहमयी प्रकृति का आश्रय लिये हुए हैं—उसके वशीभूत हैं—वही मेरे सर्वभूत-महेश्वररूप परम तत्त्व को अवगत न होकर, मुझको मनुष्य-देहधारी जानकर, मेरी अवज्ञा करते

सततं कीर्त्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः ।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥ १४ ॥
ज्ञानयज्ञेन चाऽप्यन्ये यजन्तो मामुपासते ।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् ॥ १५ ॥
अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाऽहमहमौषधम् ।
मन्त्रोऽहमहमेवाऽऽज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥ १६ ॥
पिताऽहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ।
वेद्यं पवित्रमोङ्कार ऋक्साम यजुरेव च ॥ १७ ॥
गतिर्भर्त्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् ।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥ १८ ॥
तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च ।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाऽहमर्जुन ॥ १९ ॥
त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकमश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान्॥२०॥
ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते ॥२१॥
अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।

हैं ॥११।१२॥ किन्तु महाभागण दैवी प्रकृति का आश्रय लेकर, मुझे सब प्राणियों के आदि और अव्ययरूप में जानकर, अनन्य हृदय से मेरी आराधना किया करते हैं ॥१३॥ वे सदा दृढव्रत और संयत होकर मेरे नामों का कीर्त्तन, निरन्तर भक्ति के साथ मुझे नमस्कार और मेरी उपासना करते हैं ॥१४॥ और, कोई तत्त्वज्ञानरूप यज्ञ, कोई अभेद भावना, कोई पृथक्-कल्पना आदि के द्वारा, और कोई मुझे सर्वरूप समझकर रुद्र आदि नाना रूपों से मेरी आराधना किया करते हैं ॥१५॥ हे पार्थ! यज्ञ, स्वधा, औषधि, मन्त्र, आज्य, अग्नि और हवन मेरे ही रूप हैं ॥१६॥ मैं ही इस जगत् का पिता, माता, विधाता और पितामह हूँ। मैं वेद्य, पवित्र, ओङ्कार, ऋक्, साम और यजु हूँ ॥१७॥ मैं गति, भर्त्ता, प्रभु, साक्षी, निवास, शरण, सुहृद्, प्रभव, प्रलय, निधान, लयस्थान और अक्षय बीज हूँ ॥१८॥ मैं वर्षा करता हूँ और तपता हूँ मैं जल को पृथ्वी से खींचता हूँ और पृथ्वी पर बरसाता हूँ। अमृत, मृत्यु, सत् और असत् मैं ही हूँ ॥१९॥ त्रिवेद विहित कर्मों का अनुष्ठान करने वाले सोमपायी विगत-पाप महाभागण यज्ञानुष्ठानपूर्वक मेरी उपासना करके स्वर्ग प्राप्ति की इच्छा किया करते हैं। उसके पश्चात् वे परम पवित्र स्वर्गलोक में पहुँच कर सम्पूर्ण उत्कृष्ट देवभोगों का उपभोग करते हैं ॥२०॥ स्वर्गलोक के भोग भोगने से पुण्य क्षीण होने पर वे फिर मनुष्यलोक में लौट आते हैं। वे इस प्रकार भोगाभिलाषी और वेदत्रयविहित कर्मकाण्ड के

तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥ २२ ॥
येऽप्यन्यदेवताभक्ता यजन्ते श्रद्धयाऽन्विताः ।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥ २३ ॥
अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च ।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनाऽतश्च्यवन्ति ते ॥ २४ ॥
यान्ति देवव्रता देवान्पितॄन्यान्ति पितृव्रताः ।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् २५ ॥
पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥ २६ ॥
यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥ २७ ॥
शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः ।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि ॥ २८ ॥
समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाऽप्यहम्॥ २९ ॥
अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥ ३० ॥

अनुष्ठान में तत्पर होकर बारम्बार आवागमन के फेर में पड़े रहते हैं ॥२१॥ जो लोग अनन्य हृदय से मेरा चिन्तन और उपासना करते हैं, उन सब नित्य-भक्तियुक्त व्यक्तियों के योग-क्षेम को मैं वहन करता हूँ ॥२२॥ जो लोग भक्ति और श्रद्धा के साथ पवित्र हृदय से अन्य देवताओं की पूजा करते हैं वे भी अविधिपूर्वक मेरी ही उपासना करते हैं ॥२३॥ मैं ही सब यज्ञों का भोक्ता और प्रभु हूँ, किन्तु वे मेरे तत्त्व को अवगत न होने के कारण स्वर्ग से भ्रष्ट हुआ करते हैं ॥२४॥ देवव्रत में अनुरक्त व्यक्ति देवगण को, पितृव्रतनिष्ठ व्यक्ति पितरों को, भूतों की आराधना में निरत व्यक्ति भूतगण को और मेरे उपासक मुझे प्राप्त होते हैं ॥२५॥ जो पवित्रात्मा पुरुष मुझे पत्र, पुष्प, फल, जल आदि कुछ भी अर्पण करता है उसकी वह भक्तिपूर्वक दी हुई सामग्री मैं ग्रहण करता हूँ ॥२६॥ हे पार्थ ! तुम जो कुछ करते हो, जो खाते-पीते हो, जो हवन करते हो, जो देते हो और जो तप करते हो वह सब मुझे अर्पण कर दो ॥२७॥ ऐसा करने से कर्मबन्धन शुभाशुभ फल से मुक्त होकर, सन्यासयोगयुक्त हृदय से मुक्तिलाभपूर्वक, तुम अन्त को मुझे प्राप्त होओगे ॥२८॥ मैं सब प्राणियों में समान भाव से स्थित हूँ। कोई मेरा मित्र या शत्रु नहीं है । जो लोग भक्तिपूर्वक मुझे भजते हैं वे मुझमें ही अवस्थित या लीन होते हैं और मैं भी उन भक्तों के हृदय में रहता हूँ ॥२९॥ अत्यन्त दुराचारी व्यक्ति भी अन्य देवताओं को छोड़-

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥ ३१ ॥
मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥ ३२ ॥
किं पुनर्ब्राह्मणा पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा ।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ॥ ३३ ॥
मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥ ३४ ॥

इति श्रीमहा० भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे राजविद्याराजगुह्ययोगो नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥ भीष्मपर्वणि तु त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

कर मेरी उपासना करने से साधु गिना जा सकता है, क्योंकि उसका अध्यवसाय बहुत श्रेष्ठ है, और वह शीघ्र ही धार्मिक होकर निरंतर शान्ति सुख भोग करता है ॥३०॥ हे पार्थ ! मेरा भक्त कभी नष्ट या भ्रष्ट नहीं होता ॥३१॥ स्त्री, शूद्र, वैश्य अथवा और पाप-योनि पुरुष भी मेरी शरण में आने से, परम गति को प्राप्त होते हैं ॥३२॥ अतएव पवित्र पण्डित ब्राह्मणों और भक्तिपरायण राजर्षियों के मेरे शरणागत होने पर उनकी परम गति के बारे में तो कुछ कहना ही नहीं है । हे अर्जुन ! तुम इस अनित्य और असुखमय लोक में मुझे ही भजो ॥३३॥ अनन्य-हृदय और अनन्य-भक्त होकर मुझे ही प्रणाम करो । मुझमें इस प्रकार मन लगाने से, मेरी पूजा करने से, अन्त में तुम मुझको प्राप्त होओगे ॥३४॥

भीष्मपर्व का तेंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३३ ॥—[गीता का नवमा अध्याय समाप्त हुआ]

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

श्रीभगवानुवाच—भूय एव महाबाहो शृणु मे परमं वचः ।
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया ॥ १ ॥
न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः ।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः ॥ २ ॥
यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम् ।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३ ॥

चौंतीसवाँ अध्याय ॥ ३४ ॥—[गीता का दसवाँ अध्याय]

कृष्णचन्द्र जी कहते हैं—हे महाबाहो ! तुम मुझ पर परम प्रीति रखते हो, इस कारण तुम्हारे हित की कामना से जो मैं फिर श्रेष्ठ उपदेश करता हूँ उसे मन लगाकर सुनो ॥१॥ देवता या ऋषिगण, कोई भी मेरे प्रभाव को नहीं जानते । मैं ही सब देवताओं और महर्षियों का आदि हूँ ॥२॥ जो मुझे अनादि, अज और सब लोकों का महान् ईश्वर जानते हैं वे इस जीवलोक में मोहशून्य और सब पापों से

बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहः क्षमा सत्यं दमः क्षमा ।
सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाऽभयमेव च ॥ ४ ॥
अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः ।
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः ॥ ५ ॥
महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा ।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः ॥ ६ ॥
एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः ।
सोऽविकल्पेन योगेन युज्यते नाऽत्र संशयः ॥ ७ ॥
अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्त्तते ।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः ॥ ८ ॥
मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥ ९ ॥
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥ १० ॥
तेषामेवाऽनुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः ।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥ ११ ॥
अर्जुन उवाच—परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान् ।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ॥ १२ ॥

मुक्त हो जाते हैं ॥३॥ बुद्धि, ज्ञान, असमोह, क्षमा, सत्य, दम, शम, सुख, दुःख, भव, भाव, भय, अभय, ॥४॥ अहिंसा, समता, तुष्टि, तपस्या, दान, यश, अयश आदि सब भिन्न-भिन्न भाव प्राणियों में मुझसे ही होते हैं ॥५॥ पूर्व समय के सनक आदि चारों ऋषि, भृगु आदि सातों महर्षि और सब मनु मेरे ही प्रभाव से सम्पन्न और मेरे ही मन से उत्पन्न हुए हैं। सब लोग उन्हीं की सन्तान हैं ॥६॥ इसमें सन्देह नहीं कि जो कोई मेरे योग और मेरी विभूतियों को जानता है वह स्थिर ज्ञान का अधिकारी होकर अचल योग से युक्त होता है ॥७॥ मैं इस जगत् की उत्पत्ति का कारण हूँ, मुझसे ही मनुष्यों की बुद्धि आदि की स्फूर्ति होती है। ज्ञानी पण्डित लोग ऐसा ही मानकर मेरी आराधना किया करते हैं ॥८॥ वे मन और प्राण को मुझमें ही स्थापित करके, एक दूसरे को मेरा ज्ञान कराते हैं। वे मेरा वर्णन करके सन्तुष्ट होते हैं, शान्ति प्राप्त करते हैं और मुझमें ही रमते हैं ॥९॥ वे निरन्तर भक्तियुक्त होकर प्रीतिपूर्वक मेरी उपासना किया करते हैं, मैं भी उन्हें वह बुद्धियोग देता हूँ, जिसके द्वारा वे मुझे प्राप्त होते हैं ॥१०॥ उन पर कृपा करने के लिए मैं उनके हृदय में स्थित होकर समुज्ज्वल ज्ञान-दीपक के द्वारा अज्ञान-जनित अन्धकार को दूर करता हूँ ॥११॥ अर्जुन ने कहा—हे केशव! देवर्षि नारद, असित, देवल, व्यास और अन्यान्य

आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा ।
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे ॥ १३ ॥
सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव ।
नहि ते भगवन्व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः ॥ १४ ॥
स्वयमेवाऽऽत्मनाऽऽत्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम ।
भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते ॥ १५ ॥
वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि ॥ १६ ॥
कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन् ।
केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया ॥ १७ ॥
विस्तरेणाऽऽत्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन ।
भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नाऽस्ति मेऽमृतम् ॥ १८ ॥
श्रीभगवानुवाच—हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नाऽस्त्यन्तो विस्तरस्य मे ॥ १९ ॥
अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ॥ २० ॥
आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान् ।
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी ॥ २१ ॥

ऋषिगण आपको परब्रह्म, परमधाम, परम पवित्र, शाश्वत पुरुष, दिव्य, आदिदेव, अजन्मा और असीम-प्रतापशाली कहते हैं, इस समय आप भी अपने को वैसा ही बतला रहे हैं ॥१२।१३॥ हे वासुदेव! आप जो कहते हैं, वह सब सत्य ही है। देवता या दानव कोई भी आपको स्पष्ट रूप से नहीं जानते। आप स्वयं अपने को जानते हैं ॥१४॥ हे पुरुषोत्तम! हे भूतभावन! हे भूतेश! हे देव-देव! हे जगदीश्वर! अब आप अपनी उन विभूतियों का विस्तार से वर्णन कीजिए जिनसे आपने सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त कर रक्खा है ॥१५॥ हे विभो! आप परम योगी हैं। मैं किस तरह सदा ध्यान-चिन्तन करके आपको जान सकूँगा? आपके किस किस भाव का ध्यान करूँगा? ॥१६।१७॥ अब आप फिर विस्तार के साथ अपने योग और विभूतियों का वर्णन कीजिए। आपके अमृततुल्य वचन सुनकर मेरे कान किसी तरह तृप्त ही नहीं होते ॥१८॥ भगवान् ने कहा—हे कुरुकुल-श्रेष्ठ! मेरी विभूतियों की तो संख्या ही नहीं है, इसलिए मैं अपनी प्रधान-प्रधान दिव्य विभूतियों का वर्णन करता हूँ ॥१९॥ हे पार्थ! मैं सब प्राणियों में अन्तर्यामी आत्मा हूँ। मैं ही सबका आदि, मध्य और अन्त हूँ ॥२०॥ मैं आदित्यों में विष्णु, ज्योतिर्मय पदार्थों में अंशुमाली सूर्य, मरुद्गण में मरीचि, नक्षत्रों में चन्द्रमा, ॥२१॥ वेदों में सामवेद, देवताओं में

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः ।
इन्द्रियाणां मनश्चाऽस्मि भूतानामस्मि चेतना ॥ २२ ॥
रुद्राणां शङ्करश्चाऽस्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम् ।
वसूनां पावकश्चाऽस्मि मेरुः शिखरिणामहम् ॥ २३ ॥
पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम् ।
सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः ॥ २४ ॥
महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् ।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः ॥ २५ ॥
अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः ।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः ॥ २६ ॥
उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम् ।
ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम् ॥ २७ ॥
आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक् ।
प्रजनश्चाऽस्मि कन्दर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः ॥ २८ ॥
अनन्तश्चाऽस्मि नागानां वरुणो यादसामहम् ।
पितॄणामर्यमा चाऽस्मि यमः संयमतामहम् ॥ २९ ॥
प्रह्लादश्चाऽस्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम् ।
मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम् ॥ ३० ॥
पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम् ।
झषाणां मकरश्चाऽस्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवी ॥ ३१ ॥
सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाऽहमर्जुन ।

इन्द्र, इन्द्रियों में मन, भूतगण में चेतना, ॥२२॥ रुद्रों में शङ्कर, यक्षों और राक्षसों में कुबेर, वसुओं में अग्नि, पर्वतों में सुमेरु, ॥२३॥ पुरोहितों में बृहस्पति, सेनापतियों में स्कन्द, जलाशयों मे सागर, ॥२४॥ महर्षियों में भृगु, वाक्यों में प्रणव, यज्ञों में जपयज्ञ, स्थावरों में हिमालय, ॥२५॥ वृक्षों मे पीपल, देवर्षियों में नारद, गन्धर्वों में चित्ररथ, सिद्धों में कपिल, ॥२६॥ घोड़ों में समुद्र के मथने से उत्पन्न उच्चैःश्रवा और हाथियों में ऐरावत हूँ। हे अर्जुन! मैं मनुष्यों मे राजा, ॥२७॥ आयुधों में वज्र, गउओं में कामधेनु और उत्पत्ति के कारणों में कामदेव हूँ। मैं विषैले सर्पों में वासुकि, ॥२८॥ विषहीन नागों में शेष, जलचरों में वरुण, पितृगण में अर्यमा, नियन्ता लोगों में यमराज, ॥२९॥ दैत्यों में प्रह्लाद, गणना करनेवालों मे काल, पशुओं में सिंह, पक्षियों में गरुड़, ॥३०॥ वेगशालियों में पवन, शस्त्रधारियों में

अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम् ॥ ३२ ॥
अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्य च ।
अहमेवाऽक्षयः कालो धाताऽहं विश्वतोमुखः ॥ ३३ ॥
मृत्युः सर्वहरश्चाऽहमुद्भवश्च भविष्यताम् ।
कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा ॥ ३४ ॥
बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम् ।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः ॥ ३५ ॥
द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ।
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम् ॥ ३६ ॥
वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनञ्जयः ।
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः ॥ ३७ ॥
दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम् ।
मौनं चैवाऽस्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम् ॥ ३८ ॥
यच्चाऽपि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन ।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ॥ ३९ ॥
नाऽन्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परन्तप।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया ॥ ४० ॥
यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवाऽवगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम् ॥ ४१ ॥

राम, मत्स्यों में मगर और नदियों में गङ्गा हूँ ॥३१॥ हे अर्जुन ! सर्गों में आदि, मध्य और अन्त मैं हूँ—अर्थात् सृष्टि, स्थिति, प्रलय मैं हूँ। विद्याओं में आत्मविद्या, वाद करनेवालों में वाद, ॥३२॥ अक्षरों में अकार, समासों में द्वन्द्व, अक्षयों में काल, विधाताओं में सर्वतोमुख विधाता, ॥३३॥ संहार करनेवालों में मृत्यु और अभ्युदयशीलों में अभ्युदय मैं हूँ। नारियों में कीर्ति, श्री, वाणी, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा मैं हूँ ॥३४॥ सामवेद में बृहत्साम, छन्दों में गायत्री, महीनों में अगहन और ऋतुओं में वसन्त मैं हूँ ॥३५॥ छलनाओं में द्यूत, तेजस्वियों में तेज, जयशीलों में जय, उद्योगियों में उद्यम और सत्त्वशालियों में सत्त्व मैं हूँ ॥३६॥ वृष्णिवंशियों में वासुदेव, पाण्डवों में तुम, मुनियों में व्यास और कवियों में शुक्र मैं हूँ ॥३७॥ दण्डधारियों में दण्ड, जय की इच्छा रखनेवालों में नीति, गुह्य विषयों में गोपन का कारण मौन और ज्ञानियों में ज्ञान मैं हूँ ॥३८॥ हे अर्जुन ! सब प्राणियों का और जो कुछ बीज है सो मैं हूँ। चराचर जगत् में ऐसी कोई वस्तु नहीं जो मेरे बिना हो ॥३९॥ इसी कारण मेरी दिव्य विभूतियों की संख्या नहीं है। हे पार्थ ! यह संक्षेप से मैंने अपनी दिव्य विभूतियों का वर्णन कर दिया ॥४०॥ तात्पर्य यह

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवाऽर्जुन ।
विष्टभ्याऽहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥ ४२ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विभूतियोगो नाम दशमोऽध्याय ॥१०॥
पर्वणि तु चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

है कि संसार में जो कुछ विभूतियुक्त, श्रीसम्पन्न या वृद्धिशाली वस्तु है उसे मेरे तेज के अंश से उत्पन्न समझो ॥४१॥ हे पार्थ ! मेरी विभूतियों को अलग करके जानने की आवश्यकता नहीं है। बहुत कहने की आवश्यकता नहीं—मैं अपने एक अंश से इस जगत् को व्याप्त और धारण किये हुए स्थित हूँ॥४२॥

भीष्मपर्व में चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३४ ॥—[गीता का दसवाँ अध्याय समाप्त हुआ]

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्याय ॥ ३५ ॥

अर्जुन उवाच—मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम् ।
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम ॥ १ ॥
भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया ।
त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाऽव्ययम् ॥ २ ॥
एवमेतद्यथाऽऽत्थ त्वमात्मानं परमेश्वर ।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम ॥ ३ ॥
मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो ।
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयाऽऽत्मानमव्ययम् ॥ ४ ॥

श्रीभगवानुवाच—पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः ।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च ॥ ५ ॥
पश्याऽऽदित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा ।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याऽऽश्चर्याणि भारत ॥ ६ ॥

पैंतीसवाँ अध्याय ॥ ३५ ॥—[गीता का ग्यारहवाँ अध्याय]

अर्जुन ने कहा—हे वासुदेव ! आपने मुझ पर कृपा होने के कारण जो परमगुह्य अध्यात्मविषय का वर्णन किया, उसके द्वारा मेरे हृदय से मोह का अँधेरा दूर हो गया है ॥१॥ हे कमलनयन ! मैंने आपके श्रीमुख से प्राणियों की उत्पत्ति और लय का वर्णन तथा आपका अक्षय अनन्त माहात्म्य सुना ॥२॥ हे पुरुषोत्तम ! आपने जो अपने ईश्वररूप का वर्णन किया, उस विश्वव्यापी विराट् रूप को देखने की मुझे बड़ी ही अभिलाषा है ॥३॥ जो आप मुझे वह रूप देखने का अधिकारी समझें तो वह रूप दिखला दें ॥४॥ भगवान् ने कहा—हे पार्थ ! मेरे अनेक प्रकार के, अनेक वर्ण और आकारवाले, सैंकड़ों-हजारों दिव्य रूप देखो ॥५॥ हे भारत ! मेरे इस रूप में बहुत से अदृष्टपूर्व आश्चर्य और आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण, मरुद्गण, अश्विनीकुमार तथा और जो कुछ देखना चाहते हो सो सब

इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याऽद्य सचराचरम् ।
मम देहे गुडाकेश यच्चाऽन्यद् द्रष्टुमिच्छसि ॥ ७ ॥
न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥ ८ ॥
सञ्जय उवाच— एवमुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः ।
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम् ॥ ९ ॥
अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ।
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥ १० ॥
दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् ।
सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम् ॥ ११ ॥
दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः ॥ १२ ॥
तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा ।
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा ॥ १३ ॥
ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनञ्जयः ।
प्रणम्य शिरसा देवं कृताञ्जलिरभाषत ॥ १४ ॥
अर्जुन उवाच—पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वांस्तथा भूतविशेषसङ्घान् ।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थमृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान्॥ १५ ॥

देखो ॥६॥ मेरे शरीर में चराचर जगत् एकत्र देखोगे; किन्तु तुम इसी दृष्टि से मेरा यह विश्वरूप नहीं देख सकते ॥७॥ मैं तुम्हें दिव्य दृष्टि देता हूँ; तुम मेरी विभूति को देखो ॥८॥ सँजय धृतराष्ट्र से कहते हैं—हे महाराज ! अब महायोगेश्वर हरि ने अपना यह ईश्वर-रूप दिखाया ॥९॥ अर्जुन ने देखा कि अनेक मुख, अनेक नयन, अनेक दिव्य आभूषण, अनेक उद्यत दिव्य शस्त्र, ॥१०॥ दिव्य माला और वस्त्र उस रूप की शोभा बढ़ा रहे हैं । यह अनेक अद्भुत दृश्यों से शोभित, दिव्य अनुलेपन आदि से मण्डित, सर्वतो-मुख, अनन्त, परम प्रकाशमान रूप देखकर अर्जुन अवाक् हो गये ॥११॥ यदि आकाश में एक साथ सहस्र सूर्यों का उदय हो तो शायद महात्मा कृष्ण के उस तेजोमय रूप की प्रभा का अनुमान किया जा सके ॥१२॥ अर्जुन ने श्रीकृष्ण के उस विश्वरूप में मनुष्य, देवता, पितर आदि को अनेक स्थलों में विभक्त और सब जगत् को एकत्र देखा ॥१३॥ तब उन्होंने अत्यन्त विस्मित होकर, सिर झुकाकर, हाथ जोड़कर कृष्णचन्द्र को प्रणाम किया । अर्जुन के रोंगटे खड़े हो गये ॥१४॥ उन्होंने कहा—हे विश्वरूप ! मैं आपके शरीर में सब देवताओं, जरायुज-अण्डज-स्वेदज-उद्भिज सब प्राणियों, कमलासन पर स्थित भगवान् ब्रह्मा, दिव्य ऋषियों और नागों आदि को देख रहा हूँ ॥१५॥ हे भगवन् ! अनेक बाहुओं,

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम् ।
नाऽन्तं न मध्यं न पुनस्तवाऽऽदिं पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप १६॥
किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम् ।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ताद्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम्॥ १७ ॥
त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ॥ १८ ॥
अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्यमनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् ।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम्॥ १९ ॥
द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः।
दृष्ट्वाऽद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन् ॥ २० ॥
अमी हि त्वा सुरसङ्घा विशन्ति केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति ।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसङ्घाः स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः
रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च ।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसङ्घा वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे ॥ २२ ॥
रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं महाबाहो बहुबाहूरुपादम् ।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाऽहम्॥ २३ ॥

अनेक उदरों, अनेक मुखों और अनेक नेत्रोंवाले आपके अनन्त रूप को तो मैं देख रहा हूँ, परन्तु हे विश्वेश्वर ! हे विश्वरूप ! आपका आदि, मध्य और अन्त कुछ नहीं देख पड़ता ॥१६॥ मैं देख रहा हूँ कि आप किरीट, गदा और चक्र धारण किये, तेजोराशि, सूर्य और अग्नि के सदृश तेजस्वी, परम दीप्तिमान्, दुर्निरीक्ष्य और अप्रमेय हैं ॥१७॥ मोक्ष की इच्छा रखनेवालों के लिए आप अक्षय, परब्रह्म, ज्ञातव्य विषय हैं । आप इस विश्व के परम निदान या अधिष्ठान हैं । आप अव्यय, नित्य धर्म के रक्षक और सनातन पुरुष हैं ॥१८॥ प्रदीप्त अग्नि आपके मुख मण्डल में विराजमान है । आपका तेज समग्र विश्व को तपा रहा है । चन्द्र और सूर्य आपके नेत्र हैं । आपका आदि, मध्य और अन्त नहीं है । आपका वीर्य और भुजाएँ अनन्त हैं ॥१९॥ आप अकेले ही सब दिशाओं को, पृथ्वीमण्डल और अन्तरिक्ष को व्याप्त किये हुए हैं । हे महात्मा ! आपके इस उग्र और अद्भुत रूप को देखकर सब लोग अत्यन्त भयभीत और उद्विग्न हो रहे हैं ॥२०॥ सब देवता आपके शरणागत होकर "त्राहि त्राहि" कर रहे हैं। कोई-कोई डरकर, हाथ जोड़कर, आपसे रक्षा के लिए प्रार्थना कर रहे हैं। महर्षि और सिद्धगण "स्वस्ति" कहकर आपकी स्तुति कर रहे हैं ॥२१॥ रुद्र, आदित्य, वसु, साध्य, मरुद्गण, पितर, गन्धर्व, यक्ष, असुर, विश्वेदेवा, सिद्धगण और अश्विनीकुमार आदि देवता विस्मय के साथ आपके रूप को देख रहे हैं ॥२२॥ हे महाबाहो ! आपके अनेक मुखों, अनेक बाहों, अनेक ऊरुओं, अनेक नेत्रों, अनेक चरणों,

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम् ।
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो २४॥
दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि ।
दिशो न जाने न लभे च शर्म प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥२५॥
अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः सर्वे सहैवाऽवनिपालसङ्घैः ।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथाऽसौ सहाऽस्मदीयैरपि योधमुख्यैः ॥२६॥
वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति दंष्ट्राकरालानि भयानकानि ।
केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु सन्दृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः ॥२७॥
यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः समुद्रमेवाऽभिमुखा द्रवन्ति ।
तथा तवाऽमी नरलोकवीरा विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति ॥२८॥
यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः ।
तथैव नाशाय विशन्ति लोकास्तवाऽपि वक्त्राणि समृद्धवेगाः ॥२९॥
लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ताल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः ।
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो ॥३०॥
आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद ।
विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ॥३१॥

अनेक उदरों और अनेक दंष्ट्राओं आदि से युक्त इस भयङ्कर रूप को देखकर तीनों लोकों सहित मैं अत्यन्त व्यथित हो रहा हूँ ॥२३॥ मैं आपको आकाश-स्पर्शी, दीप्तिशील, विविधवर्णयुक्त, विशाल लोचन, मुख फैलाये देखकर किसी तरह धैर्य और शान्ति धारण करने के लिए समर्थ नहीं होता ॥२४॥ हे जगदीश्वर ! कालाग्नि-सदृश भयङ्कर दन्तावली से परिपूर्ण आपके इस मुखमण्डल को देखकर मैं व्याकुल हो रहा हूँ। मुझको दिग्भ्रम सा हो रहा है। हे देवेश ! हे जगन्नाथ ! हे विष्णु ! आप प्रसन्न हों ॥२५॥ हे देवदेव ! सब राजाओं सहित कर्ण, जयद्रथ, दुर्योधन, भीष्म और द्रोण आदि धृतराष्ट्रपुत्रों के पक्ष-वाले योद्धाओं के साथ शिखण्डी, धृष्टद्युम्न आदि सब हमारे पक्ष के योद्धा शीघ्रता के साथ आपके दंष्ट्राओं से कराल मुखों के भीतर चले जा रहे हैं। उनमें किसी-किसी का मस्तक चूर्ण हो गया है, और वे आपके दाँतों की सन्धि में चिपके हुए देख पड़ते हैं ॥२६।२७॥ जैसे सब नदियों का प्रवाह समुद्र में जाता है, वैसे ही सब नर-वीर आपके समुज्ज्वल मुखमण्डल में अपने आप दौड़-दौड़कर प्रवेश कर रहे हैं ॥२८॥ पतङ्गे जैसे जान-बूझकर प्रबल वेग से प्रज्वलित अग्नि के भीतर जा गिरते हैं, वैसे ही ये सब वीर उत्साह के साथ आपके मुखों में प्रवेश कर रहे हैं ॥२९॥ हे विष्णु ! आप प्रज्वलित मुखों की परम्परा में चारों ओर के सब लोगों को लीलते जा रहे हैं। आपकी दीप्ति अत्यन्त अधिक प्रस्फुरित होकर सम्पूर्ण जगत् को, व्याप्त करती हुई, तीव्र वेग से तपा रही है ॥३०॥ इसलिए मेरे आगे प्रकट

श्रीभगवानुवाच—कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः ।
ऋतेऽपि त्वा न भविष्यन्ति सर्वे येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ॥३२॥
तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून्भुंक्ष्व राज्यं समृद्धम् ।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ॥३३॥
द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च कर्णं तथाऽन्यानपि योधवीरान् ।
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा युद्धयस्व जेतासि रणे सपत्नान् ॥३४॥
सञ्जय उवाच—एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य कृताञ्जलिर्वेपमानः किरीटी ।
नमस्कृत्वा भूय एवाऽऽह कृष्णं सगद्गदं भीत भीतः प्रणम्य ॥३५॥
अर्जुन उवाच—स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसङ्घाः ॥३६॥
कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन्गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे ।
अनन्त देवेश जगन्निवास त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ॥३७॥
त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ॥३८॥
वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ।

कीजिए कि आप कौन हैं। हे देवेश! आपको नमस्कार है, आप प्रसन्न हों। मैं नहीं जानता कि आप किसलिए ऐसे संहार के भयानक कार्य में प्रवृत्त हुए हैं। जान पड़ता है कि आप आदि पुरुष होंगे। जो हो, आपका विशेष परिचय प्राप्त करने की मुझे बड़ी अभिलाषा है ॥३१॥ भगवान् ने कहा—मैं सब लोकों का नाश करनेवाला काल हूँ। इस समय लोकसंहार में प्रवृत्त हुआ हूँ। तुम्हारे सिवा, भिन्न-भिन्न सेना-विभागों में स्थित, सभी योद्धा इस समय काल का कौर बनेंगे ॥३२॥ इसलिए तुम युद्ध के लिए तैयार हो जाओ। शत्रुओं को मारकर, यश प्राप्त करके, सुसमृद्ध राज्य करो। हे सव्यसाची! ये सब लोग मेरे ही प्रभाव से पहले ही से नष्टप्राय हो चुके हैं, इस समय तुम तो इन लोगों के संहार का निमित्तमात्र हो ॥३३॥ मैं द्रोण, कर्ण, भीष्म, जयद्रथ और अन्यान्य योद्धाओं को मार चुका हूँ। अब तुम सहज ही उन्हें युद्ध में मारो। किसी तरह का सन्ताप मत करो। इस समय उठकर युद्ध में प्रवृत्त हो जाओ, निःसन्देह तुम शत्रुओं को जीत लोगे ॥३४॥ वासुदेव की बातें सुनकर अत्यन्त भयभीत हुए और काँपते हुए अर्जुन ने हाथ जोड़कर, बारम्बार प्रणाम करके, गद्गद् वाणी से कहा—॥३५॥ हे हृषीकेश! समय पर आपके माहात्म्य का कीर्तन करने से सम्पूर्ण जगत् सन्तुष्ट और अनुरक्त होता है, राक्षसगण या दुष्ट राजा लोग भय के मारे इधर-उधर दसों दिशाओं में भाग जाते हैं, योग तप और मन्त्र आदि से सिद्धि पाये हुए पुरुष आपको प्रणाम करते हैं ॥३६॥ हे अनन्त! हे महात्मा! हे देवेश! हे जगन्निवास! आप ब्रह्मा के भी आदिकर्ता हैं, उनके भी गुरु हैं। फिर आपको क्यों न सब जगत् के लोग प्रणाम करें? हे अनन्त! आप आदिदेव और सनातन पुरुष हैं ॥३७॥ आप इस विश्व

नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥३९॥
नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व ।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ॥४०॥
सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण हे यादव हे सखेति ।
अजानता महिमानं तवेदं मया प्रमादात्प्रणयेन वाऽपि ॥४१॥
यच्चाऽवहासार्थमसत्कृतोऽसि विहारशय्यासनभोजनेषु ।
एकोऽथवाऽप्यच्युत तत्समक्षं तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ॥४२॥
पिताऽसि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् ।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ४३॥
तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम् ।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियःप्रियायाऽर्हसि देव सोढुम् ॥४४॥
अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा भयेन च प्रव्यथितं मनो मे ।
तदेव मे दर्शय देव रूपं प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥४५॥
किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तमिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव ।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते ॥४६॥

का परम आश्रयस्थान हैं। आप ही ज्ञाता और आप ही ज्ञेय हैं। आप ही परमधाम विष्णुपद हैं। आप सर्वत्र व्याप्त हैं ॥३८॥ आप वायु, अग्नि, यम, वरुण और चन्द्र हैं। आप पितामह और प्रपितामह हैं। हे सब लोकों के ईश्वर! आपको सहस्र-सहस्र नमस्कार है ॥३९॥ हे विश्वात्मन्! हे विश्वरूप! आपको आगे, पीछे और सब ओर प्रणाम है। आपकी शक्ति अनन्त और पराक्रम अपार है। सभी पदार्थ आपका स्वरूप हैं। इसी कारण आपको सर्वरूप कहते हैं ॥४०॥ हे मित्र! मैंने आपकी महिमा न जानकर, प्रमाद या प्रणय के कारण आपको सखा समझ, "हे कृष्ण! हे यादव! हे सखा!" आदि कहा है; ॥४१॥ आपके अचिन्त्य प्रभावशाली होने पर भी, बन्धु-बान्धवों के सामने और पीछे भी भोजन, विहार, शयन, आसन आदि के समय अनेक प्रकार की हँसी-दिल्लगी की है। उस अपराध के लिए मैं इस समय आपसे क्षमा की प्रार्थना कर रहा हूँ ॥४२॥ हे अपरिमित प्रभावशाली महापुरुष! आप सबके पिता, पूज्य, गुरु और गुरु से भी बढ़कर गौरवशाली हैं। त्रिभुवन में कोई भी आपके समान या आपसे श्रेष्ठ नहीं है ॥४३॥ आप सभी के नियन्ता और स्तुति के पात्र हैं। इसलिए मैं दण्डवत् प्रणाम करके आपकी प्रसन्नता के लिए प्रार्थना करता हूँ। जैसे पिता पुत्र का, सुहृद् सुहृद् का, प्रिय प्रिय व्यक्ति का अपराध क्षमा करता है, वैसे ही आप भी मेरे सब अपराध क्षमा कीजिए ॥४४॥ हे देवेश! हे जगन्निवास! आपके इस अदृष्टपूर्व रूप को देखकर मैं जैसे सन्तुष्ट हुआ हूँ, वैसे ही भय के मारे मेरा अन्तःकरण बहुत ही विचलित हो रहा है। इसलिए हे देव! प्रसन्न हूजिए; मुझे वही अपना पहले का रूप दिखाइए ॥४५॥ मैं आपका वह किरीट, गदा, चक्र आदि से शोभित पहला रूप देखने के लिए

श्रीभगवानुवाच—मया प्रसन्नेन तवाऽर्जुनेदं रूपं परं दर्शितमात्मयोगात् ।
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् ॥ ४७ ॥
न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानैर्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः ।
एवंरूपः शक्य अहं नृलोके द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर ॥ ४८ ॥
मा ते व्यथा मा च विमूढभावो दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ् ममेदम्।
व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य ॥ ४९ ॥
सञ्जय उवाच—इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः ।
आश्वासयामास च भीतमेनं भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा॥ ५० ॥
अर्जुन उवाच—दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन ।
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः ॥ ५१ ॥
श्रीभगवानुवाच—सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम ।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकांक्षिणः ॥ ५२ ॥
नाऽहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया ।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥ ५३ ॥
भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन ।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप ॥ ५४ ॥
मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः ।
निर्वैरःसर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥ ५५ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विश्वरूपदर्शनं नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥
पर्वणि तु पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

देखना अत्यन्त कठिन है। देवता भी इसे देखने की इच्छा रखते हैं ॥५२॥ हे शत्रुसन्तापन ! वेदाध्ययन, दान, तप या यज्ञ करके भी कोई मेरे इस विश्वरूप को नहीं देख सकता ॥५३॥ मेरा अनन्य भक्त ही शास्त्र से, परमार्थ से और तादात्म्य रूप से मेरा यह रूप देख सकता है ॥५४॥ पुत्र आदि में अनासक्त, प्राणियों से वैर न रखनेवाला और मेरी भक्ति को ही पुरुषार्थ या परमार्थ माननेवाला पुरुष, जो मेरा आश्रय ग्रहण करके मेरे ही उद्देश से सब कर्म करता है, वही मुझे प्राप्त होता है ॥५५॥

भीष्मपर्व का पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३५ ॥—[गीता का ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ]

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

अर्जुन उवाच— एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते ।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच— मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥ २ ॥
ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥ ३ ॥
संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥ ४ ॥
क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥ ५ ॥
ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥ ६ ॥
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥ ७ ॥

छत्तीसवाँ अध्याय ॥ ३६ ॥—[गीता का बारहवाँ अध्याय]

अर्जुन ने कहा—हे केशव ! आप विश्वरूप, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् हैं। जो लोग तद्गत हृदय से आपकी उपासना करते हैं, और जो लोग अव्यक्त और निर्विशेष ब्रह्म की उपासना करते हैं, उन दोनों में कौन श्रेष्ठ है ? यह बतलाइए ॥१॥ भगवान् ने कहा—जो लोग श्रद्धा के साथ मुझमें ही मन लगाकर मेरे ही लिए कर्मों का अनुष्ठान करते हैं वे ही, मेरे मत में, श्रेष्ठ हैं ॥२॥ जो लोग सब प्राणियों का हित करते हैं, सर्वत्र समबुद्धि होकर अव्यक्त ब्रह्म का ध्यान करते हैं, वे भी मुझे ही प्राप्त होते हैं ॥३।४॥ उनमें विशेषता यही है कि देहाभिमानियों की अव्यक्त ब्रह्म में निष्ठा होना अनायास साध्य नहीं है; इसी कारण अव्यक्त ब्रह्म की उपासना करने में अत्यन्त क्लेश होता है ॥५॥ और जो लोग अनन्य भाव से मुझमें ही मन को लगाकर, मुझको ही सब कर्म अर्पण कर, एकान्त भक्ति के साथ मेरा ध्यान और उपासना करते हैं, ॥६॥ उन्हें मैं बहुत ही शीघ्र इस मृत्यु-दूषित संसार से उबार लेता हूँ ॥७॥ इस कारण

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥ ८ ॥
अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम् ।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाऽऽप्तुं धनञ्जय ॥ ९ ॥
अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव ।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ॥ १० ॥
अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः ।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ॥ ११ ॥
श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते ।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ॥ १२ ॥
अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी ॥ १३ ॥
सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मे भक्तः स मे प्रियः ॥ १४ ॥
यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥ १५ ॥
अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ १६ ॥

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥ १७ ॥
समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ॥ १८ ॥
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित् ।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥ १९ ॥
ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ॥ २० ॥

इति श्रीमन्महाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्तियोगो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥ भीष्मपर्वणि तु षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

हर्ष, द्वेष, शोक और आकांक्षा से रहित मेरा भक्त है, वही मुझे प्रिय है ॥१७॥ जो शत्रु-मित्र, मान-अपमान, शीत-उष्ण, सुख-दुःख और स्तुति-निन्दा को समान मानता है, जो वाणी को संयत रखता है तथा जो कुछ मिल जाय उसी में जो सन्तुष्ट और स्थिर बुद्धिवाला है, वही मेरा भक्त मुझे प्रिय है ॥१८।१९॥ जो लोग श्रद्धापूर्वक मेरा आश्रय लेकर इस धर्मरूप अमृत की उपासना करते हैं, वे मुझे अत्यन्त प्रिय हैं॥२०॥

भीष्मपर्व का छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥३६॥—[गीता का बारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ]

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

अर्जुन उवाच— "प्रकृतिं पुरुषं चैव क्षेत्रं क्षेत्रज्ञमेव च ।
एतद्वेदितुमिच्छामि ज्ञानं ज्ञेयं च केशव" ॥ १ ॥ *

श्रीभगवानुवाच— इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ॥ १ ॥
क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥ २ ॥
तत्क्षेत्रं यच्च यादृक् च यद्विकारि यतश्च यत् ।
स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु ॥ ३ ॥

सैंतीसवाँ अध्याय ॥ ३७ ॥—[गीता का तेरहवाँ अध्याय]

अर्जुन ने कहा—हे केशव ! मैं आपके श्रीमुख से प्रकृति, पुरुष, क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ, ज्ञान और ज्ञेय का वर्णन सुनना चाहता हूँ ॥१॥ भगवान् ने कहा—हे अर्जुन ! इस शरीर को क्षेत्र कहते हैं। इस क्षेत्र के विषय को जो अच्छी तरह जानता है उसे, इस विषय के ज्ञाता लोग, क्षेत्रज्ञ कहते हैं ॥१॥ हे अर्जुन ! सब क्षेत्रों में मुझको ही क्षेत्रज्ञ समझो। क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का जो ज्ञान है वही, मेरे मत से, यथार्थ ज्ञान है ॥२॥ वह क्षेत्र जैसे स्वभाव से युक्त, जिन इन्द्रियों के विकार से युक्त, जिस प्रकार की प्रकृति और पुरुष

* यह श्लोक श्री: शं०, भाष्यकारों का भाष्य इसपर नहीं है। महाभारत के पुस्तकों में मिलता है अतः यहाँ दिया है।

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक् ।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ॥ ४ ॥
महाभूतान्यहङ्कारो बुद्धिरव्यक्तमेव च ।
इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः ॥ ५ ॥
इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं सङ्घातश्चेतना धृतिः ।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ॥ ६ ॥
अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम् ।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥ ७ ॥
इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहङ्कार एव च ।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥ ८ ॥
असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु ।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥ ९ ॥
मयि चाऽनन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥ १० ॥
अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥ ११ ॥
ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते ।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नाऽसदुच्यते ॥ १२ ॥

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ १३ ॥
सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥ १४ ॥
वहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च ।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चाऽन्तिके च तत् ॥ १५ ॥
अविभक्तं च भूतेपु विभक्तमिव च स्थितम् ।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥ १६ ॥
ज्योतिपामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य धिष्ठितम् ॥ १७ ॥
इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः ।
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ॥ १८ ॥
प्रकृतिं पुरुपं चैव विद्धयनादी उभावपि ।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान् ॥ १९ ॥
कार्यकारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते ।
पुरुपः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ॥ २० ॥
पुरुपः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान्।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥ २१ ॥

ब्रह्म मेरा निर्विशेष रूप है। वह न तो सत् है और न असत् ॥१२॥ उसके हाथ-पाँव, नेत्र, कान और मुख सर्वत्र विद्यमान हैं और वह स्वयं सर्वत्र व्याप्त हो रहा है ॥१३॥ वह सब प्रकार की इन्द्रियों से रहित है, किन्तु इन्द्रियों और उनके सब विषयों का प्रकाशक है। वह सङ्ग-रहित होकर भी सबका आधारस्वरूप है। वह गुण-हीन है, किन्तु सब गुणों का भोग करनेवाला है ॥१४॥ वह सब चराचर प्राणियों के भीतर और बाहर है। वह सूक्ष्मतम होने के कारण अविज्ञेय है। वह दूरस्थ होकर भी निकटस्थ है ॥१५॥ वह सब प्राणियों में अभिन्न रहकर भी भिन्न भिन्न कार्यों के लिए भिन्न भिन्न रूप से स्थित सा जान पड़ता है। वही सब प्राणियों की सृष्टि, रक्षा और संहार करनेवाला है ॥१६॥ वह ज्योतिर्मय पदार्थों की ज्योति और अज्ञान से परे है। वह ज्ञान, ज्ञेय, ज्ञानगम्य और सबके हृदय में अन्तर्यामी रूप से स्थित है ॥१७॥ हे कौन्तेय! मैंने यह संक्षेप से तुम्हारे आगे ज्ञान-ज्ञेय और क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का वर्णन कर दिया। मेरे भक्त लोग इन बातों को जानकर मेरे भाव को प्राप्त होते हैं ॥१८॥ प्रकृति और पुरुष दोनों को अनादि जानो। देह, इन्द्रिय आदि विकार और सुख दुःख आदि गुण सब प्रकृति से उत्पन्न हैं। पुरुष प्रकृति में स्थित रहकर सब गुणों का भोग करता है ॥१०॥ शरीर और सब

उपद्रष्टाऽनुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः ।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः ॥ २२ ॥
य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते ॥ २३ ॥
ध्यानेनाऽऽत्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना ।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चाऽपरे ॥ २४ ॥
अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वाऽन्येभ्य उपासते ।
तेऽपि चाऽतितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ॥ २५ ॥
यावत्सञ्जायते किञ्चित्सत्त्वं स्थावरजङ्गमम् ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ॥ २६ ॥
समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ॥ २७ ॥
समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।
न हिनस्त्यात्मनाऽऽत्मानं ततो याति परां गतिम् ॥ २८ ॥
प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः ।
यः पश्यति तथाऽऽत्मानमकर्तारं स पश्यति ॥ २९ ॥

इन्द्रियों के कर्तृत्व के विषय में प्रकृति कारण है, और सुख-दुःख के भोग के विषय में पुरुष कारण है ॥२०॥ शुभाशुभ कर्मों को करानेवाला इन्द्रियसंसर्ग ही पुरुष के देव-तिर्यक् आदि सत्-असत् जन्मों का कारण है ॥२१॥ प्रकृति अर्थात् देह में रहकर वह पुरुष प्रकृति के गुणों का भोग करता है। वह परम पुरुष उपद्रष्टा, अनुमन्ता (अनुमोदक), भर्ता और भोक्ता भी है। उसी को महेश्वर और परमात्मा भी कहते हैं ॥२२॥ जो इस प्रकार पुरुष और प्रकृति को जानता है, वह गुणों के साथ सदा सर्वथा वर्तमान रहकर भी फिर संसार में जन्म नहीं लेता ॥२३॥ कोई लोग ध्यान और मन के द्वारा आत्मा में ही आत्मा को देखते हैं। कोई सांख्य-योग द्वारा और कोई कर्मयोग के द्वारा उस परमात्मा के दर्शन प्राप्त करते हैं॥२४॥ कोई स्वयं इस प्रकार न जानने के कारण औरों (आचार्य आदि) के निकट सुनकर उसके अनुसार आत्मा का चिन्तन और उपासना करते हैं। वे श्रुतिपरायण लोग भी मृत्यु को जीतकर मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं ॥२५॥ हे भारत! स्थावर या जङ्गम जो कोई वस्तु उत्पन्न होती है, वह क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के संयोग से उत्पन्न होती है। उस संयोग का कारण अविवेक ही है ॥२६॥ जो लोग चराचर प्राणियों में परमात्मा को देखते हैं, और उन चराचर प्राणियों के विनष्ट होने पर भी उस परमात्मा को अविनाशी देखते हैं, वे ही परमार्थ-दर्शी हैं ॥२७॥ जो लोग परमात्मा को सर्वत्र समान भाव से स्थित देखते हैं, और अविद्या के द्वारा आप ही अपने आत्मा की हत्या नहीं करते, वे ही मुक्ति प्राप्त करते हैं— परम गति पाते हैं ॥२८॥ जो यह देखता है कि

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥ ३० ॥
अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्माऽयमव्ययः ।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ॥ ३१ ॥
यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ।
सर्वत्राऽवस्थितो देहे तथाऽऽत्मा नोपलिप्यते ॥ ३२ ॥
यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः ।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ॥ ३३ ॥
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा ।
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम् ॥ ३४ ॥

इति श्रीमन्म० भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोगो नाम त्रयोदशोऽध्यायः १३ भीष्मपर्वणि तु सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

सब कर्मों को प्रकृति ही करती है, आत्मा स्वयं कोई कार्य नहीं करता, उसी का देखना उचित है ॥२९॥ जब लोग यह देखते हैं कि सब भिन्न-भिन्न प्राणी एक प्रकृति में ही स्थित हैं, और प्रकृति से ही उनका विस्तार होता है, तब वे सच्चिदानन्द ब्रह्म को प्राप्त होते हैं ॥३०॥ यह सनातन परमात्मा देह में रहता हुआ भी स्वयं अनादि और निर्गुण होने के कारण न तो कुछ कर्म करता है, और न कभी किसी प्रकार कर्मफल में लिप्त होता है ॥३१॥ जैसे आकाश सब पदार्थों में स्थित होकर भी किसी में लिप्त नहीं है, वैसे ही आत्मा सब देहों में होता हुआ भी देह के गुण-दोषों में लिप्त नहीं होता ॥३२॥ हे भारत! जैसे एक ही सूर्य इस असीम विश्व को पूर्ण रूप से प्रकाशित करता है, वैसे ही एकमात्र परमात्मा सब शरीरों को प्रकाशित किये हुए है ॥३३॥ जो लोग विशेष रूप से ज्ञानचक्षु के द्वारा क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के भेद को देखते हैं, और भौतिक प्रकृति से मोक्ष के उपाय को जानते हैं, वेही परम पद को प्राप्त होते हैं ॥३४॥

भीष्मपर्व का सैंतीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३७ ॥—[गीता का तेरहवां अध्याय समाप्त हुआ]

अथ अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

श्रीभगवानुवाच—परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम् ।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः ॥ १ ॥
इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः ।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ॥ २ ॥

अड़तीसवाँ अध्याय ॥ ३८ ॥—[गीता का चौदहवां अध्याय]

भगवान् ने कहा—हे पार्थ! सर्वश्रेष्ठ मुनिगण जिसे जानकर परम सिद्धि प्राप्त करते हैं, उस ज्ञान को मैं तुम्हारे आगे वर्णन करता हूँ, सुनो ॥१॥ इस ज्ञान का आश्रय लेकर लोग मेरे स्वरूप को प्राप्त करते हैं, और फिर सृष्टि-काल में भी जन्म नहीं लेते। उन्हें प्रलय-काल में भी व्यथित नहीं होना

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम् ।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥ ३ ॥
सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः ।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥ ४ ॥
सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः ।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥ ५ ॥
तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम् ।
सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चाऽनघ ॥ ६ ॥
रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम् ।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम् ॥ ७ ॥
तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम् ।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत ॥ ८ ॥
सत्त्वं सुखे सञ्जयति रजः कर्मणि भारत ।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे सञ्जयत्युत ॥ ९ ॥
रजस्तमश्चाऽभिभूय सत्त्वं भवति भारत ।
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा ॥ १० ॥
सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते ।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत ॥ ११ ॥

पड़ता ॥२॥ हे भारत ! मेरी 'महत्' प्रकृति ही सब जीवों के गर्भाधान का स्थान है । मैं उसी मे गर्भ स्थापित करता हूँ ॥३॥ उसी से सब प्राणियों की उत्पत्ति होती है । हे कौन्तेय ! सब योनियों में जो मूर्तियां उत्पन्न होती हैं उनका पिता मैं ब्रह्मस्वरूप हूँ । महत्तत्त्व उनकी योनि है । उसमें मैं बीज स्थापित करता हूँ ॥४॥ प्रकृति से उत्पन्न सत्त्व, रज, तम नाम के तीनों गुण ही जीवों को सुख-दुःख मे आबद्ध करते हैं ॥५॥ उन तीनों गुणो मे, निर्मल होने के कारण, सत्त्वगुण ही सब इन्द्रियों का प्रकाशक है । उसी के प्रभाव से देहधारी लोग अपने को सुखी और ज्ञानी समझते हैं ॥६॥ रजोगुण अनुरागात्मक है । वह तृष्णा और आसक्ति से उत्पन्न हुआ है । वह देहधारियों को कर्म के बन्धन मे बांध रखता है ॥७॥ तमोगुण अज्ञान से उत्पन्न हुआ है । वह देहधारियों को मोह, आलस्य और निद्रा से आच्छन्न कर रखता है ॥८॥ सत्त्वगुण सब जीवों को सुखी, रजोगुण कर्मासक्त और तमोगुण ज्ञान का नाश करके प्रमाद के वश मे कर देता है ॥९॥ सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण को, रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुण को, तमोगुण, सत्त्वगुण और रजोगुण को अभिभूत करके प्रकट होता है॥१०॥ सत्त्वगुण जब बढ़ता है तब इस शरीर की सब इन्द्रियों में ज्ञान का प्रकाश होता है। रजोगुण जब बढ़ता है तब लोभ, (अग्निहोत्र आदि

लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा ।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ ॥ १२ ॥
अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च ।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन ॥ १३ ॥
यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत् ।
तदोत्तमविदाँल्लोकानमलान्प्रतिपद्यते ॥ १४ ॥
रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसङ्गिषु जायते ।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते ॥ १५ ॥
कर्मणः सुकृतस्याऽऽहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम् ।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम् ॥ १६ ॥
सत्त्वात्सञ्जायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च ।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ॥ १७ ॥
ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ॥ १८ ॥
नाऽन्यं गुणेभ्यः कर्त्तारं यदा द्रष्टाऽनुपश्यति ।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति ॥ १९ ॥
गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान् ।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥ २० ॥
अर्जुन उवाच—कैर्लिङ्गैस्त्रीन्गुणानेतानतीतो भवति प्रभो ।
किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्तते ॥ २१ ॥

की) प्रवृत्ति, (घर आदि) कर्म का आरम्भ, स्पृहा और अशान्ति उत्पन्न होता है ॥११।१२॥ तमोगुण के बढ़ने पर विवेक-हीनता, अप्रवृत्ति, प्रमाद और मोह उपस्थित होता है ॥१३॥ सत्त्वगुण बढ़ने की अवस्था में यदि कोई मृत्यु को प्राप्त होता है तो वह हिरण्यगर्भ के उपासक लोगों के समुज्ज्वल लोकों को जाता है ॥१४॥ रजोगुण बढ़ने की अवस्था में यदि कोई मृत्यु को प्राप्त होता है तो वह मनुष्यलोक में जन्म लेकर कर्मों में आसक्त होता है। तमोगुण बढ़ने की अवस्था में यदि किसी का प्राणान्त होता है तो वह पशु आदि की योनियों में जन्म लेता है॥१५॥ सात्त्विक कर्म का फल अति निर्मल सुख है, राजस कर्म का फल दुःख है और तामस कर्म का फल अज्ञान है॥१६॥ सत्त्व में ज्ञान, रजोगुण में लोभ और तमोगुण से प्रमाद, मोह तथा अज्ञान उत्पन्न होता है॥१७॥ सात्त्विक लोग ऊर्ध्वगति प्राप्त करते हैं। राजस लोग मध्यगति प्राप्त करते हैं। जघन्य-गुण-सम्भूत भ्रम-मोह के वशीभूत तामस लोग अधोगति प्राप्त करते हैं ॥१८॥ विवेक आदि सब गुणों को सब कार्यों का कर्त्ता समझने में और आत्मा को इन तीनों गुणों से परे जानने से मनुष्य

श्रीभगवानुवाच—प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव ।
न द्वेष्टि सम्प्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति ॥ २२ ॥
उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते ।
गुणा वर्त्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते ॥ २३ ॥
समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ॥ २४ ॥
मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥ २५ ॥
मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ २६ ॥
ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाऽहममृतस्याऽव्ययस्य च ।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ॥ २७ ॥

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः ।
अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके ॥ २ ॥
न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नाऽन्तो न चाऽऽदिर्न च सम्प्रतिष्ठा ।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलमसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा ॥ ३ ॥
ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः ।
तमेव चाऽऽद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ॥ ४ ॥
निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥ ५ ॥
न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥ ६ ॥
ममैवांऽशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥ ७ ॥
शरीरं यदवाप्नोति यच्चाऽप्युत्क्रामतीश्वरः ।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाऽऽशयात् ॥ ८ ॥
श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च ।

उनतालीसवाँ अध्याय ॥ ३९ ॥ —[गीता का पन्द्रहवाँ अध्याय]

भगवान् ने कहा—हे अर्जुन ! संसार एक अक्षय अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष है । इसकी जड़ ऊपर और शाखाएँ नीचे हैं । वेद इसके पत्ते हैं । इसके विषय को जो जानता है वही वेदज्ञ है ॥१॥ इस वृक्ष की शाखाएँ नीचे और ऊपर फैली हुई हैं । यह सत्त्व आदि गुणों के द्वारा परिवर्द्धित और रूप-रस आदि विषयों के द्वारा पल्लवित हुआ रहता है । नीचे, मनुष्यलोक में, कर्मबन्धन रूप जड़ें फैली हुई हैं ॥२॥ इस वृक्ष का रूप नहीं देख पड़ता । न इसका आदि है, न अन्त है । यह किस प्रकार स्थित है, सो भी नहीं जाना जाता । सुदृढ़ निर्ममता-रूप शस्त्र के द्वारा इस जड़ जमाये हुए वृक्ष को काटकर इसकी जड़ को खोजना चाहिए ॥३॥ उसे जिन्होंने पा लिया है, वे फिर संसार में लौटकर नहीं आते । जिससे पुरानी (प्राचीन संसार की) प्रवृत्ति प्रवर्तित हुई है उसी आदि-पुरुष के मैं शरणागत हूँ यों कहकर उन्हीं के शरणागत होना चाहिए ॥४॥ जिन्होंने मान, मोह और पुत्र आदि के प्रति आसक्ति त्याग दी है, सुख दुःख आदि द्वन्द्वभावों से अपना छुटकारा कर लिया है वे ही आत्मज्ञाननिष्ठ, निष्काम, अविद्या शून्य महात्मा उक्त अव्यय पद को प्राप्त करते हैं ॥५॥ सूर्य, चन्द्र और अग्नि जिसे प्रकाशित करने में असमर्थ हैं, जिसे प्राप्त होकर फिर यहाँ से लौटना नहीं होता, वही मेरा परमधाम है ॥६॥ इस जीवलोक में सनातन जीव मेरा ही अंश है । वह प्रकृतिस्थ पाँचों इन्द्रियों को और मन को आकृष्ट करता है ॥७॥ जैसे वायु फूलों से गन्ध लेकर दौड़ती है, वैसे ही जीव जब शरीर को ग्रहण करता है या छोड़ता

अधिष्ठाय मनश्चाऽयं विषयानुपसेवते ॥ ९ ॥
उत्क्रामन्तं स्थितं वाऽपि भुञ्जानं वा गुणान्वितम् ।
विमूढा नाऽनुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥ १० ॥
यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम् ।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः ॥ ११ ॥
यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।
यच्चन्द्रमसि यच्चाऽग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥ १२ ॥
गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा ।
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः ॥ १३ ॥
अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥ १४ ॥
सर्वस्य चाऽहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाऽहम् ॥ १५ ॥
द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाऽक्षर एव च ।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥ १६ ॥
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥ १७ ॥
यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥ १८ ॥

योमामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम् ।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत ॥ १९ ॥
इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयाऽनघ ।
एतद् बुध्वा बुद्धिमाँस्यात्कृतकृत्यश्च भारत ॥ २० ॥

इति श्रीम० भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे पुरुषोत्तमयोगो नाम पञ्चदशोऽध्याय.॥१५॥
पर्वणि तु ऊनचत्वारिंशोऽध्याय. ॥ ३९ ॥

प्राणी क्षर हैं, और कूटस्थ पुरुष अक्षर है ॥१६॥ इनके अतिरिक्त और एक उत्तम पुरुष है, उसका नाम परमात्मा है। वह इन तीनो लोकों मे प्रवेश करके सबका प्रतिपालन कर रहा है ॥१७॥ वही अव्यय ईश्वर है। मैं क्षर और अक्षर दोनो पुरुषों से बढ़कर हूँ। इसी कारण लोक और वेद में मैं पुरुषोत्तम कहलाता हूँ ॥१८॥ जो व्यक्ति मोह-शून्य होकर मुझे पुरुषोत्तम जानता है, वही सर्वज्ञ है—वही सब प्रकार से मुझे भजता है ॥१९॥ हे पार्थ! मैंने तुमको यह परम गुह्य शास्त्रीय विषय सुनाया है। इसे जानने पर लोग बुद्धिमान् और कृतकार्य होते हैं ॥२०॥

भीष्मपर्व का उनतालीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥३९॥—[गीता का पन्द्रहवां अध्याय समाप्त हुआ]

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

श्रीभगवानुवाच—अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥ १ ॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥ २ ॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नाऽतिमानिता ।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥ ३ ॥
दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च ।
अज्ञानं चाऽभिजातस्य पार्थ सम्पदमाऽऽसुरीम् ॥ ४ ॥
दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायाऽऽसुरी मता ।
मा शुचः सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव ॥ ५ ॥

चालीसवां अध्याय ॥ ४० ॥—[गीता का सोलहवां अध्याय]

वासुदेव ने कहा—हे अर्जुन! जो लोग दैवी सम्पत्ति को लक्ष्य कर जन्मते हैं उनमें अभय, चित्त-शुचि, आत्मज्ञान की निष्ठा, दान, दम, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, सरलता, ॥१॥ अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, दुष्टता का अभाव, सब प्राणियों पर दया, लोभशून्यता, कोमलता, ह्री, अचञ्चलता, ॥२॥ तेज, क्षमा, धृति, शौच, अद्रोह और अभिमान का अभाव, ये छब्बीस गुण स्वाभाविक होते हैं ॥३॥ जो लोग आसुरी सम्पत्ति को लक्ष्य करके जन्म लेते हैं उनमें दम्भ, दर्प, अभिमान, क्रोध, निष्ठुरता और अज्ञान

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च ।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे श्रृणु ॥ ६ ॥
प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः ।
न शौचं नाऽपि चाऽऽचारो न सत्यं तेषु विद्यते ॥ ७ ॥
असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम् ।
अपरस्परसम्भूतं किमन्यत्कामहैतुकम् ॥ ८ ॥
एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः ।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ॥ ९ ॥
काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः ।
मोहाद्गृहीत्वाऽसद्ग्राहान्प्रवर्त्तन्तेऽशुचिव्रताः ॥ १० ॥
चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः ।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ॥ ११ ॥
आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनाऽर्थसञ्चयान् ॥ १२ ॥
इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् ।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ॥ १३ ॥
असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चाऽपरानपि ।

आदि दुर्गुण स्वाभाविक होते हैं ॥४॥ दैवी सम्पत्ति मोक्ष का और आसुरी सम्पत्ति बन्धन का कारण होती है। हे अर्जुन! तुम दैवी सम्पत्ति को लक्ष्य करके उत्पन्न हुए हो, इसलिए शोक मत करो ॥५॥ हे पार्थ! इस लोक में दैव और आसुर दो प्रकार के प्राणी होते हैं। मैं तुमको दैव प्राणियों का विषय विस्तार के साथ सुना चुका। अब आसुर प्राणियों का विषय सुनो ॥६॥ आसुर स्वभाव के लोग धर्म में प्रवृत्ति और अधर्म में निवृत्ति का विषय नहीं जानते। वे शौच, आचार और सत्य से शून्य होते हैं ॥७॥ वे जगत् को असत्य, अप्रतिष्ठ, स्वाभाविक, अनीश्वर, स्त्री-पुरुष के संसर्गमात्र से उत्पन्न और कामहेतुक बतलाते हैं ॥८॥ वे अल्प बुद्धिवाले लोग इस प्रकार की समझ का आश्रय लेते हैं। वे मलिनचित्त, उग्रकर्मा और अहितकारी लोग जगत् के नाश के लिए उद्यत होते हैं ॥९॥ दम्भ, अभिमान, मद और अपवित्र मद्य-मांस आदि में उनकी विशेष रुचि होती है। वे मोहवश यह सोचकर कि "इस देवता की आराधना करके मैं बहुत-सा द्रव्य प्राप्त करूँगा", क्षुद्र देवताओं की आराधना में प्रवृत्त होते हैं और कामभोग को परम पुरुषार्थ समझकर मरणपर्यन्त असीम चिन्ता में चूर रहते हैं ॥१०।११॥ बहुत-सी आशाओं के फन्दे में बँधे हुए वे कामना करते और कामना पूर्ण करने के लिए अन्यायपूर्वक धन उपार्जन करने की चेष्टा करते हैं ॥१२॥ "मैंने आज यह प्राप्त किया, फिर यह मनोरथ पूर्ण

ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी ॥ १४ ॥
आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया ।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः ॥ १५ ॥
अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः ।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥ १६ ॥
आत्मसम्भाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः ।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाऽविधिपूर्वकम् ॥ १७ ॥
अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः ।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ॥ १८ ॥
तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान् ।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥ १९ ॥
आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि ।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ॥ २० ॥
त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥ २१ ॥
एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः ।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम् ॥ २२ ॥
यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥ २३ ॥

होगा; मेरे पास यह धन है, आगे चलकर वह धन भी प्राप्त होगा; ॥१३॥ आज इस शत्रु को मारा है, कल उस शत्रु को भी मारूँगा, मैं ईश्वर हूँ, मैं भोगी हूँ, सुखी हूँ ॥१४॥ धनशाली हूँ, मैं सिद्ध हूँ, बलवान् हूँ, कुलीन हूँ, मेरे समान और कोई नहीं है, मैं यज्ञ करूँगा, दान करूँगा, आमोद-प्रमोद करूँगा"–इस प्रकार वे अज्ञानमोहित लोग मोह और चित्तविकारों में आच्छन्न और कामभोग में आसक्त होकर नाह-नाह के निकृष्ट विचार करते हैं और अन्त को नरकगामी होते हैं ॥१५।१६॥ वे लोग स्वय-पूजित, नम्रता-रहित, धन-मद में चूर और अहङ्कार, बल, दर्प, काम, क्रोध और ईर्ष्या के वशीभूत होकर नाममात्र के लिए यज्ञ आदि करते हैं ॥१७।१८॥ मैं उन विद्वेषी, क्रूरस्वभाव, नराधमों को निरन्तर इस संसार में आसुर योनियों के बीच गिराता रहता हूँ ॥१९॥ हे कौन्तेय ! वे मूढ पुरुष आसुर योनि को प्राप्त होकर फिर मुझे नहीं पा सकते, इस कारण उत्तरोत्तर अधम गति को ही पहुँचते रहते हैं ॥२०॥ हे अर्जुन ! काम, क्रोध और लोभ, ये तीन नरक के द्वार हैं। इन्हीं से आत्मविनाश होता है। इसलिए यत्नपूर्वक इनसे बचना चाहिए ॥२१॥ इनसे छुटकारा पा सकने पर मनुष्य आत्मकल्याण-लाभपूर्वक परम गति प्राप्त करता

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहाऽर्हसि ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे दैवासुरसम्पद्विभागयोगो नाम षोडशोऽध्यायः १६ पर्वणि तु चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

है ॥२२॥ जो कोई शास्त्र की विधि न मानकर स्वेच्छाचार में प्रवृत्त होता है, वह परम गति या सुख शान्ति नहीं पा सकता ॥२३॥ कार्य-अकार्य का निश्चय करने में शास्त्र ही प्रमाण है । इसलिए तुम शास्त्र के विधान को जानकर कर्तव्य-पालन में लग जाओ ॥२४॥

भीष्मपर्व का चालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४० ॥—[गीता का सोलहवाँ अध्याय समाप्त हुआ]

अथ एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

अर्जुन उवाच—ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयाऽन्विताः ।
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच—त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा ।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु ॥ २ ॥

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत ।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥ ३ ॥

यजन्ते सात्त्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः ।
प्रेतान्भूतगणांश्चाऽन्ये यजन्ते तामसा जनाः ॥ ४ ॥

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः ।
दम्भाहङ्कारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ॥ ५ ॥

कर्शयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ।
मां चैवाऽन्तःशरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान् ॥ ६ ॥

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः ।

इकतालीसवाँ अध्याय ॥ ४१ ॥—[गीता का सत्रहवाँ अध्याय]

अर्जुन ने पूछा—हे कृष्णचन्द्र ! जो लोग शास्त्रविधि को छोड़कर श्रद्धापूर्वक यज्ञ आदि करते हैं, उनकी वह श्रद्धा सात्त्विकी है, या राजसी अथवा तामसी ? ॥१॥ भगवान् ने कहा—हे अर्जुन ! देहधारियों की श्रद्धा सात्त्विकी, राजसी और तामसी, तीन प्रकार की होती है ॥२॥ तीनों प्रकार की श्रद्धा स्वाभाविक है । सत्त्व की श्रद्धा सत्त्व के अनुरूप होती है । यह पुरुष श्रद्धामय है । जिसकी जैसी श्रद्धा है वह वैसा ही है ॥३॥ सात्त्विक पुरुष देवताओं की, राजस पुरुष यक्षों और राक्षसों की तथा तामस पुरुष भूतों और प्रेतों की पूजा करते हैं ॥४॥ जो मनुष्य दम्भ, अहङ्कार, काम, राग आदि की प्रबलता के साथ अशास्त्रीय कठोर तप में लगे रहकर शरीरस्थ तत्त्वों को और शरीर के भीतर स्थित मुझ आत्मा को

यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु ॥ ७ ॥
आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः ।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः ॥ ८ ॥
कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥ ९ ॥
यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् ।
उच्छिष्टमपि चाऽमेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥ १० ॥
अफलाकांक्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते ।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः ॥ ११ ॥
अभिसन्धाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत् ।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् ॥ १२ ॥
विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम् ।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ॥ १३ ॥
देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥ १४ ॥
अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥ १५ ॥

क्लेश पहुँचाते हैं, वे अचेत पुरुष आसुर प्रकृति के हैं ॥५।६॥ हे अर्जुन ! सब पुरुषों को आहार भी तीन तरह का प्रिय होता है। यज्ञ, तप और दान भी त्रिविध होते हैं। इन सबके लक्षण मैं कहता हूँ, सुनो ॥७॥ आयु, सत्त्व, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति को बढ़ानेवाला, सरस, स्निग्ध, हृदय-पोषक आहार सात्त्विक लोगों को रुचता है ॥८॥ अत्यन्त कटु, अत्यन्त खट्टा, अत्यन्त नमकीन, अत्यन्त गर्म, अत्यन्त तीक्ष्ण, अत्यन्त दाही, दुःख, शोक और रोग को बढ़ानेवाला आहार राजस पुरुषों को प्रिय होता है ॥९॥ बासी, जिसका रस नष्ट हो चुका है, दुर्गन्धयुक्त, जूठा, अपवित्र, कई दिन का बना आहार तामस लोगों को प्रिय होता है ॥१०॥ हे धनञ्जय ! फल की कामना छोड़कर अवश्य कर्तव्य समझकर मन की एकाग्रता के साथ विधिपूर्वक जो यज्ञ किया जाता है, वह सात्त्विक यज्ञ है ॥११॥ हे भरतश्रेष्ठ ! फल की कामना से या दम्भ के लिए जो किया जाता है वह यज्ञ राजस है ॥१२॥ ऐसे ही विधि-हीन, श्रद्धाहीन, अन्नदानशून्य, तथा बिना ही मन्त्र और दक्षिणा के किया गया यज्ञ तामस कहलाता है ॥१३॥ देवता, ब्राह्मण, गुरुजन और पण्डित आदि की पूजा, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा, ये शारीरिक तप के अङ्ग हैं ॥१४॥ किसी को कष्ट न पहुँचानेवाला वाक्य, सत्य, प्रिय, हितकारी वाक्य और स्वाध्याय (वेदपाठ) का अभ्यास, ये वाङ्मय तप के अङ्ग हैं ॥१५॥ मन की पवित्रता, सौम्यभाव,

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥ १६ ॥
श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः ।
अफलाकांक्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते ॥ १७ ॥
सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत् ।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम् ॥ १८ ॥
मूढग्राहेणाऽऽत्मनो यत्पीडया क्रियते तपः ।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् ॥ १९ ॥
दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ॥ २० ॥
यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः ।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ॥ २१ ॥
अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ २२ ॥
ॐतत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ॥ २३ ॥
तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपः क्रियाः ।
प्रवर्त्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ॥ २४ ॥
तदित्यनभिसन्धाय फलं यज्ञतपःक्रियाः ।
दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकांक्षिभिः ॥ २५ ॥

मौन, आत्मनिग्रह (मन का दमन) और भाव की शुद्धि, ये मानस तप के अङ्ग हैं ॥१६॥ यह त्रिविध तप सात्त्विक आदि भेद से तीन प्रकार का है। फल की इच्छा छोड़कर एकाग्रभाव से अत्यन्त श्रद्धा के साथ किया गया तप सात्त्विक है ॥१७॥ सत्कार, मान और पूजा की प्राप्ति के लिए दम्भपूर्वक जो किया जाता है, वह नाशवान् फलवाला तप राजस है ॥१८॥ मूढ़ता-पूर्वक आत्मा को पीड़ा पहुँचाकर या दूसरे को कष्ट पहुँचाने के लिए, दूसरे की बुराई के लिए, जो तप किया जाता है, वह तामस है ॥१९॥ केवल इस भाव से कि देना ही चाहिए, जो अपना उपकार न करनेवाले को, देशकाल और पात्र का विचार करके, दिया जाता है वह सात्त्विक दान है ॥२०॥ प्रत्युपकार या स्वर्गलाभ आदि के उद्देश से अनिच्छापूर्वक जो दिया जाता है, वह राजस दान है ॥२१॥ अनुपयुक्त स्थान में, अनुपयुक्त समय में, अयोग्य पात्र को असत्कार और तिरस्कार के साथ जो दिया जाता है, वह तामस दान है ॥२२॥ ॐ, तत्, सत्, ये ब्रह्म के तीन नाम हैं। पूर्व समय में इन्हीं नामों से ब्राह्मणों, यज्ञों और वेदों का विधान

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते ।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते ॥ २६ ॥
यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते ।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाऽभिधीयते ॥ २७ ॥
अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ॥ २८ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे श्रद्धात्रयविभागयोगो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ पर्वणि तु एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

हुआ है ॥२३॥ इसी कारण ब्रह्मवादियों के विधान में कहे गये यज्ञ, दान, तप आदि कर्म "ॐ" कहकर किये जाते है ॥२४॥ फल की कामना न रखनेवाले मोक्षाभिलाषी लोग "तत्" कहकर यज्ञ, तप, दान आदि विविध कर्म करते हैं ॥२५॥ सद्भाव, साधुभाव, मङ्गलकर्म और यज्ञ-तप-दान आदि के अवसर पर परमेश्वर के उद्देश से किये गये कर्मों में "सत्" शब्द का प्रयोग किया जाता है ॥२६।२७॥ अश्रद्धा से किया गया हवन, दान, तप और अन्य कर्म "असत्" कहलाते हैं। हे पार्थ ! ये कर्म न इस लोक में फलदायक होते हैं और न परलोक में काम आते हैं ॥२८॥

भीष्मपर्व का इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४१ ॥—[गीता का सतारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ]

अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

अर्जुन उवाच—संन्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम् ।
त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन ॥ १ ॥
श्रीभगवानुवाच—काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः ।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः ॥ २ ॥
त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः ।
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमिति चाऽपरे ॥ ३ ॥
निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम ।
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः सम्प्रकीर्तितः ॥ ४ ॥

बयालीसवाँ अध्याय ॥ ४२ ॥—[गीता का अठारहवाँ अध्याय]

अर्जुन ने कहा—हे महाबाहो ! हे हृषीकेश ! संन्यास का और त्याग का तत्त्व मैं अलग-अलग सुनना चाहता हूँ ॥१॥ श्री भगवान् ने कहा—हे अर्जुन ! विद्वान् ज्ञानियों ने काम्य कर्म के त्याग को ही संन्यास और सब कर्मफलों के त्याग को ही त्याग कहा है ॥२॥ कुछ लोगों का कहना है कि कर्म का दोष-तुल्य त्याग कर देना चाहिए। अन्य लोग कहते हैं कि यज्ञ, दान, तप आदि कर्मों का त्याग न करना चाहिए ॥३॥ हे भरतकुलश्रेष्ठ ! अब तुम त्याग के बारे में निश्चय सुनो। हे पुरुषसिंह ! त्याग तीन

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥ ५ ॥
एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च ।
कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् ॥ ६ ॥
नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते ।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ॥ ७ ॥
दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत् ।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत् ॥ ८ ॥
कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन ।
सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः॥ ९ ॥
न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नाऽनुषज्जते ।
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः ॥ १० ॥
न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः ।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते ॥ ११ ॥
अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम् ।
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित् ॥ १२ ॥
पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे ।
सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम् ॥ १३ ॥

प्रकार का है ॥४॥ यज्ञ, दान और तप का त्याग किसी तरह न करना चाहिए। यज्ञ, दान, तप आदि कर्म विवेकियों के चित्त को शुद्ध करते हैं ॥५॥ हे भारत! मेरे विचार मे आसक्ति और फल की इच्छा छोड़कर कर्म करना चाहिए ॥६॥ नित्य कर्मो का त्याग कभी न करना चाहिए। यही मेरा उत्तम और निश्चित मत है। मोह के कारण नित्य कर्मों का त्याग तामस कहलाता है ॥७॥ अत्यन्त दुःखद समझकर शारीरिक क्लेश और भय के कारण किये गये कर्म के त्याग को राजस कहते है। राजस त्यागी व्यक्ति कभी त्याग का फल नहीं पा सकता ॥८॥ आसक्ति और फल की प्रत्याशा से बचकर, अवश्य कर्तव्य समझकर, कर्म करना सात्त्विक त्याग कहलाता है ॥९॥ सत्त्व-गुणयुक्त, मेधावी सन्देहहीन त्यागशील व्यक्ति दुःख के विषय से द्वेष और सुख के विषय में अनुराग कभी नहीं रखता ॥१०॥ देहधारी पुरुष सब कर्मों का त्याग कर भी तो नहीं सकता। हे पार्थ! जो कर्मफल का त्याग करनेवाला है वही वास्तव में त्यागी कहा जा सकता है ॥११॥ कर्म के त्रिविध फल हैं,— इष्ट, अनिष्ट और इष्टानिष्ट। जो लोग त्यागी नहीं है वे परलोक में जाकर इन फलों को प्राप्त करते हैं किन्तु सन्यासी लोग इन फलों को नहीं पाते॥१२॥ हे अर्जुन! कर्मसिद्धि के निमित्त तत्त्व निर्णय करने-वाले सांख्यशास्त्र मे शरीर, कर्ता, भिन्न भिन्न इन्द्रिया,

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् ।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवाऽत्र पञ्चमम् ॥ १४ ॥
शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः ।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्चैते तस्य हेतवः ॥ १५ ॥
तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः ।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः ॥ १६ ॥
यस्य नाऽहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ।
हत्वाऽपि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते ॥ १७ ॥
ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना ।
करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः ॥ १८ ॥
ज्ञानं कर्म च कर्ता च त्रिधैव गुणभेदतः ।
प्रोच्यते गुणसङ्ख्याने यथावच्छृणु तान्यपि ॥ १९ ॥
सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् ॥ २० ॥
पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान् ।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम् ॥ २१ ॥
यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम् ।
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम् ॥ २२ ॥
नियतं सङ्गरहितमरागद्वेषतः कृतम् ।

भिन्न भिन्न उनकी चेष्टाएं और दैव, ये पांच सब कर्मों के कारण कहे गये हैं ॥१३॥ न्यायसङ्गत या अन्यायपूर्ण, सभी कार्य के—जिन्हें मनुष्य मन, वाणी और काया से करते हैं—यही पांच कारण हैं ॥१४।१५॥ बुद्धि परिमार्जित न होने के कारण जो मनुष्य उपाधिशून्य केवल आत्मा को कर्ता समझता है, वह दुर्मति कुछ भी नहीं जानता ॥१६॥ जिसमें अहङ्कार का भाव नहीं है और जिसकी बुद्धि अलिप्त है, वह इन सब लोगों को मारकर भी नहीं मरता, उसे प्राणिवध का पाप भी नहीं भोगना पड़ता ॥१७॥ ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता, यह तीन प्रकार की कर्मप्रवृत्ति है। करण, कर्म, कर्ता, यह त्रिविध कर्मसंग्रह है ॥१८॥ ज्ञान, कर्म और कर्ता, ये तीनों गुण भेद के अनुसार त्रिविध हैं। हे अर्जुन! सांख्यशास्त्र में इनका वर्णन जिस तरह किया गया है सो मैं कहता हूं, सुनो ॥१९॥ मनुष्य जिसके द्वारा सब विभक्त प्राणियों में एक ही अविभक्त अव्यय भाव देखता है, वह सात्त्विक ज्ञान है ॥२०॥ जिसके द्वारा विभिन्न प्राणियों में भिन्न भिन्न भाव देख पड़ते हैं, वह राजस ज्ञान है ॥२१॥ जो सम्पूर्ण सा, एक ही कार्य में

अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते ॥ २३ ॥
यत्तु कामेप्सुना कर्म साहङ्कारेण वा पुनः ।
क्रियते वहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम् ॥ २४ ॥
अनुवन्धं क्षयं हिंसामनपेक्ष्य च पौरुषम् ।
मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते ॥ २५ ॥
मुक्तसङ्गोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः ।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्त्ता सात्त्विक उच्यते ॥ २६ ॥
रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः ।
हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः ॥ २७ ॥
अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैकृतिकोऽलसः ।
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते ॥ २८ ॥
वुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु ।
प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनञ्जय ॥ २९ ॥
प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये ।
वन्धं मोक्षं च या वेत्ति वुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥ ३० ॥
यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाऽकार्यमेव च ।
अयथावत्प्रजानाति वुद्धिः सा पार्थ राजसी ॥ ३१ ॥
अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसाऽऽवृता ।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च वुद्धिः सा पार्थ तामसी ॥ ३२ ॥

संसक्त, अकारण, अल्प और तत्त्वार्थहीन है वह तामस ज्ञान है ॥२२॥ कर्तृत्व के अभिमान और कामना से शून्य मनुष्य के द्वारा राग और द्वेष छोड़कर किया गया कर्म सात्त्विक कहलाता है ॥२३॥ सकाम और अहङ्कारी व्यक्ति के द्वारा बड़े परिश्रम से किया गया कर्म राजस है ॥२४॥ भावी शुभाशुभ, अर्थ-क्षय, हिंसा और पौरुष का खयाल न करके मोह से जिस कर्म का आरम्भ किया जाता है वह तामस है ॥२५॥ सङ्ग-शून्य, अहङ्कार-हीन, धैर्य और उत्साह से सम्पन्न, सिद्धि और असिद्धि में निर्विकार कर्ता सात्त्विक है ॥२६॥ रागयुक्त, कर्मफल की इच्छा रखनेवाला, लोभी, हिंस्रप्रकृति, अशुचि, हर्षशोकयुक्त कर्ता राजस है ॥२७॥ अयोग्य, असावधान, विवेक-विहीन, उग्र-स्वभाव, शठ, आलसी, विषण्णचित्त और दीर्घसूत्री कर्ता तामस है ॥२८॥ हे पार्थ ! गुण भेद से बुद्धि और धृति के भी तीन भेद हैं; उन्हें सुनो । मैं अलग अलग विस्तारपूर्वक उनका वर्णन करता हूं ॥२९॥ जिस बुद्धि के द्वारा प्रवृत्ति-निवृत्ति, कार्य-अकार्य, भय-अभय, बन्ध-मोक्ष आदि विषय भली प्रकार जाने जाते हैं, वह सात्त्विक है ॥३०॥ जिसके द्वारा धर्म-

धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः ।
योगेनाऽव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥ ३३ ॥
यया तु धर्मकामार्थान्धृत्या धारयतेऽर्जुन ।
प्रसङ्गेन फलाकांक्षी धृतिः सा पार्थ राजसी ॥ ३४ ॥
यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च ।
न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी ॥ ३५ ॥
सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ ।
अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति ॥ ३६ ॥
यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ॥ ३७ ॥
विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ॥ ३८ ॥
यदग्रे चाऽनुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः ।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ ३९ ॥
न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः ।
सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः ॥ ४० ॥

अधर्म, कार्य-अकार्य, विशेष रूप से नहीं जाने जाते, वह बुद्धि राजसी है ॥३१॥ जो बुद्धि अज्ञान से आच्छन्न होकर अधर्म को धर्म और सब पदार्थों का रूप उलटा दिखाती है, वह तामसी है ॥३२॥ जो धृति योगाभ्यास के कारण अन्य विषय को धारण न करके मन, प्राण और इन्द्रियों के सब कार्यों को धारण करती है वह सात्त्विकी है ॥३३॥ जो धृति धर्म आदि के सम्बन्ध से—फल की आशा से—धर्म, अर्थ, काम को धारण करती है, वह राजसी है ॥३४॥ दुर्मति पुरुष जिसके प्रभाव से स्वप्न, भय, शोक, विषाद और मद का त्याग नहीं कर सकते, वही तामसी धैर्य है ॥३५॥ हे भरतश्रेष्ठ ! जिस सुख में अभ्यासवश जी लग जाता है और जिसे प्राप्त करने पर सब प्रकार के दुःख शान्त होते हैं उस त्रिविध सुख का वर्णन करता हूँ— सुनो ॥३६॥ जो पहले तो विष-सा किन्तु परिणाम में अमृत-सा होता है तथा जिसके द्वारा आत्मा और बुद्धि की प्रसन्नता होती है, वही सात्त्विक सुख है ॥३७॥ विषयों और इन्द्रियों के संयोग द्वारा जो पहले अमृत सा और अन्त को विष-सा जान पड़ता है, वह राजस सुख है ॥३८॥ जो पहले भी और पीछे भी आत्मा को मोह में डालता है तथा जो निद्रा, आलस्य और प्रमाद से उत्पन्न होता है, वह तामस सुख है ॥३९॥ पृथ्वी पर सब जीव और स्वर्ग में सब देवता इन स्वाभाविक तीनों गुणों के अधीन हैं। कहीं कोई ऐसा नहीं जिस में इन तीनों गुणों में से एक गुण न हो ॥४०॥ इन

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परन्तप ।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ॥ ४१ ॥
शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥ ४२ ॥
शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाऽप्यपलायनम् ।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥ ४३ ॥
कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् ।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्याऽपि स्वभावजम् ॥ ४४ ॥
स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु ॥ ४५ ॥
यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥ ४६ ॥
श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाऽप्नोति किल्बिषम् ॥ ४७ ॥
सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत् ।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाऽग्निरिवाऽऽवृताः ॥ ४८ ॥
असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः ।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाऽधिगच्छति ॥ ४९ ॥

प्राकृतिक तीनों गुणों के द्वारा ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र, इन चारों वर्णों के कर्मों का विभाग हुआ है ॥४१॥ शम, दम, शौच, क्षमा, सरलता, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिकता, ये ब्राह्मणों के स्वाभाविक कर्म हैं ॥४२॥ शूरता, तेज, धृति, निपुणता या सब के प्रति अनुकूलता, युद्ध से विमुख न होना, दान और स्वामिभाव, ये क्षत्रियों के स्वाभाविक कर्म हैं ॥४३॥ खेती, गो-पालन और वाणिज्य-व्यापार करना वैश्य के स्वाभाविक कर्म हैं। द्विजों की अर्थात् तीनों वर्णों की सेवा करना ही शूद्र का स्वाभाविक कर्म है ॥४४॥ इस प्रकार चारों वर्णों के मनुष्य अपने-अपने स्वाभाविक कर्म में लगे रहने से अभीष्ट सिद्धि प्राप्त करते हैं। हे अर्जुन ! अपने-अपने कर्म में लगे हुए लोग जिस प्रकार सिद्धि प्राप्त करते हैं, सो सुनो ॥४५॥ जिन से सब प्राणियों की प्रवृत्ति प्रकट हुई है और जो इस विश्व भर में सर्वत्र व्याप्त हैं उनकी, अपने-अपने कर्मों के पालन द्वारा, पूजा करने से मनुष्य सिद्धि प्राप्त करते हैं ॥४६॥ भली प्रकार से अनुष्ठित पर धर्म की अपेक्षा अङ्गहीन अपना धर्म ही श्रेष्ठ है; क्योंकि स्वभाव-निर्दिष्ट कार्य करते रहने से क्लेश नहीं भोगना होता ॥४७॥ हे कुन्तीपुत्र ! जैसे अग्नि धुएँ से आच्छन्न रहता है, वैसे ही सब कर्म दोषों से आवृत हैं। इसलिये अपने स्वाभाविक कर्म को, दोष युक्त होने पर भी, छोड़ बैठना कदापि उचित नहीं

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाऽऽप्नोति निबोध मे ।
समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा ॥ ५० ॥
बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्याऽऽत्मानं नियम्य च ।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च ॥ ५१ ॥
विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः ।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ॥ ५२ ॥
अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् ।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ५३ ॥
ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति ।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥ ५४ ॥
भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चाऽस्मि तत्त्वतः ।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥ ५५ ॥
सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः ।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् ॥ ५६ ॥
चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः ।
बुद्धियोगमपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव ॥ ५७ ॥
मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि ।
अथ चेत्त्वमहङ्कारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि ॥ ५८ ॥

॥४८॥ अनासक्त, जितेन्द्रिय, स्पृहारहित व्यक्ति संन्यास के द्वारा सब प्रकार के कर्मों की निवृत्तिरूप सत्त्वशुद्धि प्राप्त करते हैं ॥४९॥ हे अर्जुन ! अब मैं तुमसे वह विषय कहता हूं कि, जिससे सिद्ध पुरुष ब्रह्म पद को प्राप्त होते हैं, मन लगाकर सुनो ॥५०॥ ऐसे मनुष्य को चाहिए कि बुद्धि को विशुद्ध बनाकर धैर्य के द्वारा उसे संयत करे, शब्द आदि विषयों के भोग को त्यागकर राग द्वेष रहित बने ॥५१॥ मन वाणी और शरीर की वृत्तियों का संयम करके वैराग्य का आश्रय और ध्यान तथा योग का अभ्यास करे। अल्प आहार करे, एकान्त स्थान में रहे ॥५२॥ अहङ्कार, बल, दर्प, काम, क्रोध, मोह और संग्रह का त्याग करे। ममतारहित होकर शान्त भाव धारण करे। जो इस प्रकार अनुष्ठान करता है, वही ब्रह्मपद को प्राप्त कर सकता है ॥५३॥ वह ब्रह्मनिष्ठ और प्रसन्नचित्त होकर शोक और लोभ के वशीभूत नहीं होता। वह सब जीवों को समदृष्टि से देखता है। मेरे ऊपर भी उसकी भक्ति सुदृढ होती है ॥५४॥ वह अपनी भक्ति के प्रभाव से मेरे स्वरूप को और मेरे सर्वव्यापी भाव को जानकर अन्त को मुझमें ही लीन हो जाता है ॥५५॥ मनुष्य मेरा आश्रय लेकर कर्मों का अनुष्ठान करते हुए भी मेरी कृपा से अन्त में शाश्वत पद प्राप्त होता है ॥५६॥ हे अर्जुन ! तुम स्थिरवृत्ति होकर सब कर्म मुझे अर्पण करके मेरी शरण में आ जाओ।

यदहङ्कारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे ।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति ॥ ५९ ॥
स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा ।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपि तत् ॥ ६० ॥
ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥ ६१ ॥
तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥ ६२ ॥
इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया ।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ६३ ॥
सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः ।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम् ॥ ६४ ॥
मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥ ६५ ॥
सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ ६६ ॥
इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन ।
न चाऽशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति ॥ ६७ ॥

बुद्धियोग का आश्रय लेकर निरन्तर मुझमें ही चित्त लगाये रहो ॥५७॥ ऐसा करने से तुम, मेरे अनुग्रह से, सब प्रकार के दुःखों से छुटकारा पा सकोगे। और जो तुम अहङ्कार के वश होकर मेरा कहा नहीं सुनोगे तो विनष्ट हो जाओगे ॥५८॥ यदि तुम अहङ्कार के कारण "मैं युद्ध नहीं करूंगा" ऐसा समझते हो, तो तुम्हारा ऐसा विचार करना व्यर्थ है; क्योंकि प्रकृति ही तुमको युद्ध में प्रवृत्त करेगी ॥५९॥ तुम मोह के वश होकर इस समय जिस कार्य को नहीं करना चाहते वही कार्य तुमको, क्षत्रियधर्म के वशीभूत होकर, अवश्य करना पड़ेगा ॥६०॥ हे अर्जुन! ईश्वर सब प्राणियों के हृदय में स्थित होकर अपनी माया के बल से उन्हें कठपुतली की भांति घुमा रहा है ॥६१॥ तुम सब प्रकार से उसी ईश्वर की शरण में जाओ। उसके प्रसाद से ही तुम परम शान्ति और मोक्ष-पद प्राप्त करोगे ॥६२॥ हे पार्थ! मैंने तुम्हारे आगे गुह्य से भी गुह्यतम इस ज्ञान का वर्णन किया है। अब तुम भली प्रकार इस पर विचार करके जो चाहो सो करो ॥६३॥ तुम मुझे अत्यन्त प्रिय हो, इसी कारण मैं तुमसे परमगुह्य हित की बात कहता हूं, सुनो ॥६४॥ तुम मुझमें चित्त समर्पण करके, मेरे अनन्य भक्त होकर, मेरे उद्देश से प्रणाम और मेरी आराधना करो। मैं अङ्गीकार करता हूं, तुम अवश्य मुझे पाओगे ॥६५॥ तुम सब धर्मों को छोड़कर मेरी ही शरण में

य इदं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ॥ ६८ ॥
न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः ।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ॥ ६९ ॥
अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः ।
ज्ञानयज्ञेन तेनाऽहमिष्टः स्यामिति मे मतिः ॥ ७० ॥
श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः ।
सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम् ॥ ७१ ॥
कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा ।
कच्चिदज्ञानसम्मोहः प्रनष्टस्ते धनञ्जय ॥ ७२ ॥
अर्जुन उवाच— नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाऽच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव ॥ ७३ ॥
सञ्जय उवाच— इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः ।
संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम् ॥ ७४ ॥
व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्गुह्यमहं परम् ।
योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम् ॥ ७५ ॥
राजन्संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम् ।
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः ॥ ७६ ॥

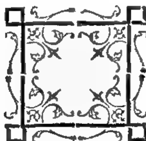
आओ। मैं तुमको सब पापों से छुड़ाऊँगा, तुम शोक मत करो ॥६६॥ मैंने तुमको जो उपासना बताई है, जो उपदेश दिया है, वह तुम कभी धर्मानुष्ठान-हीन, भक्ति रहित, सुनने की इच्छा न रखनेवाले और विशेष कर मेरे द्रोही को न सुनाना ॥६७॥ जो पुरुष भक्ति परायण होकर मेरे भक्तों के आगे इस परमगुह्य विषय का वर्णन करेगा, वह निःसन्देह मुझको प्राप्त होगा ॥६८॥ इस लोक में उससे बढ़कर मुझे प्यारा और कोई न होगा। उससे बढ़कर मेरा प्रिय करने वाला भी और कोई नहीं होगा ॥६९॥ हमारे-तुम्हारे इस धर्ममय संवाद को जो कोई सुनेगा या पढ़ेगा वह, मेरी सम्मति में, ज्ञान-यज्ञ से मेरी आराधना करेगा ॥७०॥ जो मनुष्य असूया से बचा रहकर परम श्रद्धा के साथ हमारे तुम्हारे इस संवाद को सुनेगा वह, सब पापों से बचकर, पुण्यकर्म करनेवालों के पवित्र लोकों को जायगा ॥७१॥ हे पार्थ! बतलाओ तुमने एकाग्रचित्त होकर यह संवाद सुना है न? अज्ञान से उपजा हुआ तुम्हारा मोह दूर हुआ कि नहीं? ॥७२॥ अर्जुन ने कहा—हे अच्युत! आपकी कृपा से मेरा सब मोह मिट गया और मुझे पूर्वस्मृति प्राप्त हो गई। मेरा सब सन्देह दूर हो गया। अब मैं आप की आज्ञा का पालन करूँगा ॥७३॥ सञ्जय कहते हैं—हे महाराज धृतराष्ट्र! मैंने इस प्रकार महात्मा वासुदेव और अर्जुन का यह अद्भुत रोमहर्षण

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः ।
विस्मयो मे महान्राजन्हृष्यामि च पुनः पुनः ॥ ७७ ॥
यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥ ७८ ॥

इति श्री महाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे संन्यासयोगो नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥
पर्वणि तु द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ समाप्तं भगवद्गीतापर्व ।

संवाद सुना है ॥७४॥ व्यासजी के प्रसाद से यह परम गुह्य योग मैंने योगेश्वर कृष्ण के मुख से सुना और यह अद्भुत परम पवित्र संवाद सुनकर तथा वारम्वार स्मरणकर मुझे बड़ा हर्ष हो रहा है ॥७५।७६॥ हे महाराज ! वासुदेव के उस अलौकिक विश्वरूप का स्मरण वारम्वार करके मुझे बड़ा विस्मय और हर्ष हो रहा है ॥७७॥ इस समय मुझे जान पड़ता है कि जिस ओर योगेश्वर वासुदेव और धनुर्द्धर अर्जुन हैं उसी पक्ष को अवश्य राजलक्ष्मी, विजय और अभ्युदय प्राप्त होगा । उधर ही नीति भी है ॥७८॥

भीष्मपर्व का बयालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥
भगवद्गीता का अठारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।
॥ भगवद्गीतापर्व समाप्त ॥



भगवद्गीतापर्व समाप्त हुआ ।

अथ भीष्मवधपर्व ।

वैशम्पायन उवाच—गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रसंग्रहैः ।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता ॥ १ ॥
सर्वशास्त्रमयी गीता सर्वदेवमयो हरिः ।
सर्वतीर्थमयी गङ्गा सर्ववेदमयो मनुः ॥ २ ॥
गीता गङ्गा च गायत्री गोविन्देति हृदि स्थिते ।
चतुर्गकारसंयुक्ते पुनर्जन्म न विद्यते ॥ ३ ॥
षट्शतानि सविंशानि श्लोकानां प्राह केशवः ।
अर्जुनः सप्तपञ्चाशत्सप्तषष्टिं तु सञ्जयः ॥ ४ ॥
धृतराष्ट्रः श्लोकमेकं गीताया मानमुच्यते ।
भारतामृतसर्वस्वगीताया मथितस्य च ॥
सारमुद्धृत्य कृष्णेन अर्जुनस्य मुखे हुतम् ॥ ५ ॥
सञ्जय उवाच—ततो धनञ्जयं दृष्ट्वा बाणगाण्डीवधारिणम् ।
पुनरेव महानादं व्यसृजन्त महारथाः ॥ ६ ॥
पाण्डवाः सोमकाश्चैव ये चैषामनुयायिनः ।
दध्मुश्च मुदिताः शङ्खान्वीराः सागरसम्भवान् ॥ ७ ॥
ततो भेर्यश्च पेश्यश्च क्रकचा गोविषाणिकाः ।
सहसैवाऽभ्यहन्यन्त ततः शब्दो महानभूत् ॥ ८ ॥

तेंतालीसवाँ अध्याय ॥४३॥

वैशम्पायन ने कहा—हे राजा जनमेजय ! गीता का उपदेश स्वयं श्रीकृष्णजी ने किया है, उसी को भली भाँति पढ़ना चाहिए, और शास्त्रों का क्या प्रयोजन है ? गीता में सब शास्त्रों का सार है, हरि में सब देवता हैं, गङ्गाजी में सब तीर्थ हैं और मनु में सब वेदों का सार है । गीता, गङ्गा, गायत्री और गोविन्द—इन चार गकारों का अनुशीलन करने से पुनर्जन्म नहीं होता । गीता के ६२० श्लोक श्रीकृष्णजी ने, ७५ अर्जुन ने और ६७ सञ्जय ने कहे हैं। एक श्लोक धृतराष्ट्र का कहा हुआ है । भारत का अमृत-सर्वस्व जो गीता का मथितार्थ है उसका सार निकालकर श्रीकृष्ण ने अर्जुन के मुख में दे दिया ॥१।५॥ सञ्जय कहते हैं—हे महाराज ! अर्जुन को फिर गाण्डीव धनुष और बाण हाथ में लिये देखकर सब महारथी योद्धा सिंहनाद करने लगे । पाण्डव और सृञ्जयगण, तथा जो लोग उनके साथी थे वे भी, समुद्र से निकले हुए बढ़िया शङ्ख बजाने लगे । सब लोगों की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा । उस समय एकाएक चारों ओर भेरी, पेशी, जयमङ्गल और गोशृङ्ग आदि तरह-तरह के बाजे बजने लगे । उनका वह तुमुल शब्द चारों ओर गूँज उठा ॥६।८॥ हे महाराज ! देवता, गन्धर्व, पितर, सिद्ध और चार-

तथा देवाः सगन्धर्वाः पितरश्च जनाधिप ।
सिद्धचारणसङ्घाश्च समीयुस्ते दिदृक्षया ॥ ९ ॥
ऋषयश्च महाभागाः पुरस्कृत्य शतक्रतुम् ।
समीयुस्तत्र सहिता द्रष्टुं तद्वैशसं महत् ॥ १० ॥
ततो युधिष्ठिरो दृष्ट्वा युद्धाय समवस्थिते ।
ते सेने सागरप्रख्ये मुहुः प्रचलिते नृप ॥ ११ ॥
विमुच्य कवचं वीरो निक्षिप्य च वरायुधम् ।
अवरुह्य रथात्क्षिप्रं पद्भ्यामेव कृताञ्जलिः ॥ १२ ॥
पितामहमभिप्रेक्ष्य धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
वाग्यतः प्रययौ येन प्राङ्मुखो रिपुवाहिनीम् ॥ १३ ॥
तं प्रयान्तमभिप्रेक्ष्य कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
अवतीर्य रथात्तूर्णं भ्रातृभिः सहितोऽन्वयात् ॥ १४ ॥
वासुदेवश्च भगवान्पृष्ठतोऽनुजगाम तम् ।
तथा मुख्याश्च राजानस्तच्चित्ता जग्मुरुत्सुकाः ॥ १५ ॥
अर्जुन उवाच—किं ते व्यवसितं राजन् यदस्मानपहाय वै ।
पद्भ्यामेव प्रयातोऽसि प्राङ्मुखो रिपुवाहिनीम् ॥ १६ ॥
भीमसेन उवाच—क्व गमिष्यसि राजेन्द्र निक्षिप्तकवचायुधः ।
दंशितेष्वरिसैन्येषु भ्रातॄनुत्सृज्य पार्थिव ॥ १७ ॥
नकुल उवाच—एवं गते त्वयि ज्येष्ठे मम भ्रातरि भारत ।
भीर्मे दुनोति हृदयं ब्रूहि गन्ता भवान्क नु ॥ १८ ॥

णगण युद्ध देखने की इच्छा से यहा आकर एकत्र होने लगे। महाभाग ऋषि लोग भी एकत्र होकर, इन्द्र को आगे करके, वह हत्याकाण्ड देखने के लिए वहा आ गये ॥९।१०॥ अब धर्मराज युधिष्ठिर ने दोनों ओर की सेना को युद्ध के लिए प्रस्तुत और वारम्बार सागरतुल्य चलायमान देखा तो कवच उतारकर शस्त्र रख दिये। वे रथ से उतरकर, पूर्व-मुख होकर, शत्रुसेना की ओर चले। पितामह भीष्म को सामने देखकर धीर युधिष्ठिर मौन भाव से हाथ जोड़े पैदल चल दिये। युधिष्ठिर को इस प्रकार जाते देखकर अर्जुन शीघ्र ही रथ से उतर पड़े और भाइयों के साथ उनके पीछे चले। हे राजेन्द्र ! वासुदेव भी उनके पीछे-पीछे जाने लगे। अन्यान्य राजा लोग भी उत्सुकता के साथ राजा युधिष्ठिर के पीछे-पीछे चले ॥११।१५॥ अब अर्जुन ने राजा युधिष्ठिर से कहा—हे महाराज ! आप यह क्या करते हैं ? हम लोगों को छोड़कर पैदल ही शत्रु-सेना में आप जारहे हैं ! ॥१६॥ भीमसेन ने कहा—हे राजन्द्र ! आप कवच

सहदेव उवाच—अस्मिन्रणसमूहे वै वर्त्तमाने महाभये ।
उत्सृज्य क नु गन्तासि शत्रूनभिमुखो नृप ॥ १९ ॥
सञ्जय उवाच—एवमाभाष्यमाणोऽपि भ्रातृभिः कुरुनन्दनः ।
नोवाच वाग्यतः किञ्चिद्गच्छत्येव युधिष्ठिरः ॥ २० ॥
तानुवाच महाप्राज्ञो वासुदेवो महामनाः ।
अभिप्रायोऽस्य विज्ञातो मयेति प्रहसन्निव ॥ २१ ॥
एष भीष्मं तथा द्रोणं गौतमं शल्यमेव च ।
अनुमान्य गुरून्सर्वान्योत्स्यते पार्थिवोऽरिभिः ॥ २२ ॥
श्रूयते हि पुराकल्पे गुरूननुमान्य यः ।
युद्ध्यते स भवेद्व्यक्तमपध्यातो महत्तरैः ॥ २३ ॥
अनुमान्य यथाशास्त्रं यस्तु युद्ध्येन्महत्तरैः ।
ध्रुवस्तस्य जयो युद्धे भवेदिति मतिर्मम ॥ २४ ॥
एवं ब्रुवति कृष्णेऽत्र धार्त्तराष्ट्रचमूं प्रति ।
हाहाकारो महानासीन्निःशब्दास्त्वपरेऽभवन् ॥ २५ ॥
दृष्ट्वा युधिष्ठिरं दूराद्धार्त्तराष्ट्रस्य सैनिकाः ।
मिथः सङ्कथयाञ्चक्रुर्नेषो हि कुलपांसनः ॥ २६ ॥
व्यक्तं भीत इवाऽभ्येति राजाऽसौ भीष्ममन्तिकम् ।
युधिष्ठिरः ससोदर्यः शरणार्थं प्रयाचकः ॥ २७ ॥

और सब शस्त्र फेंककर, भाइयों को छोड़कर, कवच और शस्त्र आदि से सुसज्जित शत्रुओं के सामने कहाँ जा रहे हैं ? ॥१७॥ नकुल ने कहा — हे भरतश्रेष्ठ ! आप हम लोगों के बड़े भाई हैं। आपको यों जाते देखकर मेरा हृदय भय और दुःख से पीड़ित हो रहा है। आप कहाँ जाते हैं ? ॥१८॥ सहदेव ने कहा — हे नरेश ! इस भयानक युद्धारम्भ के समय हमें छोड़कर शत्रुओं के सामने आप कहाँ जा रहे हैं ? ॥१९॥ सञ्जय कहते हैं — हे कौरवराज ! भाइयों के यों कहने पर भी युधिष्ठिर कुछ उत्तर न देकर वैसे ही जाने लगे ॥२०॥ महाबुद्धिमान् श्रीकृष्ण ने हँसकर अर्जुन आदि से कहा — हे पाण्डवो ! मैं इनका तात्पर्य समझ गया। ये भीष्म, द्रोण, कृप, शल्य आदि बड़े-बूढ़ों से आज्ञा लेकर शत्रुओं से युद्ध करना चाहते हैं ॥२१।२२॥ मैंने पहले सुन रक्खा है और मुझे स्वयं भी जान पड़ता है कि जो मनुष्य शास्त्र विधि के अनुसार गुरुजन, वृद्ध और बान्धव आदि से आज्ञा लेकर प्रबल शत्रु से युद्ध करता है वह अवश्य विजयी होता है। और जो कोई गुरुजन का सम्मान बिना किये, उनकी आज्ञा बिना लिये, युद्ध करता है वह शत्रुओं से पराजित होता है ॥२३।२४॥ श्रीकृष्ण इस प्रकार कह ही रहे थे कि उधर दुर्योधन की सेना में बड़ा हाहाकार होने लगा। कुछ लोग तो शान्त हो गये और अनेक लोग युधिष्ठिर को आते देखकर

धनञ्जये कथं नाथे पाण्डवे च वृकोदरे ।
नकुले सहदेवे च भीतिरभ्येति पाण्डवम् ॥ २८ ॥
न नूनं क्षत्रियकुले जातः सम्प्रार्थिते भुवि ।
यथाऽस्य हृदयं भीतमल्पसत्वस्य संयुगे ॥ २९ ॥
ततस्ते सैनिकाः सर्वे प्रशंसान्ति स्म कौरवान् ।
हृष्टाः सुमनसो भूत्वा चैलानि दुधुवुश्च ह ॥ ३० ॥
व्यनिन्दंश्च तथा सर्वे योधास्तव विशाम्पते ।
युधिष्ठिरं ससोदर्यं सहितं केशवेन हि ॥ ३१ ॥
ततस्तत्कौरवं सैन्यं धिक्कृत्वा तु युधिष्ठिरम् ।
निःशब्दमभवत्तूर्णं पुनरेव विशाम्पते ॥ ३२ ॥
किं नु वक्ष्यति राजाऽसौ किं भीष्मः प्रतिवक्ष्यति ।
किं भीमः समरश्लाघी किं नु कृष्णार्जुनाविति ॥ ३३ ॥
विवक्षितं किमस्येति संशयः सुमहानभूत् ।
उभयोः सेनयो राजन्युधिष्ठिरकृते तदा ॥ ३४ ॥
सोऽवगाह्य चमूं शत्रोः शरशक्तिसमाकुलाम् ।
भीष्ममेवाऽभ्ययात्तूर्णं भ्रातृभिः परिवारितः ॥ ३५ ॥
तमुवाच ततः पादौ कराभ्यां पीड्य पाण्डवः ।
भीष्मं शान्तनवं राजा युद्धाय समुपस्थितम् ॥ ३६ ॥

महाशब्द करने लगे । दुर्योधन की सेना के योद्धा लोग दूर से युधिष्ठिर को आते देखकर परस्पर कहने लगे—ये कुलकलङ्क युधिष्ठिर अजय युद्ध से भयभीत होकर भीष्मपितामह के पास आ रहे हैं । भाइयों सहित राजा युधिष्ठिर शरणप्रार्थी होकर आ रहे हैं ॥२५।२७॥ अर्जुन, भीम, नकुल और सहदेव के सहायक होने पर भी युधिष्ठिर क्यों भयभीत हो गये ? ये अल्पपराक्रमी युधिष्ठिर युद्ध से भयभीत हो गये हैं, इससे जान पड़ता है कि इनका जन्म जगत्प्रसिद्ध क्षत्रियकुल में नहीं हुआ ॥२८।२९॥ अब सैनिक लोग प्रसन्नता से कौरवों की प्रशंसा करने लगे । कुछ लोग प्रसन्न होकर दुपट्टे आदि हिला-हिलाकर हर्ष प्रकाश करने लगे । हे राजेन्द्र ! आपके पक्ष के योद्धा लोग भाइयों सहित युधिष्ठिर और श्रीकृष्ण की निन्दा करने लगे । इस प्रकार युधिष्ठिर को धिक्कार दे चुकने पर कौरव-सेना में सन्नाटा छा गया । उस समय दोनों पक्ष के योद्धाओं के मन में, युधिष्ठिर के बारे में, तरह-तरह की शङ्काएँ होने लगीं । वे सोचने लगे कि अन्तिम राजा युधिष्ठिर क्या कहना चाहते हैं ! भीष्म क्या उत्तर देंगे ? समरप्रिय भीमसेन क्या कहेंगे ? श्रीकृष्ण और अर्जुन ही क्या कहना चाहते हैं ? ॥३०।३४॥ भाइयों-सहित राजा युधिष्ठिर शर-शक्ति सङ्कुल कौरव-सेना के भीतर पहुँचकर चतुराई से भीष्म पितामह की ही ओर चले ।

युधिष्ठिर उवाच—आमन्त्रये त्वां दुर्धर्ष त्वया योत्स्यामहे सह ।
अनुजानीहि मां तात आशिषश्च प्रयोजय ॥ ३७ ॥
भीष्म उवाच—यद्येवं नाऽभिगच्छेथा युधि मां पृथिवीपते ।
शपेयं त्वां महाराज पराभावाय भारत ॥ ३८ ॥
प्रीतोऽहं पुत्र युध्यस्व जयमाप्नुहि पाण्डव ।
यत्तेऽभिलषितं चाऽन्यत्तदवाप्नुहि संयुगे ॥ ३९ ॥
व्रियतां च वरः पार्थ किमस्मत्तोऽभिकांक्षसि ।
एवङ्गते महाराज न तवाऽस्ति पराजयः ॥ ४० ॥
अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित् ।
इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः ॥ ४१ ॥
अतस्त्वां क्लीबवद्वाक्यं ब्रवीमि कुरुनन्दन ।
भृतोऽस्म्यर्थेन कौरव्य युद्धादन्यत्किमिच्छसि ॥ ४२ ॥
युधिष्ठिर उवाच—मन्त्रयस्व महाबाहो हितैषी मम नित्यशः ।
युध्यस्व कौरवस्याऽर्थे ममैष सततं वरः ॥ ४३ ॥
भीष्म उवाच—राजन्किमत्र साह्यं ते करोमि कुरुनन्दन ।
कामं योत्स्ये परस्याऽर्थे ब्रूहि यत्ते विवक्षितम् ॥ ४४ ॥

युद्ध के लिए उद्यत खड़े हुए भीष्म के पास पहुँचकर, उनके पाव स्पर्शकर राजा युधिष्ठिर कहने लगे—हे समर-दुर्द्धर्ष ! हे तात ! मेरा निवेदन यह है कि हम लोग आपके साथ युद्ध करेंगे । आप आज्ञा और आशी-र्वाद दीजिये ॥३५।३६॥ भीष्म ने कहा—हे भरत-श्रेष्ठ ! जो तुम इस तरह आकर मुझसे युद्ध की अनुमति न मांगते तो मैं तुमको पराजय का शाप दे देता । हे पुत्र ! अब मैं तुम पर अत्यन्त प्रसन्न हूं । तुम युद्ध में जय प्राप्त करो, तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो । जाओ, युद्ध करो । हे पार्थ ! और तुम मुझसे क्या चाहते हो ? मुझसे यथेष्ट वरदान मांग लो । हे महाराज ! ऐसा होने से किसी तरह तुम्हारी पराजय नहीं हो सकती । ॥३८।४१॥ हे राजेन्द्र ! यह सत्य है कि मनुष्य धन का दास है; धन किसी का दास नहीं है । मुझे धन से ही कौरवों ने अधीन कर रक्खा है । हे कुरुनन्दन ! इसीसे नपुंसकों की तरह मैं तुमसे कहता हूं कि मुझे कौरवों ने धन और वृत्ति देकर अपने अधीन बना रक्खा है । बोलो, तुम युद्ध-साहाय्य के अतिरिक्त मुझसे और क्या चाहते हो ? ॥४१।४२॥ धर्मराज युधिष्ठिर ने कहा—हे प्राज्ञ ! आप सदा मेरा हित चाहते हुए सम्मति दें और दुर्योधन के लिए युद्ध करें । [अर्थात् मन से तो मेरा हित चाहें और शरीर से दुर्योधन का पक्ष लेकर युद्ध करें] यही वर मैं मांगता हूं ॥४३॥ भीष्म ने कहा—हे कौरवश्रेष्ठ ! मैं इस विषय में तुम्हें क्या सहायता दे सकता हूं ? मैं दुर्योधन के लिए युद्ध करूंगा । इस कारण युद्ध के अ[तिरिक्त जो] चाहो मांग लो ॥४४॥ युधिष्ठिर ने कहा—

धनञ्जये कथं नाथे पाण्डवे च वृकोदरे ।
नकुले सहदेवे च भीतिरभ्येति पाण्डवम् ॥ २८ ॥
न नूनं क्षत्रियकुले जातः सम्प्रथिते भुवि ।
यथाऽस्य हृदयं भीतमल्पसत्त्वस्य संयुगे ॥ २९ ॥
ततस्ते सैनिकाः सर्वे प्रशंसन्ति स्म कौरवान् ।
हृष्टाः सुमनसो भूत्वा चैलानि दुधुवुश्च ह ॥ ३० ॥
व्यनिन्दंश्च तथा सर्वे योधास्तव विशाम्पते ।
युधिष्ठिरं ससोदर्यं सहितं केशवेन हि ॥ ३१ ॥
ततस्तत्कौरवं सैन्यं धिक्कृत्वा तु युधिष्ठिरम् ।
निःशब्दमभवत्तूर्णं पुनरेव विशाम्पते ॥ ३२ ॥
किं नु वक्ष्यति राजाऽसौ किं भीष्मः प्रतिवक्ष्यति ।
किं भीमः समरश्लाघी किं नु कृष्णार्जुनाविति ॥ ३३ ॥
विवक्षितं किमस्येति संशयः सुमहानभूत् ।
उभयोः सेनयो राजन्युधिष्ठिरकृते तदा ॥ ३४ ॥
सोऽवगाह्य चमूं शत्रोः शरशक्तिसमाकुलाम् ।
भीष्ममेवाऽभ्ययात्तूर्णं भ्रातृभिः परिवारितः ॥ ३५ ॥
तमुवाच ततः पादौ कराभ्यां पीड्य पाण्डवः ।
भीष्मं शान्तनवं राजा युद्धाय समुपस्थितम् ॥ ३६ ॥

महाशब्द करने लगे । दुर्योधन की सेना के योद्धा लोग दूर से युधिष्ठिर को आते देखकर परस्पर कहने लगे—ये कुलकलङ्क युधिष्ठिर अवश्य युद्ध से भयभीत होकर भीष्मपितामह के पास आ रहे हैं । भाइयो सहित राजा युधिष्ठिर शरणप्रार्थी होकर आ रहे हैं ॥२५।२७॥ अर्जुन, भीम, नकुल और सहदेव के सहायक होने पर भी युधिष्ठिर क्यों भयभीत हो गये ? ये अल्पपराक्रमी युधिष्ठिर युद्ध से भयभीत हो गये हैं, इससे जान पडता है कि इनका जन्म जगत्प्रसिद्ध क्षत्रियकुल में नहीं हुआ ॥२८।२९॥ अब सैनिक लोग प्रसन्नता से कौरवों की प्रशंसा करने लगे । कुछ लोग प्रसन्न होकर दुपट्टे आदि हिला-हिलाकर हर्ष प्रकाश करने लगे । हे राजेन्द्र ! आपके पक्ष के योद्धा लोग भाइयो सहित युधिष्ठिर और श्रीकृष्ण की निन्दा करने लगे । इस प्रकार युधिष्ठिर को धिक्कार दे चुकने पर कौरव-सेना में सन्नाटा छा गया । उस समय दोनों पक्ष के योद्धाओं के मन में, युधिष्ठिर के बारे में, तरह-तरह की शङ्काएँ होने लगीं । वे सोचने लगे कि अन्तिम राजा युधिष्ठिर क्या कहना चाहते हैं ! भीष्म क्या उत्तर देंगे ? समरप्रिय भीमसेन क्या कहेंगे ? श्रीकृष्ण और अर्जुन ही क्या कहना चाहते हैं ? ॥३०।३४॥ भाइयों-सहित राजा युधिष्ठिर शर-शक्ति सङ्कुल कौरव-सेना के भीतर पहुँचकर चतुराई से भीष्म पितामह की ही ओर चले ।

सञ्जय उवाच— अनुमान्याऽथ कौन्तेयो मातुलं मद्रकेश्वरम् ।
निर्जगाम महासैन्याद्भ्रातृभिः परिवारितः ॥ ८८ ॥
वासुदेवस्तु राधेयमाहवेऽभिजगाम वै ।
तत एनमुवाचेदं पाण्डवार्थे गदाग्रजः ॥ ८९ ॥
श्रुतं मे कर्ण भीष्मस्य द्वेषात्किल न योत्स्यसे ।
अस्मान्वरय राधेय यावद्भीष्मो न हन्यते ॥ ९० ॥
हते तु भीष्मे राधेय पुनरेष्यसि संयुगम् ।
धार्तराष्ट्रस्य साहाय्यं यदि पश्यसि चेत्समम् ॥ ९१ ॥
कर्ण उवाच-- न विप्रियं करिष्यामि धार्तराष्ट्रस्य केशव ।
त्यक्तप्राणं हि मां विद्धि दुर्योधनहितैषिणम् ॥ ९२ ॥
सञ्जय उवाच—तच्छ्रुत्वा वचनं कृष्णः संन्यवर्तत भारत ।
युधिष्ठिरपुरोगैश्च पाण्डवैः सह सङ्गतः ॥ ९३ ॥
अथ सैन्यस्य मध्ये तु प्राक्रोशत्पाण्डवाग्रजः ।
योऽस्मान्वृणोति तमहं वरये साह्यकारणात् ॥ ९४ ॥
अथ तान्समभिप्रेक्ष्य युयुत्सुरिदमब्रवीत् ।
प्रीतात्मा धर्मराजानं कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ ९५ ॥
अहं योत्स्यामि भवतः संयुगे धृतराष्ट्रजान् ।
युष्मदर्थे महाराज यदि मां वृणुषेऽनघ ॥ ९६ ॥

करो । जाओ युद्ध करो ॥८७॥ सञ्जय कहते हैं हे महाराज ! राजा युधिष्ठिर इस प्रकार शल्य को सम्मानित करके भाइयों के साथ भयङ्कर शत्रुसेना से बाहर निकल आये ॥८८॥ उधर वासुदेव ने कर्ण के पास जाकर कहा—हे वीर ! मैंने सुना है कि तुम भीष्म से विद्वेष रखने के कारण जब तक संग्रामभूमि में भीष्म रहेंगे तब तक युद्ध नहीं करोगे । इसलिए जब तक भीष्म मारे न जाएँ तब तक तुम हम ही लोगों की ओर से युद्ध करो । जो तुम दोनों पक्षों को समान दृष्टि से देखते हो तो भीष्म के मारे जाने पर फिर दुर्योधन की सहायता के लिए उस ओर जाकर युद्ध करने लगना ॥८९,९०,९१॥ कर्ण ने कहा—हे केशव ! मैं कभी दुर्योधन का अप्रिय नहीं कर सकता । दुर्योधन के हित के लिए प्राण तक दे देने में भी मुझे कोई सङ्कोच नहीं हो सकता ॥९२॥ हे भारत ! कर्ण के ये वचन सुनकर वहां से लौटकर श्रीकृष्ण फिर पाण्डवों के पास आ गये । अब पाण्डवों के बड़े भाई युधिष्ठिर ने सेना के मध्य में खड़े होकर बड़े ऊँचे स्वर से कहा—इस युद्ध-भूमि में जो कोई हमारा हित चाहनेवाला हो उसे हम अपने पक्ष में सम्मिलित होने के लिए बुलाते हैं । वह हमारी सहायता करने के लिए आ सकता है ॥९३,९४॥ तब (वैश्या के गर्भ से उत्पन्न धृतराष्ट्र के पुत्र) युयुत्सु ने पाण्डवों की ओर देखकर प्रसन्नतापूर्वक युधिष्ठिर से कहा—

शल्य उवाच—यदि मां नाऽधिगच्छेथा युद्धाय कृतनिश्चयः ।
शपेयं त्वां महाराज पराभावाय वै रणे ॥ ७९ ॥
तुष्टोऽस्मि पूजितश्चाऽस्मि यत्कांक्षसि तदस्तु ते ।
अनुजानामि चैव त्वां युद्धयस्व जयमाप्नुहि ॥ ८० ॥
ब्रूहि चैव परं वीर केनाऽर्थः किं ददामि ते ।
एवङ्गते महाराज युद्धादन्यत्किमिच्छसि ॥ ८१ ॥
अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित् ।
इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः ॥ ८२ ॥
करिष्यामि हि ते कामं भागिनेय यथेप्सितम् ।
ब्रवीम्यतः क्लीबवत्त्वां युद्धादन्यत्किमिच्छसि ॥ ८३ ॥
युधिष्ठिर उवाच—मन्त्रयस्व महाराज नित्यं मद्धितमुत्तमम् ।
कामं युद्धय परस्याऽर्थे वरमेतं वृणोम्यहम् ॥ ८४ ॥
शल्य उवाच—किमत्र ब्रूहि साह्यं ते करोमि नृपसत्तम ।
कामं योत्स्ये परस्याऽर्थे बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः॥ ८५ ॥
युधिष्ठिर उवाच—स एव मे वरः शल्य उद्योगे यस्त्वया कृतः ।
सूतपुत्रस्य सङ्ग्रामे कार्यस्तेजोवधस्त्वया ॥ ८६ ॥
शल्य उवाच—सम्पत्स्यत्येष ते कामः कुन्तीपुत्र यथेप्सितम् ।
गच्छ युध्यस्व विश्रब्धः प्रतिजाने वचस्तव ॥ ८७ ॥

शाप दे देता। तुमने आकर मेरा सम्मान किया, इससे मैं तुम पर सन्तुष्ट हूं। तुम जो चाहते हो वही होगा। मैं तुमको आज्ञा देता हूं, युद्ध करो और जय पाओ ॥७९।८०॥ तुम और क्या चाहते हो? मैं तुमको क्या दूं? बोलो, युद्ध साहाय्य के अतिरिक्त और क्या चाहते हो? ॥८१॥ हे राजेन्द्र! यह सत्य है कि मनुष्य धन का दास है, धन किसी का दास नहीं है। मुझे धन के द्वारा कौरवों ने अपने वश में कर लिया है। इसी से नपुंसकों की तरह मैं तुमसे कह रहा हूं कि युद्ध-साहाय्य के बिना और क्या चाहते हो? मैं सत्य कहता हूं, तुम्हारी इच्छा अवश्य पूर्ण करूंगा ॥८२।८३॥ धर्मराज युधिष्ठिर ने कहा—हे राजेन्द्र! मैं यही प्रार्थना करता हूं कि नित्य मेरे हित को सोचिए और इच्छानुसार कौरवों की ओर से युद्ध कीजिए ॥८४॥ शल्य ने कहा—हे युधिष्ठिर! मैं तुम्हारी क्या सहायता कर सकता हूं? मुझे कौरवों ने धन के द्वारा अपने वश में कर लिया है; इस कारण मैं उन्हीं की ओर से युद्ध करूंगा। ॥८५॥ युधिष्ठिर ने कहा—हे मामाजी! मैं वही वरदान आपसे मांगता हूं जो आप पहले दे चुके हैं। आप संग्राम में कर्ण का उत्साह और तेज अपनी बातों से घटाने की चेष्टा करते रहिएगा ॥८६॥ शल्य ने कहा—हे कुन्तीपुत्र! तुम्हारी यह इच्छा पूर्ण होगी। मैं तुमसे इसकी प्रतिज्ञा करता हूं, विश्वस्त

सौहृदं च कृपां चैव प्राप्तकालं महात्मनाम् ।
दयां च ज्ञातिषु परां कथयाञ्चक्रिरे नृपाः ॥ १०६ ॥
साधु साध्विति सर्वत्र निश्चेरुः स्तुतिसंहिताः ।
वाचः पुण्याः कीर्तिमतां मनोहृदयहर्षणाः ॥ १०७॥
म्लेच्छाश्चाऽऽर्याश्च ये तत्र ददृशुः शुश्रुवुस्तथा।
वृत्तं तत्पाण्डुपुत्राणां रुरुदुस्ते सगद्गदाः ॥ १०८ ॥
ततो जघ्नुर्महाभेरीः शतशश्च सहस्रशः ।
शङ्खांश्च गोक्षीरनिभान्दध्मुर्हृष्टा मनस्विनः ॥ १०९ ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्या संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मादिसम्मानने त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

की स्तुति करते हुए उन्हें साधुवाद देने लगे ॥१०४। १०७॥ वहाँ म्लेच्छ जाति या आर्यजाति के जिन लोगों ने पाण्डवों को देखा या सुना, वे सभी लोग गद्गद होकर आँसू की धारा बहाने लगे। इसी समय सैकड़ों-हजारों नगाड़ों और दूध के समान श्वेत रङ्ग के शङ्खों को मनस्वी वीरगण प्रसन्न होकर बजाने लगे ॥१०८।१०९॥

भीष्मपर्व का तेंतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४३ ॥

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच— एवं व्यूढेष्वनीकेषु मामकेष्वितरेषु च ।
के पूर्वं प्राहरंस्तत्र कुरवः पाण्डवा नु किम् ॥ १ ॥
सञ्जय उवाच —भ्रातृभिः सहितो राजन्पुत्रो दुःशासनस्तव ।
भीष्मं प्रमुखतः कृत्वा प्रययौ सह सेनया ॥ २ ॥
तथैव पाण्डवाः सर्वे भीमसेनपुरोगमाः ।
भीष्मेण युद्धमिच्छन्तः प्रययुर्हृष्टमानसाः ॥ ३ ॥

चवालीसवाँ अध्याय ॥ ४४ ॥

धृतराष्ट्र ने पूछा—हे सञ्जय ! दोनों ओर की सेना में व्यूह-रचना हो चुकने पर किसने पहले प्रहार किया ? कौरवों ने या पाण्डवों ने ? ॥१॥ सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र ! आपके कुँवर दुःशासन, दुर्योधन की आज्ञा के अनुसार, भीष्म को आगे करके सेना-सहित युद्ध के लिए आगे बढ़े । पाण्डव लोग भी भीमसेन को आगे करके प्रसन्नतापूर्वक भीष्म के साथ युद्ध करने की इच्छा से आगे बढ़े । इसके अनन्तर दोनों पक्षों की सेना में भेरी, मृदङ्ग, गोशृङ्ग, मुरज आदि बाजों का शब्द, रथ के पहियों का शब्द, वीरों की किलकार और सिंहनाद का शब्द, हाथियों और घोड़ों का शब्द चारों ओर गूँज उठा । दोनों ओर के योद्धा तर्जन-गर्जन और सिंहनाद करते ताल ठोंकते एक दूसरे की ओर झपटने लगे । बड़ा भारी

युधिष्ठिर उवाच—एह्येहि सर्वे योत्स्यामस्तव भ्रातॄनपण्डितान् ।
युयुत्सो वासुदेवश्च वयं च ब्रूम सर्वशः ॥ ९७ ॥
वृणोमि त्वां महाबाहो युध्यस्व मम कारणात् ।
त्वयि पिण्डश्च तन्तुश्च धृतराष्ट्रस्य दृश्यते ॥ ९८ ॥
भजस्वाऽस्मान्राजपुत्र भजमानान्महाद्युते ।
न भविष्यति दुर्बुद्धिर्धार्तराष्ट्रोऽत्यमर्षणः ॥ ९९ ॥
सञ्जय उवाच—ततो युयुत्सुः कौरव्यान्परित्यज्य सुतांस्तव ।
जगाम पाण्डुपुत्राणां सेनां विश्राव्य दुन्दुभिम् ॥१००॥
ततो युधिष्ठिरो राजा सम्प्रहृष्टः सहानुजः ।
जग्राह कवचं भूयो दीप्तिमत्कनकोज्ज्वलम् ॥ १०१ ॥
प्रत्यपद्यन्त ते सर्वे स्वरथान्पुरुषर्षभाः ।
ततो व्यूहं यथापूर्वं प्रत्यव्यूहन्त ते पुनः ॥ १०२ ॥
अवादयन्दुन्दुभींश्च शतशश्चैव पुष्करान् ।
सिंहनादांश्च विविधान्विनेदुः पुरुषर्षभाः ॥ १०३ ॥
रथस्थान्पुरुषव्याघ्रान्पाण्डवान्प्रेक्ष्य पार्थिवाः ।
धृष्टद्युम्नादयः सर्वे पुनर्जहृषिरे तदा ॥ १०४ ॥
गौरवं पाण्डुपुत्राणां मान्यान्मानयतां च तान् ।
दृष्ट्वा महीक्षितस्तत्र पूजयाञ्चक्रिरे भृशम् ॥ १०५ ॥

हे महाराज ! यदि आप लोग मुझे ग्रहण करें तो मैं आपके पक्ष में होकर दुर्योधन आदि से युद्ध करने को उद्यत हूँ ॥९५।९६॥ युधिष्ठिर ने कहा—हे भाई युयुत्सु ! आओ आओ । वासुदेव और हम सब तुमको वरण करते हैं। तुम हमारी ओर होकर, हमारे साथ होकर, अपने मूढ़ भाइयों से युद्ध करो । धृतराष्ट्र के वंश और पिण्ड की रक्षा तुम्हीं से होगी । हे राजपुत्र ! मैं अनुमति देता हूँ कि तुम हमारे पक्ष में आ जाओ । अत्यन्त असहनशील दुर्बुद्धि दुर्योधन निःसन्देह मारा जायगा ॥९७।९९॥ सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र ! इसके पश्चात् युयुत्सु अपने भाइयों को छोड़कर डङ्का बजाते हुए पाण्डवों की सेना में आ गये। राजा युधिष्ठिर ने प्रसन्न होकर फिर सुवर्णमय चमकीला कवच पहन लिया । और-और योद्धा लोग भी अपने-अपने रथों पर चढ़कर, पहले की तरह फिर व्यूह बनाकर, असंख्य नगाड़े आदि बजाते हुए घोर सिंहनाद करने लगे ॥१००।१०३॥ पुरुषसिंह धृष्टद्युम्न आदि राजा लोग पाण्डवों को फिर रथ पर सवार और युद्ध करने को उद्यत देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए । मान्य पुरुषों के मान की रक्षा करनेवाले पाण्डवों का गौरव देखकर सब राजा लोग उनकी प्रशंसा करते हुए, उनके समयानुकूल सौहार्द, कृपालुता और बन्धु-बान्धवों के प्रति असाधारण दया आदि की चर्चा करने लगे । चारों ओर लोग पाण्डवों

सौहृदं च कृपां चैव प्राप्तकालं महात्मनाम् ।
दयां च ज्ञातिषु परां कथयाश्चक्रिरे नृपाः ॥ १०६ ॥
साधु साध्विति सर्वत्र निश्चेरुः स्तुतिसंहिताः ।
वाचः पुण्याः कीर्तिमतां मनोहृदयहर्षणाः ॥ १०७॥
म्लेच्छाश्चाऽऽर्याश्च ये तत्र ददृशुः शुश्रुवुस्तथा।
वृत्तं तत्पाण्डुपुत्राणां रुरुदुस्ते सगद्गदाः ॥ १०८ ॥
ततो जघ्नुर्महाभेरीः शतशश्च सहस्रशः ।
शङ्खांश्च गोक्षीरनिभान्दध्मुर्हृष्टा मनस्विनः ॥ १०९ ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मादिसम्मानने त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

की स्तुति करते हुए उन्हे साधुवाद देने लगे ॥१०४। १०७॥ वहा म्लेच्छ जाति या आर्यजाति के जिन लोगों ने पाण्डवों को देखा या सुना, वे सभी लोग गद्गद होकर आंसू की धारा बहाने लगे। इसी समय सैकड़ों-हजारों नगाड़े और दूध के समान श्वेत रङ्ग के शङ्खों को मनस्वी वीरगण प्रसन्न होकर बजाने लगे ॥१०८।१०९॥

भीष्मपर्व का तेतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४३ ॥

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—एवं व्यूढेष्वनीकेषु मामकेष्वितरेषु च ।
के पूर्वं प्राहरंस्तत्र कुरवः पाण्डवा नु किम् ॥ १ ॥
सञ्जय उवाच—भ्रातृभिः सहितो राजन्पुत्रो दुःशासनस्तव ।
भीष्मं प्रमुखतः कृत्वा प्रययौ सह सेनया ॥ २ ॥
तथैव पाण्डवाः सर्वे भीमसेनपुरोगमाः ।
भीष्मेण युद्धमिच्छन्तः प्रययुर्हृष्टमानसाः ॥ ३ ॥

चवालीसवाँ अध्याय ॥ ४४ ॥

धृतराष्ट्र ने पूछा—हे सञ्जय ! दोनों ओर की सेना में व्यूह-रचना हो चुकने पर किसने पहले प्रहार किया ? कौरवों ने या पाण्डवों ने ? ॥१॥ सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र ! आपके कुँवर दुःशासन, दुर्योधन की आज्ञा के अनुसार, भीष्म को आगे करके सेना-सहित युद्ध के लिए आगे बढ़े। पाण्डव लोग भी भीमसेन को आगे करके प्रसन्नतापूर्वक भीष्म के साथ युद्ध करने की इच्छा से आगे बढ़े। इसके अनन्तर दोनों पक्षों की सेना में भेरी, मृदङ्ग, गोशृङ्ग, मुरज आदि वाजों का शब्द, रथ के पहियों का शब्द, वीरों की किलकार और सिंहनाद का शब्द, हाथियों और घोड़ों का शब्द चारों ओर गूँज उठा। दोनों ओर के योद्धा तर्जन-गर्जन और सिंहनाद करते ललकारते एक दूसरे की ओर झपटने लगे। बड़ा भारी

क्ष्वेडाः किलकिलाशब्दाः क्रकचा गोविषाणिकाः ।
भेरीमृदङ्गमुरजा हयकुञ्जरनिःस्वनाः ॥ ४ ॥
उभयोः सेनयोर्ह्यासंस्ततस्तेऽस्मान्समाद्रवन् ।
वयं तान्प्रतिनर्दन्तस्तदाऽऽसीत्तुमुलं महत् ॥ ५ ॥
महान्त्यनीकानि महासमुच्छ्रये समागमे पाण्डवधार्त्तराष्ट्रयोः ।
चकम्पिरे शङ्खमृदङ्गनिःस्वनैः प्रकम्पितानीव वनानि वायुना ॥६॥
नरेन्द्रनागाश्वरथाकुलानामभ्यागतानामशिवे मुहूर्ते ।
बभूव घोपस्तुमुलश्चमूनां वातोद्धुतानामिव सागराणाम् ॥ ७ ॥
तस्मिन्समुत्थिते शब्दे तुमुले लोमहर्षणे ।
भीमसेनो महाबाहुः प्राणदद्गोवृषो यथा ॥ ८ ॥
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषं वारणानां च बृंहितम् ।
सिंहनादं च सैन्यानां भीमसेनरवोऽभ्यभूत ॥ ९ ॥
हयानां हेपमाणानामनीकेपु सहस्रशः ।
सर्वानभ्यभवच्छब्दान्भीमस्य नदतः स्वनः ॥ १० ॥
तं श्रुत्वा निनदं तस्य सैन्यास्तव वितत्रसुः ।
जीमूतस्येव नदतः शक्राशनिसमस्वनम् ॥ ११ ॥
वाहनानि च सर्वाणि शकृन्मूत्रं प्रसुस्रुवुः ।
शब्देन तस्य वीरस्य सिंहस्येवेतरे मृगाः ॥ १२ ॥
दर्शयन्घोरमात्मानं महाभ्रमिव नादयन् ।
विभीषयंस्तव सुतान्भीमसेनः समभ्ययात् ॥ १३ ॥

कोलाहल आकाश तक छा गया ॥२।५॥ इस तरह दोनों पक्षों की मुठभेड़ होने पर पाण्डवों और कौरवों की भारी सेनाएँ, आंधी से हिलाये गये वनों की तरह, शङ्ख और मृदङ्ग आदि के शब्दों से उत्तेजित होकर, आन्दोलित हो उठीं । हे महाराज ! उस अशुभ घोर समय में हाथी, घोड़े, रथ आदि से परिपूर्ण दोनों सेनाओं में वैसा ही कोलाहल सुन पड़ने लगा जैसे तूफ़ान आने के समय क्षोभ को प्राप्त समुद्र में भयानक शब्द उठता है ॥६।७॥ हे राजेन्द्र ! उस रोमाञ्चकारी तुमुल शब्द के उठने पर महाबाहु भीमसेन बली साँड की तरह गरजने लगे । भीमसेन के उस शब्द ने शङ्ख और नगाड़े के शब्द, हाथियों की चिंघार, हजारों घोड़ों की हिनहिनाहट और सैनिकों के सिंहनाद आदि सब प्रकार के शब्दों को दबा लिया । मेघ के समान गम्भीर शब्द से गरजते हुए भीमसेन के उस, इन्द्र के वज्र के से, शब्द को सुनकर कौरवसेना अत्यन्त भयभीत हो उठी ॥८।११॥ जैसे क्षुद्र मृगगण सिंह का भयङ्कर शब्द सुनकर

तमायान्तं महेष्वासं सोदर्याः पर्यवारयन् ।
छादयन्तः शरव्रातैर्मेघा इव दिवाकरम् ॥ १४ ॥
दुर्योधनश्च पुत्रस्ते दुर्मुखो दुःशलः शलः ।
दुःशासनश्चाऽतिरथस्तथा दुर्मर्षणो नृपः ॥ १५ ॥
विविंशतिश्चित्रसेनो विकर्णश्च महारथः ।
पुरुमित्रो जयो भोजः सौमदत्तिश्च वीर्यवान् ॥ १६ ॥
महाचापानि धुन्वन्तो मेघा इव सविद्युतः ।
आददानाश्च नाराचान्निर्मुक्ताशीविषोपमान् ॥ १७ ॥
अथ ते द्रौपदीपुत्राः सौभद्रश्च महारथः ।
नकुलः सहदेवश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ १८ ॥
धार्तराष्ट्रान्प्रतिययुरर्दयन्तः शितैः शरैः ।
वज्रैरिव महावेगैः शिखराणि धराभृताम् ॥ १९ ॥
तस्मिन्प्रथमसंग्रामे भीमज्यातलनिःस्वने ।
तावकानां परेषां च नाऽऽसीत्कश्चित्पराङ्मुखः ॥ २० ॥
लाघवं द्रोणशिष्याणामपश्यं भरतर्षभ ।
निमित्तवेधिनां चैव शरानुत्सृजतां भृशम् ॥ २१ ॥
नोपशाम्यति निर्घोषो धनुषां कूजतां तथा ।
विनिश्चेरुः शराः दीप्ता ज्योतींषीव नभस्तलात् ॥ २२ ॥

मल-मूत्र कर देते हैं वैसे ही हाथी-घोड़े आदि वाहन भीमसेन की गर्जना से डरकर मल मूत्र-त्याग करने लगे। महावीर भीमसेन मेघगर्जनतुल्य अत्यन्त घोर शब्द करके अपने घोर रूप से आपके पुत्रों को डराते हुए कौरवसेना की ओर बढ़े ॥१२।१३॥ तब दुर्योधन, दुर्मुख, दु:सह, अतिरथ, दु:शासन, शल, दुर्मर्षण, विविंशति, चित्रसेन, महारथ, विकर्ण, पुरुमित्र, जय आदि महावीर, भोजवंशी यादव कृतवर्मा और सोमदत्त के पुत्र आदि सब वीर बिजली-सहित बादलों की तरह बड़े-बड़े धनुषों को चढ़ाकर, केंचुल से निकले नागों के समरूपवाले, नाराच बाणों को तरकसों से निकालने लगे। मेघ जैसे सूर्य को ढकना चाहते हैं, वैसे ही ये लोग बाण वर्षा से भीमसेन को ढकते हुए चारों ओर से उन्हें घेरने की चेष्टा करने लगे ॥१४।१७॥ इधर द्रौपदी के पाचों पुत्र, अभिमन्यु, नकुल, सहदेव और धृष्टद्युम्न आदि वीरगण पर्वत के शिखरों पर जैसे वज्रों की वर्षा होती है वैसे ही दुर्योधन आदि के ऊपर बाण बरसाने लगे। भयानक प्रत्यञ्चा शब्द से परिपूर्ण उस भयङ्कर युद्ध मे पाण्डवपक्ष या कौरवपक्ष का कोई भी योद्धा विमुख नहीं हुआ ॥१८।२०॥ हे महाराज ! उस समय मैं द्रोणाचार्य के शिष्यों के हाथ की स्फूर्ति अपनी आंखों से देखने लगा। वे लोग निमित्तवेधी और शब्दवेधी बाणों की वर्षा वेग से कर रहे थे। धनुषों की डोरियों

तावुभौ कुरुशार्दूलौ परस्परवधैषिणौ ।
गाङ्गेयस्तु रणे पार्थं विद्ध्वा नाऽकम्पयद्बली ॥ १० ॥
तथैव पाण्डवो राजन्भीष्मं नाऽकम्पयद्युधि ।
सात्यकिस्तु महेष्वासः कृतवर्माणमभ्ययात् ॥ ११ ॥
तयोः समभवद्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
सात्यकिः कृतवर्माणं कृतवर्मा च सात्यकिम् ॥ १२ ॥
आनर्च्छतुः शरैर्घोरैस्तक्षमाणौ परस्परम् ।
तौ शराचितसर्वाङ्गौ शुशुभाते महाबलौ ॥ १३ ॥
वसन्ते पुष्पशबलौ पुष्पिताविव किंशुकौ ।
अभिमन्युर्महेष्वासं बृहद्बलमयोधयत् ॥ १४ ॥
ततः कोसलराजाऽसावभिमन्योर्विशाम्पते ।
ध्वजं चिच्छेद समरे सारथिं च न्यपातयत् ॥ १५ ॥
सौभद्रस्तु ततः क्रुद्धः पातिते रथसारथौ ।
बृहद्बलं महाराज विव्याध नवभिः शरैः ॥ १६ ॥
अथाऽपराभ्यां भल्लाभ्यां शिताभ्यामरिमर्दनः ।
ध्वजमेकेन चिच्छेद पार्ष्णिमेकेन सारथिम् ॥ १७ ॥
अन्योन्यं च शरैः क्रुद्धौ ततक्षाते परस्परम् ।
मानिनं समरे दृप्तं कृतवैरं महारथम् ॥ १८ ॥

भीष्मपितामह कालदण्डतुल्य धनुष लेकर अर्जुन की ओर बढ़े । तेजस्वी अर्जुन भी लोकप्रसिद्ध गाण्डीव धनुष लेकर भीष्म की ओर झपटे ॥७।९॥ परस्पर वध करने की इच्छा रखनेवाले वे दोनों वीर युद्ध करने लगे । अर्जुन को अपने बाणों के प्रहार से भीष्म तनिक भी विचलित नहीं कर सके, वैसे ही अर्जुन भी प्रहार करके भीष्म को विचलित करने में असमर्थ ही रहे । उधर महाधनुर्द्धर सात्यकि कृतवर्मा से युद्ध करने लगे । दोनों का रोमाञ्च उत्पन्न कर देनेवाला घोर युद्ध होने लगा । दोनों वीर एक दूसरे पर आक्रमण करके प्रहार करने लगे ॥१०।१२॥ दोनों के शरीर बाणों से घायल हो गये । दोनो महाबली वीर घायल होकर वसन्त में फूले हुए ढाक के पेड़ों के समान शोभायमान हुए । महाधनुर्द्धर अभिमन्यु ने कोशलेश्वर राजा बृहद्बल के ऊपर आक्रमण किया । राजा बृहद्बल ने अभिमन्यु के रथ की ध्वजा काट डाली और उनके सारथी को मार गिराया ॥१३।१५॥ अभिमन्यु ने भी क्रुद्ध होकर नव बाण मारकर उन्हें बुरी तरह घायल कर दिया । इसके अनन्तर दो तीक्ष्ण भल्ल बाण लेकर एक से उनके रथ की ध्वजा काट डाली और एक से उनके पृष्ठ-रक्षक सारथी को मार डाला । इस प्रकार दोनों ही शत्रुनाशन वीर तीक्ष्ण बाणों के द्वारा परस्पर प्रहार करने लगे ॥१६।१८॥ हे महाराज ! भीमसेन ने

भीमसेनस्तव सुतं दुर्योधनमयोधयत् ।
तावुभौ नरशार्दूलौ कुरुमुख्यौ महाबलौ ॥ १९ ॥
अन्योन्यं शरवर्षाभ्यां ववृषाते रणाजिरे ।
तौ वीक्ष्य तु महात्मानौ कृतिनौ चित्रयोधिनौ ॥ २० ॥
विस्मयः सर्वभूतानां समपद्यत भारत ।
दुःशासनस्तु नकुलं प्रत्युद्याय महाबलम् ॥ २१ ॥
अविध्यन्निशितैर्बाणैर्बहुभिर्मर्मभेदिभिः ।
तस्य माद्रीसुतः केतुं सशरं च शरासनम् ॥ २२ ॥
चिच्छेद निशितैर्बाणैः प्रहसन्निव भारत ।
अथैनं पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत् ॥ २३ ॥
पुत्रस्तु तव दुर्धर्षो नकुलस्य महाहवे ।
तुरङ्गांश्चिच्छिदे बाणैर्ध्वजं चैवाऽभ्यपातयत् ॥ २४ ॥
दुर्मुखः सहदेवं च प्रत्युद्याय महाबलम् ।
विव्याध शरवर्षेण यतमानं महाहवे ॥ २५ ॥
सहदेवस्ततो वीरो दुर्मुखस्य महारणे ।
शरेण भृशतीक्ष्णेन पातयामास सारथिम् ॥ २६ ॥
तावन्योन्यं समासाद्य समरे युद्धदुर्मदौ ।
त्रासयेतां शरैर्घोरैः कृतप्रतिकृतैषिणौ ॥ २७ ॥
युधिष्ठिरः स्वयं राजा मद्रराजानमभ्ययात् ।
तस्य मद्राधिपश्चापं द्विधा चिच्छेद मारिष ॥ २८ ॥

महारथी, अभिमानी और युद्ध में निपुणता दिखानेवाले आपके पुत्र दुर्योधन के ऊपर आक्रमण किया। वे दोनों चित्रयोधी महाबली वीर युद्धभूमि में परस्पर बाणों की वर्षा करके ऐसा युद्ध करने लगे कि उसे देखकर सब प्राणियों को बड़ा आश्चर्य हुआ ॥१८।२०॥ दुःशासन ने महाबली नकुल पर आक्रमण करके उनको तीक्ष्ण दस बाण मारे। नकुल ने हँसकर अत्यन्त तीक्ष्ण बाणों के द्वारा दुःशासन के वे बाण, धनुष और उनकी ध्वजा काट डाली। इससे कुपित होकर आपके पुत्र ने नकुल के ऊपर पच्चीस क्षुद्रक बाण मारकर उनकी ध्वजा काट गिराई और रथ के घोड़ों को भी मार डाला ॥२१।२४॥ उधर दुर्मुख ने समरप्रिय पराक्रमी सहदेव के सामने पहुँचकर अनेक बाणों से उन्हें घायल किया। सहदेव ने अत्यन्त तीक्ष्ण बाण मारकर उनके सारथी को मार डाला। ये दोनों वीर भी इस प्रकार आक्रमण करके जय की इच्छा से एक दूसरे पर बाण बरसाने लगे ॥२५।२७॥ स्वयं महाराज युधिष्ठिर मद्रराज शल्य

भगदत्तं रणे शूरं विराटो वाहिनीपतिः ।
अभ्ययात्त्वरितो राजंस्ततो युद्धमवर्तत ॥ ४९ ॥
विराटो भगदत्तं तु शरवर्षेण भारत ।
अभ्यवर्षत्सुसंक्रुद्धो मेघो वृष्ट्या इवाऽचलम् ॥ ५० ॥
भगदत्तस्ततस्तूर्णं विराटं पृथिवीपतिम् ।
छादयामास समरे मेघः सूर्यमिवोदितम् ॥ ५१ ॥
बृहत्क्षत्रं तु कैकेयं कृपः शारद्वतो ययौ ।
तं कृपः शरवर्षेण च्छादयामास भारत ॥ ५२ ॥
गौतमं कैकेयः क्रुद्धः शरवृष्ट्याऽभ्यपूरयत् ।
तावन्योन्यं हयान्हत्वा धनुश्छित्वा च भारत ॥ ५३ ॥
विरथावसियुद्धाय समीयतुरमर्पणौ ।
तयोस्तदभवद्युद्धं घोररूपं सुदारुणम् ॥ ५४ ॥
द्रुपदस्तु ततो राजन्सैन्धवं वै जयद्रथम् ।
अभ्युद्ययौ हृष्टरूपो हृष्टरूपं परन्तपः ॥ ५५ ॥
ततः सैन्धवको राजा द्रुपदं विशिखैस्त्रिभिः ।
ताडयामास समरे स च तं प्रत्यविध्यत ॥ ५६ ॥
तयोस्तदभवद्युद्धं घोररूपं सुदारुणम् ।
ईक्षणप्रीतिजननं शुक्राङ्गारकयोरिव ॥ ५७ ॥

बाणों से शिखण्डी को घायल कर दिया; इससे वे विचलित हो गये। फिर शिखण्डी ने भी अश्वत्थामा के ऊपर तीक्ष्ण बाण बरसाना आरम्भ किया। इसी तरह वे दोनों वीर एक दूसरे को बाणों से घायल करने लगे ॥४६।४८॥ हे भारत! वाहिनीपति राजा विराट ने महाशूर भगदत्त के पास जाकर युद्ध आरम्भ कर दिया। विराट ने क्रुद्ध होकर, पर्वत के ऊपर जलधरों के समान, भगदत्त के ऊपर बाण बरसाये। मेघ जैसे सूर्य को ढक लेते हैं, वैसे ही भगदत्त ने बाणों से राजा विराट को ढक दिया ॥४९।५१॥ केकयनरेश बृहत्क्षत्र के पास पहुँचकर कृपाचार्य बाण बरसाने लगे। बृहत्क्षत्र ने भी अपने को बाणविद्ध

के मध्य देखकर कृपाचार्य के ऊपर बाण बरसाना आरम्भ किया। युद्धभूमि में दोनों के धनुष कट गये और रथ के घोड़े मर गये। तब दोनों ही खड्गयुद्ध करने लगे ॥५२।५४॥ शत्रुमर्दन राजा द्रुपद क्रोध के वश होकर सिन्धुपति जयद्रथ के सामने पहुँचे। सिन्धुपति जयद्रथ ने उनको तीन बाणों से घायल किया। द्रुपद भी क्रुद्ध होकर जयद्रथ के ऊपर बाणों की वर्षा करने लगे। शुक्र और मङ्गल के तुल्य उन दोनों वीरों के भयङ्कर युद्ध को देखकर दर्शक लोग अत्यन्त सन्तुष्ट हुए ॥५५।५७॥ हे महाराज! महाबलशाली आपके पुत्र विकर्ण महावीर सुतसोम के सामने जाकर अत्यन्त घोर संग्राम करने लगे। दोनों

विकर्णस्तु सुतस्तुभ्यं सुतसोमं महाबलम् ।
अभ्ययाज्जवनैरश्वैस्ततो युद्धमवर्तत ॥ ५८ ॥
विकर्णः सुतसोमं तु विध्वा नाऽकम्पयच्छरैः ।
सुतसोमो विकर्णं च तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ५९ ॥
सुशर्माणं नरव्याघ्रश्चेकितानो महारथः ।
अभ्यद्रवत्सुसंक्रुद्धः पाण्डवार्थे पराक्रमी ॥ ६० ॥
सुशर्मा तु महाराज चेकितानं महारथम् ।
महता शरवर्षेण वारयामास संयगे ॥ ६१ ॥
चेकितानोऽपि संरब्धः सुशर्माणं महाहवे ।
प्राच्छादयत्तमिषुभिर्महामेघ इवाऽचलम् ॥ ६२ ॥
शकुनिः प्रतिविन्ध्यं तु पराक्रान्तं पराक्रमी ।
अभ्यद्रवत राजेन्द्र मत्तः सिंह इव द्विपम् ॥ ६३ ॥
यौधिष्ठिरस्तु संक्रुद्धः सौबलं निशितैः शरैः ।
व्यदारयत सङ्ग्रामे मघवानिव दानवम् ॥ ६४ ॥
शकुनिः प्रतिविन्ध्यं तु प्रतिविध्यन्तमाहवे ।
व्यदारयन्महाप्राज्ञः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ६५ ॥
सुदक्षिणं तु राजेन्द्र काम्बोजानां महारथम् ।
श्रुतकर्मा पराक्रान्तमभ्यद्रवत संयुगे ॥ ६६ ॥
सुदक्षिणस्तु समरे साहदेविं महारथम् ।
विध्वा नाऽकम्पयत वै मैनाकमिव पर्वतम् ॥ ६७ ॥

ही समान तेजस्वी और वीर थे । इस कारण कोई किसी को विचलित न कर सका । उनका युद्ध देख-कर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥५८।५९॥ पाण्डवों के हितैषी महारथी चेकितान क्रुद्ध होकर सुशर्मा के सामने आये । बाणवर्षा करके सुशर्मा महारथी चेकि-तान के आक्रमण को रोकने लगे । मेघ जैसे पर्वत के ऊपर जल बर्षाते हैं, वैसे ही चेकितान क्रोधान्ध होकर सुशर्मा के ऊपर बाण बरसाने लगे ॥६०।६२॥ सिंह जैसे उन्मत्त हाथी को देखकर उधर झपटता है, वैसे ही गान्धारपति शकुनि महापराक्रमी युधिष्ठिर-पुत्र प्रतिविन्ध्य के ऊपर झपटे । इन्द्र जैसे दानव को क्षत-विक्षत कर डालें वैसे ही युधिष्ठिर के पुत्र ने कुपित होकर बाणवर्षा से शकुनि को अत्यन्त घायल कर दिया ॥६३।६५॥ सहदेव के पुत्र महावीर श्रुतकर्मा काम्बोज देश के निवासी महापराक्रमी महारथी सुदक्षिण के पास झपटकर पहुँचे । घोर बाणों की वर्षा करके भी सुदक्षिण मैनाक पर्वत सदृश श्रुतकर्मा को युद्ध से न हटा सके । श्रुतकर्मा ने तीक्ष्ण बाणों से सुदक्षिण

श्रुतकर्मा ततः क्रुद्धः काम्बोजानां महारथम् ।
शरैर्बहुभिरानर्च्छद्दारयन्निव सर्वशः ॥ ६८ ॥
इरावानथ संक्रुद्धः श्रुतायुषमरिन्दमम् ।
प्रत्युद्ययौ रणे यत्तो यत्तरूपं परन्तपः ॥ ६९ ॥
आर्जुनिस्तस्य समरे हयान्हत्वा महारथः ।
ननाद बलवन्नादं तत्सैन्यं प्रत्यपूरयत् ॥ ७० ॥
श्रुतायुस्तु ततः क्रुद्धः फाल्गुनेः समरे हयान् ।
निजघान गदाग्रेण ततो युद्धमवर्तत ॥ ७१ ॥
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ कुन्तिभोजं महारथम् ।
ससेनं ससुतं वीरं संससज्जतुराहवे ॥ ७२ ॥
तत्राऽद्भुतमपश्याम तयोर्घोरं पराक्रमम् ।
अयुध्येतां स्थिरौ भूत्वा महत्या सेनया सह ॥ ७३ ॥
अनुविन्दस्तु गदया कुन्तिभोजमताडयत् ।
कुन्तिभोजश्च तं तूर्णं शरव्रातैरवाकिरत् ॥ ७४ ॥
कुन्तिभोजसुतश्चाऽपि विन्दं विव्याध सायकैः ।
स च तं प्रतिविव्याध तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ७५ ॥
केकया भ्रातरः पञ्च गान्धारान्पञ्च मारिष ।
ससैन्यास्ते ससैन्यांश्च योधयामासुराहवे ॥ ७६ ॥
वीरबाहुश्च ते पुत्रो वैराटिं रथसत्तमम् ।
उत्तरं योधयामास विव्याध निशितैः शरैः ॥ ७७ ॥

को घायल कर दिया ॥६६।६८॥ उधर अर्जुन के पुत्र, शत्रुपक्ष के लिए कालसदृश, इरावान् ने क्रुद्ध होकर कुपित श्रुतायु का सामना किया। वे शत्रु के घोड़ों को मारकर, सिंहनाद करके, उसकी सेना को विचलित करने लगे। श्रुतायु ने भी क्रुद्ध होकर गदा के प्रहार से इरावान् के घोड़ों को मार डाला। इसी तरह दोनों का तुमुल संग्राम होने लगा॥६९।७१॥ अवन्ति देश के राजा विन्द और अनुविन्द दोनों वीर, पुत्र और सेना सहित, महाराज कुन्तिभोज के साथ युद्ध करने आये। युद्ध में उन दोनों का घोर पराक्रम मैंने देखा। वे उस भारी सेना के साथ युद्ध करने लगे। अनुविन्द ने कुन्तिभोज को एक गदा मारी। कुन्तिभोज ने भी उनके ऊपर बाण चलाये। कुन्तिभोज के पुत्र ने विन्द के ऊपर बाण छोड़े। विन्द ने भी कुन्तिभोज के पुत्र को बाणों से घायल किया। उनका युद्ध देखकर सभी को आश्चर्य हुआ ॥७२।७५॥ केकय देश के राजकुमार पाँचों भाई अपनी सेना को साथ लेकर सैन्ययुक्त गान्धार

उत्तरश्चाऽपि तं वीरं विव्याध निशितैः शरैः ।
चेदिराट् समरे राजन्नुलूकं समभिद्रवत् ॥ ७८ ॥
तथैव शरवर्षेण उलूकं समविद्ध्यत ।
उलूकश्चाऽपि तं बाणैर्निशितैर्लोमवाहिभिः ॥ ७९ ॥
तयोर्युद्धं समभवद्घोररूपं विशाम्पते ।
दारयेतां सुसंक्रुद्धावन्योन्यमपराजितौ ॥ ८० ॥
एवं द्वन्द्वसहस्राणि रथवारणवाजिनाम् ।
पदातीनां च समरे तव तेषां च संकुले ॥ ८१ ॥
मुहूर्तमिव तद्युद्धमासीन्मधुरदर्शनम् ।
तत उन्मत्तवद्राजन्न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ ८२ ॥
गजो गजेन समरे रथिनं च रथी ययौ ।
अश्वोऽश्वं समभिप्रायात्पदातिश्च पदातिनम् ॥ ८३ ॥
ततो युद्धं सुदुर्धर्षं व्याकुलं समपद्यत ।
शूराणां समरे तत्र समासाद्येतरेतरम् ॥ ८४ ॥
तत्र देवर्षयः सिद्धाश्चारणाश्च समागताः ।
प्रैक्षन्त तद्रणं घोरं देवासुरसमं भुवि ॥ ८५ ॥
ततो दन्तिसहस्राणि रथानां चाऽपि मारिष ।
अश्वौघाः पुरुषौघाश्च विपरीतं समाययुः ॥ ८६ ॥

देश के पाँच राजकुमारों से युद्ध कर रहे थे। आपके पुत्र वीरबाहु, श्रेष्ठ रथी विराट पुत्र उत्तर के साथ युद्ध की इच्छा से, आगे बढ़े। वीरबाहु ने उत्तर को नव बाणों से घायल किया। महावीर उत्तर ने भी इतने बाण बरसाये कि वीरबाहु उनसे आच्छादित हो गये। ॥७५।७८॥ महावीर चेदि-पति उलूक के सामने आये और उन पर बाण बरसाने लगे। उलूक ने भी उनके ऊपर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा की। युद्ध करते-करते दोनों के शरीर इतने घायल हो गये कि तिल भर भी शरीर बाणों के घाव से शून्य नहीं रह गया; किन्तु कोई किसी को हरा नहीं सका ॥७८।८०॥ हे राजेन्द्र! इस तरह कौरवों और पाण्डवों के पक्ष के हजारों रथ, हाथी, घोड़े आदि पर सवार और पैदल वीर योद्धा परस्पर अत्यन्त घोर द्वन्द्वयुद्ध करने लगे। क्षण भर तो वह द्वन्द्वयुद्ध भली प्रकार देखा जा सका, किन्तु फिर सब लोग ऐसे भिड़ गये और अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा ऐसी होने लगी कि कुछ भी नहीं देख पड़ता था। उस समय रथ के साथ रथ, हाथी के साथ हाथी, घोड़े के साथ घोड़ा और पैदल के साथ पैदल भिड़ गया और अत्यन्त घोर युद्ध होने लगा ॥८१।८३॥ शूर वीर लोग एक दूसरे के सामने जाकर दारुण संग्राम करने लगे। युद्ध भूमि में पहुँचकर देवर्षि, सिद्ध और चारणगण वह देवासुर-युद्ध के समान भयानक संग्राम देखने लगे।

श्रुतकर्मा ततः क्रुद्धः काम्बोजानां महारथम् ।
शरैर्बहुभिरानर्च्छद्वारयन्निव सर्वशः ॥ ६८ ॥
इरावानथ संक्रुद्धः श्रुतायुषमरिन्दमम् ।
प्रत्युद्ययौ रणे यत्तो यत्तरूपं परन्तपः ॥ ६९ ॥
आर्जुनिस्तस्य समरे हयान्हत्वा महारथः ।
ननाद बलवन्नादं तत्सैन्यं प्रत्यपूरयत् ॥ ७० ॥
श्रुतायुस्तु ततः क्रुद्धः फाल्गुनेः समरे हयान् ।
निजघान गदाग्रेण ततो युद्धमवर्तत ॥ ७१ ॥
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ कुन्तिभोजं महारथम् ।
ससेनं ससुतं वीरं संससज्जतुराहवे ॥ ७२ ॥
तत्राऽद्भुतमपश्याम तयोर्घोरं पराक्रमम् ।
अयुध्येतां स्थिरौ भूत्वा महत्या सेनया सह ॥ ७३ ॥
अनुविन्दस्तु गदया कुन्तिभोजमताडयत् ।
कुन्तिभोजश्च तं तूर्णं शरव्रातैरवाकिरत् ॥ ७४ ॥
कुन्तिभोजसुतश्चाऽपि विन्दं विव्याध सायकैः ।
स च तं प्रतिविव्याध तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ७५ ॥
केकया भ्रातरः पञ्च गान्धारान्पञ्च मारिष ।
ससैन्यास्ते ससैन्यांश्च योधयामासुराहवे ॥ ७६ ॥
वीरबाहुश्च ते पुत्रो वैराटिं रथसत्तमम् ।
उत्तरं योधयामास विव्याध निशितैः शरैः ॥ ७७ ॥

को घायल कर दिया ॥६६।६८॥ उधर अर्जुन के पुत्र, शत्रुपक्ष के लिए कालसदृश, इरावान् ने क्रुद्ध होकर वीर श्रुतायु का सामना किया। वे शत्रु के घोड़ों को मारकर, सिंहनाद करके, उसकी सेना को विचलित करने लगे। श्रुतायु ने भी क्रुद्ध होकर गदा के प्रहार से इरावान् के घोड़ों को मार डाला। इसी तरह दोनों का तुमुल संग्राम होने लगा ॥६९।७१॥ अवन्ति देश के राजा विन्द और अनुविन्द दोनों वीर, पुत्र और सेना सहित, महाराज कुन्तिभोज के साथ युद्ध करने आये। युद्ध में उन दोनों का घोर पराक्रम मैंने देखा। वे उस भारी सेना के साथ युद्ध करने लगे। अनुविन्द ने कुन्तिभोज को एक गदा मारी। कुन्तिभोज ने भी उनके ऊपर बाण चलाये। कुन्तिभोज के पुत्र ने विन्द के ऊपर बाण छोड़े। विन्द ने भी कुन्तिभोज के पुत्र को बाणों से घायल किया। उनका युद्ध देखकर सभी को आश्चर्य हुआ ॥७२।७५॥ केकय देश के राजकुमार पाँचों भाई अपनी सेना को साथ लेकर सैन्ययुक्त गान्धार

उत्तरश्चाऽपि तं वीरं विव्याध निशितैः शरैः ।
चेदिराट् समरे राजन्नुलूकं समभिद्रवत् ॥ ७८ ॥
तथैव शरवर्षेण उलूकं समविद्ध्यत ।
उलूकश्चाऽपि तं बाणैर्निशितैर्लोमवाहिभिः ॥ ७९ ॥
तयोर्युद्धं समभवद्घोररूपं विशाम्पते ।
दारयेतां सुसंक्रुद्धावन्योन्यमपराजितौ ॥ ८० ॥
एवं द्वन्द्वसहस्राणि रथवारणवाजिनाम् ।
पदातीनां च समरे तव तेषां च संकुले ॥ ८१ ॥
मुहूर्तमिव तद्युद्धमासीन्मधुरदर्शनम् ।
तत उन्मत्तवद्राजन्न प्राज्ञायत किश्चन ॥ ८२ ॥
गजो गजेन समरे रथिनं च रथी ययौ ।
अश्वोऽश्वं समभिप्रायात्पदातिश्च पदातिनम् ॥ ८३ ॥
ततो युद्धं सुदुर्धर्षं व्याकुलं समपद्यत ।
शूराणां समरे तत्र समासाद्येतरेतरम् ॥ ८४ ॥
तत्र देवर्षयः सिद्धाश्चारणाश्च समागताः ।
प्रैक्षन्त तद्रणं घोरं देवासुरसमं भुवि ॥ ८५ ॥
ततो दन्तिसहस्राणि रथानां चाऽपि मारिष ।
अश्वौघाः पुरुषौघाश्च विपरीतं समाययुः ॥ ८६ ॥

देश के पाँच राजकुमारों से युद्ध कर रहे थे। आपके पुत्र वीरबाहु, श्रेष्ठ रथी विराट-पुत्र उत्तर के साथ युद्ध की इच्छा से, आगे बढ़े। वीरबाहु ने उत्तर को नव बाणों से घायल किया। महावीर उत्तर ने भी इतने बाण बरसाये कि वीरबाहु उनसे आच्छादित हो गये। ॥७५।७८॥ महावीर चेदि-पति उलूक के सामने आये और उन पर बाण बरसाने लगे। उलूक ने भी उनके ऊपर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा की। युद्ध करते-करते दोनों के शरीर इतने घायल हो गये कि तिल भर भी शरीर व्रणों के घाव से शून्य नहीं रह गया; किन्तु कोई किसी को हरा नहीं सका ॥७८।८०॥ हे राजेन्द्र ! इस तरह कौरवों और पाण्डवों के पक्ष के हजारों रथ, हाथी, घोड़े आदि पर सवार और पैदल वीर योद्धा परस्पर अत्यन्त घोर द्वन्द्वयुद्ध करने लगे। क्षण भर तो यह द्वन्द्वयुद्ध भली प्रकार देखा जा सका, किन्तु फिर सब लोग ऐसे भिड़ गये और अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा ऐसी होने लगी कि कुछ भी नहीं देख पड़ता था। उस समय रथ के साथ रथ, हाथी के साथ हाथी, घोड़े के साथ घोड़ा और पैदल के साथ पैदल भिड़ गया और अत्यन्त घोर युद्ध होने लगा ॥८१।८३॥ शूर वीर लोग एक दूसरे के सामने जाकर दारुण संग्राम करने लगे। युद्ध-भूमि में पहुँचकर देवर्षि, सिद्ध और चारणगण वह देवासुर-युद्ध के समान भयानक संग्राम देखने लगे।

तत्र तत्र प्रदृश्यन्ते रथवारणपत्तयः ।
सादिनश्च नरव्याघ्र युद्ध्यमाना मुहुर्मुहुः ॥ ८७ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि द्वन्द्वयुद्धे पञ्चचत्वारिंशोऽध्याय ॥ ४५ ॥

मैंने देखा कि हजारों रथों, हाथियों, घोड़ों और पुरुषों के दल विशृङ्खल होकर इधर-उधर दौड़ते और युद्ध कर रहे थे। प्रत्येक स्थान पर अनेकानेक रथ, हाथी घोड़े और पैदल बारम्बार गरजकर युद्ध करते दिखाई देते थे ॥८४।८७॥

भीष्मपर्व का पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४५ ॥

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्याय ॥ ४६ ॥

सञ्जय उवाच—राजञ्शतसहस्राणि तत्र तत्र पदातिनाम् ।
निर्मर्यादं प्रयुद्धानि तत्ते वक्ष्यामि भारत ॥ १ ॥
न पुत्रः पितरं जज्ञे पिता वा पुत्रमौरसम् ।
न भ्राता भ्रातरं तत्र स्वस्रीयं न च मातुलः ॥ २ ॥
न मातुलं च स्वस्रीयो न सखायं सखा तथा ।
आविष्टा इव युध्यन्ते पाण्डवाः कुरुभिः सह ॥ ३ ॥
रथानीकं नरव्याघ्राः केचिदभ्यपतन्रथैः ।
अभज्यन्त युगैरेव युगानि भरतर्षभ ॥ ४ ॥
रथेषाश्च रथेषाभिः कूबरा रथकूबरैः ।
सङ्गतैः सहिताः केचित्परस्परजिघांसवः ॥ ५ ॥
न शेकुश्चलितुं केचित्सन्निपत्य रथा रथैः ।
प्रभिन्नास्तु महाकायाः सन्निपत्य गजा गजैः ॥ ६ ॥
बहुधाऽदारयन्क्रुद्धा विषाणैरितरेतरम् ।
सतोरणपताकैश्च वारणा वरवारणैः ॥ ७ ॥

छियालीसवाँ अध्याय ॥ ४६ ॥

सञ्जय बोले— हे महाराज! इस समर में सहस्रों पैदल सैनिकों ने जिस प्रकार मर्यादा का उल्लङ्घन करके युद्ध किया, सो मैं कहता हूँ, सुनिए ॥१॥ उस समय पिता ने पुत्र का, सगे भाई ने सगे भाई का, भानजे ने मामा का, मामा ने भानजे का और मित्र ने मित्र का कुछ भी विचार नहीं किया मानों कोई किसी को पहचानता ही नहीं था। पाण्डवगण प्रेत बाधाग्रस्त से होकर कौरवों के साथ युद्ध कर रहे थे ॥२।३॥ कुछ पुरुषसिंह वीर, जो रथों पर सवार थे, दूसरे पक्ष के रथारूढ वीरों पर टूट पड़े। रथों से रथ ऐसे भिड़ गये कि जुएँ से जुआँ, रथदण्ड से रथदण्ड और रथकूबर से रथकूबर टूटने लगे। रथों

अभिसृत्य महाराज वेगवद्भिर्महागजैः ।
दन्तैरभिहतास्तत्र चुक्रुशुः परमातुराः ॥ ८ ॥
अभिनीताश्च शिक्षाभिस्तोत्रांकुशसमाहताः ।
अप्रभिन्नाः प्रभिन्नानां सम्मुखाभिमुखा ययुः ॥ ९ ॥
प्रभिन्नैरपि संसक्ताः केचित्तत्र महागजाः ।
क्रौञ्चवन्निनदं कृत्वा दुद्रुवुः सर्वतोदिशम् ॥ १० ॥
सम्यक्प्रणीता नागाश्च प्रभिन्नकरटामुखाः ।
ऋष्टितोमरनाराचैर्निर्विद्धा वरवारणाः ॥ ११ ॥
प्रणेदुर्भिन्नमर्माणो निपेतुश्च गतासवः ।
प्राद्रवन्त दिशः केचिन्नदन्तो भैरवान्रवान् ॥ १२ ॥
गजानां पादरक्षास्तु व्यूढोरस्काः प्रहारिणः ।
ऋष्टिभिश्च धनुर्भिश्च विमलैश्च परश्वधैः ॥ १३ ॥
गदाभिर्मुसलैश्चैव भिन्दिपालैः सतोमरैः ।
आयसैः परिघैश्चैव निस्त्रिंशैर्विमलैः शितैः ॥ १४ ॥
प्रगृहीतैः सुसंरब्धा द्रवमाणास्ततस्ततः ।
व्यदृश्यन्त महाराज परस्परजिघांसवः ॥ १५ ॥
राजमानाश्च निस्त्रिंशाः संसिक्ता नरशोणितैः ।
प्रत्यदृश्यन्त शूराणामन्योन्यमभिधावताम् ॥ १६ ॥

से कुछ रथ ऐसे भिड़ गये कि वे किसी ओर चल ही नहीं सकते थे। कुछ वीर एक दूसरे के प्राण लेने की इच्छा से घोरतर संग्राम कर रहे थे। जिनके मद बह रहा है, ऐसे बड़े बड़े हाथी हाथियों से भिड़कर घायल हो रहे थे ॥४।७॥ तोरण-पताका [अम्बारी] आदि से शोभित वेगशाली गजराज परस्पर भिड़कर दाँतों के प्रहार से एक दूसरे को फाड़ने और व्यथित होकर घोर चीत्कार करने लगे। हस्तिविद्या में निपुण लोगों के द्वारा सुशिक्षित मद-हीन हाथी, अंकुश की चोट खाकर, मस्त हाथियों के सामने जाकर आक्रमण कर रहे थे। बहुत से गजराज मदस्रावी गजराजों के समीप जाकर क्रौंच पक्षी का सा शब्द करते हुए इधर-उधर भागने लगे ॥७।१०॥ अच्छी प्रकार सिखाये गये कुछ हाथी ऋष्टि, तोमर, नाराच आदि शस्त्रों से घायल होकर सूँड उठाकर चिल्लाते हुए पृथ्वी पर गिरते देख पड़े। मर्मस्थल पर वार होने से कुछ तो मर गये और कुछ भयानक स्वर से चिल्लाते हुए इधर-उधर भागने लगे ॥११।१२॥ हे महाराज! विशाल छातीवाले शस्त्रधारी लोग, जो हाथियों के पाओं के पास उनकी रक्षा के लिए रहते हैं, एक दूसरे को मारने के लिए उद्यत होकर ऋष्टि, धनुष, चमकीले फरसे, गदा, मुसल, भिन्दिपाल, तोमर, बाण, बेलन, तलवार आदि अस्त्र-शस्त्र हाथ में लिये वेग से इधर-उधर दौड़ते देख पड़ रहे थे ॥१३।१५॥ परस्पर

अवक्षिप्तावधूतानामसीनां वीरबाहुभिः ।
सञ्जज्ञे तुमुलः शब्दः पततां परमर्मसु ॥ १७ ॥
गदामुसलरुग्णानां भिन्नानां च वरासिभिः ।
दन्तिदन्तावभिन्नानां मृदितानां च दन्तिभिः ॥ १८ ॥
तत्र तत्र नरौघाणां क्रोशतामितरेतरम् ।
शुश्रुवुर्दारुणा वाचः प्रेतानामिव भारत ॥ १९ ॥
हयैरपि हयारोहाश्चामरापीडधारिभिः ।
हंसैरिव महावेगैरन्योन्यमभिविद्रुताः ॥ २० ॥
तैर्विमुक्ता महाप्रासा जाम्बूनदविभूषणाः ।
आशुगा विमलास्तीक्ष्णाः सम्पेतुर्भुजगोपमाः ॥ २१ ॥
अश्वैरग्र्यजवैः केचिदाप्लुत्य महतो रथान् ।
शिरांस्याददिरे वीरा रथिनामश्वसादिनः ॥ २२ ॥
बहूनपि हयारोहान्भल्लैः सन्नतपर्वभिः ।
रथी जघान सम्प्राप्य बाणगोचरमागतान् ॥ २३ ॥
नवमेघप्रतीकाशाश्चाऽऽक्षिप्य तुरगान्गजाः ।
पादैरेव विमृद्नन्ति मत्ताः कनकभूषणाः ॥ २४ ॥
पाट्यमानेषु कुम्भेषु पार्श्वेष्वपि च वारणाः ।
प्रासैर्विनिहताः केचिद्विनेदुः परमातुराः ॥ २५ ॥

आक्रमण करनेवाले वीरों के हाथों में नररक्त-रञ्जित चमकीले खड्ग थे। वीर पुरुषों के हाथों से उठी और गिरी हुई तलवारें शत्रुओं के मर्मस्थलों पर पड़ रही थीं और उससे घोर शब्द हो रहा था। युद्धभूमि में जगह-जगह गदा-मुशल आदि के प्रहार से दलित, खड्गों के वार से घायल, हाथियों के पाओं से रौंदे गये और उनके दाँतों से दले गये मनुष्य बुरी तरह कराह रहे थे। प्रेतों की सी—नरक की यन्त्रणा भोगनेवालों की सी—उनकी आर्तवाणी सुननेवालों के हृदय को दहला रही थी ॥१६।१९॥ चँवर और कलँगी से शोभित हंसतुल्य घोड़ों पर सवार योद्धा लोग एक दूसरे पर आक्रमण कर रहे थे। वीरों के हाथों से छूटे हुए, सुवर्णमण्डित, तीक्ष्ण धारवाले बाण सर्पों की तरह सर्वत्र गिर रहे थे। शीघ्रगामी घोड़ों पर सवार योद्धा लोग रथों पर पहुँचकर रथारूढ वीरों के सिर काट डालते थे ॥२०।२२॥ रथ पर सवार योद्धा लोग भी घुड़सवारों को, अपने पास आते देख-कर, तीक्ष्ण और झुके हुए भल्ल बाण मारकर, मार डालते थे। जल भरे बादल के समान नीले, सुवर्ण-भूषण-भूषित, मस्त हाथी अपने मस्तक और कपोल काटे जाने पर भी हाथियों को गिराकर रौंद डालते थे। कुछ हाथी प्रास नाम के शर के प्रहार से पीड़ित होकर आतुर भाव से चिल्ला उठते थे। कुछ श्रेष्ठ हाथी, सवार और घोड़े को गिराकर, दल मलकर

साश्वारोहान्हयान्कांश्चिदुन्मथ्य वरवारणाः ।
सहसा चिक्षिपुस्तत्र संकुले भैरवे सति ॥ २६ ॥
साश्वारोहान्विषाणाग्रैरुत्क्षिप्य तुरगान्गजाः ।
रथौघानभिमृद्नन्तः सध्वजानभिचक्रमुः ॥ २७ ॥
पुंस्त्वादतिमदत्वाच्च केचित्तत्र महागजाः ।
साश्वारोहान्हयाञ्जघ्नुः करैः सचरणैस्तथा ॥ २८ ॥
अश्वारोहैश्च समरे हस्तिसादिभिरेव च ।
प्रतिमानेषु गात्रेषु पार्श्वेष्वभि च वारणान् ।
आशुगा विमलास्तीक्ष्णाः सम्पेतुर्भुजगोपमाः ॥ २९ ॥
नराश्वकायान्निर्भिद्य लौहानि कवचानि च ।
निपेतुर्विमलाः शक्त्यो वीरबाहुभिरर्पिताः ॥ ३० ॥
महोल्काप्रतिमा घोरास्तत्र तत्र विशाम्पते ।
द्वीपिचर्मावनद्धैश्च व्याघ्रचर्मच्छदैरपि ॥ ३१ ॥
विकोशैर्विमलैः खड्गैरभिजग्मुः परान्रणे ।
अभिप्लुतमभिक्रुद्धमेकपार्श्वावदारितम् ॥ ३२ ॥
विदर्शयन्तः सम्पेतुः खड्गचर्मपरश्वधैः ।
केचिदाक्षिप्य करिणः साश्वानपि रथान्करैः ॥ ३३ ॥
विकर्षन्तो दिशः सर्वाः सम्पेतुः सर्वशब्दगाः ।
शंकुभिर्दारिताः केचित्सम्भिन्नाश्च परश्वधैः ॥ ३४ ॥
हस्तिभिर्मृदिताः केचित्क्षुण्णाश्चाऽन्ये तुरङ्गमैः ।
रथनेमिनिकृत्ताश्च निकृत्ताश्च परश्वधैः ॥ ३५ ॥

डाल देते थे ॥२३।२६॥ उस भयानक युद्ध में कुछ हाथी दाँतों से और सूँड से घोड़े तथा उसके सवार को ऊपर उछाल देते और रथों को तोड़ते-फोड़ते हुए इधर-उधर विचर रहे थे। कोई-कोई मदोन्मत्त महागज सूँड से घोड़े और उसके सवार को खींचकर पाओं से रौंद डालते थे। सर्प के समान भीषण बाण उन हाथियों के दाँतों पर, देह पर और कान पर गिर रहे थे ॥२७।२०॥ वीर पुरुषों के हाथों से छूटी हुई उल्कासदृश शक्तियाँ मनुष्यों, घोड़ों और हाथियों के शरीरों में घुसकर दृढ़ कवचों को तोड़कर बाहर निकल जाती थीं। वीरगण व्याघ्र चर्म की म्यानों से चमकीले खड्ग निकाल निकालकर शत्रुओं को काट रहे थे ॥३०।३३॥ हे महाराज! उस युद्ध में हजारों योद्धा शक्तियों के प्रहार से कटे हुए, परशुओं के प्रहार से छिन्न भिन्न, हाथियों के पाओं से दबे गये, घोड़ों के पावों से कुचले गये और रथ के पहियों से

व्याक्रोशन्त नरा राजंस्तत्र तत्र स्म बान्धवान् ।
पुत्रानन्ये पितॄनन्ये भ्रातॄंश्च सह बन्धुभिः ॥ ३६ ॥
मातुलान्भागिनेयांश्च परानपि च संयुगे ।
विकीर्णान्त्राः सुबहवो भग्नसक्थाश्च भारत ॥ ३७ ॥
बाहुभिश्चाऽपरे छिन्नैः पार्श्वेषु च विदारिताः ।
क्रन्दन्तः समदृश्यन्त तृषिता जीवितेप्सवः ॥ ३८ ॥
तृषापरिगताः केचिदल्पसत्त्वा विशाम्पते ।
भूमौ निपतिताः सङ्ख्ये मृगयाञ्चक्रिरे जलम् ॥ ३९ ॥
रुधिरौघपरिक्लिन्नाः क्लिश्यमानाश्च भारत ।
व्यनिन्दन्भृशमात्मानं तव पुत्रांश्च सङ्गतान् ॥ ४० ॥
अपरे क्षत्रियाः शूराः कृतवैराः परस्परम् ।
नैव शस्त्रं विमुञ्चन्ति नैव क्रन्दन्ति मारिष ॥ ४१ ॥
तर्जयन्ति च संहृष्टास्तत्र तत्र परस्परम् ।
आदश्य दशनैश्चाऽपि क्रोधात्स्वदनच्छदम् ॥ ४२ ॥
भ्रुकुटीकुटिलैर्वक्त्रैः प्रेक्षन्ति च परस्परम् ।
अपरे क्लिश्यमानास्तु शरार्ता व्रणपीडिताः ॥ ४३ ॥
निष्कूजाः समपद्यन्त दृढसत्त्वा महाबलाः ।
अन्ये च विरथाः शूराः रथमन्यस्य संयुगे ॥ ४४ ॥
प्रार्थयाना निपतिताः सङ्क्षुण्णा वरवारणैः ।
अशोभन्त महाराज सपुष्पा इव किंशुकाः ॥ ४५ ॥

घायल पड़े कराह रहे थे । कोई पुत्र को, कोई पिता को, कोई भाई को, कोई मामा को, कोई भानजे को और कोई अन्य भाई-बन्धुवों को स्मरण करके अयन्त दीन स्वर से विलाप कर रहा था ॥३३।३७॥ बहुतों की आतें बाहर निकल पड़ी थीं, जाँघ टूट गई थीं, हाथ कट गये थे, कोखें फट गई थीं और कोई प्यास से व्याकुल हो रहा था । ऐसे लोग जीवन की इच्छा से रो रहे थे । कुछ लोग अधमरे पड़े थे और प्यास से व्याकुल होकर जल माँग रहे थे । हे भारत ! कुछ लोग, रक्त से नहाये हुए, क्लेश पा रहे थे और अपनी और आपके पुत्रों की निन्दा कर रहे थे ॥३८।४०॥ उनमें से कुछ अत्यन्त शूर साहसी क्षत्रिय अधमरे होने पर भी क्रोध के मारे दाँतों से होठ चबा रहे थे; न तो वे विलाप करते थे और न कराहते थे । वे उस समय भी भौंहे टेढ़ी किये, होंठ चबाते हुए, शत्रुओं की ओर देख रहे थे । उस समय भी उनमें उत्साह और प्रसन्नता की कमी नहीं थी । कोई-कोई महाबली योद्धा बाणों से घायल होकर भी चुपचाप

सम्वभूवुरनेकेषु वहवो भैरवस्वनाः ।
वर्तमाने महाभीमे तस्मिन्वीरवरक्षये ॥ ४६ ॥
निजघान पिता पुत्रं पुत्रश्च पितरं रणे ।
स्वस्रीयो मातुलं चाऽपि स्वस्रीयं चाऽपि मातुलः ॥ ४७ ॥
सखा सखायं च तथा सम्वन्धी वान्धवं तथा ।
एवं युयुधिरे तत्र कुरवः पाण्डवैः सह ॥ ४८ ॥
वर्त्तमाने तथा तस्मिन्निर्मर्यादे भयानके ।
भीष्ममासाद्य पार्थानां वाहिनी समकम्पत ॥ ४९ ॥
केतुना पञ्चतारेण तालेन भरतर्षभ ।
राजतेन महावाहुरुच्छ्रितेन महारथे ।
वभौ भीष्मस्तदा राजंश्चन्द्रमा इव मेरुणा ॥ ५० ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि मङ्गुल्युद्धे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

पड़े थे। रथ नष्ट हो जाने पर कोई कोई वीर पुरुष दूसरा रथ माग रहे थे कि इसी समय हाथियों के धक्के से पृथ्वी पर गिर पड़े और हाथियों के पाओं के नीचे कुचल गये ॥४१।४५॥ उनके रक्तरञ्जित शरीर फूले हुए ढाक के वृक्ष के समान शोभा पा रहे थे। श्रेष्ठ वीरों का विनाश करनेवाले उस युद्ध में, सेनाओं के मध्य, अनेक प्रकार के भयानक शब्द सुन पड़ रहे थे। पिता ने पुत्र को, पुत्र ने पिता को, भानजे ने मामा को, मामा ने भानजे को, मित्र ने मित्र को, सम्वन्धी ने सम्वन्धी को और बान्धव ने बान्धव को उस मर्यादाहीन युद्ध में मारना आरम्भ कर दिया था ॥४५।४८॥ हे भारत! उस मर्यादाशून्य घोरतर संग्राम में पाण्डवों और कौरवों के पक्ष के बहुतेरे वीर मारे गये। संग्राम में भीष्म के बाणों के प्रहार से पाण्डव-पक्ष की सारी सेना विचलित हो उठी। सोने-चाँदी से मण्डित, ऊँचे, पञ्चतारा और ताल के चिह्न से शोभित ध्वजा-वाले रथ पर सवार महावीर भीष्म सुमेरु पर्वत पर स्थित चन्द्रमा के समान शोभायमान थे ॥४९।५०॥

भीष्मपर्व का छियालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४६ ॥

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

सञ्जय उवाच—गतपूर्वाह्णभूयिष्ठे तस्मिन्नहनि दारुणे ।
वर्तमाने तथा रौद्रे महावीरवरक्षये ॥ १ ॥
दुर्मुखः कृतवर्मा च कृपः शल्यो विविंशतिः ।
भीष्मं जुगुपुरासाद्य तव पुत्रेण चोदिताः ॥ २ ॥

सैंतालीसवाँ अध्याय ॥ ४७ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज! इस अत्यन्त दारुण दिन का पूर्व-भाग समाप्त होने के समय बहुत से वीर पुरुषों का नाश हुआ। महावीर दुर्मुख, कृत-वर्मा, कृपाचार्य, शल्य और विविंशति, ये योद्धा दुर्यो-

एतैरतिरथैर्गुप्तः पञ्चभिर्भरतर्षभः ।
पाण्डवानामनीकानि विजगाहे महारथः ॥ ३ ॥
चेदिकाशिकरूषेषु पञ्चालेषु च भारत ।
भीष्मस्य बहुधा तालश्चलत्केतुरदृश्यत ॥ ४ ॥
स शिरांसि रणेऽरीणां रथांश्च सयुगध्वजान् ।
निचकर्त महावेगैर्भल्लैः सन्नतपर्वभिः ॥ ५ ॥
नृत्यतो रथमार्गेषु भीष्मस्य भरतर्षभ ।
भृशमार्तस्वरं चक्रुर्नागा मर्मणि ताडिताः ॥ ६ ॥
अभिमन्युः सुसंक्रुद्धः पिशङ्गैस्तुरगोत्तमैः ।
संयुक्तं रथमास्थाय प्रायाद्भीष्मरथं प्रति ॥ ७ ॥
जाम्बूनदविचित्रेण कार्णिकारेण केतुना ।
अभ्यवर्तत भीष्मं च तांश्चैव रथसत्तमान् ॥ ८ ॥
स तालकेतोस्तीक्ष्णेन केतुमाहत्य पत्रिणा ।
भीष्मेण युयुधे वीरस्तस्य चाऽनुरथैः सह ॥ ९ ॥
कृतवर्माणमेकेन शल्यं पञ्चभिराशुगैः ।
विध्वा नवभिरानर्च्छच्छिताग्रैः प्रपितामहम् ॥ १० ॥
पूर्णायतविसृष्टेन सम्यक्प्रणिहितेन च ।
ध्वजमेकेन विव्याध जाम्बूनदपरिष्कृतम् ॥ ११ ॥

धन की आज्ञा से भीष्म के पास जाकर उनकी रक्षा करने लगे ॥१।२॥ पाँच अतिरथी वीरों के द्वारा चारों ओर से सुरक्षित होकर महारथी भीष्म पाण्डवों की सेना के भीतर पहुँचे। चेदि, काशी, करूष और पाञ्चालदेश की सेना के भीतर भीष्म की तालचिह्न-युक्त ध्वजा फहराती देख पड़ने लगी। वे असंख्य सैनिकों के रथ, वाहन, ध्वजा और सिर आदि अङ्गों को अपने तीक्ष्ण बाणों से काट-काटकर गिराने लगे ॥३।५॥ युद्धभूमि के मध्य उनके रथ की राह में पड़नेवाले गजराज मर्मस्थल में घायल होकर चिल्लाने और कातर ध्वनि करने लगे। इस प्रकार संग्रामभूमि में भीष्म के बाणों से अपने सैनिकों का विनाश होते देखकर प्रबल पराक्रमी कुमार अभिमन्यु क्रुद्ध होकर पिङ्गलवर्ण घोड़ों से शोभित, सुवर्णमण्डित, कर्णिकार-चिह्न-युक्त ध्वजा से अलङ्कृत रथ पर बैठकर महारथी भीष्म और उनके अनुगामी वीरों के सामने पहुँचे। ॥६।८॥ अभिमन्यु ने बहुत से बाण भीष्म की ध्वजा में मारे और भीष्म की रक्षा करनेवाले उन प्रधान पाँच रथी वीरों को भी उन्होंने बाणों से घायल किया। इस प्रकार वे घोर युद्ध करने लगे। अभिमन्यु महावीर अर्जुन के पुत्र थे। उन्होंने कृतवर्मा को एक बाण और शल्य को पाँच बाण मारे। इस प्रकार अन्य वीरों को घायल और उद्विग्न करके अपने पितामह भीष्म के ऊपर भी उन्होंने नव बाण छोड़े ॥९।१०॥

दुर्मुखस्य तु भल्लेन सर्वावरणभेदिना ।
जहार सारथेः कायाच्छिरः सन्नतपर्वणा ॥ १२ ॥
धनुश्चिच्छेद भल्लेन कार्तस्वरविभूषितम् ।
कृपस्य निशिताग्रेण तांश्च तीक्ष्णमुखैः शरैः ॥ १३ ॥
जघान परमक्रुद्धो नृत्यन्निव महारथः ।
तस्य लाघवमुद्वीक्ष्य तुतुषुर्देवता अपि ॥ १४ ॥
लब्धलक्षतया कार्ष्णेः सर्वे भीष्ममुखा रथाः ।
सत्त्ववन्तममन्यन्त साक्षादिव धनञ्जयम् ॥ १५ ॥
तस्य लाघवमार्गस्थमलातसदृशप्रभम् ।
दिशः पर्यपतच्चापं गाण्डीवमिव घोषवत् ॥ १६ ॥
तमासाद्य महावेगैर्भीष्मो नवभिराशुगैः ।
विव्याध समरे तूर्णमार्जुनिं परवीरहा ॥ १७ ॥
ध्वजं चाऽस्य त्रिभिर्भल्लैश्चिच्छेद परमौजसः ।
सारथिं च त्रिभिर्बाणैराजघान यतव्रतः ॥ १८ ॥
तथैव कृतवर्मा च कृपः शल्यश्च मारिष ।
विध्वा नाऽकम्पयत्कार्ष्णिं मैनाकमिव पर्वतम् ॥ १९ ॥
स तैः परिवृतः शूरो धार्तराष्ट्रैर्महारथैः ।
ववर्ष शरवर्षाणि कार्ष्णिः पञ्च रथान्प्रति ॥ २० ॥

इसके पश्चात् एक तीक्ष्ण बाण से भीष्म की सुवर्ण-मण्डित ध्वजा काट डाली ॥११॥ फिर क्रुद्ध होकर सब प्रकार के आवरणों को काटनेवाले, सन्नतपर्व, एक भल्ल बाण से उन्होंने दुर्मुख के सारथी का सिर और अन्य तीक्ष्ण भल्ल बाण से कृपाचार्य का सुवर्ण-मण्डित धनुष काट डाला। वे समरभूमि में नृत्य सा कर रहे थे। अपने तीक्ष्ण बाणों से शत्रुओं के छोड़े हुए बाणों को छिन्न-भिन्न करके वे अपने गाण्डीव-तुल्य श्रेष्ठ धनुष की प्रत्यञ्चा को बजाते हुए स्फूर्ति के साथ विचरने लगे। उनके हाथ की स्फूर्ति देखकर देवता भी सन्तुष्ट हुए ॥१२।१४॥ उनका लक्ष्य कभी चूकता ही न था। यह देखकर भीष्म आदि योद्धाओं ने समझा कि वीर अभिमन्यु अपने पिता अर्जुन के ही समान बलवान् और पराक्रमी हैं। अभिमन्यु अग्नि के समान दुर्द्धर्ष और तेजस्वी देख पड़ने लगे। उस समय महावीर भीष्म ने वेग और स्फूर्ति के साथ वीर अभिमन्यु पर आक्रमण किया। नव बाण उनके शरीर में मारे, तीन भल्ल बाणों से ध्वजा काट डाली और तीन ही बाणों से उनके सारथी को जर्जर कर दिया ॥१५।१८॥ इसी समय कृतवर्मा, कृपाचार्य और शल्य भी अभिमन्यु के ऊपर निरन्तर बाणों की वर्षा करने लगे; किन्तु वीर अभिमन्यु तनिक भी विचलित नहीं हुए। इसके पश्चात् अर्जुन के पुत्र ने, दुर्योधन पक्ष के वीरों के मध्य स्वयं घिरकर भी, पूर्वोक्त पांच रथी

ततस्तेषां सहस्राणि संवार्य शरवृष्टिभिः ।
ननाद बलवान्कार्ष्णिर्भीष्माय विसृजञ्शरान् ॥ २१ ॥
तत्राऽस्य सुमहद्राजन्बाह्वोर्बलमदृश्यत ।
यतमानस्य समरे भीष्ममर्दयतः शरैः ॥ २२ ॥
पराक्रान्तस्य तस्यैव भीष्मोऽपि प्राहिणोच्छरान् ।
स तांश्चिच्छेद समरे भीष्मचापच्युताञ्शरान् ॥ २३ ॥
ततो ध्वजममोघेषुर्भीष्मस्य नवभिः शरैः ।
चिच्छेद समरे वीरस्तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ॥ २४ ॥
स राजतो महास्कन्धस्तालो हेमविभूषितः ।
सौभद्रविशिखैश्छिन्नः पपात भुवि भारत ॥ २५ ॥
तं तु सौभद्रविशिखैः पातितं भरतर्षभ ।
दृष्ट्वा भीमो ननादोच्चैः सौभद्रमभिहर्षयन् ॥ २६ ॥
अथ भीष्मो महास्त्राणि दिव्यानि सुबहूनि च ।
प्रादुश्चक्रे महारौद्रे रणे तस्मिन्महाबलः ॥ २७ ॥
ततः शरसहस्रेण सौभद्रं प्रपितामहः ।
अवाकिरदमेयात्मा तदद्भुतमिवाऽऽभवत् ॥ २८ ॥
ततो दश महेष्वासाः पाण्डवानां महारथाः ।
रक्षार्थमभ्यधावन्त सौभद्रं त्वरिता रथैः ॥ २९ ॥
विराटः सह पुत्रेण धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
भीमश्च केकयाश्चैव सात्यकिश्च विशाम्पते ॥ ३० ॥

वीरों के ऊपर बाण बरसाना और उनके चलाये हुए अस्त्र-शस्त्रों को नष्ट करना आरम्भ किया। अभिमन्यु भीष्म के ऊपर असंख्य बाण बरसाकर सिंहनाद करने लगे ॥१९।२१॥ उस युद्धभूमि में बाणों के मारे भीष्म पीड़ित हो गये। इस दुष्कर कर्म से अभिमन्यु का असाधारण बाहुबल प्रकट हुआ। महावीर भीष्म ने अभिमन्यु के अद्भुत पराक्रम को देखकर उन पर कई प्रकार के बाण छोड़े। अभिमन्यु ने वे सब बाण काट डाले। इसके पश्चात् नव बाणों से भीष्म की ध्वजा को भी काट डाला। यह देखकर कौरवसेना के लोग चिल्लाने लगे। महावीर भीष्म का रजतमय मणिभूषित तालध्वजयुक्त रथ अभिमन्यु के बाणों से टुकड़े-टुकड़े होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥२२।२५॥ युद्धप्रिय उत्साही भीमसेन यह देखकर, अभिमन्यु को उत्साहित करने के लिए, गरजकर सिंहनाद करने लगे। तब महापराक्रमी भीष्म ने युद्धभूमि में अनेक प्रकार के दिव्य महा-अस्त्रयुक्त सहस्र बाण अभिमन्यु के ऊपर चलाये। भीष्म का यह अद्भुत कार्य और

तेषां जवेनाऽऽपततां भीष्मः शान्तनवो रणे ।
पाञ्चाल्यं त्रिभिरानर्च्छत्सात्यकिं नवभिः शरैः ॥ ३१ ॥
पूर्णायतविसृष्टेन क्षुरेण निशितेन च ।
ध्वजमेकेन चिच्छेद भीमसेनस्य पत्रिणा ॥ ३२ ॥
जाम्बूनदमयः श्रीमान्केसरी स नरोत्तम ।
पपात भीमसेनस्य भीष्मेण मथितो रथात् ॥ ३३ ॥
ततो भीमस्त्रिभिर्विध्वा भीष्मं शान्तनवं रणे ।
कृपमेकेन विव्याध कृतवर्माणमष्टभिः ॥ ३४ ॥
प्रगृहीताग्रहस्तेन वैराटिरपि दन्तिना ।
अभ्यद्रवत राजानं मद्राधिपतिमुत्तरः ॥ ३५ ॥
तस्य वारणराजस्य जवेनाऽऽपततो रथे ।
शल्यो निवारयामास वेगमप्रतिमं शरैः ॥ ३६ ॥
तस्य क्रुद्धः स नागेन्द्रो बृहतः साधुवाहिनः ।
पदा युगमधिष्ठाय जघान चतुरो हयान् ॥ ३७ ॥
स हताश्वे रथे तिष्ठन्मद्राधिपतिरायसीम् ।
उत्तरान्तकरीं शक्तिं चिक्षेप भुजगोपमाम् ॥ ३८ ॥
तया भिन्नतनुत्राणः प्रविश्य विपुलं तमः ।
स पपात गजस्कन्धात्प्रमुक्तांकुशतोमरः ॥ ३९ ॥

स्फूर्ति देखकर सब लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ ॥२६।२८॥ उस समय अभिमन्यु की रक्षा के लिए पाण्डव पक्ष के दस महाधनुर्द्धर—पुत्र सहित राजा विराट, द्रुपदनन्दन धृष्टद्युम्न, भीमसेन कैकेय, और सात्यकि आदि—बड़े वेग से वहाँ पहुँच गये ॥२९।३०॥ भीष्म ने उन लोगों को शीघ्रता के साथ आते देखकर धृष्टद्युम्न के ऊपर तीन बाण और सात्यकि के ऊपर नव बाण चलाकर एक छुरे के समान तीक्ष्ण बाण से भीमसेन की सुवर्ण-दण्डयुक्त सिंह चिह्नशोभित ध्वजा काटकर गिरा दी। यह देखकर महापराक्रमी भीम क्रोध से अधीर हो गये। उन्होंने भी तीन बाणों से भीष्म को ... एक बाण से कृपाचार्य को औ... वर्मा को घायल किया ॥३१।३४॥ उसी समय हाथी पर सवार महावीर उत्तर कुमार महावीर मद्रराज शल्य के सम्मुख आये। महापराक्रमी शल्य उत्तर कुमार के हाथी के वेग को रोकने के लिए आगे बढ़ और बाण बरसाने लगे। उत्तर कुमार के हाथी ने कुपित होकर शल्य के रथ पर पाँओं रखकर पाँओं से उसके चारों उत्तम घोड़ों को मार डाला ॥३५।३७॥ तब बिना घोड़ों के रथ पर बैठे हुए वीर शल्य ने विषैले सर्प के समान भयानक लोहे की शक्ति उत्तर के ऊपर चलाई। उससे उत्तर का कवच टूट गया, उनकी आँखों के आगे अँधेरा छा गया और अंकुश तोमर आदि ... हाथ से गिर पड़े। ... दशा में उत्तर

असिमादाय शल्योऽपि अवप्लुत्य रथोत्तमात् ।
तस्य वारणराजस्य चिच्छेदाऽथ महाकरम् ॥ ४० ॥
भिन्नमर्मा शरशतैश्छिन्नहस्तः स वारणः ।
भीममार्तस्वरं कृत्वा पपात च ममार च ॥ ४१ ॥
एतदीदृशकं कृत्वा मद्रराजो नराधिप ।
आरुरोह रथं तूर्णं भास्वरं कृतवर्मणः ॥ ४२ ॥
उत्तरं वै हतं दृष्ट्वा वैराटिर्भ्रातरं तदा । ।
कृतवर्मणा च सहितं दृष्ट्वा शल्यमवस्थितम् ॥ ४३ ॥
श्वेतः क्रोधात्प्रजज्वाल हविषा हव्यवाडिव ।
स विस्फार्य महच्चापं शक्रचापोपमं बली ॥ ४४ ॥
अभ्यधावज्जिघांसन्वै शल्यं मद्राधिपं बली ।
महता रथवंशेन समन्तात्परिवारितः ॥ ४५ ॥
मुञ्चन्बाणमयं वर्षं प्रायाच्छल्यरथं प्रति ।
तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य मत्तवारणविक्रमम् ॥ ४६ ॥
तावकानां रथाः सप्त समन्तात्पर्यवारयन् ।
मद्रराजमभीप्सन्तो मृत्योर्दंष्ट्रान्तरं गतम् ॥ ४७ ॥
बृहद्बलश्च कौसल्यो जयत्सेनश्च मागधः ।
तथा रुक्मरथो राजञ्शल्यपुत्रः प्रतापवान् ॥ ४८ ॥
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ काम्बोजश्च सुदक्षिणः ।
बृहत्क्षत्रस्य दायादः सैन्धवश्च जयद्रथः ॥ ४९ ॥

कुमार हाथी से नीचे गिरकर मर गये। अब शल्य खड्ग लेकर रथ से उतर पड़े। उन्होंने उस हाथी की सूँड काट डाली। मर्मस्थल में सैंकड़ो बाण लगने और सूँड कट जाने से भयानक आर्तनाद करता हुआ वह गजराज गिरकर मर गया ॥३८।४१॥ शल्य इस तरह अपना कार्य करके शीघ्रता के साथ कृतवर्मा के सुवर्ण-मय रथ पर सवार हो गये। विराट के दूसरे पुत्र श्वेत अपने भाई उत्तर की मृत्यु और कृतवर्मा के रथ पर शल्य को स्थित देखकर, आहुति पड़ने से अग्नि के समान, क्रोध से जल उठे। बली श्वेत इन्द्र-धनुष के समान अपने धनुष को चढ़ाकर बाणों की वर्षा करते हुए शल्य को मारने के लिए उनकी ओर दौड़े ॥४२।४६॥ मदोन्मत्त हाथी के समान पराक्रमी श्वेत को आते देखकर, मृत्यु के मुख में पड़े हुए शल्य की रक्षा करने के लिए, आपके पक्ष के सात वीर रथी — बृहद्बल, जयसेन, शल्य का पुत्र रुक्मरथ, विन्द, अनुविन्द, जयद्रथ और सुदक्षिण — बड़े-बड़े धनुष चढ़ाकर आगे बढ़े ॥४७।४९॥ उनके धनुष घनघटा

नानावर्णविचित्राणि धनूंषि च महात्मनाम् ।
विस्फारितानि दृश्यन्ते तोयदेष्विव विद्युतः ॥ ५० ॥
ते तु बाणमयं वर्षं श्वेतमूर्धन्यपातयन् ।
निदाघान्तेऽनिलोद्भूता मेघा इव नगे जलम् ॥ ५१ ॥
ततः क्रुद्धो महेष्वासः सप्तभल्लैः सुतेजनैः ।
धनूंषि तेषामाच्छिद्य ममर्द पृतनापतिः ॥ ५२ ॥
निकृत्तान्येव तानि स्म समदृश्यन्त भारत ।
ततस्ते तु निमेषार्धात्प्रत्यपद्यन्धनूंषि च ॥ ५३ ॥
सप्त चैव पृषत्कांश्च श्वेतस्योपर्यपातयन् ।
ततः पुनरमेयात्मा भल्लैः सप्तभिराशुगैः ।
निचकर्त महाबाहुस्तेषां चापानि धन्विनाम् ॥ ५४ ॥
ते निकृत्तमहाचापास्त्वरमाणा महारथाः ।
रथशक्तीः परामृश्य विनेदुर्भैरवान्रवान् ॥ ५५ ॥
अन्वयुर्भरतश्रेष्ठ सप्त श्वेतरथं प्रति ।
ततस्ता ज्वलिताः सप्त महेन्द्राशनिनिःस्वनाः ॥ ५६ ॥
अप्राप्ताः सप्तभिर्भल्लैश्चिच्छेद परमास्त्रवित् ।
ततः समादाय शरं सर्वकायविदारणम् ॥ ५७ ॥
प्राहिणोद्भरतश्रेष्ठ श्वेतो रुक्मरथं प्रति ।
तस्य देहे निपतितो बाणो वज्रातिगो महान् ॥ ५८ ॥
ततो रुक्मरथो राजन्सायकेन दृढाहतः ।
निषसाद रथोपस्थे कश्मलं चाऽविशन्महत् ॥ ५९ ॥

के बीच बिजली के समान चमकने लगे। गर्मी के अनन्तर वायु से वश पकड़े हुए बादल जैसे पर्वत के ऊपर जल की वर्षा करते हैं, वैसे ही वे वीर श्वेत के ऊपर बाण बरसाने लगे। महावीर श्वेत ने क्रोध करके तीक्ष्ण सात भल्ल बाणों से सातों के धनुष काट डाले ॥५०।५२॥उन वीरों ने स्फूर्ति के साथ फिर और धनुष हाथ में लेकर श्वेत के सात बाण मारे। किन्तु श्वेत ने फिर भी स्फूर्ति के साथ सात भल्ल बाणों से उन्हें काट डाला। तब क्रोध से काँपते हुए उन वीरों ने सिंहनाद करके उल्का-सदृश, इन्द्र के वज्र के तुल्य चमकीली सात शक्तियाँ एक साथ उठाकर स्फूर्ति के साथ श्वेत के ऊपर फेंकीं। श्वेत ने तीक्ष्ण सात बाणों से मध्य में ही उन शक्तियों को काट गिराया॥५३।५६॥ इसके पश्चात् सबके शरीरों को भिन्न करने की शक्ति रखनेवाला एक श्रेष्ठ अमोघ बाण लेकर श्वेत ने रुक्म-रथ के ऊपर चलाया। वह वज्रतुल्य बाण जोर से

तं विसंज्ञं विमनसं त्वरमाणस्तु सारथिः ।
अपोवाह न सम्भ्रान्तः सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ ६० ॥
ततोऽन्यान्षट् समादाय श्वेतो हेमविभूपितान् ।
तेषां षण्णां महाबाहुर्ध्वजशीर्षाण्यपातयत् ॥ ६१ ॥
हयांश्च तेषां निर्भिद्य सारथींश्च परन्तप ।
शरैश्चैतान्समाकीर्य प्रायाच्छल्यरथं प्रति ॥ ६२ ॥
ततो हलहलाशब्दस्तव सैन्येषु भारत ।
दृष्ट्वा सेनापतिं तूर्णं यान्तं शल्यरथं प्रति ॥ ६३ ॥
ततो भीष्मं पुरस्कृत्य तव पुत्रो महाबलः ।
वृतस्तु सर्वसैन्येन प्रायाच्छ्वेतरथं प्रति ॥ ६४ ॥
मृत्योरास्यमनुप्राप्तं मद्रराजममोचयत् ।
ततो युद्धं समभवत्तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ ६५ ॥
तावकानां परेषां च व्यतिषक्तरथद्विपम् ।
सौभद्रे भीमसेने च सात्यकौ च महारथे ॥ ६६ ॥
कैकेये च विराटे च धृष्टद्युम्ने च पार्षते ।
एतेषु नरसिंहेषु चेदिमत्स्येषु चैव ह ।
ववर्ष शरवर्षाणि कुरुवृद्धः पितामहः ॥ ६७ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि श्वेतयुद्धे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

आकर लगा और रुक्मरथ अत्यन्त व्यथित और मूर्च्छित होकर रथ पर गिर पड़े। रथी को अचेत देखकर सारथी सब लोगों के सामने रथ को युद्धभूमि से हटा ले गया ॥५७।६०॥ श्वेत ने फिर और सुवर्ण-मण्डित तीक्ष्ण छः बाण चलाकर शेष छः रथियों की ध्वजाएँ काट डालीं। इस प्रकार उनके घोड़ों और सारथियों को घायल तथा उन्हें भी बाणवर्षा से विद्ध करके महावीर श्वेत मद्रराज शल्य के सामने आये। हे महाराज! सेनापति श्वेत जब शल्य के रथ के सामने पहुँचे तब आपकी सेना में बड़ा कोलाहल होने लगा ॥६१।६३॥ अब आपके महारथी पुत्र दुर्योधन, भीष्म-पितामह के साथ, सब सेना लेकर श्वेत को रोकने के लिए गये। इस प्रकार आपके पुत्र ने जाकर, भीष्म की सहायता से, मृत्यु-मुख में पड़े हुए मद्रराज शल्य को छुड़ा लिया। इसके पश्चात् अत्यन्त भयानक युद्ध होने लगा। हाथी और रथ एक दूसरे से भिड़कर रोमाञ्च उत्पन्न करनेवाला युद्ध करने लगे। आपकी और पाण्डवों की सेना प्राणों का मोह छोड़कर युद्ध करने लगी। कुरु-पितामह भीष्म उस समय रथियों के साथ अभिमन्यु, भीमसेन, महारथी सात्यकि, केकय, विराट, धृष्टद्युम्न और चेदि-मत्स्य आदि देशों की सेना के ऊपर निरन्तर घोर बाण चलाने लगे ॥६४।६७॥

भीष्मपर्व का सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४७ ॥

अथ अष्टचत्वारिंशोऽध्याय ॥ ४८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—एवं श्वेते महेष्वासे प्राप्ते शल्यरथं प्रति ।
कुरवः पाण्डवेयाश्च किमकुर्वत सञ्जय ॥ १ ॥
भीष्मः शान्तनवः किं वा तन्ममाऽऽचक्ष्व पृच्छतः।
सञ्जय उवाच—राजञ्शतसहस्राणि ततः क्षत्रियपुङ्गवाः ॥ २ ॥
श्वेतं सेनापतिं शूरं पुरस्कृत्य महारथाः ।
राज्ञो बलं दर्शयन्तस्तव पुत्रस्य भारत ॥ ३ ॥
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य त्रातुमैच्छन्महारथाः ।
अभ्यवर्तन्त भीष्मस्य रथं हेमपरिष्कृतम् ॥ ४ ॥
जिघांसन्तं युधां श्रेष्ठं तदाऽऽसीत्तुमुलं महत् ।
तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि महावैशसमच्युत ॥ ५ ॥
तावकानां परेषां च यथा युद्धमवर्तत ।
तत्राऽकरोद्रथोपस्थाञ्शून्याञ्शान्तनवो बहून् ॥ ६ ॥
तत्राऽद्भुतं महच्चक्रे शरैराछैद्रथोत्तमान् ।
समावृणोच्छरैरर्कमर्कतुल्यप्रतापवान् ॥ ७ ॥
नुदन्समन्तात्समरे रविरुद्यन्यथा तमः ।
तेनाऽऽजौ प्रेषिता राजञ्शराः शतसहस्रशः ॥ ८ ॥
क्षत्रियान्तकराः संख्ये महावेगा महाबलाः ।
शिरांसि पातयामासुर्वीराणां शतशो रणे ॥ ९ ॥

अड़तालीसवाँ अध्याय ॥ ४८ ॥

धृतराष्ट्र ने पूछा—हे सञ्जय ! धनुर्द्धरश्रेष्ठ श्वेत कुमार जब कुपित होकर शल्य के रथ की ओर चले तब भीष्म पितामह और कौरवों या पाण्डवों ने क्या किया ? ॥१।२॥ सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! हजारों क्षत्रिय श्रेष्ठ वीरगण, सेनापति श्वेत को आगे करके, आपके पुत्र राजा दुर्योधन को अपना बल और पराक्रम दिखाने लगे। श्रेष्ठ योद्धा भीष्म जब पाण्डवसेना का संहार करने लगे तब उनसे अपनी रक्षा करने के लिए, शिखण्डी को आगे करके, वे सब महारथी भीष्म के सुवर्णमण्डित रथ के पास पहुँचे ॥३।४॥ हे राजेन्द्र ! उस समय आपके और शत्रुपक्ष के सैनिकों में परस्पर महाभयानक युद्ध हुआ और बहुत से लोग हत तथा आहत हुए। सुनिए, यह सब वृत्तान्त मैं विस्तार के साथ कहता हूँ। सूर्य के समान तेजस्वी वीर भीष्म ने निरन्तर बाण-वर्षा के द्वारा वीरों के सिर काट-काटकर बहुत से रथों के आसनों को शून्य कर दिया। उनके बाणों ने सूर्यमण्डल तक को भी आ-च्छादित कर दिया। सूर्यदेव उदय होकर जैसे अन्ध-

गजान्कण्टकसन्नाहान्वज्रेणेव शिलोच्चयान् ।
रथा रथेषु संसक्ता व्यदृश्यन्त विशाम्पते ॥ १० ॥
एके रथं पर्यवहंस्तुरगाः सतुरङ्गमम् ।
युवानं निहतं वीरं लम्बमानं सकार्मुकम् ॥ ११ ॥
उदीर्णाश्च हया राजन्वहन्तस्तत्र तत्र ह ।
बद्धखड्गनिषङ्गाश्च विध्वस्तशिरसो हताः ॥ १२ ॥
शतशः पतिता भूमौ वीरशय्यासु शेरते ।
परस्परेण धावन्तः पतिताः पुनरुत्थिताः ॥ १३ ॥
उत्थाय च प्रधावन्तो द्वन्द्वयुद्धमवाप्नुवन् ।
पीडिताः पुनरन्योन्यं लुठन्तो रणमूर्धनि ॥ १४ ॥
सचापाः सनिषङ्गाश्च जातरूपपरिष्कृताः ।
विस्रब्धहतवीराश्च शतशः परिपीडिताः ॥ १५ ॥
तेन तेनाऽभ्यधावन्त विसृजन्तश्च भारत ।
मत्तो गजः पर्यवर्त्तद्धयांश्च हतसादिनः ॥ १६ ॥
सरथा रथिनश्चापि विमृद्नन्तः समन्ततः ।
स्यन्दनादपतत्कश्चिन्निहताऽन्येन सायकैः ॥ १७ ॥
हतसारथिरप्युच्चैः पपात काष्ठवद्रथः ।
युध्यमानस्य संग्रामे व्यूढे रजसि चोत्थिते ॥ १८ ॥

कार को नष्ट करते हैं, वैसे ही वीर भीष्म भी युद्धभूमि में असंख्य वीरों को नष्ट करने लगे । हे महाराज ! भीष्म के चलाये हुए सैकड़ों-हज़ारों क्षत्रियों का नाश करनेवाले बाण वेग के साथ जा-जाकर महापराक्रमी योद्धाओं के मस्तक काटने लगे । भीष्म के बाणों से सिर कट जाने पर महापराक्रमी रथी लोग रथों पर से गिरने लगे ॥५।९॥ उस युद्धभूमि में काँटेदार कवच पहने हुए हाथी, वज्र से फटे पर्वतों के समान, बाणों से छिन्न-भिन्न होकर गिरते देख पड़ते थे । रथों के ऊपर रथ टूट-टूटकर गिर रहे थे । बहुत से रथों को घोड़े खींचते चले जाते थे और उनमें, धनुष हाथ में लिये, मरे हुए नवयुवक वीरों के शरीर लटक रहे थे । खड्ग, ढाल और तरकस बाँधे हुए वीरों के सिर कट गये थे, और उन्हें लादे हुए घोड़े इधर-उधर भागे जा रहे थे । सैकड़ों योद्धा वीरशय्या पर मरे पड़े थे । अनेक वीर पुरुष एक दूसरे के पीछे दौड़ते, गिर पड़ते, फिर उठते और पृथ्वी पर लोट जाते थे । द्वन्द्वयुद्ध में परस्पर प्रहार से व्यथित वीर आर्त शब्द कर रहे थे । मदोन्मत्त हाथी अपने पाओं से घोड़ों और उनके सवारों को रौंदते हुए चले जा रहे थे । रथों पर बैठे वीर पुरुष चारों ओर के योद्धाओं को कुचलते और काटते हुए चले जाते थे । दूसरे के बाण से मरकर कोई रथ पर से पृथ्वी पर गिर रहा था । सारथी के मर जाने पर छिन्न-भिन्न अनेक बड़े-बड़े

धनुःकूजितविज्ञानं तत्राऽऽसीत्प्रतियुद्ध्यतः ।
गात्रस्पर्शेन योधानां व्यज्ञास्त परिपन्थिनम् ॥ १९ ॥
युद्ध्यमानं शरै राजन्सिञ्जिनीध्वजिनीरवात् ।
अन्योन्यं वीरसंशब्दो नाऽश्रूयत भटैः कृतः ॥ २० ॥
शब्दायमाने संग्रामे पटहे कर्णदारिणि ।
युध्यमानस्य संग्रामे कुर्वतः पौरुषं स्वकम् ॥ २१ ॥
नाऽश्रौषं नामगोत्राणि कीर्तनं च परस्परम् ।
भीष्मचापच्युतैर्बाणैरार्तानां युद्ध्यतां मृधे ॥ २२ ॥
परस्परेषां वीराणां मनांसि समकम्पयन् ।
तस्मिन्नत्याकुले युद्धे दारुणे लोमहर्षणे ॥ २३ ॥
पिता पुत्रं च समरे नाऽभिजानाति कश्चन ।
चक्रे भग्ने युगे च्छिन्ने एकधुर्ये हये हतः ॥ २४ ॥
आक्षिप्तः स्यन्दनाद्वीरः ससारथिरजिह्मगैः ।
एवं च समरे सर्वे वीराश्च विरथीकृताः ॥ २५ ॥
तेन तेन स्म दृश्यन्ते धावमानाः समन्ततः ।
गजो हतः शिरश्छिन्नं मर्म भिन्नं हयो हतः ॥ २६ ॥
अहतः कोऽपि नैवाऽऽसीद्भीष्मे निघ्नति शात्रवान् ।
श्वेतः कुरूणामकरोत्क्षयं तस्मिन्महाहवे ॥ २७ ॥

रथ गिरकर घायलों को चूर-चूर कर डालते थे ॥१०। १८॥ हे महाराज ! उस समय इतनी धूल उड़ी कि युद्धभूमि मे अँधेरा छा गया। परस्पर युद्ध करते हुए लोग केवल धनुष का शब्द सुनकर यह समझते थे कि उनसे युद्ध करनेवाला कहां पर स्थित है; उन्हें युद्ध करनेवाले का शरीर नहीं देख पड़ता था। शरीर का स्पर्श करने पर ही ज्ञात होता था कि यह दूसरा योद्धा है। कोई किसी को नेत्रों से नहीं देख पाता था। सेना में इतना कोलाहल हो रहा था कि परस्पर युद्ध करनेवाले वीरों को अपने प्रतिद्वन्द्वी का सिंहनाद भी नहीं सुन पड़ता था ॥१९।२०॥ संग्रामभूमि में घोर कोलाहल मचा हुआ था, नगाड़ों के शब्द से कान फटे जा रहे थे। द्वन्द्वयुद्ध करते हुए वीर अपना-अपना पराक्रम दिखाते समय जो अपने नाम-गोत्र का उच्चारण करते थे या कुछ कहते सुनते थे सो कुछ भी नहीं सुन पड़ता था। पितामह भीष्म के धनुष से छूटे हुए बाणों के प्रहार से आर्त, परस्पर युद्ध करनेवाले, वीर उस अत्यन्त दारुण युद्ध में विचलित होउठे॥२१।२३॥ पिता और पुत्र भी परस्पर न पहचानने के कारण आपस में ही युद्ध करने लगे। बहुत से रथों की यह व्यवस्था थी कि उनके पहिये कट गये, जुआ टूट गया और एक धुरा भी कट गया। भीष्म के बाणों से मर-मरकर सारथी और रथी रथों पर से गिर रहे थे। इस प्रकार प्रायः सभी वीरों के रथ टूट-फूट गये। वे

राजपुत्रान्रथोदारानवधीच्छतसङ्घशः ।
चिच्छेद रथिनां बाणैः शिरांसि भरतर्षभ ॥ २८ ॥
साङ्गदा बाहवश्चैव धनूंषि च समन्ततः ।
रथेषां रथचक्राणि तूणीराणि युगानि च ॥ २९ ॥
छत्राणि च महार्हाणि पताकाश्च विशाम्पते ।
हयौघाश्च रथौघाश्च नरौघाश्चैव भारत ॥ ३० ॥
वारणाः शतशश्चैव हताः श्वेतेन भारत ।
वयं श्वेतभयाद्भीता विहाय रथसत्तमम् ॥ ३१ ॥
अपयातास्तथा पश्चाद्विभुं पश्याम धृष्णवः ।
शरपातमतिक्रम्य कुरवः कुरुनन्दन ॥ ३२ ॥
भीष्मं शान्तनवं युद्धे स्थिताः पश्याम सर्वशः ।
अदीनो दीनसमये भीष्मोऽस्माकं महाहवे ॥ ३३ ॥
एकस्तस्थौ नरव्याघ्रो गिरिर्मेरुरिवाऽचलः ।
आददान इव प्राणान्सविता शिशिरात्यये ॥ ३४ ॥
गभस्तिभिरिवाऽऽदित्यस्तस्थौ शरमरीचिमान् ।
स मुमोच महेष्वासः शरसङ्घाननेकशः ॥ ३५ ॥
निघ्नन्नमित्रान्समरे वज्रपाणिरिवाऽसुरान् ।
ते वध्यमाना भीष्मेण प्रजहुस्तं महाबलम् ॥ ३६ ॥

इधर-उधर दौड़कर पैदल ही युद्ध करते देख पड़ते थे। कहीं हाथी मर गया, कहीं सिर कट गया, कहीं घोड़ा गिर गया। बाण के प्रहार से किसी का मर्मस्थल कट गया। भीष्म पितामह शत्रुपक्ष की सेना का संहार कर रहे थे। कोई भी ऐसा नहीं रह गया जिसके शरीर में घाव न लगा हो॥२३।२७॥ उधर महाबली श्वेत भी कौरवपक्ष के हजारों राजाओं और राजकुमारों का संहार कर रहे थे। वे भी अपने बाणों के प्रहार से रथ-सवारों के मस्तक, अङ्गद-विभूषित हाथ, धनुष, तरकस, रथ, रथों के पहिये, छत्र और ध्वजाएँ काटने लगे। उनके बाणों के प्रहार से हजारों हाथी, घोड़े और मनुष्य मर-मरकर पृथ्वी पर गिर रहे थे ॥२७।३०॥ हे महाराज ! हमारे पक्ष के वीर उस समय श्वेत के पराक्रम से बहुत ही भयभीत होकर रथ आदि वाहनों को छोड़कर युद्धभूमि से भागने लगे। कुरु-सेना के सब वीर, बाणों की मार के बाहर आकर, भीष्म और श्वेत का युद्ध देखने लगे। उस सङ्कटसमय में भी हम लोगों ने देखा कि धीर वीर पितामह भीष्म सुमेरु पर्वत की तरह अटल होकर अपने स्थान पर स्थित हैं। सूर्यदेव जैसे गर्मियों में अपनी किरणों से पृथ्वी का रस खींचते हुए सन्तप्त हैं, वैसे ही भीष्म अपने तीक्ष्ण बाणों से शत्रु-सैनिकों के प्राण खींचते हुए युद्धभूमि में विराज रहे थे ॥३१।३५॥ वज्रपाणि इन्द्र ने जैसे दैत्यसेना का नाश किया था, वैसे ही

स्वयूथादिव ते यूथान्मुक्तं भूमिपु दारुणम् ।
तमेवमुपलक्ष्यैको हृष्टः पुष्टः परन्तप ॥ ३७ ॥
दुर्योधनप्रिये युक्तः पाण्डवान्परिशोचयन् ।
जीवितं दुस्त्यजं त्यक्त्वा भयं च सुमहाहवे ॥ ३८ ॥
पातयामास सैन्यानि पाण्डवानां विशाम्पते ।
प्रहरन्तमनीकानि पिता देवव्रतस्तव ॥ ३९ ॥
दृष्ट्वा सेनापतिं भीष्मस्त्वरितः श्वेतमभ्ययात् ।
स भीष्मं शरजालेन महता समवाकिरत् ॥ ४० ॥
श्वेतं चापि तथा भीष्मः शरौघैः समवाकिरत् ।
तौ वृषाविव नर्दन्तौ मत्ताविव महाद्विपौ ॥ ४१ ॥
व्याघ्राविव सुसंरब्धावन्योन्यमभिजघ्नतुः ।
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य ततस्तौ पुरुषर्षभौ ॥ ४२ ॥
भीष्मः श्वेतश्च युयुधे परस्परवधैषिणौ ।
एकाह्ना निर्दहेद्भीष्मः पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ ४३ ॥
शरैः परमसंक्रुद्धो यदि श्वेतो न पालयेत् ।
पितामहं ततो दृष्ट्वा श्वेतेन विमुखीकृतम् ॥ ४४ ॥
प्रहर्षं पाण्डवा जग्मुः पुत्रस्ते विमना भवत् ।
ततो दुर्योधनः क्रुद्धः पार्थिवैः परिवारितः ॥ ४५ ॥

महाधनुर्द्धर भीष्म असंख्य बाण बरसाकर शत्रुपक्ष का संहार कर रहे थे । पाण्डवपक्ष की सेना भीष्म के हाथों अपना नाश होते देख जर्जर होकर इधर-उधर भागने लगी । भीष्म ने जब देखा कि पाण्डवसेना श्वेत को अकेले छोड़कर भागी चली जा रही है तब वे बहुत ही प्रसन्न हुए। दुर्योधन का प्रिय करने के लिए उद्यत, सुदृढ शरीर, आपके पिता देवव्रत भीष्म उस समय जीवन का मोह छोड़कर निर्भय होकर शीघ्रता के साथ पाण्डवों की सेना का संहार करते हुए सेनापति श्वेत के पास पहुँचे । कुरुसेना का संहार करते हुए श्वेत भीष्म के ऊपर असंख्य बाणों की वर्षा करने लगे । भीष्म ने भी श्वेत के ऊपर असंख्य बाण बरसाये । दो साँड़ों की तरह गरजते हुए वे दोनों वीर दो मदोन्मत्त हाथियों के समान अथवा दो क्रुद्ध व्याघ्रों के तुल्य एक दूसरे पर प्रहार करने लगे ॥३६।४२॥ एक दूसरे के वध की इच्छा से दोनों पुरुषश्रेष्ठ वीर अस्त्र शस्त्र छोड़ते और दूसरे के अस्त्रों को रोकते थे। हे महाराज ! यदि महाबली श्वेत पाण्डवसेना की रक्षा न करते तो अत्यन्त कुपित भीष्म पितामह एक ही दिन में सम्पूर्ण सेना को अपने बाणों से भस्म कर डालते । हे महाराज ! अन्त को पराक्रमी श्वेत ने अपने युद्धकौशल से पितामह भीष्म को युद्ध से हटा दिया। भीष्म को शिथिल देखकर पाण्डव अत्यन्त प्रसन्न हुए । दुर्योधन को बड़ा खेद उत्पन्न हुआ। वे

ससैन्यः पाण्डवानीकमभ्यद्रवत संयुगे ।
दुर्मुखः कृतवर्मा च कृपः शल्यो विशाम्पतिः ॥ ४६ ॥
भीष्मं जुगुपुरासाद्य तव पुत्रेण नोदिताः ।
दृष्ट्वा तु पार्थिवैः सर्वैर्दुर्योधनपुरोगमैः ॥ ४७ ॥
पाण्डवानामनीकानि वध्यमानानि संयुगे ।
श्वेतो गाङ्गेयमुत्सृज्य तव पुत्रस्य वाहिनीम् ॥ ४८ ॥
नाशयामास वेगेन वायुर्वृक्षानिवौजसा ।
द्रावयित्वा चमूं राजन्वैराटिः क्रोधमूर्च्छितः ॥ ४९ ॥
आपतत्सहसा भूयो यत्र भीष्मो व्यवस्थितः ।
तौ तत्रोपगतौ राजञ्शरदीप्तौ महाबलौ ॥ ५० ॥
अयुध्येतां महात्मानौ यथोभौ वृत्रवासवौ ।
अन्योन्यं तु महाराज परस्परवधैषिणौ ॥ ५१ ॥
निगृह्य कार्मुकं श्वेतो भीष्मं विव्याध सप्तभिः ।
पराक्रमं ततस्तस्य पराक्रम्य पराक्रमी ॥ ५२ ॥
तरसा वारयामास मत्तो मत्तमिव द्विपम् ।
श्वेतः शान्तनवं भूयः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ५३ ॥
विव्याध पञ्चविंशत्या तदद्भुतमिवाऽऽभवत् ।
तं प्रत्यविध्यद्दशभिर्भीष्मः शान्तनवस्तदा ॥ ५४ ॥

व्याकुल हो गये ॥४३।४५॥ इसके पश्चात् महावीर दुर्योधन क्रोध के आवेश में आकर, सेना और सब राजाओं को साथ लेकर, पाण्डवसेना से युद्ध करने के लिए आगे बढ़े । दुर्मुख, कृतवर्मा, कृपाचार्य, शल्य आदि सब वीर आपके पुत्र की प्रेरणा से जाकर भीष्म की रक्षा करने लगे। दुर्योधन आदि राजाओं को युद्ध में पाण्डव सेना का संहार करते देखकर परम पराक्रमी श्वेत भीष्म को छोड़कर उन्हीं की ओर दौड़े। प्रचण्ड आँधी जैसे पेड़ों को गिराती है वैसे ही श्वेत ने क्रुद्ध होकर कौरवों की सेना का संहार करना आरम्भ किया ॥४५।४९॥ विराट के पुत्र श्वेत इस प्रकार दुर्योधन की सेना को भगाकर फिर एकाएक वहाँ पर आ गये जहाँ भीष्म पितामह थे। वे दोनों महापराक्रमी वीर वृत्रासुर और इन्द्र की तरह एक दूसरे को मारने की इच्छा से एक दूसरे पर बाणों की वर्षा करते हुए घोर युद्ध करने लगे। श्वेत ने धनुष हाथ में लेकर भीष्म के ऊपर सात बाण छोड़े । पराक्रमी भीष्म ने पराक्रम करके, मदोन्मत्त हाथी जैसे मदोन्मत्त हाथी के पराक्रम को रोकता है, वैसे ही श्वेत के उस पराक्रम को व्यर्थ कर दिया ॥५०।५३॥ महावीर श्वेत ने फिर पचीस बाण भीष्म को मारकर अद्भुत कर्म कर दिखाया। भीष्म ने भी दस तीक्ष्ण बाण श्वेत को मारे। उन बाणों के लगने से श्वेत तनिक भी व्यथित नहीं हुए और पर्वत की तरह अचल भाव से ही खड़े रहे ।

स विद्धस्तेन बलवान्नाऽकम्पत यथाऽचलः ।
वैराटिः समरे क्रुद्धो भृशमायम्य कार्मुकम् ॥ ५५ ॥
आजघान ततो भीष्मं श्वेतः क्षत्रियनन्दनः ।
सम्प्रहस्य ततः श्वेतः सृक्किणी परिसंलिहन् ॥ ५६ ॥
धनुश्चिच्छेद भीष्मस्य नवभिर्दशधा शरैः ।
सन्धाय विशिखं चैव शरं लोमप्रवाहिनम् ॥ ५७ ॥
उन्ममाथ ततस्तालं ध्वजशीर्षं महात्मनः ।
केतुं निपतितं दृष्ट्वा भीष्मस्य तनयास्तव ॥ ५८ ॥
हतं भीष्ममन्यन्त श्वेतस्य वशमागतम् ।
पाण्डवाश्चाऽपि संहृष्टा दध्मुः शङ्खान्मुदा युताः ॥ ५९ ॥
भीष्मस्य पतितं केतुं दृष्ट्वा तालं महात्मनः ।
ततो दुर्योधनः क्रोधात्स्वमनीकमनोदयत् ॥ ६० ॥
यत्ता भीष्मं परीप्सध्वं रक्षमाणाः समन्ततः ।
मा नः प्रपश्यमानानां श्वेतान्मृत्युमवाप्स्यति ॥ ६१ ॥
भीष्मः शान्तनवः शूरस्तथा सत्यं ब्रवीमि वः ।
राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा त्वरमाणा महारथाः ॥ ६२ ॥
बलेन चतुरङ्गेण गाङ्गेयमन्वपालयन् ।
बाह्लीकः कृतवर्मा च शलः शल्यश्च भारत ॥ ६३ ॥
जलसन्धो विकर्णश्च चित्रसेनो विविंशतिः ।
त्वरमाणास्त्वराकाले परिवार्य समन्ततः ॥ ६४ ॥

उन्होंने धनुष चढ़ाकर फिर भीष्म को बहुत से बाण मारे। क्रोध के मारे ओंठ चाटते हुए सेनापति श्वेत ने हँसकर नव बाणों से भीष्म के धनुष के दस खण्ड कर डाले ॥५३।५६॥ इसके पश्चात् एक तीक्ष्ण बाण लेकर श्वेत ने भीष्म के रथ की तालचिह्न-युक्त ध्वजा काट गिराई। हे महाराज! भीष्म के रथ की ध्वजा को कटकर गिरते देखते ही आपके पुत्रों न समझा कि श्वेत के वश में होकर अब पितामह मारे गये। पाण्डव लोग भी प्रसन्न होकर शङ्ख बजाने लगे। तब दुर्योधन ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपने सेनापतिओं से कहा—तुम लोग यत्नपूर्वक चारों ओर से पितामह की रक्षा करो। हम लोगों के देखते हुए शूर पितामह भीष्म श्वेत के हाथों नहीं मारे जा सकते, यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ ॥५७।६२॥ राजा के ये वचन सुनकर महारथी लोग स्फूर्ति के साथ भीष्म की रक्षा करने लगे। चतुरङ्गिणी सेना साथ में लिये हुए बाह्लीक, कृतवर्मा, शल, शल्य, जलसन्ध, विकर्ण, चित्रसेन और विविंशति आदि महारथी चारों ओर से भीष्म की रक्षा

शस्त्रवृष्टिं सुतुमुलां श्वेतस्योपर्यपातयन् ।
तान्क्रुद्धो निशितैर्बाणैस्त्वरमाणो महारथः ॥ ६५ ॥
अवारयदमेयात्मा दर्शयन्पाणिलाघवम् ।
स निवार्य तु तान्सर्वान्केसरी कुञ्जरानिव ॥ ६६ ॥
महता शरवर्षेण भीष्मस्य धनुराच्छिनत् ।
ततोऽन्यद्धनुरादाय भीष्मः शान्तनवो युधि ॥ ६७ ॥
श्वेतं विव्याध राजेन्द्र कङ्कपत्रैः शितैः शरैः ।
ततः सेनापतिः क्रुद्धो भीष्मं बहुभिरायसैः ॥ ६८ ॥
विव्याध समरे राजन्सर्वलोकस्य पश्यतः ।
ततः प्रव्यथितो राजा भीष्मं दृष्ट्वा निवारितम् ॥ ६९ ॥
प्रवीरं सर्वलोकस्य श्वेतेन युधि वै तदा ।
निष्टानकश्च सुमहांस्तव सैन्यस्य चाऽभवत् ॥ ७० ॥
तं वीरं वारितं दृष्ट्वा श्वेतेन शरविक्षतम् ।
हतं श्वेतेन मन्यन्ते श्वेतस्य वशमागतम् ॥ ७१ ॥
ततः क्रोधवशं प्राप्तः पिता देवव्रतस्तव ।
ध्वजमुन्मथितं दृष्ट्वा तां च सेनां निवारिताम् ॥ ७२ ॥
श्वेतं प्रति महाराज व्यसृजत्सायकान्बहून् ।
तानावार्य रणे श्वेतो भीष्मस्य रथिनां वरः ॥ ७३ ॥
धनुश्चिच्छेद भल्लेन पुनरेव पितुस्तव ।
उत्सृज्य कार्मुकं राजन्गाङ्गेयः क्रोधमूर्च्छितः ॥ ७४ ॥

करते हुए श्वेत के ऊपर बाण बरसाने लगे। महापराक्रमी श्वेत ने भी क्रुद्ध होकर अपने हाथ की स्फूर्ति दिखाते हुए तीक्ष्ण बाणों से उनके बाणों को रोक दिया। सिंह जैसे हाथियों को विमुख कर देता है, वैसे ही वीरवर श्वेत ने बाण मारकर उन वीरों को हटा दिया। उन वीरों को इस प्रकार हटा करके श्वेत ने बहुत से बाण चलाकर भीष्म पितामह का धनुष काट डाला ॥६२।६७॥ भीष्म ने स्फूर्ति से दूसरा धनुष लेकर कङ्कपत्रभूषित तीक्ष्ण बाणों से श्वेत को घायल कर दिया। सेनापति श्वेत ने क्रुद्ध होकर सब लोगों के सामने लोहनिर्मित बहुत से बाण भीष्म को मारे। उस प्रहार से भीष्म विह्वल-से हो गये। युद्ध में त्रिभुवनश्रेष्ठ वीर भीष्म की यह दशा देखकर राजा दुर्योधन बहुत व्यथित हुए और आपके पक्ष की सेना भी मानो सन्नाटे में आ गई। श्वेत के बाणों से घायल भीष्म की यह दशा देखकर सब ने समझ लिया कि भीष्म अब श्वेत के वश में आ गये और श्वेत उन्हें अभी मार डालेंगे ॥६७।७१॥ आपके पिता भीष्म

अन्यत्कार्मुकमादाय विपुलं वलवत्तरम् ।
तत्र सन्धाय विपुलान्भल्लान्सप्त शिलाशितान् ॥ ७५ ॥
चतुर्भिश्च जघानाऽश्वाञ्श्वेतस्य पृतनापतेः ।
ध्वजं द्वाभ्यां तु चिच्छेद सप्तमेन च सारथेः ॥ ७६ ॥
शिरश्चिच्छेद भल्लेन संक्रुद्धोऽलघुविक्रमः ।
हताश्वसूतात्स रथादवप्लुत्य महावलः ॥ ७७ ॥
अमर्षवशमापन्नो व्याकुलः समपद्यत ।
विरथं रथिनां श्रेष्ठं श्वेतं दृष्ट्वा पितामहः ॥ ७८ ॥
ताडयामास निशितैः शरसङ्घैः समन्ततः ।
स ताड्यमानः समरे भीष्मचापच्युतैः शरैः ॥ ७९ ॥
स्वरथे धनुरुत्सृज्य शक्तिं जग्राह काञ्चनीम् ।
ततः शक्तिं रणे श्वेतो जग्राहोग्रां महाभयाम् ॥ ८० ॥
कालदण्डोपमां घोरां मृत्योर्जिह्वामिव श्वसन् ।
अब्रवीच्च तदा श्वेतो भीष्मं शान्तनवं रणे ॥ ८१ ॥
तिष्ठेदानीं सुसंरब्धः पश्य मां पुरुषो भव ।
एवमुक्त्वा महेष्वासो भीष्मं युधि पराक्रमी ॥ ८२ ॥
ततः शक्तिममेयात्मा चिक्षेप भुजगोपमाम् ।
पाण्डवार्थे पराक्रान्तस्तवाऽनर्थं चिकीर्षुकः ॥ ८३ ॥
हाहाकारो महानासीत्पुत्राणां ते विशाम्पते ।
दृष्ट्वा शक्तिं महाघोरां मृत्योर्दण्डसमप्रभाम् ॥ ८४ ॥

अपनी कटी हुई ध्वजा और भागी हुई सेना देखकर क्रोध के मारे अधीर हो उठे। उन्होंने सँभलकर श्वेत के ऊपर वाण वरसाना आरम्भ किया। किन्तु श्रेष्ठ रथी श्वेत ने उन वाणों को मार्ग में ही रोककर एक भल्ल वाण से भीष्म का धनुष काट डाला। इससे अत्यन्त क्रुद्ध होकर भीष्म ने और अत्यन्त दृढ धनुष हाथ में लिया और उस पर सात भल्ल वाण चढाकर चार से श्वेत के चारों घोड़े मारे, दो से ध्वजा काटी और एक से सारथी का सिर काट डाला ॥७२।७७॥ विना घोडों के रथ से महावली श्वेत उतर पडे। वे क्रोध के मारे व्याकुल हो गये। श्रेष्ठ रथी श्वेत को रथ-हीन देखकर भीष्म ने उनको अनेक तीक्ष्ण वाण मारे। महावीर श्वेत ने इस प्रकार भीष्म के वाणों से जर्जर होकर धनुष तो अपने रथ पर डाल दिया और एक यमदण्डतुल्य सुवर्णभूषित कालजिह्वा के समान महा-भयानक शक्ति हाथ में ली। वह शक्ति हाथ में लेकर श्वेत ने कहा—"हे भीष्म ! अव सँभल जाओ, मेरा पराक्रम देखो और पुरुष वनो।" अव पाण्डवों का

श्वेतस्य करनिर्मुक्तां निर्मुक्तोरगसन्निभाम् ।
अपतत्सहसा राजन्महोल्केव नभस्तलात् ॥ ८५ ॥
ज्वलन्तीमन्तरिक्षे तां ज्वालाभिरिव संवृताम् ।
असम्भ्रान्तस्तदा राजन्पिता देवव्रतस्तव ॥ ८६ ॥
अष्टभिर्नवभिर्भीष्मः शक्तिं चिच्छेद पत्रिभिः ।
उत्कृष्टहेमविकृतां निकृतां निशितैः शरैः ॥ ८७ ॥
उच्चुक्रुशुस्ततः सर्वे तावका भरतर्षभ ।
शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा वैराटिः क्रोधमूर्च्छितः ॥ ८८ ॥
कालोपहतचेतास्तु कर्तव्यं नाऽभ्यजानत ।
क्रोधसम्मूर्च्छितो राजन्वैराटिः प्रहसन्निव ॥ ८९ ॥
गदां जग्राह संहृष्टो भीष्मस्य निधनं प्रति ।
क्रोधेन रक्तनयनो दण्डपाणिरिवाऽन्तकः ॥ ९० ॥
भीष्मं समभिदुद्राव जलौघ इव पर्वतम् ।
तस्य वेगमसंवार्यं मत्वा भीष्मः प्रतापवान् ॥ ९१ ॥
प्रहारविप्रमोक्षार्थं सहसा धरणीं गतः ।
श्वेतः क्रोधसमाविष्टो भ्रामयित्वा तु तां गदाम् ॥ ९२ ॥
रथे भीष्मस्य चिक्षेप यथा देवो धनेश्वरः ।
तया भीष्मनिपातिन्या स रथो भस्मसात्कृतः ॥ ९३ ॥

हित और आपकी निकृष्टता करने की इच्छा से पराक्रमी श्वेत ने वह शक्ति भीष्म के ऊपर चलाई ॥७७।८३॥ उस शक्ति को देखकर आपके पुत्र हाहाकार करने लगे। केंचुली से निकले हुए चिकने सर्प के समान, कालदण्ड ऐसी महाघोर वह शक्ति श्वेत के हाथ से छूटकर आकाश में भारी उल्का के समान ज्वालामयी देख पड़ी। किन्तु उस शक्ति को देखकर महापराक्रमी भीष्म तनिक भी विचलित नहीं हुए ॥८३।८६॥ उन्होंने आठ-नव तीक्ष्ण बाण चलाकर उस सुवर्णमयी घोर शक्ति को मध्य में ही टुकड़े-टुकड़े करके गिरा दिया। उस शक्ति की यह दशा देखकर आपके पुत्र प्रसन्नता के मारे चिल्लाने लगे। शक्ति की यह दशा देखकर श्वेत क्रोध से अधीर हो उठे। उनके सिर पर काल सवार था, इससे वे कुछ निश्चय नहीं कर सके कि अब क्या करना चाहिए। इसके पश्चात् क्रोध से नेत्र लाल करके, दण्डपाणि यमराज के समान गदा हाथ में लेकर, भीष्म को मारने के लिए उनकी ओर श्वेत दौड़े ॥८७।९०॥ जल का प्रवाह जैसे पर्वत की ओर बढ़ता है, वैसे ही श्वेत को अपनी ओर आते देखकर, उनके वेग को न रुकनेवाला समझकर, उस प्रहार से रक्षा करने के लिए, महाप्रतापी भीष्म एकाएक रथ से कूद पड़े। उधर श्वेत ने क्रोध के मारे गदा घुमाकर वेग से भीष्म के रथ पर फेंकी। कुबेरतुल्य श्वेत के हाथ से छूटी हुई वह गदा रथ के ऊपर गिरी। उसकी चोट

सध्वजः सह सूतेन साश्वः सयुगबन्धुरः ।
विरथं रथिनां श्रेष्ठं भीष्मं दृष्ट्वा रथोत्तमाः ॥ ९४ ॥
अभ्यधावन्त सहिताः शल्यप्रभृतयो रथाः ।
ततोऽन्यं रथमास्थाय धनुर्विस्फार्य दुर्मनाः ॥ ९५ ॥
शनकैरभ्ययाच्छ्वेतं गाङ्गेयः प्रहसन्निव ।
एतस्मिन्नन्तरे भीष्मः शुश्राव विपुलां गिरम् ॥ ९६ ॥
आकाशादीरितां दिव्यामात्मनो हितसम्भवाम् ।
भीष्म भीष्म महाबाहो शीघ्रं यत्नं कुरुष्व वै ॥ ९७ ॥
एष ह्यस्य जये कालो निर्दिष्टो विश्वयोनिना ।
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं देवदूतेन भाषितम् ॥ ९८ ॥
सम्प्रहृष्टमना भूत्वा वधे तस्य मनो दधे ।
विरथं रथिनां श्रेष्ठं श्वेतं दृष्ट्वा पदातिनम् ॥ ९९ ॥
सहितास्त्वभ्यवर्तन्त परीप्सन्तो महारथाः ।
सात्यकिर्भीमसेनश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ १०० ॥
कैकेयो धृष्टकेतुश्च अभिमन्युश्च वीर्यवान् ।
एतानापततः सर्वान्द्रोणशल्यकृपैः सह ॥ १०१ ॥
अवारयदमेयात्मा वारिवेगानिवाऽचलः ।
स निरुद्धेषु सर्वेषु पाण्डवेषु महात्मसु ॥ १०२ ॥
श्वेतः खड्गमथाऽऽकृष्य भीष्मस्य धनुराच्छिनत् ।
तदपास्य धनुश्छिन्नं त्वरमाणः पितामहः ॥ १०३ ॥

से ध्वजा, सारथी, घोडे, जुआ, धुरा आदि सहित वह रथ चूरचूर हो गया। भीष्म को रथ-हीन देखकर शल्य आदि सब योद्धा अन्य रथ लेकर उनके पास पहुँचे ॥९१।९४॥ तब कुछ खिन्न से होकर, दूसरे रथ पर चढकर, पितामह भीष्म धनुष चढाकर धीरे-धीरे श्वेत की ओर बढे । हे राजेन्द्र ! इसी मध्य में भीष्म ने अपने हित की सूचना देनेवाली यह दिव्य आकाशवाणी सुनी "हे भीष्म ! हे महाबाहो ! शीघ्र श्वेत को मारने का यत्न करो । विधाता ने इसे मारने का यही समय निर्दिष्ट किया है ॥"॥९५।९८॥ देव-दूत के कहे हुए ये वचन सुनकर भीष्म बहुत प्रसन्न हुए और श्वेत को मारने का दृढ निश्चय करके युद्ध के लिए प्रस्तुत हुए । इधर श्वेत को रथ-हीन और पैदल देखकर उनकी सहायता करने के लिए सात्यकि, भीमसेन, धृष्टद्युम्न, केकेय, धृष्टकेतु, पराक्रमी अभिमन्यु आदि वीर रथ लेकर आगे बढे । महाप्रतापी भीष्म ने द्रोण, कृप, शल्य आदि के साथ इन सबको मध्य में ही रोकने का यत्न किया । जल के वेग को

देवदूतवचः श्रुत्वा वधे तस्य मनो दधे ।
ततः प्रचरमाणस्तु पिता देवव्रतस्तव ॥१०४॥
अन्यत्कार्मुकमादाय त्वरमाणो महारथः ।
क्षणेन सज्यमकरोच्छक्रचापसमप्रभम् ॥१०५॥
पिता ते भरतश्रेष्ठ श्वेतं दृष्ट्वा महारथैः ।
वृतं तं मनुजव्याघ्रैर्भीमसेनपुरोगमैः ॥१०६॥
अभ्यवर्तत गाङ्गेयः श्वेतं सेनापतिं द्रुतम् ।
आपतन्तं ततो भीष्मो भीमसेनं प्रतापवान् ॥१०७॥
आजघ्ने विशिखैः षष्ट्या सेनान्यं स महारथः ।
अभिमन्युं च समरे पिता देवव्रतस्तव ॥१०८॥
आजघ्ने भरतश्रेष्ठस्त्रिभिः सन्नतपर्वभिः ।
सात्यकिं च शतेनाऽऽजौ भरतानां पितामहः ॥१०९॥
धृष्टद्युम्नं च विंशत्या कैकेयं चाऽपि पञ्चभिः ।
तांश्च सर्वान्महेष्वासान्पिता देवव्रतस्तव ॥११०॥
वारयित्वा शरैर्घोरैः श्वेतमेवाऽभिदुद्रुवे ।
ततः शरं मृत्युसमं भारसाधनमुत्तमम् ॥१११॥
विकृष्य बलवान्भीष्मः समाधत्त दुरासदम् ।
ब्रह्मास्त्रेण सुसंयुक्तं तं शरं लोमवाहिनम् ॥११२॥
ददृशुर्देवगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः ।
स तस्य कवचं भित्वा हृदयं चाऽमितौजसः ॥११३॥

जैसे पर्वत रोकता है, वैसे ही पराक्रमी भीष्म ने बाण-वर्षा करके पाण्डवों को और उनके वीरों को आगे नहीं बढ़ने दिया ॥९८।१०२॥ महावीर निर्भय श्वेत ने यह देखकर साहस के साथ खड्ग निकालकर उसके प्रहार से भीष्म का धनुष फिर काट डाला। कटे हुए धनुष को भीष्म ने पृथक् फेंक दिया। देवदूत के वचन सुनकर श्वेत को मारने के लिए शीघ्रता करते हुए पितामह ने इन्द्रधनुष-तुल्य प्रभापूर्ण दूसरा धनुष लेकर क्षण भर में चढ़ा लिया। अब भीमसेन आदि वीरों से घिरे हुए सेनापति श्वेत की ओर भीष्म पितामह ने अपना रथ दौड़ाया ॥१०२।१०७॥ उधर से श्वेत की सहायता करने को आते हुए प्रतापी भीमसेन को साठ बाण मारकर भीष्म ने रोक दिया। इसी प्रकार उन्होंने अभिमन्यु को बहुत ही तीक्ष्ण तीन बाण मारे। सात्यकि को सौ बाण मारे। धृष्टद्युम्न को बीस बाण मारे और कैकेय को पाँच बाण मारे। हे महाराज! आपके पिता भीष्म इस प्रकार शत्रुपक्ष के इन वीरों को घोर बाणों से हटा करके श्वेत के

जगाम धरणीं बाणो महाशनिरिव ज्वलन् ।
अस्तं गच्छन्यथाऽऽदित्यः प्रभामादाय सत्वरः ॥ ११४ ॥
एवं जीवितमादाय श्वेतदेहाज्जगाम ह ।
तं भीष्मेण नरव्याघ्रं तथा विनिहतं युधि ॥ ११५ ॥
प्रपतन्तमपश्याम गिरेः शृङ्गमिव च्युतम् ।
अशोचन्पाण्डवास्तत्र क्षत्रियाश्च महारथाः ॥ ११६ ॥
प्रहृष्टाश्च सुतास्तुभ्यं कुरवश्चाऽपि सर्वशः ।
ततो दुःशासनो राजञ्श्वेतं दृष्ट्वा निपातितम् ॥ ११७ ॥
वादित्रनिनदैर्घोरैर्नृत्यति स्म समन्ततः ।
तस्मिन्हते महेष्वासे भीष्मेणाऽऽहवशोभिना ॥ ११८ ॥
प्रावेपन्त महेष्वासाः शिखण्डिप्रमुखा रथाः ।
ततो धनञ्जयो राजन्वार्ष्णेयश्चाऽपि सर्वशः ॥ ११९ ॥
अवहारं शनैश्चक्रुर्निहते वाहिनीपतौ ।
ततोऽवहारः सैन्यानां तव तेषां च भारत ॥ १२० ॥
तावकानां परेषां च नर्दतां च मुहुर्मुहुः ।
पार्था विमनसो भूत्वा न्यवर्तन्त महारथाः ।
चिन्तयन्तो वधं घोरं द्वैरथेन परन्तपाः ॥ १२१ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि श्वेतवधे अष्टाचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

ऊपर आक्रमण करने के लिए आगे बढ़े ॥१०८। ११०॥ इसी समय भीष्म ने एक भार को सह सकने वाले, कालरूप, श्रेष्ठ, रोएँदार तीक्ष्ण बाण को तरकस से निकाला। फिर उस भयानक बाण को ब्रह्मास्त्र से अभिमन्त्रित करके श्वेत के हृदय को लक्ष्य करके छोड़ा। देवता, गन्धर्व, पिशाच, नाग, राक्षस आदि सबने देखा कि वह बाण कवच तोड़कर पराक्रमी श्वेत के हृदय में प्रवेश हो गया है। महावज्र के समान प्रज्वलित वह बाण उसी तरह प्राण लेकर श्वेत के शरीर से निकलकर पृथ्वी में प्रवेश होगया, जिस तरह अस्त होते हुए सूर्य प्रभा को लेकर चले जाते हैं ॥१११।११५॥ पितामह के हाथ से मारे गये श्वेत का शरीर, पर्वत के फटे हुए शिखर की तरह, सबके सामने पृथ्वी पर गिर पड़ा। श्वेत की मृत्यु देखकर पाण्डव और उनके पक्ष के सब क्षत्रिय लोग शोक प्रकट करने लगे। इधर आपके पुत्र और सब कुरु-सेना अत्यन्त प्रसन्न हुई। कौरव सेना में बड़े आनन्द के साथ बाजे बजे और दु शासन आनन्द के मारे नाचने लगा ॥११५।११८॥ युद्ध दुर्द्धर्ष भीष्म के हाथ से विराट के पुत्र श्वेत की मृत्यु देखकर [शोक और भय के मारे] शिखण्डी आदि महाधनुर्द्धर वीर काँपने लगे। अब महावीर अर्जुन और वासुदेव ने सेनापति की मृत्यु देखकर युद्ध रोकने की आज्ञा दी। दोनों पक्ष के वीर सैनिक गरजते हुए धीरे-धीरे विश्राम के लिए

अपने-अपने डेरों को चले गये। द्वन्द्वयुद्ध में श्वेत की मृत्यु होने के कारण महारथी पाण्डव लोग चिन्तित और व्याकुल होकर डेरों को लौटे ॥११८।१२१॥

भीष्मपर्व का अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४८ ॥

अथ एकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—श्वेते सेनापतौ तात संग्रामे निहते परैः ।
किमकुर्वन्महेष्वासाः पञ्चाला पाण्डवैः सह ॥ १ ॥
सेनापतिं समाकर्ण्य श्वेतं युधि निपातितम् ।
तदर्थं यततां चाऽपि परेषां प्रपलायिनाम् ॥ २ ॥
मनः प्रीणाति मे वाक्यं जयं सञ्जय शृण्वतः ।
प्रत्युपायं चिन्तयन्तः सज्जनाः प्रस्रवन्ति मे ॥ ३ ॥
स हि वीरोऽनुरक्तश्च वृद्धः कुरुपतिस्तदा ।
कृतं वैरं सदा तेन पितुः पुत्रेण धीमता ॥ ४ ॥
तस्योद्वेगभयाच्चाऽपि संश्रितः पाण्डवान्पुरा ।
सर्वं वलं परित्यज्य दुर्गं संश्रित्य तिष्ठति ॥ ५ ॥
पाण्डवानां प्रतापेन दुर्गं देशं निवेश्य च ।
सपत्नान्सततं वाधन्नार्यवृत्तिमनुष्ठितः ॥ ६ ॥
आश्चर्यं वै सदा तेषां पुरा राज्ञां सुदुर्मतिः ।
ततो युधिष्ठिरे भक्तः कथं सञ्जय सूदितः ॥ ७ ॥
प्रक्षिप्तः सम्मतः क्षुद्रः पुत्रो मे पुरुषाधमः ।
न युद्धं रोचयेद्भीष्मो न चाऽऽचार्यः कथञ्चन ॥ ८ ॥

उनचासवाँ अध्याय ॥ ४९ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा— हे सञ्जय ! सेनापति श्वेत के मारे जाने पर धनुर्द्धरश्रेष्ठ पाञ्चालों और पाण्डवों ने युद्धभूमि में फिर क्या किया ? ॥१॥ सेनापति श्वेत की मृत्यु, उसकी सहायता करनेवालों का भागना और अपने पक्ष की विजय सुनकर मुझे अत्यन्त हर्ष हो रहा है। मेरे पक्ष के योद्धा उपाय करते हुए यद्यपि दया से काम लेते हैं तथापि शूर पितामह भीष्म की हम पर अनुग्रह है। श्वेत का अपने पिता से सदा वैर बना रहा। पिता से क्लेश होने के कारण वह पाण्डवों के यहाँ चला आया था और अपनी सेना से पृथक् होकर दुर्ग में रहता था। पाण्डवों का आश्रय पाकर उसने दुर्गम स्थान को आबाद किया और शत्रुओं का नाश कर अपना व्यवहार अच्छा रक्खा। मेरा पुत्र दुर्योधन उन्मत्त और नीच है। कुरुकुलश्रेष्ठ भीष्म, महात्मा द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, मैं और गान्धारी, किसी की इच्छा नहीं थी कि यह युद्ध हो। उधर वासुदेव,

न कृपो न च गान्धारी नाऽहं सञ्जय रोचये ।
न वासुदेवो वार्ष्णेयो धर्मराजश्च पाण्डवः ॥ ९ ॥
न भीमो नाऽर्जुनश्चैव न यमौ पुरुषर्षभौ ।
वार्यमाणो मया नित्यं गान्धार्या विदुरेण च ॥ १० ॥
जामदग्न्येन रामेण व्यासेन च महात्मना ।
दुर्योधनो युध्यमानो नित्यमेव हि सञ्जय ॥ ११ ॥
कर्णस्य मतमास्थाय सौबलस्य च पापकृत् ।
दुःशासनस्य च तथा पाण्डवानन्वचिन्तयत् ॥ १२ ॥
तस्याऽहं व्यसनं घोरं मन्ये प्राप्तं तु सञ्जय ।
श्वेतस्य च विनाशेन भीष्मस्य विजयेन चः ॥ १३ ॥
संक्रुद्धः कृष्णसहितः पार्थः किमकरोद्युधि ।
अर्जुनाद्धि भयं भूयस्तन्मे तात न शाम्यति ॥ १४ ॥
स हि शूरश्च कौन्तेयः क्षिप्रकारी धनञ्जयः ।
मन्ये शरैः शरीराणि शत्रूणां प्रमथिष्यति ॥ १५ ॥
ऐन्द्रिमिन्द्रानुजसमं महेन्द्रसदृशं बले ।
अमोघक्रोधसङ्कल्पं दृष्ट्वा वः किमभून्मनः ॥ १६ ॥
तथैव वेदविच्छूरो ज्वलनार्कसमद्युतिः ।
इन्द्रास्त्रविदमेयात्मा प्रपतन्समितिञ्जयः ॥ १७ ॥

परम धार्मिक युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव भी इस युद्ध को रुचिकर नहीं मानते थे। ॥९।१०॥ पहले मैं, गान्धारी, विदुर, परशुराम और महात्मा व्यास आदि दुरात्मा दुर्योधन को अनेक प्रकार से समझाया और रोका था कि पाण्डवों से युद्ध मत करो; किन्तु उस उद्दण्ड हठी ने हमारे रोकने को नहीं माना। हमारे उपदेश की अवहेला करके कर्ण, शकुनि और दुःशासन की सम्मति मानकर दुष्ट दुर्योधन पाण्डवों से, ईर्ष्या रखने के कारण, युद्ध करने लगा। उसने पाण्डवों की कुछ अपेक्षा नहीं की। मैं समझता हूँ, अब उसके ऊपर घोर सङ्कट आनेवाला है ॥११।१३॥ श्वेत की मृत्यु और भीष्म की विजय से अत्यन्त क्रुद्ध होकर कृष्णसहित अर्जुन ने युद्ध में क्या किया? मुझ से सब वृत्तान्त कहो। हे सञ्जय! अर्जुन से मुझे बडा भय है। वह किसी प्रकार दूर नहीं होता। मुझे स्पष्ट जान पडता है कि शूर और स्फूर्तिशालि अर्जुन अवश्य अपने बाणों से शत्रुओं के शरीरों को टुकडे टुकडे कर डालेंगे ॥१३।१५॥ अर्जुन का क्रोध कभी निष्फल नहीं हो सकता। उनका अभिप्राय भी अधूरा नहीं रह सकता। वेदज्ञ, शूर, सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी, बल में महेन्द्र और विष्णु के सदृश, इन्द्रास्त्र के ज्ञाता, अप्रमेय पराक्रमी, इन्द्रतुल्य अर्जुन को समर के लिए उद्यत देखकर तुम्हारे मन में कैसा भाव प्रकट हुआ था? यज्ञ के

वज्रसंस्पर्शरूपाणामस्त्राणां च प्रयोजकः ।
सखड्गाक्षेपहस्तस्तु घोषं चक्रे महारथः ॥ १८ ॥
स सञ्जय महाप्राज्ञो द्रुपदस्याऽऽत्मजो बली ।
धृष्टद्युम्नः किमकरोच्छ्वेते युधि निपातिते ॥ १९ ॥
पुरा चैवाऽपराधेन वधेन च चमूपतेः ।
मन्ये मनः प्रजज्वाल पाण्डवानां महात्मनाम् ॥ २० ॥
तेषां क्रोधं चिन्तयंस्तु अहःसु च निशासु च ।
न शान्तिमधिगच्छामि दुर्योधनकृतेन हि ।
कथं चाऽभून्महायुद्धं सर्वमाचक्ष्व सञ्जय ॥ २१ ॥
सञ्जय उवाच—शृणु राजन्स्थिरो भूत्वा तवाऽपनयनो महान् ।
न च दुर्योधने दोषमिममाधातुमर्हसि ॥ २२ ॥
गतोदके सेतुबन्धो यादृक्तादृङ्मतिस्तव ।
सन्दीप्ते भवने यद्वत्कूपस्य खननं तथा ॥ २३ ॥
गतपूर्वाह्णभूयिष्ठे तस्मिन्नहनि दारुणे ।
तावकानां परेषां च पुनर्युद्धमवर्तत ॥ २४ ॥
श्वेतं तु निहतं दृष्ट्वा विराटस्य चमूपतिम् ।
कृतवर्मणा च सहितं दृष्ट्वा शल्यमवस्थितम् ॥ २५ ॥

ऐसे रूप और स्पर्शवाले अमोघ अस्त्रों का प्रयोग करने में निपुण, खड्गयुद्ध में अद्वितीय अर्जुन ने क्रोध करके क्या किया ? ॥१५।१८॥ हे सञ्जय ! युद्ध में श्वेत के मारे जाने पर महारथी, पराक्रमी धृष्टद्युम्न ने क्या किया ? मुझे निश्चय जान पड़ता है कि दुर्योधन ने पहले जो दुर्व्यवहार किये हैं उनसे और सेनापति श्वेत की मृत्यु से पाण्डवों के हृदय में असह्य क्रोध की अग्नि प्रज्वलित हो उठी होगी। हे सञ्जय ! दुर्योधन के अपराध से उत्पन्न होनेवाले पाण्डवों के अनिवार्य क्रोध को सोचकर मुझे दिन को या रात्रि को कभी घड़ी भर शान्ति नहीं मिलती। अब तुम बतलाओ, वह महायुद्ध किस प्रकार हुआ ? ॥१९।२१॥ सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! आप चित्त को एकाग्र करके सुनिए। आप ही इस विपत्ति के आने का मूल कारण हैं। इस बारे में दुर्योधन के ऊपर दोषारोपण करना अनुचित है। जल की बाढ़ निकल जाने पर पुल बाँधना या गृह के दग्ध हो जाने पर कुआँ खोदना जैसे व्यर्थ होता है वैसे ही अब आपका यों कहना और सोचना व्यर्थ है ॥२२।२३॥ अस्तु, अब आप युद्ध का वर्णन सुनिए। वह दारुण दिन का पूर्वभाग व्यतीत हो जाने पर दूसरे भाग में फिर कौरवों और पाण्डवों में युद्ध होने लगा। विराट के पुत्र सेनापति श्वेत को मरा हुआ और कृतवर्मा-सहित शल्य को युद्ध के लिए प्रस्तुत देखकर वीर शङ्ख, आहुति पड़ने पर अग्नि के समान, क्रोध से प्रज्वलित हो उठे। बहुत से रथों के द्वारा चारों ओर से सुरक्षित वीर शङ्ख

शङ्खः क्रोधात्प्रजज्वाल हविषा हव्यवाडिव ।
स विस्फार्य महच्चापं शक्रचापोपमं बली ॥ २६ ॥
अभ्यधावज्जिघांसन्वै शल्यं मद्राधिपं युधि ।
महता रथसंघेन समन्तात्परिरक्षितः ॥ २७ ॥
सृजन्बाणमयं वर्षं प्रायाच्छल्यरथं प्रति ।
तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य मत्तवारणविक्रमम् ॥ २८ ॥
तावकानां रथाः सप्त समन्तात्पर्यवारयन् ।
मद्रराजं परीप्सन्तो मृत्योर्दंष्ट्रान्तरं गतम् ॥ २९ ॥
बृहद्बलश्च कौसल्यो जयत्सेनश्च मागधः ।
तथा रुक्मरथो राजन्पुत्रः शल्यस्य मानितः ॥ ३० ॥
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ काम्बोजश्च सुदक्षिणः ।
बृहत्क्षत्रस्य दायादः सैन्धवश्च जयद्रथः ॥ ३१ ॥
नानाधातुविचित्राणि कार्मुकाणि महात्मनाम् ।
विस्फारितान्यदृश्यन्त तोयदेष्विव विद्युतः ॥ ३२ ॥
ते तु बाणमयं वर्षं शङ्खमूर्ध्नि न्यपातयन् ।
निदाघान्तेऽनिलोद्भूता मेघा इव नगे जलम् ॥ ३३ ॥
ततः क्रुद्धो महेष्वासः सप्तभल्लैः सुतेजनैः ।
धनूंषि तेषामाच्छिद्य ननर्द पृतनापतिः ॥ ३४ ॥
ततो भीष्मो महाबाहुर्विनद्य जलदो यथा ।
तालमात्रं धनुर्गृह्य शङ्खमभ्यद्रवद्रणे ॥ ३५ ॥

इन्द्रधनुष ऐसा श्रेष्ठ धनुष चढ़ाकर मद्रराज शल्य को मारने के लिए उनकी ओर बढ़े और तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करने लगे ॥२६।२७॥ मदोन्मत्त हाथी के समान पराक्रमी विराट पुत्र शङ्ख को आते देखकर, शल्य को मृत्यु-मुख से बचाने के लिए, आपके पक्ष के सात महारथी — बृहद्बल, जयत्सेन, रुक्मरथ, विन्द, अनुविन्द, सुदक्षिण और जयद्रथ — बाणों की वर्षा करते हुए आगे बढ़े ॥२८।३१॥ अनेक धातुओं से चित्रित उन लोगों के धनुष बादलों में बिजली के समान चमक रहे थे। उन्होंने शङ्ख के ऊपर बाण बरसाना आरम्भ किया। तब महारथी शङ्ख ने कुपित होकर सात तीक्ष्ण भल्ल बाणों से उनके धनुष काटकर सिंहनाद किया ॥३२।३४॥ इसी समय महाबाहु भीष्म मेघ के समान गरजते हुए तालप्रमाण धनुष लेकर बड़ी फुर्ती से शङ्ख के सामने आये। भीष्म को आते देखकर पाण्डवों की सेना भी डर से आँधी के वेग में डगमगाती हुई नाव के समान हो गई ॥३५।३६॥ तब भीष्म से शङ्ख की रक्षा करने

तमुद्यन्तमुदीक्ष्याऽथ महेष्वासं महाबलम् ।
सन्त्रस्ता पाण्डवी सेना वातवेगहतेव नौः ॥ ३६ ॥
ततोऽर्जुनः सन्त्वरितः शङ्खस्याऽऽसीत्पुरःसरः ।
भीष्माद्रक्ष्योऽयमद्येति ततो युद्धमवर्तत ॥ ३७ ॥
हाहाकारो महानासीद्योधानां युधि युध्यताम् ।
तेजस्तेजसि सम्पृक्तमित्येवं विस्मयं ययुः ॥ ३८ ॥
अथ शल्यो गदापाणिरवतीर्य महारथात् ।
शङ्खस्य चतुरो वाहानहनद्भरतर्षभ ॥ ३९ ॥
स हताश्वाद्रथात्तूर्णं खड्गमादाय विद्रुतः ।
बीभत्सोश्च रथं प्राप्य पुनः शान्तिमविन्दत ॥ ४० ॥
ततो भीष्मरथात्तूर्णमुत्पतन्ति पतत्रिणः ।
यैरन्तरिक्षं भूमिश्च सर्वतः समवस्तृता ॥ ४१ ॥
पञ्चालानथ मत्स्यांश्च केकयांश्च प्रभद्रकान् ।
भीष्मः प्रहरतां श्रेष्ठः पातयामास पत्रिभिः ॥ ४२ ॥
उत्सृज्य समरे राजन्पाण्डवं सव्यसाचिनम् ।
अभ्यद्रवत पाञ्चाल्यं द्रुपदं सेनया वृतम् ॥ ४३ ॥
प्रियं सम्बन्धिनं राजञ्शरानवकिरन्बहून् ।
अग्निनेव प्रदग्धानि वनानि शिशिरात्यये ॥ ४४ ॥
शरदग्धान्यदृश्यन्त सैन्यानि द्रुपदस्य ह ।
अत्यतिष्ठद्रणे भीष्मो विधूम इव पावकः ॥ ४५ ॥

के लिए महावीर अर्जुन स्फूर्ति के साथ शङ्ख के आगे आ गये। उस समय युद्ध करते हुए योद्धाओं में भारी हाहाकार मच गया। एक तेज जैसे दूसरे तेज से जा भिड़ता है, वैसे ही भीष्म और अर्जुन को सन्मुख देखकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। उधर शल्य और शङ्ख में युद्ध होने लगा। शल्य ने अपने रथ से उतरकर गदा के प्रहार से शङ्ख के रथ के चारों घोड़ों को मार डाला। तब उस रथ से उतरकर खड्ग हाथ में लेकर शङ्ख अर्जुन के रथ पर चले गये। वहा जाने पर उनकी रक्षा हुई ॥३७।४०॥ इधर भीष्म के रथ से स्फूर्ति के साथ इतने बाण बरसने लगे कि उनसे चारों ओर आकाश और पृथ्वी व्याप्त हो गई। श्रेष्ठ योद्धा भीष्म पाञ्चाल, मत्स्य, केकेय, प्रभद्रक आदि देशों के वीरों को अपने बाणों से मार-मारकर गिराने लगे। वे सव्यसाची पाण्डव को छोड़कर, अपनी सेना के बीच स्थित, प्रिय सम्बन्धी पाञ्चाल-राज द्रुपद के सामने पहुँचे, और उन पर बाण बर-साने लगे। गर्मियों में दावानल जैसे जङ्गलों को

मध्यन्दिने यथाऽऽदित्यं तपन्तमिव तेजसा ।
न शेकुः पाण्डवेयस्य योधा भीष्मं निरीक्षितुम् ॥ ४६ ॥
वीक्षाञ्चक्रुः समन्तात्ते पाण्डवा भयपीडिताः ।
त्रातारं नाऽध्यगच्छन्त गावः शीतार्दिता इव ॥ ४७ ॥
सा तु यौधिष्ठिरी सेना गाङ्गेयशरपीडिता ।
सिंहेनेव विनिर्भिन्ना शुक्ला गौरिव गोपतेः ॥ ४८ ॥
हते विप्रद्रुते सैन्ये निरुत्साहे विमर्दिते ।
हाहाकारो महानासीत्पाण्डुसैन्येषु भारत ॥ ४९ ॥
ततो भीष्मः शान्तनवो नित्यं मण्डलकार्मुकः ।
मुमोच बाणान्दीप्ताग्रानहीनाशीविषानिव ॥ ५० ॥
शरैरेकायनीकुर्वन्दिशः सर्वा यतव्रतः ।
जघान पाण्डवरथानादिश्याऽऽदिश्य भारत ॥ ५१ ॥
ततः सैन्येषु भग्नेषु मथितेषु च सर्वशः ।
प्राप्ते चाऽस्तं दिनकरे न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ ५२ ॥
भीष्मं च समुदीर्यन्तं दृष्ट्वा पार्था महाहवे ।
अवहारमकुर्वन्त सैन्यानां भरतर्षभ ॥ ५३ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि शङ्खयुद्धे प्रथमदिवसावहारे एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥ ४९ ॥

जलाता है वैसे ही भीष्म पितामह अपने बाणो से पाञ्चालसेना का संहार करने लगे ॥४१।४५॥ युद्ध-भूमि में पितामह भीष्म बिना धुएँ की अग्नि के समान देख पड़ते थे। दोपहर के सूर्य के समान अपने तेज से तपते हुए भीष्म को पाण्डवसेना का कोई योद्धा नेत्र भरकर देख भी नहीं सकता था। शीतपीड़ित गाय-बैलों की तरह भयपीड़ित पाण्डव-सैनिक चारों ओर देखने लगे। उन्हें कोई अपनी रक्षा करनेवाला न देख पड़ता था। सिंह के आक्रमण करने पर जैसे गायों के झुण्ड भाग खड़े होते हैं वैसे ही भीष्म के बाणों से पीड़ित होकर—हत-आहत, निरुत्साह, विमर्दित होकर—पाण्डवों की सेना इधर उधर भागने लगी। घोर हाहाकार मच गया ॥४५।४९॥ भीष्म पितामह के मण्डलाकार धनुष से चमकीली अग्रभाग वाले, विषैले सर्प-तुल्य बाण निरन्तर निकल रहे थे। जिधर भीष्म बाण बरसाते थे उधर ही सेना में भगदड़ मच जाती थी। भीष्म पितामह ललकार ललकारकर पाण्डवपक्ष के वीरों को मार रहे थे। सेना उन्मथित होकर भाग रही थी, इसी समय सूर्य भी अस्ताचल पर पहुँच गये। अँधेरे में कुछ नहीं सूझ पड़ता था। युद्धभूमि में भीष्म का अनिवार्य पराक्रम देखकर पाण्डवों ने सैनिकों को युद्ध रोकने की आज्ञा दे दी ॥५०।५३॥

भीष्मपर्व का उनचासवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४९ ॥

अथ पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

सञ्जय उवाच—कृतेऽवहारे सैन्यानां प्रथमे भरतर्षभ ।
भीष्मे च युद्धसंरब्धे हृष्टे दुर्योधने तथा ॥ १ ॥
धर्मराजस्ततस्तूर्णमभिगम्य जनार्दनम् ।
भ्रातृभिः सहितः सर्वैः सर्वैश्चैव जनेश्वरैः ॥ २ ॥
शुचा परमया युक्तश्चिन्तयानः पराजयम् ।
वार्ष्णेयमब्रवीद्राजन्दृष्ट्वा भीष्मस्य विक्रमम् ॥ ३ ॥
कृष्ण पश्य महेष्वासं भीष्मं भीमपराक्रमम् ।
शरैर्दहन्तं सैन्यं मे ग्रीष्मे कक्षमिवाऽनलम् ॥ ४ ॥
कथमेनं महात्मानं शक्ष्यामः प्रतिवीक्षितुम् ।
लेलिह्यमानं सैन्यं मे हविष्मन्तमिवाऽनलम् ॥ ५ ॥
एतं हि पुरुषव्याघ्रं धनुष्मन्तं महाबलम् ।
दृष्ट्वा विप्रद्रुतं सैन्यं समरे मार्गणाहतम् ॥ ६ ॥
शक्यो जेतुं यमः क्रुद्धो वज्रपाणिश्च संयुगे ।
वरुणः पाशभृच्चापि कुबेरो वा गदाधरः ॥ ७ ॥
न तु भीष्मो महातेजाः शक्यो जेतुं महाबलः ।
सोऽहमेवङ्गते मग्नो भीष्मागाधजलेऽप्लवे ॥ ८ ॥
आत्मनो बुद्धिदौर्बल्याद्भीष्ममासाद्य केशव ।
वनं यास्यामि वार्ष्णेय श्रेयो मे तत्र जीवितुम् ॥ ९ ॥

न त्वेतान्पृथिवीपालान्दातुं भीष्माय मृत्यवे ।
क्षपयिष्यति सेनां मे कृष्ण भीष्मो महास्त्रवित् ॥ १० ॥
यथाऽनलं प्रज्वलितं पतङ्गाः समभिद्रुताः ।
विनाशायोपगच्छन्ति तथा मे सैनिको जनः ॥ ११ ॥
क्षयं नीतोऽस्मि वार्ष्णेय राज्यहेतोः पराक्रमी ।
भ्रातरश्चैव मे वीराः कर्शिताः शरपीडिताः ॥ १२ ॥
मत्कृते भ्रातृहार्देन राज्याद्भ्रष्टास्तथा सुखात् ।
जीवितं बहु मन्येऽहं जीवितं ह्यद्य दुर्लभम् ॥ १३ ॥
जीवितस्य च शेषेण तपस्तप्स्यामि दुश्चरम् ।
न घातयिष्यामि रणं मित्राणीमानि केशव ॥ १४ ॥
रथान्मे बहुसाहस्रान्दिव्यैरस्त्रैर्महाबलः ।
घातयत्यनिशं भीष्मः प्रवराणां प्रहारिणाम् ॥ १५ ॥
किं नु कृत्वा हितं मे स्याद् ब्रूहि माधव मा चिरम् ।
मध्यस्थमिव पश्यामि समरे सव्यसाचिनम् ॥ १६ ॥
एको भीमः परं शक्त्या युध्यत्येव महाभुजः ।
केवलं बाहुवीर्येण क्षत्रधर्ममनुस्मरन् ॥ १७ ॥
गदया वीरघातिन्या यथोत्साहं महामनाः ।
करोत्यसुकरं कर्म रथाश्वनरदन्तिषु ॥ १८ ॥

नौका नहीं है उस, भीष्मरूप अथाह समुद्र में डूबा जा रहा हूँ। हे वासुदेव! मैं वन को चला जाऊँगा, वहीं जीवन व्यतीत करना मुझे श्रेष्ठ जान पड़ता है। इन राजाओं को और इतनी सेना को व्यर्थ भीष्म के हाथों मृत्युमुख में भेजना मुझे ठीक नहीं जँचता। महास्त्रों के ज्ञाता भीष्म बहुत शीघ्र मेरी सम्पूर्ण सेना नष्ट कर देंगे ॥८।१०॥ जैसे जलती हुई अग्नि में हजारों पतङ्ग जलने के लिए कूदते हैं, ऐसे ही मेरे सैनिक केवल विनाश के लिए भीष्म के सामने जाते हैं। मुझे प्राणों से भी अधिक प्यारे ये भाई बाणों के प्रहार से पीड़ित हो गये हैं। ये मेरे ही कारण भ्रातृ-स्नेह से आज तक सुख और राज्य से भ्रष्ट होकर कष्ट सहते आये हैं। राज्य के लिए पराक्रम करके भीष्म के द्वारा मैं अवश्य नष्ट होऊँगा। मैं इस समय अपना और अपने भाइयों का जीवन ही अत्यन्त कठिन समझ रहा हूँ। इस समय तो जीवन ही दुर्लभ जान पड़ता है ॥११।१३॥ मैं शेष जीवन कठोर तप करके भले ही बिता दूँगा; किन्तु रण में इन मित्रों की हत्या नहीं करा सकूँगा। हे माधव! महारथी भीष्म ने मेरे पक्ष के कई हजार श्रेष्ठ योद्धाओं को अपने दिव्य अस्त्रों से मार डाला है और वे इसी प्रकार नित्य मेरी सेना का संहार करेंगे। इस लिए बहुत शीघ्रता से यह बताइए कि क्या करने से मेरा कल्याण होगा। महारथि अर्जुन मुझे समर में व्याकुल

नाऽलमेष क्षयं कर्तुं परसैन्यस्य मारिष ।
आर्जवेनैव युद्धेन वीर वर्षशतैरपि ॥ १९ ॥
एकोऽस्त्रवित्सखा तेऽयं सोऽप्यस्मान्समुपेक्षते ।
निर्दह्यमानान्भीष्मेण द्रोणेन च महात्मना ॥ २० ॥
दिव्यान्यस्त्राणि भीष्मस्य द्रोणस्य च महात्मनः ।
धक्ष्यन्ति क्षत्रियान्सर्वान्प्रयुक्तानि पुनः पुनः ॥ २१ ॥
कृष्ण भीष्मः सुसंरब्धः सहितः सर्वपार्थिवैः ।
क्षपयिष्यति नो नूनं यादृशोऽस्य पराक्रमः ॥ २२ ॥
स त्वं पश्य महाभाग योगेश्वर महारथम् ।
भीष्मं यः शमयेत्संख्ये दावाग्निं जलदो यथा ॥ २३ ॥
तव प्रसादाद्गोविन्द पाण्डवा निहतद्विषः ।
स्वराज्यमनुसम्प्राप्ता मोदिष्यन्ते सबान्धवाः ॥ २४ ॥
एवमुक्त्वा ततः पार्थो ध्यायन्नास्ते महामनाः ।
चिरमन्तर्मना भूत्वा शोकोपहतचेतनः ।
शोकार्तं तमथो ज्ञात्वा दुःखोपहतचेतसम् ॥ २५ ॥
अब्रवीत्तत्र गोविन्दो हर्षयन्सर्वपाण्डवान् ।
मा शुचो भरतश्रेष्ठ न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ २६ ॥
यस्य ते भ्रातरः शूराः सर्वलोकेषु धन्विनः ।
अहं च प्रियकृद्राजन्सात्यकिश्च महायशाः ॥ २७ ॥

से देख पड़ते हैं ॥१४।१६॥ अकेले भीमसेन क्षत्रिय-धर्म के अनुसार यथाशक्ति बाहुबल से युद्ध करते हैं। महामनस्वी वीर भीम शत्रुघातिनी गदा से उत्साहपूर्वक रथों, हाथियों, घोड़ों और मनुष्यों के दलों में दुष्कर कर्म अवश्य करते हैं, किन्तु ये अकेले सौ वर्ष में भी सरल युद्ध के द्वारा शत्रु-सेना का संहार नहीं कर सकते ॥१७।१९॥ तुम्हारे प्रिय सखा ये अर्जुन ही सब दिव्य अस्त्रों को जानते हैं। सो ये भीष्म, द्रोण आदि के द्वारा हमारे पक्ष का नाश होते देखकर भी लापरवाही दिखा रहे हैं। महात्मा भीष्म और द्रोणाचार्य के दिव्य अस्त्र बारम्बार प्रयुक्त होकर हमारे पक्ष के सब क्षत्रियों को भस्म कर डालेंगे। हे कृष्णचन्द्र! भीष्म का जैसा पराक्रम है, उसे देखकर स्पष्ट जान पड़ता है कि वे अपने पक्ष के सब राजाओं के साथ, क्रुद्ध होकर, हमारी सारी सेना को नष्ट कर देंगे ॥२०।२२॥ इसलिए हे जनार्दन! शीघ्र वह वीर बताइए जो युद्ध में भीष्म को वैसे ठण्डा कर सकता हो जैसे दावानल को मेघ शान्त कर देते हैं। हे योगेश्वर! हे महाभाग! आपके ही प्रसाद से पाण्डव लोग शत्रुओं को मारकर अपना राज्य पावेंगे और

विराटद्रुपदौ चोभौ धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
तथैव सबलाश्चेमे राजानो राजसत्तम ॥ २८ ॥
त्वत्प्रसादं प्रतीक्षन्ते त्वद्भक्ताश्च विशाम्पते ।
एष ते पार्षतो नित्यं हितकामः प्रिये रतः ॥ २९ ॥
सैनापत्यमनुप्राप्तो धृष्टद्युम्नो महाबलः ।
शिखण्डी च महाबाहो भीष्मस्य निधनं किल ॥ ३० ॥
एतच्छ्रुत्वा ततो धर्मो धृष्टद्युम्नं महारथम् ।
अब्रवीत्समितौ तस्यां वासुदेवस्य शृण्वतः ॥ ३१ ॥
धृष्टद्युम्न निबोधेदं यत्त्वां वक्ष्यामि मारिष ।
नाऽतिक्रम्यं भवेत्तच्च वचनं मम भाषितम् ॥ ३२ ॥
भवान्सेनापतिर्मह्यं वासुदेवेन सम्मितः ।
कार्तिकेयो यथा नित्यं देवानामभवत्पुरा ॥ ३३ ॥
तथा त्वमपि पाण्डूनां सेनानीः पुरुषर्षभ ।
स त्वं पुरुषशार्दूल विक्रम्य जहि कौरवान् ॥ ३४ ॥
अहं च तेऽनुयास्यामि भीमः कृष्णश्च मारिष ।
माद्रीपुत्रौ च सहितौ द्रौपदेयाश्च दंशिताः ॥ ३५ ॥
ये चाऽन्ये पृथिवीपालाः प्रधानाः पुरुषर्षभ ।
तत उद्धर्षयन्सर्वान्धृष्टद्युम्नोऽभ्यभाषत ॥ ३६ ॥

भाई-बन्धु सहित आनन्द करेंगे ॥२३।२४॥ हे महाराज! यों कहकर महामनस्वी युधिष्ठिर शोक से व्याकुल अवस्था में बहुत देर तक ध्यानावस्थित से बैठे रहे। तब उन्हें शोक से व्याकुल और दुःखित जानकर श्रीकृष्णचन्द्र जी सब पाण्डवों को प्रसन्न करते हुए इस प्रकार कहने लगे—हे पाण्डवश्रेष्ठ! आप शोक न करें। आप शोक करने के योग्य नहीं हैं, क्योंकि आपके चारों भाई त्रिलोक-प्रसिद्ध योद्धा और अद्वितीय वीर हैं। मैं, महायशस्वी सात्यकि, विराट, द्रुपद, धृष्टद्युम्न और अपनी सेनाओं सहित ये सब राजा लोग आपका प्रिय करनेवाले और भक्त हैं। सब आपके शुभाकांक्षी और हितचिन्तक हैं। आपके हितैषी, प्रिय करनेवाले, महाबली धृष्टद्युम्न सेनापति हैं। हे महाबाहो! विश्वास रखिए, ये शिखण्डी ही भीष्म के लिए मृत्युस्वरूप हैं ॥२५।३०॥ धर्मिकश्रेष्ठ युधिष्ठिर यह सुनकर उस सभा के मध्य में वासुदेव के सामने धृष्टद्युम्न से बोले—हे धृष्टद्युम्न! मेरी बातों को मन लगाकर सुनो। मुझे पूर्ण विश्वास है कि मैं जो कहूँगा, उसे तुम नहीं टालोगे। तुम वासुदेव के समान प्रतापी हो। पहले कार्तिकेय जैसे देवताओं के सेनापति हुए थे, वैसे ही तुम पाण्डवों के सेनापति हो। हे पुरुषसिंह! तुम अपना बल और पराक्रम दिखाकर कौरवों का संहार करो ॥३१।३४॥ मैं, भीमसेन, श्रीकृष्ण, नकुल, सहदेव, द्रौपदी के पाँचों पुत्र और अन्य प्रधान-

अहं द्रोणान्तकः पार्थ विहितः शम्भुना पुरा ।
रणे भीष्मं कृपं द्रोणं तथा शल्यं जयद्रथम् ॥ ३७ ॥
सर्वानद्य रणे दृप्तान्प्रतियोत्स्यामि पार्थिव ।
अथोत्क्रुष्टं महेष्वासैः पाण्डवैर्युद्धदुर्मदैः ॥ ३८ ॥
समुद्यते पार्थिवेन्द्रे पार्षते शत्रुसूदने ।
तमब्रवीत्ततः पार्थः पार्षतं पृतनापतिम् ॥ ३९ ॥
व्यूहः क्रौञ्चारुणो नाम सर्वशत्रुनिबर्हणः ।
यं बृहस्पतिरिन्द्राय तदा देवासुरेऽब्रवीत् ॥ ४० ॥
तं यथावत्प्रतिव्यूहं परानीकविनाशनम् ।
अदृष्टपूर्वं राजानः पश्यन्तु कुरुभिः सह ॥ ४१ ॥
यथोक्तः स नृदेवेन विष्णुर्वज्रभृता यथा ।
प्रभाते सर्वसैन्यानामग्रे चक्रे धनञ्जयम् ॥ ४२ ॥
आदित्यपथगः केतुस्तस्याऽद्भुतमनोरमः ।
शासनात्पुरुहूतस्य निर्मितो विश्वकर्मणा ॥ ४३ ॥
इन्द्रायुधसवर्णाभिः पताकाभिरलङ्कृतः ।
आकाशग इवाऽऽकाशे गन्धर्वनगरोपमः ॥ ४४ ॥
नृत्यमान इवाऽऽभाति रथचर्यासु मारिष ।
तेन रत्नवता पार्थः स च गाण्डीवधन्वना ॥ ४५ ॥

प्रधान राजा लोग, सब तुम्हारे पीछे सहायता के लिए चलेंगे ॥३५।३६॥ युधिष्ठिर के वचन सुनकर वहाँ उपस्थित सब लोगों को प्रसन्न करते हुए धृष्टद्युम्न कहने लगे—भगवान् शङ्कर ने मुझे द्रोण का काल बनाया है। हे महाराज! मैं युद्ध में भीष्म, कृप, द्रोण, शल्य और दर्पयुक्त जयद्रथ आदि सब महारथियों से युद्ध करूँगा ॥३६।३८॥ महावीर धृष्टद्युम्न जब इस प्रकार युद्ध के लिए प्रस्तुत हुए तब सब पाण्डव प्रसन्न होकर सिंहनाद और जय शब्द करने लगे। अब धर्मराज युधिष्ठिर ने सेनापति धृष्टद्युम्न से कहा—हे वीर! जब देवताओं और असुरों का संग्राम हुआ था तब महामनस्वी बृहस्पति ने इन्द्र को जो दुर्भेद्य क्रौञ्चव्यूह बतलाया था, वही व्यूह हम लोग रचेंगे। वह व्यूह शत्रुसेना को नष्ट कर देता है। कौरव और अन्य राजा लोग पहले कभी न देखे हुए उस व्यूह को देखेंगे ॥३९।४१॥ धृष्टद्युम्न को यह उपदेश देकर धर्मराज युधिष्ठिर ने रात्रि को विश्राम किया। प्रातःकाल पाण्डवों ने इस तरह क्रौञ्चव्यूह की रचना की,—सब सेना के अग्रभाग में अर्जुन स्थित हुए। अर्जुन के रथ की ध्वजा इन्द्र की आज्ञा से विश्वकर्मा ने बनाई थी। वह ध्वजा वज्र के रङ्ग की अनेक पताकाओं से शोभित थी। वह आकाशस्थित गन्धर्व नगर के समान अन्तरिक्ष में फहरा रही थी। उसे देखने से जान पड़ता था कि मानों वह नृत्य सी कर रही हो। सूर्य के समीप

बभूव परमोपेतः सुमेरुरिव भानुना ।
शिरोऽभूद्द्रुपदो राजा महत्या सेनया वृतः ॥ ४६ ॥
कुन्तिभोजश्च चैद्यश्च चक्षुर्भ्यां तौ जनेश्वरौ ।
दाशार्णकाः प्रभद्राश्च दाशेरकगणैः सह ॥ ४७ ॥
अनूपकाः किराताश्च ग्रीवायां भरतर्षभ ।
पटच्चरैश्च पौण्ड्रैश्च राजन्पौरवकैस्तथा ॥ ४८ ॥
निषादैः सहितश्चाऽपि पृष्ठमासीद्युधिष्ठिरः ।
पक्षौ तु भीमसेनश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ ४९ ॥
द्रौपदेयाभिमन्युश्च सात्यकिश्च महारथः ।
पिशाचा दारदाश्चैव पुण्ड्राः कुण्डीविषैः सह ॥ ५० ॥
मारुता धेनुकाश्चैव तङ्गणाः परतङ्गणाः ।
वाल्हिकास्तित्तिराश्चैव चोलाः पाण्ड्याश्च भारत ॥ ५१ ॥
एते जनपदा राजन्दक्षिणं पक्षमाश्रिताः ।
अग्निवेशास्तुहुण्डाश्च मालवा दानभारयः ॥ ५२ ॥
शवरा उद्भसाश्चैव वत्साश्च सह नाकुलैः ।
नकुलः सहदेवश्च वामं पक्षं समाश्रिताः ॥ ५३ ॥
रथानामयुतं पक्षौ शिरस्तु नियुतं तथा ।
पृष्ठमर्बुदमेवाऽऽसीत्सहस्राणि च विंशतिः ॥ ५४ ॥
ग्रीवायां नियुतं चाऽपि सहस्राणि च सप्ततिः ।
पक्षकोटिप्रपक्षेषु पक्षान्तेषु च वारणाः ॥ ५५ ॥

स्थित होकर ब्रह्मा जैसे शोभित होते हैं, वैसे ही उस प्रकाशमान ध्वजा के समीप अर्जुन की शोभा हुई ॥४२।४५॥ बहुत सी सेना साथ लिये हुए राजा द्रुपद उस व्यूह के मस्तक में स्थित हुए। कुन्तिभोज और चेदिपति दोनों राजा नेत्र के स्थान में स्थित हुए। दशार्णदेशीय, प्रभद्रगण, दाशेरक, अनूपक और किरातगण उसकी गर्दन के स्थान में स्थित हुए। धर्मराज युधिष्ठिर पटच्चर, पौण्ड्र, पौरवक और निषादगण के साथ उसके पृष्ठभाग में स्थित हुए॥४६।४७॥ भीमसेन, धृष्टद्युम्न, महारथी सात्यकि, द्रौपदी के पाँचों पुत्र, अभिमन्यु पिशाचगण, पुण्ड्रगण, दरद, कुण्डीविष, मारुत, धेनुक, तङ्गण, परतङ्गण, वाह्लीक, तित्तिर, पाण्ड्य, चोल आदि देशों के वीर दक्षिणपक्ष में, और अग्निवेश, हुण्ड, मालव, दानभारि, शबर, उद्भस, वत्स और नाकुल आदि वीरों की सेना के साथ नकुल और सहदेव वामपक्ष में स्थित हुए ॥४९।५३॥ इस व्यूह के दोनों पक्षों में दस हजार (अयुत), मस्तक में दस लाख (नियुत) पृष्ठभाग में दस करोड़ (एक

जग्मुः परिवृता राजंश्चलन्त इव पर्वताः ।
जघनं पालयामास विराटः सह केकयैः ॥ ५६ ॥
काशिराजश्च शैब्यश्च रथानामयुतैस्त्रिभिः ।
एवमेनं महाव्यूहं व्यूह्य भारत पाण्डवाः ॥ ५७ ॥
सूर्योदयं त इच्छन्तः स्थिता युद्धाय दंशिताः ।
तेषामादित्यवर्णानि विमलानि महान्ति च ।
श्वेतच्छत्राण्यशोभन्त वारणेषु रथेषु च ॥ ५८ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि क्रौंचव्यूहनिर्माणे पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

अर्बुद) बीस हजार और गर्दन में एक नियुत सत्तर हजार रथ रक्खे गये। उसके चारों ओर, पक्षों और उनके किनारों में—प्रकाशमान पर्वतों के समान—सुवर्ण-भूषित हाथियों के झुण्ड चले। केकेय देश के राजाओं सहित राजा विराट उस व्यूह के जङ्घा भाग की रक्षा कर रहे थे। काशिराज और शैब्य तीस हज़ार रथों सहित उस व्यूह के दूसरे जङ्घा भाग की रक्षा कर रहे थे। हे राजन्! इस प्रकार सूर्योदय की प्रतीक्षा करते हुए सब वीरों सहित राजा युधिष्ठिर आदि पाण्डव व्यूह की रचना करके, कवच आदि पहनकर, युद्धभूमि में स्थित हुए। उनके हाथियों और रथों के ऊपर सूर्य के समान चमकीले अत्यन्त निर्मल श्वेत छत्र तने हुए थे ॥५४।५८॥

— — —

भीष्मपर्व का पचासवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५० ॥

अथ एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

सञ्जय उवाच—क्रौञ्चं दृष्ट्वा ततो व्यूहमभेद्यं तनयस्तव ।
रक्ष्यमाणं महाघोरं पार्थेनाऽमिततेजसा ॥ १ ॥
आचार्यमुपसङ्गम्य कृपं शल्यं च पार्थिव ।
सौमदत्तिं विकर्णं च सोऽश्वत्थामानमेव च ॥ २ ॥
दुःशासनादीन्भ्रातॄंश्च सर्वानेव च भारत ।
अन्यांश्च सुबहूञ्शूरान्युद्धाय समुपागतान् ॥ ३ ॥
प्राहेदं वचनं काले हर्षयंस्तनयस्तव ।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ४ ॥

एकावनवाँ अध्याय ॥ ५१ ॥

सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज! महातेजस्वी पाण्डवों के रचे हुए उस दुर्भेद्य महाव्यूह को देखकर आपके पुत्र दुर्योधन ने द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, शल्य, सोमदत्त-तनय, विकर्ण, अश्वत्थामा, दुःशासन आदि भाइयों और युद्ध के लिए आये हुए अपने पक्ष के अन्य शूरवीरों को सम्बोधन करके उत्साहित और प्रसन्न

एकैकशः समर्था हि यूयं सर्वे महारथाः ।
पाण्डुपुत्रान्रणे हन्तुं ससैन्यान्किमु संहताः ॥ ५ ॥
अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ।
पर्याप्तमिदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥ ६ ॥
संस्थानाः शूरसेनाश्च वेत्रिकाः कुकुरास्तथा ।
आरोचकास्त्रिगर्ताश्च मद्रका यवनास्तथा ॥ ७ ॥
शत्रुञ्जयेन सहितास्तथा दुःशासनेन च ।
विकर्णेन च वीरेण तथा नन्दोपनन्दकैः ॥ ८ ॥
चित्रसेनेन सहिताः सहिताः पारिभद्रकैः ।
भीष्ममेवाऽभिरक्षन्तु सहसैन्यपुरस्कृताः ॥ ९ ॥
ततो भीष्मश्च द्रोणश्च तव पुत्राश्च मारिष ।
अव्यूहन्त महाव्यूहं पाण्डूनां प्रतिबाधकम् ॥ १० ॥
भीष्मः सैन्येन महता समन्तात्परिवारितः ।
ययौ प्रकर्षन्महतीं वाहिनीं सुरराडिव ॥ ११ ॥
तमन्वयान्महेष्वासो भारद्वाजः प्रतापवान् ।
कुन्तलैश्च दशार्णैश्च मागधैश्च विशाम्पते ॥ १२ ॥
विदर्भैर्मेकलैश्चैव कर्णप्रावरणैरपि ।
सहिताः सर्वसैन्येन भीष्ममाहवशोभिनम् ॥ १३ ॥
गान्धाराः सिन्धुसौवीराः शिबयोऽथ वसातयः ।
शकुनिश्च स्वसैन्येन भारद्वाजमपालयत् ॥ १४ ॥

करते हुए कहा—॥१।४॥ हे वीरो! तुम सब अनेक शस्त्र और शास्त्र जाननेवाले हो। तुममें से हर एक वीर पाण्डवों को और उनकी सेना को नष्ट कर सकता है। फिर जब सभी मिलकर यह यत्न कर रहे हो तब इसमें क्या सन्देह किया जा सकता है! हमारी सेना अपार है और उसके रक्षक महापराक्रमी भीष्म हैं। पाण्डवों की सेना परिमित है और उसके रक्षक भीमसेन हैं॥४।६॥ इस समय मेरा यही कहना है कि संस्थान, शूरसेन, वेत्रिक, कुकुर, आरोचक, त्रिगर्त, मद्रक, यवन आदि देशों के राजा लोग और शत्रुञ्जय, दुःशासन, विकर्ण, सुधीर, चित्रसेन, नन्दक, उपनन्दक, पारिभद्रक आदि सब वीर अपनी-अपनी सेना साथ लेकर भीष्म पितामह की रक्षा करें॥७।९॥ इस तरह दुर्योधन के कहने पर महातेजस्वी भीष्म, द्रोण और आपके सब पुत्र पाण्डवों के आक्रमण को रोकनेवाले महाव्यूह की रचना करने लगे। महावीर भीष्म बहुत सी सेना साथ लेकर इन्द्र की तरह आगे चले। गान्धार, सिन्धु-सौवीर, शिवि,

ततो दुर्योधनो राजा सहितः सर्वसोदरैः ।
अश्वातकैर्विकर्णैश्च तथा चाऽम्बष्ठकोसलैः ॥ १५ ॥
दरदैश्च शकैश्चैव तथा क्षुद्रकमालवैः ।
अभ्यरक्षत संहृष्टः सौवलेयस्य वाहिनीम् ॥ १६ ॥
भूरिश्रवाः शलः शल्यो भगदत्तश्च मारिष ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ वामं पार्श्वमपालयन् ॥ १७ ॥
सौमदत्तिः सुशर्मा च काम्बोजश्च सुदक्षिणः ।
श्रुतायुश्चाऽच्युतायुश्च दक्षिणं पक्षमास्थिताः ॥ १८ ॥
अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः ।
महत्या सेनया सार्धं सेनापृष्ठे व्यवस्थिताः ॥ १९ ॥
पृष्ठगोपास्तु तस्याऽऽसन्नानादेश्या जनेश्वराः ।
केतुमान्वसुदानश्च पुत्रः काश्यस्य चाऽभिभूः ॥ २० ॥
ततस्ते तावकाः सर्वे हृष्टा युद्धाय भारत ।
दध्मुः शङ्खान्मुदा युक्ताः सिंहनादांस्तथोन्नदन् ॥ २१ ॥
तेषां श्रुत्वा तु हृष्टानां वृद्धः कुरुपितामहः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शङ्खं दध्मौ प्रतापवान् ॥ २२ ॥
ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च पेश्यश्च विविधाः परे ।
आनकाश्चाऽभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥ २३ ॥

वसाति, कुन्तल, दशार्ण, मगध, विदर्भ, मेकल, वर्णप्रावरण आदि देशों की वीर सेना को साथ लिये हुए महाप्रतापी द्रोणाचार्य उनके पीछे चले ॥१०।१४॥ अपनी बहुत सी सेना के साथ वीर शकुनि द्रोणाचार्य के पीछे चले । उनके पीछे राजा दुर्योधन अपने सब भाइयों को साथ लेकर चले । दुर्योधन के साथ अश्वातक, विकर्ण, वामन, कोशल, अम्बष्ठ, दरद, शक, क्षुद्रकमालव आदि देशों के प्रसन्नचित्त वीर पुरुषों की सेना थी । भूरिश्रवा, शल, शल्य, भगदत्त, विन्द और अनुविन्द उस सेना के वाम भाग की रक्षा कर रहे थे । सोमदत्त-तनय, सुशर्मा, काम्बोजपति सुदक्षिण, श्रुतायु और अच्युतायु सेना के दक्षिण भाग की रक्षा कर रहे थे ॥१५।१८॥ अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कृतवर्मा, केतुमान्, वसुदान, काशिराज पुत्र आदि अनेक देशों के राजा अपनी-अपनी सेना को साथ लेकर उस व्यूह के पृष्ठभाग की रक्षा कर रहे थे । इस प्रकार व्यूह बन जाने के पश्चात् आपकी सेना के सब सैनिक, प्रसन्नतापूर्वक युद्ध के लिए उत्साहित होकर, शङ्ख बजाने और सिंहनाद करने लगे ॥१९।२१॥ कुरुवृद्ध पितामह भीष्म भी उस शब्द को सुनकर शङ्ख बजाने और सिंहनाद करने लगे । उधर पाण्डवों की सेना में भी शङ्ख, नगाडे, डङ्के आदि अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे । वह गम्भीर शब्द चारों ओर गूँज उठा । महा

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ ।
प्रदध्मतुः शङ्खवरौ हेमरत्नपरिष्कृतौ ॥ २४ ॥
पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः ।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्खं भीमकर्मा वृकोदरः ॥ २५ ॥
अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥ २६ ॥
काशिराजश्च शैब्यश्च शिखण्डी च महारथः ।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्च महारथः ॥ २७ ॥
पाञ्चाल्यश्च महेष्वासो द्रौपद्याः पञ्च चाऽऽत्मजाः ।
सर्वे दध्मुर्महाशङ्खान्सिंहनादांश्च नेदिरे ॥ २८ ॥
स घोषः सुमहांस्तत्र वीरैस्तैः समुदीरितः ।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयत् ॥ २९ ॥
एवमेते महाराज प्रहृष्टाः कुरुपाण्डवाः ।
पुनर्युद्धाय सञ्जग्मुस्तापयानाः परस्परम् ॥ ३० ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि क्रौञ्चव्यूहरचनायां एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

प्रभावशाली नारायण और अर्जुन रथ पर सवार हुए। उस रथ में श्वेत रङ्ग के घोड़े जुते हुए थे ॥२२।२४॥ केशव ने पाञ्चजन्य, अर्जुन ने देवदत्त, भीमकर्मा भीमसेन ने पौण्ड्र, कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ने अनन्तविजय, नकुल ने सुघोष और सहदेव ने मणिपुष्पक नाम का दिव्य शङ्ख बजाया। काशिराज, शैब्य, महारथी शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, विराट, महावीर सात्यकि, महाधनुर्द्धर द्रुपद, द्रौपदी के पाँचों पुत्र और अभिमन्यु आदि भी सिंह की तरह गरजकर शङ्ख बजाने लगे ॥२५।२८॥ इन सब वीरों का सिंहनाद और शङ्खनाद पृथ्वी तथा आकाशमण्डल में प्रतिध्वनित हो उठा। हे राजेन्द्र! कौरव और पाण्डव लोग प्रसन्नतापूर्वक फिर एक दूसरे को सन्तापित करते हुए युद्ध के लिए उद्यत हुए ॥२९।३०॥

भीष्मपर्व का इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५१ ॥

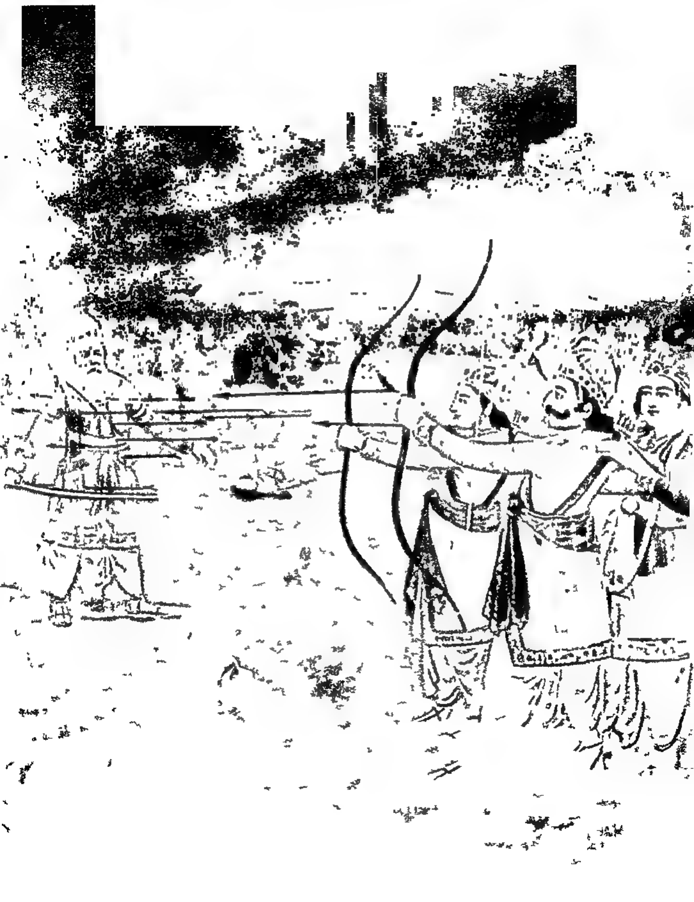
अथ द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—एवं व्यूढेष्वनीकेषु मामकेष्वितरेषु च ।
कथं प्रहरतां श्रेष्ठाः सम्प्रहारं प्रचक्रिरे ॥ १ ॥
सञ्जय उवाच—समं व्यूढेष्वनीकेषु सन्नद्धरुचिरध्वजम् ।
अपारमिव सन्दृश्य सागरप्रतिमं बलम् ॥ २ ॥

तेषां मध्ये स्थितो राजन्पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
अब्रवीत्तावकान्सर्वान्युद्ध्यध्वमिति दंशिताः ॥ ३ ॥
ते मनः क्रूरमाधाय समभित्यक्तजीविताः ।
पाण्डवानभ्यवर्तन्त सर्व एवोच्छ्रितध्वजाः ॥ ४ ॥
ततो युद्धं समभवत्तुमुलं लोमहर्षणम् ।
तावकानां परेषां च व्यतिषक्तरथद्विपम् ॥ ५ ॥
मुक्तास्तु रथिभिर्बाणा रुक्मपुङ्खाः सुतेजसः ।
सन्निपेतुरकुण्ठाग्रा नागेषु च हयेषु च ॥ ६ ॥
तथा प्रवृत्ते संग्रामे धनुरुद्यम्य दंशितः ।
अभिपत्य महाबाहुर्भीष्मो भीमपराक्रमः ॥ ७ ॥
सौभद्रे भीमसेने च सात्यकौ च महारथे ।
कैकेये च विराटे च धृष्टद्युम्ने च पार्षते ॥ ८ ॥
एतेषु नरवीरेषु चेदिमत्स्येषु चाऽभिभूः ।
ववर्ष शरवर्षाणि वृद्धः कुरुपितामहः ॥ ९ ॥
अभिद्यत ततो व्यूहस्तस्मिन्वीरसमागमे ।
सर्वेषामेव सैन्यानामासीद्व्यतिकरो महान् ॥ १० ॥
सादिनो ध्वजिनश्चैव हतप्रवरवाजिनः ।
विप्रद्रुतरथानीकाः समपद्यन्त पाण्डवाः ॥ ११ ॥

बावनवाँ अध्याय ॥ ५२ ॥

धृतराष्ट्र ने पूछा— हे सञ्जय ! कौरवों और पाण्डवों की सेना में इस प्रकार व्यूह-रचना हो चुकने पर वे रण-निपुण योद्धा किस प्रकार युद्ध करने लगे ? ॥१॥ सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र ! सेनाओं में व्यूह-रचना हो चुकी, चारों ओर ऊँची ध्वजाएँ फहराने लगीं। वह अपार सेना समुद्र सी प्रतीत होने लगी। आपके पुत्र राजा दुर्योधन ने उस अपार सैन्य-सागर के मध्य में खड़े होकर अपने योद्धाओं को युद्ध आरम्भ करने की अनुमति दी। ॥२।३॥ फहराती हुई ऊँची ध्वजाओं से शोभित रथों पर विराजमान वीरगण, जीवन का मोह छोड़कर, क्रोधपूर्वक पाण्डवों की सेना पर आक्रमण करने लगे। दोनों ओर की सेना घोर युद्ध करने लगी। हाथी से हाथी और रथ से रथ भिड गये। रथों पर से युद्ध करने वाले वीर हाथियों और घोड़ों पर सुवर्णपुङ्खयुक्त तीक्ष्ण अकुण्ठित बाण मारने लगे ॥४।६॥ हे राजन् ! इस प्रकार भयानक समर छिड़ने पर महाबली भीष्म कवच पहनकर, धनुष उठाकर, शत्रुपक्ष के अभिमन्यु, महावीर भीमसेन, महारथी अर्जुन, केकय, विराट, धृष्टद्युम्न, चेदि और मत्स्यदेश आदि के वीर योद्धाओं पर निरन्तर बाणों की वर्षा करने लगे। महावीर भीष्म के आने पर उस व्यूह की शृङ्खला नष्ट हो गई, सब योद्धा क्षोभ से विह्वल हो गये। सैनिकों ने अपने को विपत्ति में पड़ा हुआ समझा ॥७।१०॥ पाण्डवों के बहुत से पैदल, घुड़-



अर्जुनस्तु नरव्याघ्रो दृष्ट्वा भीष्मं महारथम् ।
वार्ष्णेयमब्रवीत्क्रुद्धो याहि यत्र पितामहः ॥ १२ ॥
एष भीष्मः सुसंक्रुद्धो वार्ष्णेय मम वाहिनीम् ।
नाशयिष्यति सुव्यक्तं दुर्योधनहिते रतः ॥ १३ ॥
एष द्रोणः कृपः शल्यो विकर्णश्च जनार्दन ।
धार्तराष्ट्राश्च सहिता दुर्योधनपुरोगमाः ॥ १४ ॥
पञ्चालान्निहनिष्यन्ति रक्षिता दृढधन्वना ।
सोऽहं भीष्मं वधिष्यामि सैन्यहेतोर्जनार्दन ॥ १५ ॥
तमब्रवीद्वासुदेवो यत्तो भव धनंजय ।
एष त्वां प्रापयिष्यामि पितामहरथं प्रति ॥ १६ ॥
एवमुक्त्वा ततः शौरी रथं तं लोकविश्रुतम् ।
प्रापयामास भीष्मस्य रथं प्रति जनेश्वर ॥ १७ ॥
चलद्बहुपताकेन बलाकावर्णवाजिना ।
समुच्छ्रितमहाभीमनदद्वानरकेतुना ॥ १८ ॥
महता मेघनादेन रथेनाऽमिततेजसा ।
विनिघ्नन्कौरवानीकं शूरसेनांश्च पाण्डवः ॥ १९ ॥
प्रायाच्छरणदः शीघ्रं सुहृदां हर्षवर्धनः ।
तमापतन्तं वेगेन प्रभिन्नमिव वारणम् ॥ २० ॥
त्रासयन्तं रणे शूरान्मर्दयन्तं च सायकैः ।
सैन्याग्रसमवस्थितः प्राच्यसौवीरकेकयैः ॥ २१ ॥

सहसा प्रत्युदीयाय भीष्मःशान्तनवोऽर्जुनम् ।
को हि गाण्डीवधन्वानमन्यः कुरुपितामहात् ॥ २२ ॥
द्रोणवैकर्तनाभ्यां वा रथी संयातुमर्हति ।
ततो भीष्मो महाराज सर्वलोकमहारथः ॥ २३ ॥
अर्जुनं सप्तसप्तत्या नाराचानां समाचिनोत् ।
द्रोणश्च पञ्चविंशत्या कृपः पञ्चाशता शरैः ॥ २४ ॥
दुर्योधनश्चतुःषष्ट्या शल्यश्च नवभिः शरैः ।
सैन्धवो नवभिश्चैव शकुनिश्चाऽपि पञ्चभिः ॥ २५ ॥
विकर्णो दशभिर्भल्लै राजन्विव्याध पाण्डवम् ।
स तैर्विद्धो महेष्वासः समन्तान्निशितैः शरैः ॥ २६ ॥
न विव्यथे महाबाहुर्भिद्यमान इवाऽचलः ।
स भीष्मं पञ्चविंशत्या कृपं च नवभिः शरैः ॥ २७ ॥
द्रोणं षष्ट्या नरव्याघ्रो विकर्णं च त्रिभिः शरैः ।
शल्यं चैव त्रिभिर्बाणै राजानं चैव पञ्चभिः ॥ २८ ॥
प्रत्यविध्यदमेयात्मा किरीटी भरतर्षभ ।
तं सात्यकिर्विराटश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ २९ ॥
द्रौपदेयाभिमन्युश्च परिवव्रुर्धनञ्जयम् ।
ततो द्रोणं महेष्वासं गाङ्गेयस्य प्रिये रतम् ॥ ३० ॥

महापराक्रमी अर्जुन वीरों को डराते और तीक्ष्ण बाणों से मारते युद्ध के लिए आ रहे हैं, यह देखकर प्राच्य, सौवीर, कैकेय और सैन्धव आदि महावीरों से सुरक्षित पितामह भीष्म शीघ्र ही उनकी ओर आगे बढे। कुरु पितामह भीष्म, गुरु द्रोणाचार्य और अतुल बलशाली कर्ण के विना और कौन व्यक्ति युद्धभूमि में गाण्डीवधन्वा महारथी अर्जुन के सामने जा सकता? ॥२१।२३॥ महावीर भीष्म ने अर्जुन के पास पहुँचकर उनको सतहत्तर नाराच बाण मारे। साथ ही द्रोणाचार्य ने पच्चीस, कृपाचार्य ने पचास, दुर्योधन ने चौंसठ, शल्य ने नव, अश्वत्थामा ने साठ, जयद्रथ ने नव, शकुनि ने पाँच बाण और विकर्ण ने दस भल्ल बाण मारकर चारों ओर से अर्जुन को घायल कर दिया। उन वीरों ने चारों ओर से बाण मारकर शरीर को क्षत विक्षत तो कर दिया, किन्तु महाधनुर्द्धर महाबाहु अर्जुन पर्वत की तरह अचल खडे रहे ॥२४।२७॥ इसके पश्चात् अर्जुन ने भी भीष्म को पच्चीस, कृपाचार्य को नव, द्रोणाचार्य को साठ, विकर्ण को तीन, शल्य को तीन और दुर्योधन को पाँच बाण मारकर सबको घायल कर दिया। उसी समय सात्यकि, विराट, धृष्टद्युम्न, अभिमन्यु और द्रौपदी के पाँचों पुत्र अर्जुन की सहायता और रक्षा के लिए उनके पास आ गये। भीष्म का प्रिय और सहायता करनेवाले द्रोणाचार्य से युद्ध करने के लिए

अभ्यवर्तत पाञ्चाल्यः संयुक्तः सह सोमकैः ।
भीष्मस्तु रथिनां श्रेष्ठो राजन्विव्याध पाण्डवम् ॥ ३१ ॥
अशीत्या निशितैर्बाणैस्ततोऽक्रोशन्त तावकाः ।
तेशां तु निनदं श्रुत्वा सहितानां प्रहृष्टवत् ॥ ३२ ॥
प्रविवेश ततो मध्यं नरसिंहः प्रतापवान् ।
तेषां महारथानां स मध्यं प्राप्य धनञ्जयः ॥ ३३ ॥
चिक्रीड धनुषा राजँल्लक्षं कृत्वा महारथान् ।
ततो दुर्योधनो राजा भीष्ममाह जनेश्वरः ॥ ३४ ॥
पीड्यमानं स्वकं सैन्यं दृष्ट्वा पार्थेन संयुगे ।
एष पाण्डुसुतस्तात कृष्णेन सहितो बली ॥ ३५ ॥
यततां सर्वसैन्यानां मूलं नः परिकृन्तति ।
त्वयि जीवति गाङ्गेय द्रोणे च रथिनां वरे ॥ ३६ ॥
त्वत्कृते चैव कर्णोऽपि न्यस्तशस्त्रो विशाम्पते ।
न युध्यति रणे पार्थ हितकामः सदा मम ॥ ३७ ॥
स तथा कुरु गाङ्गेय यथा हन्येत फाल्गुनः ।
एवमुक्तस्ततो राजन्पिता देवव्रतस्तव ॥ ३८ ॥
धिक्क्षात्रं धर्ममित्युक्त्वा प्रायात्पार्थरथं प्रति ।
उभौ श्वेतहयौ राजन्संसक्तौ प्रेक्ष्य पार्थिवाः ॥ ३९ ॥
सिंहनादान्भृशं चक्रुः शङ्खान्दध्मुश्च मारिष ।
द्रौणिर्दुर्योधनश्चैव विकर्णश्च तवाऽऽत्मजः ॥ ४० ॥

उनके सामने सोमकों सहित धृष्टद्युम्न आये। इधर श्रेष्ठ रथी भीष्म ने फिर अर्जुन को अस्सी बाण मारे। यह देखकर कौरवपक्षीय लोग प्रसन्न होकर कोलाहल करने लगे। उनका वह शब्द सुनकर अर्जुन बहुत ही क्रुद्ध हुए और उन महारथियों के मध्य में प्रवेश करके, वीरों को लक्ष्य-लक्ष्य करके बाण मारने लगे। यह देखकर दुर्योधन ने अब भीष्म से कहा—हे पितामह! आप और गुरु द्रोणाचार्य के जीवित रहते हीं ये बली अर्जुन, कृष्ण के साथ आकर, हमारी सेना का नाश कर रहे हैं। ये हमारी जड़ काटने को प्रस्तुत हैं। देखिए, कर्ण हमारे हितैषी हैं, वे अस्त्र-शस्त्र त्याग किये बैठे हैं और पाण्डवों से युद्ध नहीं करते। ऐसा उपाय कीजिए जिससे अर्जुन मारे जायँ ॥२७।३८॥ दुर्योधन के ये वचन सुनकर और "हा, क्षात्र-धर्म को धिक्कार है!" कहकर भीष्म अर्जुन के रथ के सामने आये। दोनों के रथों में श्वेत रङ्ग के घोड़े जुते हुए थे। उनको युद्ध में निरत देखकर राजा लोग वारम्वार सिंहनाद करने और शङ्ख बजाने लगे। महावीर अश्वत्थामा, राजा दुर्योधन और विकर्ण भी पाण्डवों के साथ युद्ध करने की इच्छा से महावीर भीष्म के

परिवार्य रणे भीष्मं स्थिता युद्धाय मारिष ।
तथैव पाण्डवाः सर्वे परिवार्य धनञ्जयम् ॥ ४१ ॥
स्थिता युद्धाय महते ततो युद्धमवर्तत ।
गाङ्गेयस्तु रणे पार्थमानर्च्छन्नवभिः शरैः ॥ ४२ ॥
तमर्जुनः प्रत्यविध्यद्दशभिर्मर्मभेदिभिः ।
ततः शरसहस्रेण सुप्रयुक्तेन पाण्डवः ॥ ४३ ॥
अर्जुनः समरश्लाघी भीष्मस्याऽवारयद्दिशः ।
शरजालं ततस्तत्तु शरजालेन मारिष ॥ ४४ ॥
वारयामास पार्थस्य भीष्मः शान्तनवस्तदा ।
उभौ परमसंहृष्टावुभौ युद्धाभिनन्दिनौ ॥ ४५ ॥
निर्विशेषमयुध्येतां कृतप्रतिकृतैषिणौ ।
भीष्मचापविमुक्तानि शरजालानि सङ्घशः ॥ ४६ ॥
शीर्यमाणान्यदृश्यन्त भिन्नान्यर्जुनसायकैः ।
तथैवाऽर्जुनमुक्तानि शरजालानि सर्वशः ॥ ४७ ॥
गाङ्गेयशरनुन्नानि प्रापतन्त महीतले ।
अर्जुनः पञ्चविंशत्या भीष्ममार्च्छच्छितैः शरैः ॥ ४८ ॥
भीष्मोऽपि समरे पार्थं विव्याध निशितैः शरैः ।
अन्योन्यस्य हयान्विध्वा ध्वजौ च सुमहाबलौ ॥ ४९ ॥
रथेषां रथचक्रे च विक्रीडतुररिन्दमौ ।
ततः क्रुद्धो महाराज भीष्मः प्रहरतां वरः ॥ ५० ॥

पास आ गये। इसी तरह पाण्डवगण भी कौरवों से महायुद्ध करने के लिए अर्जुन को घेरकर युद्धभूमि में स्थित हो गये ॥३८।४१॥ इसके अनन्तर महा-भयानक संग्राम होने लगा। महापराक्रमी पितामह ने अर्जुन के ऊपर नव बाण छोड़े। महारथी अर्जुन ने भी मर्मभेदी दस बाण भीष्म को मारे। इसके पश्चात् उन्होंने हज़ारों बाण बरसाकर भीष्म को चारों ओर से आच्छादित कर दिया। पितामह भीष्म ने भी असंख्य बाण चलाकर अर्जुन के चलाये बाणों को व्यर्थ कर दिया ॥४१।४५॥ इस प्रकार वे दोनों वीर प्रसन्नतापूर्वक एक दूसरे के प्रहार को व्यर्थ करते हुए तुल्यरूप से युद्ध करने लगे। जितने बाण भीष्म के धनुष से निकलते थे, उन्हें अर्जुन व्यर्थ कर देते थे; और जितने बाण अर्जुन के गाण्डीव धनुष से निकलते थे, वे भीष्म के बाणों से कट-कटकर पृथ्वी पर गिर पड़ते थे ॥४५।४८॥ महावीर अर्जुन ने भीष्म को पचीस बाण मारे, और भीष्म ने भी अर्जुन को नव बाण मारे। हे राजेन्द्र! शत्रुओं का मान-मर्दन

वासुदेवं त्रिभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ।
भीष्मचापच्युतैस्तैस्तु निर्विद्धो मधुसूदनः ॥ ५१ ॥
विरराज रणे राजन्सपुष्प इव किंशुकः ।
ततोऽर्जुनो भृशं क्रुद्धो निर्विद्धं प्रेक्ष्य माधवम् ॥ ५२ ॥
सारथिं कुरुवृद्धस्य निर्विभेद शितैः शरैः ।
यतमानौ तु तौ वीरावन्योन्यस्य वधं प्रति ॥ ५३ ॥
न शक्नुतां तदाऽन्योन्यमभिसन्धातुमाहवे ।
तौ मण्डलानि चित्राणि गतप्रत्यागतानि च ॥ ५४ ॥
अदर्शयेतां बहुधा सूतसामर्थ्यलाघवात् ।
अन्तरं च प्रहारेषु तर्कयन्तौ परस्परम् ॥ ५५ ॥
राजन्नन्तरमार्गस्थौ स्थितावास्तां मुहुर्मुहुः ।
उभौ सिंहरवोन्मिश्रं शङ्खशब्दं च चक्रतुः ॥ ५६ ॥
तथैव चापनिर्घोषं चक्रतुस्तौ महारथौ ।
तयोः शङ्खनिनादेन रथनेमिस्वनेन च ॥ ५७ ॥
दारिता सहसा भूमिश्चकम्पे च ननाद च ।
नोभयोरन्तरं कश्चिद्ददृशे भरतर्षभ ॥ ५८ ॥
बलिनौ युद्धदुर्धर्षावन्योन्यसदृशावुभौ ।
चिन्हमात्रेण भीष्मं तु प्रजज्ञुस्तत्र कौरवाः ॥ ५९ ॥

करनेवाले वे दोनों महावीर एक दूसरे के घोडे, ध्वजा, रथचक्र, रथदण्ड आदि को बाणों से बेधते हुए युद्ध-क्रीडा करने लगे। इसके पश्चात् महापराक्रमी भीष्म ने क्रुद्ध होकर तरकस से तीन बाण निकालकर धनुष पर चढाकर श्रीकृष्ण की छाती में मारे। भीष्म के धनुष से छूटे हुए बाणों से घायल होकर श्रीकृष्णचन्द्र फूले हुए पलाश के वृक्ष के समान शोभा को प्राप्त हुए ॥४८।५२॥ श्रीकृष्ण को घायल देखकर महावीर अर्जुन क्रोध से अधीर हो उठे। उन्होंने भी तीन बाण मारकर भीष्म के सारथी को घायल कर दिया। वे दोनों वीर एक दूसरे के वध के लिए चेष्टा करके भी उसमें कृतकार्य नहीं हो सकते थे। दोनों वीर अपने-अपने सारथी की सामर्थ्य और स्फूर्ति के प्रभाव मे तरह-तरह के मण्डल और गत-प्रत्यागत आदि कौशल दिखाने लगे। एक दूसरे के ऊपर प्रहार करने का अवसर खोजता था। दोनों वीर सिंहनाद, शङ्ख-नाद और धनुष का शब्द कर रहे थे ॥५२।५७॥ उन महारथियों के शङ्खनाद और रथचक्र फिरने के घोर शब्द से पृथ्वी हिलती थी, फटी जाती थी, और आर्तनाद कर रही थी। उस समय कोई भी यह निश्चय नहीं कर सकता था कि भीष्म और अर्जुन में कौन निर्बल है और कौन बलवान् है। क्योंकि दोनों ही बली, युद्धदुर्द्धर्ष और समान पराक्रम दिखा रहे थे। कौरव लोग भीष्म को और पाण्डव लोग

तथा पाण्डुसुताः पार्थं चिह्नमात्रेण जज्ञिरे ।
तयोर्नृवरयोर्दृष्ट्वा तादृशं तं पराक्रमम् ॥ ६० ॥
विस्मयं सर्वभूतानि जग्मुर्भारत संयुगे ।
न तयोर्विवरं कश्चिद्रणे पश्यति भारत ॥ ६१ ॥
धर्मे स्थितस्य हि यथा न कश्चिद्वृजिनं क्वचित् ।
उभौ च शरजालेन तावदृश्यौ बभूवतुः ॥ ६२ ॥
प्रकाशौ च पुनस्तूर्णं बभूवतुरुभौ रणे ।
तत्र देवाः सगन्धर्वाश्चारणाश्चर्षिभिः सह ॥ ६३ ॥
अन्योन्यं प्रत्यभाषन्त तयोर्दृष्ट्वा पराक्रमम् ।
न शक्यौ युधि संरब्धौ जेतुमेतौ कथञ्चन ॥ ६४ ॥
सदेवासुरगन्धर्वैर्लोकैरपि महारथौ ।
आश्चर्यभूतं लोकेषु युद्धमेतन्महाद्भुतम् ॥ ६५ ॥
नैतादृशानि युद्धानि भविष्यन्ति कथञ्चन ।
नहि शक्यो रणे जेतुं भीष्मः पार्थेन धीमता ॥ ६६ ॥
सधनुः सरथः साश्वः प्रवपन्सायकान्रणे ।
तथैव पाण्डवं युद्धे देवैरपि दुरासदम् ॥ ६७ ॥
न विजेतुं रणे भीष्म उत्सहेत धनुर्धरम् ।
आलोकादपि युद्धं हि सममेतद्भविष्यति ॥ ६८ ॥
इति स्म वाचोऽश्रूयन्त प्रोच्चरन्त्यस्ततस्ततः ।
गाङ्गेयार्जुनयोः संख्ये स्तवयुक्ता विशाम्पते ॥ ६९ ॥

अर्जुन को ध्वजा के चिह्नमात्र से पहचान पाते थे, उनके शरीर को कोई नहीं देख पाता था। क्योंकि एक तो वे एक स्थान पर नहीं ठहरते थे, दूसरे धूल भी अधिक उड़ रही थी, तीसरे बाण-जाल उन्हें छिपा लेते थे ॥५७।६०॥ युद्धभूमि मे दोनों का ऐसा अद्भुत पराक्रम देखकर अपने और पराये सबको बड़ा आश्चर्य हो रहा था। हे भारत! जैसे धर्मात्मा पुरुष में किञ्चित् भर पाप भी नहीं देख पड़ता, वैसे ही उन दोनों के युद्धकौशल में वहीं पर कुछ भी असावधानी या दोष नहीं देख पड़ता था। वे कभी एक दूसरे को बाण वर्षा से ढक लेते थे और कभी उन बाणों के जाल कट जाने पर उनके रथ प्रकट हो जाते थे ॥६०।६३॥ हे राजेन्द्र! दोनों पुरुषसिंहों का अतुल पराक्रम देखकर देवता, गन्धर्व, चारण और महर्षिगण परस्पर कहने लगे कि मनुष्य की कौन कहे, देवता, असुर और गन्धर्वगण भी संग्राम में इन दोनों वीरों को परास्त नहीं कर सकते। यह बड़ा अद्भुत संग्राम है, ऐसा संग्राम कभी न होगा।

त्वदीयास्तु तदा योधाः पाण्डवेयाश्च भारत ।
अन्योन्यं समरे जघ्नुस्तयोस्तत्र पराक्रमे ॥ ७० ॥
शितधारैस्तथा खड्गैर्विमलैश्च परश्वधैः ।
शरैरन्यैश्च बहुभिः शस्त्रैर्नानाविधैरपि ॥ ७१ ॥
उभयोः सेनयोः शूरा न्यकृन्तन्त परस्परम् ।
वर्तमाने तथा घोरे तस्मिन्युद्धे सुदारुणे ।
द्रोणपाञ्चाल्ययो राजन्महानासीत्समागमः ॥ ७२ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मार्जुनयुद्धे द्विपञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥ ५२ ॥

धनुष हाथ में लिए और रथ पर सवार भीष्म कभी अर्जुन से हारनेवाले नहीं हैं, और देवताओं के लिए भी दुर्द्धर्ष अर्जुन का भीष्म से सग्राम में परास्त होना सम्भव नहीं। जब तक सृष्टि की स्थिति है तब तक भी चाहे यह युद्ध होता रहे, परन्तु दोनों मे से कोई हारनेवाला नहीं है ॥६३।६९॥ हे महाराज! भीष्म और अर्जुन से युद्ध होते समय इसी प्रकार के प्रशसा सूचक वाक्य चारों ओर सुनाई पड रहे थे। उधर आपके और पाण्डवो के पक्ष के योद्धा तीक्ष्ण खड्ग, परशु, बाण आदि तरह-तरह के अस्त्र-शस्त्रों से एक दूसरे के शरीरों को काट रहे थे। इधर भीष्म और अर्जुन का घोर युद्ध हो रहा था, उधर द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्न भी दारुण सग्राम कर रहे थे ॥६९।७२॥

भीष्मपर्व का बावनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५२ ॥

अथ त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥ ५३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच —कथं द्रोणो महेष्वासः पाञ्चाल्यश्चाऽपि पार्षतः ।
उभौ समीयतुर्यत्तौ तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ १ ॥
दिष्टमेव परं मन्ये पौरुषादिति मे मतिः ।
यत्र शान्तनवो भीष्मो नाऽतरद्युधि पाण्डवम् ॥ २ ॥
भीष्मो हि समरे क्रुद्धो हन्याल्लोकांश्चराचरान् ।
स कथं पाण्डवं युद्धे नाऽतरत्तस्य ओजसा ॥ ३ ॥

सञ्जय उवाच—शृणु राजन्स्थिरो भूत्वा युद्धमेतत्सुदारुणम् ।
न शक्याः पाण्डवा जेतुं देवैरपि सवासवैः ॥ ४ ॥

तिरपनवाँ अध्याय ॥ ५३ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय! महाधनुर्द्धर द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्न ने रणभूमि में प्रवेश करके किस प्रकार युद्ध किया? उसका समाचार मुझसे कहो। मैं पौरुष की अपेक्षा दैव को ही श्रेष्ठ समझता हूँ। देखो, जो भीष्म कुपित होकर युद्धभूमि में चराचर जगत् को नष्ट कर सकते हैं वही भीष्म

द्रोणस्तु निशितैर्बाणैर्धृष्टद्युम्नमविध्यत ।
सारथिं चाऽस्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ ५ ॥
तथाऽस्य चतुरो वाहांश्चतुर्भिः सायकोत्तमैः ।
पीडयामास संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नस्य मारिष ॥ ६ ॥
धृष्टद्युम्नस्ततो द्रोणं नवत्या निशितैः शरैः ।
विव्याध प्रहसन्वीरस्तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥ ७ ॥
ततः पुनरमेयात्मा भारद्वाजः प्रतापवान् ।
शरैः प्रच्छादयामास धृष्टद्युम्नममर्षणम् ॥ ८ ॥
आददे च शरं घोरं पार्षतान्तचिकीर्षया ।
शक्राशनिसमस्पर्शं कालदण्डमिवाऽपरम् ॥ ९ ॥
हाहाकारो महानासीत्सर्वसैन्येषु भारत ।
तमिषुं सन्धितं दृष्ट्वा भारद्वाजेन संयुगे ॥ १० ॥
तत्राऽद्भुतमपश्याम धृष्टद्युम्नस्य पौरुषम् ।
यदेकः समरे वीरस्तस्थौ गिरिरिवाऽचलः ॥ ११ ॥
तं च दीप्तं शरं घोरमायान्तं मृत्युमात्मनः ।
चिच्छेद शरवृष्टिं च भारद्वाजे मुमोच ह ॥ १२ ॥
तत उच्चुक्रुशुः सर्वे पञ्चालाः पाण्डवैः सह ।
धृष्टद्युम्नेन तत्कर्म कृतं दृष्ट्वा सुदुष्करम् ॥ १३ ॥

अर्जुन को नहीं मार सके; परन्तु एक तरह से उनसे हार ही गये ॥१।३॥ सञ्जय ने कहा —हे राजेन्द्र ! अब मैं द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्न के दारुण युद्ध का समाचार कहता हूँ, ध्यान देकर सुनिए । इन्द्र सहित देवता कभी युद्ध में पाण्डवों को नहीं जीत सकते । महावीर द्रोणाचार्य ने अनेक प्रकार के बाणों से क्रुद्ध धृष्टद्युम्न को घायल करके एक भल्ल बाण मारकर उनके सारथी को रथ पर से मार गिराया । इसके पश्चात् क्रुद्ध होकर उनके चारों घोड़ों को चार बाण मारे ॥४।६॥ तब धृष्टद्युम्न ने भी तीक्ष्ण धार-वाले नब्बे बाणों से द्रोणाचार्य को घायल किया और "खड़े रहो, खड़े रहो" कहकर दर्प प्रकट किया । महातेजी द्रोणाचार्य ने फिर बाण बरसाकर धृष्टद्युम्न को ढक दिया । अब धृष्टद्युम्न को मारने के लिए उन्होंने वज्ररूप, मृत्युदण्ड-तुल्य, एक अन्य बाण हाथ में लिया । द्रोणाचार्य ने वह बाण जब धनुष पर चढ़ाया तब सब सैनिक हाहाकार करके चिल्ला उठे ॥७।१०॥ हे भारत ! उस समय धृष्टद्युम्न का अद्भुत पौरुष देख पड़ा । वे तनिक भी विचलित न होकर वहीं पर पर्वत के समान अचल खड़े रहे । मूर्तिमान् मृत्यु के समान उस प्रज्वलित बाण के राह में ही, अपने बाण से, दो टुकड़े करके धृष्टद्युम्न बाण बरसाने लगे । इस प्रकार धृष्टद्युम्न के हाथों यह दुष्कर कार्य होने पर पाण्डव और पाञ्चालगण प्रसन्नतापूर्वक आनन्दध्वनि

ततः शक्तिं महावेगां स्वर्णवैदूर्यभूषिताम् ।
द्रोणस्य निधनाकांक्षी चिक्षेप स पराक्रमी ॥ १४ ॥
तामापतन्तीं सहसा शक्तिं कनकभूषिताम् ।
त्रिधा चिच्छेद समरे भारद्वाजो हसन्निव ॥ १५ ॥
शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् ।
ववर्ष शरवर्षाणि द्रोणं प्रति जनेश्वर ॥ १६ ॥
शरवर्षं ततस्तत्तु सन्निवार्य महायशाः ।
द्रोणो द्रुपदपुत्रस्य मध्ये चिच्छेद कार्मुकम् ॥ १७ ॥
स च्छिन्नधन्वा समरे गदां गुर्वीं महायशाः ।
द्रोणाय प्रेषयामास गिरिसारमयीं बली ॥ १८ ॥
सा गदा वेगवन्मुक्ता प्रायाद् द्रोणजिघांसया ।
तत्राऽद्भुतमपश्याम भारद्वाजस्य पौरुषम् ॥ १९ ॥
लाघवाद्व्यंसयामास गदां हेमविभूषिताम् ।
व्यंसयित्वा गदां तां च प्रेषयामास पार्षतम् ॥ २० ॥
भल्लान्सुनिशितान्पीतान्स्वर्णपुङ्खान्सुदारुणान् ।
ते तस्य कवचं भित्त्वा पपुः शोणितमाहवे ॥ २१ ॥
अथाऽन्यद्धनुरादाय धृष्टद्युम्नो महारथः ।
द्रोणं युधि पराक्रम्य शरैर्विव्याध पञ्चभिः ॥ २२ ॥
रुधिराक्तौ ततस्तौ तु शुशुभाते नरर्षभौ ।
वसन्तसमये राजन्पुष्पिताविव किंशुकौ *॥ २३ ॥*

करने लगे ॥११।१३॥ इसके पश्चात् प्रतापी धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य को मारने की इच्छा से स्वर्णमयी, वैदूर्यमणि से विभूषित, महावेगशालिनी एक विकराल शक्ति फेंकी महावीर द्रोण ने हँसते-हँसते मार्ग में ही उस शक्ति के तीन खण्ड कर डाले । महाबली धृष्टद्युम्न उस शक्ति को इस प्रकार व्यर्थ देखकर द्रोणाचार्य के उपर बाण बरसाने लगे ॥१३।१६॥ महायशी द्रोणाचार्य ने उस बाण-जाल को व्यर्थ करके धृष्टद्युम्न का धनुष काट डाला । धनुष कट जाने पर महायशस्वी धृष्टद्युम्न ने कुपित होकर आचार्य को मारने के लिए उनके ऊपर एक वज्र-तुल्य दृढ, पर्वत-तुल्य भारी, गदा फेंकी ॥१७।१९॥ पराक्रमी द्रोणाचार्य ने अपने पराक्रम से उसे निष्फल करके सुवर्ण-पुङ्ख युक्त अत्यन्त तीक्ष्ण भल्ल बाण धृष्टद्युम्न को मारे । वे बाण धृष्टद्युम्न का कवच तोड़कर उनके हृदय का रक्त पीने लगे । अब वीर धृष्टद्युम्न ने उसी क्षण अन्य धनुष लेकर पराक्रमपूर्वक पाँच बाण द्रोणाचार्य को मारे ॥२०।२२॥ उस समय दन

अमर्षितस्ततो राजन्पराक्रम्य चमूमुखे ।
द्रोणो द्रुपदपुत्रस्य पुनश्चिच्छेद कार्मुकम् ॥ २४ ॥
अथैनं छिन्नधन्वानं शरैः सन्नतपर्वभिः ।
अभ्यवर्षदमेयात्मा वृष्ट्या मेघ इवाऽचलम् ॥ २५ ॥
सारथिं चाऽस्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ।
अथाऽस्य चतुरो वाहांश्चतुर्भिर्निशितैः शरैः ॥ २६ ॥
पातयामास समरे सिंहनादं ननाद च ।
ततोऽपरेण भल्लेन हस्ताच्चापमथाऽच्छिनत् ॥ २७ ॥
स च्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ।
गदापाणिरवारोहत्ख्यापयन्पौरुषं महत् ॥ २८ ॥
तामस्य विशिखैस्तूर्णं पातयामास भारत ।
रथादनवरूढस्य तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ २९ ॥
ततः स विपुलं चर्म शतचन्द्रं च भानुमत् ।
खड्गं च विपुलं दिव्यं प्रगृह्य सुभुजो बली ॥ ३० ॥
अभिदुद्राव वेगेन द्रोणस्य वधकांक्षया ।
आमिषार्थी यथा सिंहो वने मत्तमिव द्विपम् ॥ ३१ ॥
तत्राऽद्भुतमपश्याम भारद्वाजस्य पौरुषम् ।
लाघवं चाऽस्त्रयोगं च बलं बाह्वोश्च भारत ॥ ३२ ॥
यदेनं शरवर्षेण वारयामास पार्षतम् ।
न शशाक ततो गन्तुं बलवानपि संयुगे ॥ ३३ ॥

दोनों वीरों के शरीर रुधिर से तर होकर वसन्त-काल में फूले हुए ढाक के पेड़ों के समान दिखाई पड़ने लगे। हे महाराज ! अमित पराक्रमी द्रोणाचार्य ने क्रुद्ध होकर फिर धृष्टद्युम्न का धनुष काट डाला। मेघ जैसे पर्वत के ऊपर जल बरसाता है, वैसे ही वे धृष्टद्युम्न के ऊपर सन्नतपर्व वाण बरसाने लगे। इसके पश्चात् आचार्य ने एक भल्ल बाण से उनके सारथी को और चार बाणों से चारों घोड़ों को मार-कर, एक बाण से धनुष काट डाला और सिंहनाद किया ॥२३।२७॥ धनुष कट जाने और सारथी सहित घोड़ों के मरने पर धृष्टद्युम्न ने हाथ में एक गदा ली। वह गदा लेकर पराक्रम प्रकट करने के लिए वे रथ से उतर रहे थे, इसी समय द्रोणाचार्य ने बाणों से वह गदा भी काट डाली। यह देख-कर सबको बड़ा ही आश्चर्य हुआ। अब बलशाली धृष्टद्युम्न शतचन्द्रयुक्त, अत्यन्त मनोहर, बड़े आकार-वाली ढाल और दिव्य खड्ग लेकर आचार्य को मारने के लिए, मस्त हाथी के सामने सिंह के समान,

निवारितस्तु द्रोणेन धृष्टद्युम्नो महारथः ।
न्यवारयच्छरौघांस्तांश्शर्मणा कृतहस्तवत् ॥ ३४ ॥
ततो भीमो महाबाहुः सहसाऽभ्यपतद्बली ।
साहाय्यकारी समरे पार्षतस्य महात्मनः ॥ ३५ ॥
स द्रोणं निशितैर्बाणै राजन्विव्याध सप्तभिः ।
पार्षतं च रथं तूर्णं स्वकमारोहयत्तदा ॥ ३६ ॥
ततो दुर्योधनो राजन्भानुमन्तमचोदयत् ।
सैन्येन महता युक्तं भारद्वाजस्य रक्षणे ॥ ३७ ॥
ततः सा महती सेना कलिङ्गानां जनेश्वर ।
भीममभ्युद्ययौ तूर्णं तव पुत्रस्य शासनात् ॥ ३८ ॥
पाञ्चाल्यमथ सन्त्यज्य द्रोणोऽपि रथिनां वरः ।
विराटद्रुपदौ वृद्धौ वारयामास संयुगे ॥ ३९ ॥
धृष्टद्युम्नोऽपि समरे धर्मराजानमभ्ययात् ।
ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ ४० ॥
कलिङ्गानां च समरे भीमस्य च महात्मनः ।
जगतः प्रक्षयकरं घोररूपं भयावहम् ॥ ४१ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि धृष्टद्युम्नद्रोणयुद्धे त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

झपटे ॥२८।३१॥ उस समय महावीर द्रोणाचार्य ने बाहुबल, अस्त्रप्रयोग, पौरुष और हाथ की स्फूर्ति दिखाई। उन्होंने अकेले ही बाणवर्षा करके धृष्टद्युम्न को रोक दिया। असाधारण बलशाली होने पर भी धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्य के पास तक नहीं जा सके। केवल हाथ की स्फूर्ति दिखाते हुए, ढाल घुमाकर, उन बाणों के आघात की रक्षा करते रहे ॥३२।३४॥ इसी समय महापराक्रमी भीमसेन वीर धृष्टद्युम्न की सहायता के लिए वहाँ आ गये। उन्होंने तीक्ष्ण धारवाले सात बाण द्रोणाचार्य को मारे। भीमसेन की सहायता पाकर धृष्टद्युम्न स्फूर्ति के साथ उनके रथ पर सवार हो गये। राजा दुर्योधन ने भी आचार्य की रक्षा करने के लिए बहुत सी सेना के साथ कलिङ्ग-नरेश को भेजा ॥३५।३७॥ आपके पुत्र की आज्ञा पाकर कलिङ्ग देश की सेना भीमसेन के ऊपर आक्रमण करने के लिए दौड़ पड़ी। श्रेष्ठ रथी द्रोणाचार्य तब धृष्टद्युम्न को छोड़कर वृद्ध राजा विराट और द्रुपद के सामने आ गये और एक साथ दोनों से युद्ध करने लगे। हे महाराज! इधर धृष्टद्युम्न युद्धभूमि में राजा युधिष्ठिर के पास गये उधर पराक्रमी भीमसेन के साथ कलिङ्ग देश की सेना का बड़ा भयानक, जगत् का नाश करनेवाला, संग्राम होने लगा ॥३८।४१॥

भीष्मपर्व का तिरपनवाँ अध्याय समाप्त हुआ। ॥ ५३ ॥

अथ चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—तथा प्रतिसमादिष्टः कालिङ्गो वाहिनीपतिः ।
कथमद्भुतकर्माणं भीमसेनं महाबलम् ॥ १ ॥
चरन्तं गदया वीरं दण्डहस्तमिवाऽन्तकम् ।
योधयामास समरे कालिंगः सह सेनया ॥ २ ॥
सञ्जय उवाच—पुत्रेण तव राजेन्द्र स तथोक्तो महाबलः ।
महत्या सेनया गुप्तः प्रायाद्भीमरथं प्रति ॥ ३ ॥
तामापतन्तीं महतीं कलिंगानां महाचमूम् ।
रथाश्वनागकलिलां प्रगृहीतमहायुधाम् ॥ ४ ॥
भीमसेनः कलिंगानामार्च्छद्भारत वाहिनीम् ।
केतुमन्तं च नैषादिमायान्तं सह चेदिभिः ॥ ५ ॥
ततः श्रुतायुः संक्रुद्धो राज्ञा केतुमता सह ।
आससाद रणे भीमं व्यूढानीकेषु चेदिषु ॥ ६ ॥
रथैरनेकसाहस्रैः कलिंगानां नराधिप ।
अयुतेन गजानां च निषादैः सह केतुमान् ॥ ७ ॥
भीमसेनं रणे राजन्समन्तात्पर्यवारयत् ।
चेदिमत्स्यकरूषाश्च भीमसेनपदानुगाः ॥ ८ ॥
अभ्यधावन्त समरे निषादान्सह राजभिः ।
ततः प्रववृते युद्धं घोररूपं भयावहम् ॥ ९ ॥

चौवनवाँ अध्याय ॥ ५४ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! विशाल सेना के सञ्चालक कलिङ्गराज ने, मेरे पुत्र की आज्ञा पाकर, दण्डपाणि यमराज की तरह गदा हाथ में लेकर विचरते हुए अद्भुतकर्मा महापराक्रमी भीमसेन से किस प्रकार युद्ध किया ? सब वृत्तान्त मुझे सुनाओ ॥१।२॥ सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र ! महाबलशाली कलिङ्ग-नरेश आपके पुत्र की आज्ञा से बहुत सी सेना साथ लेकर भीमसेन के रथ की ओर बढ़े । घोड़े, हाथी, रथ आदि पर सवार और अस्त्र-शस्त्र हाथ में लिये कलिङ्ग देश के सैनिकों को तथा निषादनन्दन केतुमान् को आते देखकर भीमसेन चेदि देश के वीरों को साथ लेकर उनके सामने आये । उस समय क्रोध से अधीर श्रुतायु भी, व्यूह रचकर खड़ी हुई सेना के द्वारा सुरक्षित होकर, राजा केतुमान् के साथ भीमसेन के सामने आये ॥३।६॥ कलिङ्गराज ने कई हज़ार रथों से और महावीर केतुमान् ने निषाद-सेना तथा दस हज़ार हाथियों से भीमसेन को घेर लिया। उधर भीमसेन के आगे स्थित चेदि, मत्स्य और करूष देश के वीर और अन्य बहुत से राजा निषाद-सेना से युद्ध करने के लिए आगे बढ़े । इस प्रकार एक

न प्राजानन्त योधाः स्वान्परस्परजिघांसया ।
घोरमासीत्ततो युद्धं भीमस्य सहसा परैः ॥ १० ॥
यथेन्द्रस्य महाराज महत्या दैत्यसेनया ।
तस्य सैन्यस्य संग्रामे युध्यमानस्य भारत ॥ ११ ॥
बभूव सुमहाञ्शब्दः सागरस्येव गर्जतः ।
अन्योन्यं स्म तदा योधा विकर्षन्तो विशाम्पते ॥ १२ ॥
महीं चक्रुश्चितां सर्वां शशलोहितसन्निभाम् ।
योधांश्च स्वान्परान्वापि नाऽभ्यजानञ्जिघांसया ॥ १३ ॥
स्वानप्याददते स्वांश्च शूराः परमदुर्जयाः ।
विमर्दः सुमहानासीदल्पानां बहुभिः सह ॥ १४ ॥
कलिंगैः सह चेदीनां निषादैश्च विशाम्पते ।
कृत्वा पुरुषकारं तु यथाशक्ति महाबलाः ॥ १५ ॥
भीमसेनं परित्यज्य संन्यवर्तन्त चेदयः ।
सर्वैः कलिंगैरासन्नः सन्निवृत्तेषु चेदिषु ॥ १६ ॥
स्वबाहुबलमास्थाय सन्न्यवर्तत पाण्डवः ।
न चचाल रथोपस्थाद्भीमसेनो महाबलः ॥ १७ ॥
शितैरवाकिरद्बाणैः कलिंगानां वरूथिनीम् ।
कालिंगस्तु महेष्वासः पुत्रश्चाऽस्य महारथः ॥ १८ ॥

दूसरे को मारने की इच्छा से परस्पर बढ़कर दोनों पक्षों के वीरों में घोर संग्राम होने लगा ॥७।१०॥ हे राजेन्द्र ! जैसे इन्द्र ने बहुत बड़ी दैत्य-सेना के साथ युद्ध किया था वैसे ही भीमसेन भी शत्रुदल के साथ अत्यन्त घोर संग्राम करने लगे। उस समय उस महासेना का कोलाहल महासागर के गर्जन के समान जान पड़ने लगा। योद्धा लोग एक दूसरे के शरीरों को काट रहे थे, इस कारण सारी पृथ्वी मांस और रक्त की कीचड़ से परिपूर्ण हो गई ॥१०।१३॥ रण-दुर्मद वीरगण, हिंसाप्रवृत्ति के वश होने के कारण, अपने-पराये का ख्याल नहीं कर सकते थे। बहुत लोग अपने ही पक्ष के लोगों को —आत्मीयों को—मार डालते थे। कलिङ्ग देश के सैनिक और निषादगण संख्या में अधिक थे। उनके साथ थोड़ी संख्यावाले चेदिगण का युद्ध होने लगा। चेदिगण ने पहले यथाशक्ति अपना पराक्रम और पौरुष दिखाया, परन्तु अन्त को वे शत्रुसेना का आक्रमण न रोक सके और अत्यन्त व्यथित होकर, भीमसेन को छोड़कर, भाग खड़े हुए। इस प्रकार चेदिगण के विमुख होने पर महावीर भीमसेन, अपने बाहुबल का आश्रय लेकर, कलिङ्गसेना के सामने जाकर संग्राम करने लगे ॥१३।१७॥ अटल भाव से रथ पर स्थित भीमसेन तीक्ष्ण बाण चलाकर कलिङ्गसेना को मारने और घायल करने लगे। तब महाधनुर्धर कलिङ्गराज

शक्रदेव इति ख्यातो जघ्नतुः पाण्डवं शरैः ।
ततो भीमो महाबाहुर्विधुन्वन्रुचिरं धनुः ॥ १९ ॥
योधयामास कालिंगं स्वबाहुबलमाश्रितः ।
शक्रदेवस्तु समरे विसृजन्सायकान्बहून् ॥ २० ॥
अश्वाञ्जघान समरे भीमसेनस्य सायकैः ।
तं दृष्ट्वा विरथं तत्र भीमसेनमरिन्दमम् ॥ २१ ॥
शक्रदेवोऽभिदुद्राव शरैरवकिरञ्शितैः ।
भीमस्योपरि राजेन्द्र शक्रदेवो महाबलः ॥ २२ ॥
ववर्ष शरवर्षाणि तपान्ते जलदो यथा ।
हताश्वे तु रथे तिष्ठन्भीमसेनो महाबलः ॥ २३ ॥
शक्रदेवाय चिक्षेप सर्वशैक्यायसीं गदाम् ।
स तया निहतो राजन्कालिङ्गतनयो रथात् ॥ २४ ॥
विरथः सह सूतेन जगाम धरणीतलम् ।
हतमात्मसुतं दृष्ट्वा कलिंगानां जनाधिपः ॥ २५ ॥
रथैरनेकसाहस्रैर्भीमस्याऽवारयद्दिशः ।
ततो भीमो महावेगां त्यक्त्वा गुर्वी महागदाम् ॥ २६ ॥
निस्त्रिंशमाददे घोरं चिकीर्षु कर्म दारुणम् ।
चर्म चाऽप्रतिमं राजन्नार्षभं पुरुषर्षभ ॥ २७ ॥
नक्षत्रैरर्धचन्द्रैश्च शातकुम्भमयैश्चितम् ।
कालिंगस्तु ततः क्रुद्धो धनुर्ज्यामवमृज्य च ॥ २८ ॥

और उनके पुत्र शक्रदेव, दोनों युद्धभूमि में भीमसेन के ऊपर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे । उस समय भीमसेन अपने बाहुबल का आश्रय लेकर, धनुष चढ़ाकर, कलिङ्ग देश की सेना से घोर युद्ध करने लगे । कलिङ्ग देश के राजकुमार शक्रदेव ने बहुत से बाणों से भीमसेन के रथ के घोड़ों को मार डाला ॥१७।२१॥ इस प्रकार उन्हें रथ हीन करके असंख्य बाण बरसाते हुए शक्रदेव भीमसेन के ऊपर आक्रमण करने को दौड़े । मेघ जैसे वर्षाकाल में जल बरसाते हैं वैसे ही शक्रदेव भीमसेन के ऊपर बाण बरसाने लगे । बिना घोड़ों के रथ पर स्थित महापराक्रमी भीमसेन ने एक सुदृढ़ गदा उठाकर शक्रदेव के ऊपर फेंकी । उस गदा के आघात से महावीर शक्रदेव, उनका रथ, ध्वजा, घोड़े और सारथी सर्वस्व चूर चूर हो गया ॥२१।२५॥ पुत्र की मृत्यु देखकर महारथी कलिङ्गराज क्रोध से अधीर हो उठे । उन्होंने कई हजार रथों से भीमसेन को घेर लिया । तब महावीर भीमसेन ने भयानक कर्म

प्रगृह्य च शरं घोरमेकं सर्पविषोपमम् ।
प्राहिणोद्भीमसेनाय वधाकांक्षी जनेश्वरः ॥ २९ ॥
तमापतन्तं वेगेन प्रेरितं निशितं शरम् ।
भीमसेनो द्विधा राजंश्चिच्छेद विपुलासिना ॥ ३० ॥
उदक्रोशच्च संहृष्टस्त्रासयानो वरूथिनीम् ।
कालिङ्गोऽथ ततः क्रुद्धो भीमसेनाय संयुगे ॥ ३१ ॥
तोमरान्प्राहिणोच्छीघ्रं चतुर्दश शिलाशितान् ।
तानप्राप्तान्महाबाहुः खगतानेव पाण्डवः ॥ ३२ ॥
चिच्छेद सहसा राजन्नसम्भ्रान्तो वरासिना ।
निकृत्य तु रणे भीमस्तोमरान्वै चतुर्दश ॥ ३३ ॥
भानुमन्तं ततो भीमः प्राद्रवत्पुरुषर्षभः ।
भानुमांस्तु ततो भीमं शरवर्षेण छादयन् ॥ ३४ ॥
ननाद बलवन्नादं नादयानो नभस्तलम् ।
न च तं ममृषे भीमः सिंहनादं महाहवे ॥ ३५ ॥
ततः शब्देन महता विननाद महास्वनः ।
तेन नादेन वित्रस्ता कलिंगानां वरूथिनी ॥ ३६ ॥
न भीमं समरे मेने मानुषं भरतर्षभ ।
ततो भीमो महाबाहुर्नर्दित्वा विपुलं स्वनम् ॥ ३७ ॥

करने की इच्छा से गदा छोड़कर खड्ग और हेममय *नक्षत्रों तथा अर्द्धचन्द्र के चिह्न से शोभित अति दृढ* वृषभचर्म की ढाल ले ली ॥२५।२८॥ महाबली कलिङ्गराज ने भीमसेन को देखकर क्रोधपूर्वक धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर, उनको मारने के लिए, एक विषैले सर्प-तुल्य भयानक बाण हाथ में लिया। कलिङ्गराज ने धनुष पर चढ़ाकर वह बाण छोड़ दिया परन्तु भीमसेन ने *तीक्ष्ण धार वाले* खड्ग से उस बाण के दो खण्ड कर डाले। वे कौरवों के मन में त्रास उत्पन्न करते हुए बड़े आनन्द से सिंहनाद करने लगे ॥२८।३१॥ अब महावीर कलिङ्गनाथ ने क्रोध से अधीर होकर भीमसेन के ऊपर अत्यन्त तीक्ष्ण चौदह बाण छोड़े। वे सब तोमर बाण *आकाशमार्ग से होकर ज्योंही भीमसेन के पास* पहुँचे त्योंही उन्होंने खड्ग से उन बाणों को काट डाला। कलिङ्गराज के मारे हुए तोमर बाण कट जाने पर *विक्रमशाली* भीमसेन कुँअर भानुमान् को ताककर दौड़े। कुँअर भानुमान् असंख्य बाणों से भीमसेन को छाकर आकाश को कँपानेवाला सिंहनाद करने लगे ॥३१।३५॥ भानुमान् के सिंहनाद को महावीर भीमसेन सह नहीं सके। वे भी क्रुद्ध होकर ज़ोर से गरजने लगे। उस शब्द से कलिङ्ग-सेना भयभीत होकर काँपने लगी। उस सेना को भीमसेन कोई असाधारण देवता जान पड़ने लगे।

सासिर्वेगवदाप्लुत्य दन्ताभ्यां वारणोत्तमम् ।
आरुरोह ततो मध्यं नागराजस्य मारिष ॥ ३८ ॥
ततो मुमोच कालिंगः शक्तिं तामकरोद् द्विधा ।
खड्गेन पृथुना मध्ये भानुमन्तमथाऽच्छिनत् ॥ ३९ ॥
सोऽन्तराऽऽयुधिनं हत्वा राजपुत्रमरिन्दमः ।
गुरुं भारसहं स्कन्धे नागस्याऽसिमपातयत् ॥ ४० ॥
छिन्नस्कन्धः स विनदन्पपात गजयूथपः ।
आरुग्णः सिन्धुवेगेन सानुमानिव पर्वतः ॥ ४१ ॥
ततस्तस्मादवप्लुत्य गजाद्भारत भारतः ।
खड्गपाणिरदीनात्मा तस्थौ भूमौ सुदंशितः ॥ ४२ ॥
स चचार बहून्मार्गानभितः पातयन्गजान् ।
अग्निचक्रमिवाऽऽविद्धं सर्वतः प्रत्यदृश्यत ॥ ४३ ॥
अश्ववृन्देषु नागेषु रथानीकेषु चाऽभिभूः ।
पदातीनां च सङ्घेषु विनिघ्नञ्शोणितोक्षितः ॥ ४४ ॥
श्येनवद्व्यचरद्भीमो रणेऽरिषु बलोत्कटः ।
छिन्दंस्तेषां शरीराणि शिरांसि च महाबलः ॥ ४५ ॥
खड्गेन शितधारेण संयुगे गजयोधिनाम् ।
पदातिरेकः संक्रुद्धः शत्रूणां भयवर्धनः ॥ ४६ ॥
सम्मोहयामास स तान्कालान्तकयमोपमः ।
मूढाश्च ते तमेवाऽऽजौ विनदन्तः समाद्रवन् ॥ ४७ ॥

हे राजेन्द्र ! इसके पश्चात् गम्भीर गर्जन करते हुए भीमसेन हाथ में तलवार लिये रथ पर से कूद पड़े और बड़े वेग से दौड़े। वे भानुमान् के हाथी के दोनों दाँतों पर पांओं रखकर उसके ऊपर चढ़ गये। उस समय वह हाथी शिखरयुक्त पर्वत सा जान पड़ने लगा। महावीर भीमसेन ने हाथी के ऊपर जाकर पहले खड्ग से भानुमान् का सिर काट गिराया ॥३५।३९॥ और फिर हाथी के कन्धे पर तलवार का एक हाथ मारा। इससे वह हाथी घोर चीत्कार करके पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसके गिरने के पहले ही भीमसेन उसके ऊपर से नीचे कूद पड़े। अब खड्ग हाथ में लिये हुए भीमसेन दर्प के साथ अजेय हाथियों का सहार करने लगे। वे उस गज-सेना के मध्य अग्निचक्र के समान चारों ओर फिरने लगे ॥४०।४३॥ हाथियों पर सवार असंख्य योद्धाओं के सिर काटने, वीरों को विमोहित करते हुए क्रोधित भीमसेन अकेले ही काल के समान युद्ध-भूमि में विचरने लगे ॥४४।४७॥ वीरगण विमूढ़ से

सासिमुत्तमवेगेन विचरन्तं महारणे ।
निकृत्य रथिनां चाऽऽजौ रथेषाश्च युगानि च ॥ ४८ ॥
जघान रथिनश्चाऽपि बलवान्रिपुमर्दनः ।
भीमसेनश्चरन्मार्गान्सुबहून्प्रत्यदृश्यत ॥ ४९ ॥
भ्रान्तमाविद्धमुद्भ्रान्तमाप्लुतं प्रसृतं प्लुतम् ।
सम्पातं समुदीर्णं च दर्शयामास पाण्डवः ॥ ५० ॥
केचिदग्रासिना छिन्नाः पाण्डवेन महात्मना ।
विनेदुर्भिन्नमर्माणो निपेतुश्च गतासवः ॥ ५१ ॥
छिन्नदन्ताग्रहस्ताश्च भिन्नकुम्भास्तथा परे ।
वियोधाः स्वान्यनीकानि जघ्नुर्भारत वारणाः ॥ ५२ ॥
निपेतुरुर्व्यां च तथा विनदन्तो महारवान् ।
छिन्नांश्च तोमरान्राजन्महामात्रशिरांसि च ॥ ५३ ॥
परिस्तोमान्विचित्रांश्च कक्ष्याश्च कनकोज्ज्वलाः ।
ग्रैवेयाण्यथ शक्तीश्च पताकाः कणपांस्तथा ॥ ५४ ॥
तूणीरानथ यन्त्राणि विचित्राणि धनूंषि च ।
भिन्दिपालानि शुभ्राणि तोत्राणि चांऽकुशैः सह ॥ ५५ ॥
घण्टाश्च विविधा राजन्हेमगर्भान्त्सरूनपि ।
पततः पातितांश्चैव पश्यामः सह सादिभिः ॥ ५६ ॥
छिन्नगात्रावरकरैर्निहतैश्चाऽपि वारणैः ।
आसीद्भूमिः समास्तीर्णा पतितैर्भूधरैरिव ॥ ५७ ॥

होकर भयानक शब्द करते हुए भीमसेन की ओर दौड़े। शत्रुदलनाशन भीमसेन रथों के दण्ड और युग आदि को तोड़ते-फोड़ते और योद्धाओं को मारते इधर-उधर भ्रान्त, उद्भ्रान्त, आविद्ध, आप्लुत, प्रसृत, प्लुत, सम्पात और समुदीर्ण आदि प्रकार-प्रकार की गतियों और पैतरों से विचरने लगे ॥४७।५०॥ भीमसेन के भयङ्कर खङ्ग-प्रहार से हाथियों के मर्मस्थल कट-कट गये और वे ऊँचे स्वर से चिल्लाते हुए पृथ्वी पर गिरने लगे। कुछ हाथियों के दाँत, सूँड़, मस्तक, आदि अङ्ग कट गये। उन्होंने चीत्कार करते हुए इधर-उधर दौड़कर, गिरकर, *अपने ही पक्ष के सैनिकों को कुचल डाला* ॥५१।५२॥ हे राजेन्द्र ! उस युद्ध में तोमर, अंकुश, महावत, योद्धाओं के सिर, विचित्र कम्बल, सुवर्णमण्डित बाँधने की रस्सियाँ, हाथी-घोड़ों की गर्दन बाँधने की रस्सियाँ, शक्ति, पताका, तरकस, बाजे, विचित्र धनुष, मुद्गर, भिन्दिपाल, तोत्र, अंकुश, घण्टा, म्यानें और तलवारें आदि सामग्रियाँ गिरती और गिरी हुई चारों

विमृद्यैवं महानागान्ममर्दाऽन्यान्महाबलः ।
अश्वारोहवरांश्चैव पातयामास संयुगे ॥ ५८ ॥
तद्घोरमभवद्युद्धं तस्य तेषां च भारत ।
खलीनान्यथ योक्त्राणि कक्ष्याश्च कनकोज्ज्वलाः ॥ ५९ ॥
परिस्तोमाश्च प्रासाश्च ऋष्टयश्च महाधनाः ।
कवचान्यथ चर्माणि चित्राण्यास्तरणानि च ॥ ६० ॥
तत्र तत्राऽपविद्धानि व्यदृश्यन्त महाहवे ।
प्रासैर्यन्त्रैर्विचित्रैश्च शस्त्रैश्च विमलैस्तथा ॥ ६१ ॥
स चक्रे वसुधां कीर्णां शबलैः कुसुमैरिव ।
आप्लुत्य रथिनः कांश्चित्परामृश्य महाबलः ॥ ६२ ॥
पातयामास खड्गेन सध्वजानपि पाण्डवः ।
मुहुरुत्पततो दिक्षु धावतश्च यशस्विनः ॥ ६३ ॥
मार्गांश्च चरतश्चित्रं व्यस्मयन्त रणे जनाः ।
स जघान पदा कांश्चिदाक्षिप्याऽन्यानपोथयत् ॥ ६४ ॥
खड्गेनाऽन्यांश्च चिच्छेद नादेनाऽन्यांश्च भीषयन् ।
ऊरुवेगेन चाऽप्यन्यान्पातयामास भूतले ॥ ६५ ॥
अपरे चैनमालोक्य भयात्पञ्चत्वमागताः ।
एवं सा बहुला सेना कलिङ्गानां तरस्विनाम् ॥ ६६ ॥

ओर देख पड़ती थीं । हाथियों की सूँड़ों और छिन्न-भिन्न लाशों के ढेर पर्वत के समान देख पड़ते थे ॥५३।५७॥ हे राजेन्द्र ! महाबली पराक्रमी भीमसेन इस प्रकार हाथियों की सेना का विनाश करके घोड़ों तथा उनके सवारों को मारने और गिराने लगे । उस समय कौरव पक्ष के योद्धाओं के साथ महावीर भीमसेन का बड़ा भयानक युद्ध होने लगा । उस महासंग्राम में लगाम, जोत, सुवर्णमण्डित चमकती हुई बाँधने की रस्सियाँ, प्रास, ऋष्टि, कवच, ढाल, तरह-तरह के आस्तरण और आभूषण पृथ्वी पर चारों ओर बिखर पड़ने के कारण ऐसा जान पड़ने लगा मानों पृथ्वी पर भान्ति भान्ति के श्वेत कुमुद पुष्प खिल रहे हैं ॥५७।६२॥ उस समय महावीर भीमसेन उछल-उछलकर खड्ग के प्रहार से रथों और घोड़ों पर सवार योद्धाओं के सिर और ध्वजाएं काट-काटकर गिराने लगे । वे बारम्बार धावन, उत्पतन आदि गतियों के अनुसार पैंतरे बदलकर चारों ओर फिर रहे थे । उनका यह पराक्रम और स्फूर्ति देखकर लोगों को बड़ा आश्चर्य हो रहा था । किसी-किसी योद्धा को उन्होंने पाओं से कुचलकर मार डाला । किसी को खींचकर पटक दिया । किसी को खड्ग के प्रहार से दो-टुकड़े कर डाला । कोई उनके भयानक सिंहनाद से ही डरकर मर गया । कुछ लोग उनकी जाँघों के भार से पृथ्वी पर

परिवार्य रणे भीष्मं भीमसेनमुपाद्रवत् ।
ततः कालिंगसैन्यानां प्रमुखे भरतर्षभ ॥ ६७ ॥
श्रुतायुषमभिप्रेक्ष्य भीमसेनः समभ्ययात् ।
तमायान्तमभिप्रेक्ष्य कालिंगो नवभिः शरैः ॥ ६८ ॥
भीमसेनममेयात्मा प्रत्यविध्यत्स्तनान्तरे ।
कालिंगबाणाभिहतस्तोत्रार्दित इव द्विपः ॥ ६९ ॥
भीमसेनः प्रजज्वाल क्रोधेनाऽग्निरिवेन्धितः ।
अथाऽशोकः समादाय रथं हेमपरिष्कृतम् ॥ ७० ॥
भीमं सम्पादयामास रथेन रथसारथिः ।
तमारुह्य रथं तूर्णं कौन्तेयः शत्रुसूदनः ॥ ७१ ॥
कालिंगमभिदुद्राव तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ।
ततः श्रुतायुर्बलवान्भीमाय निशिताञ्शरान् ॥ ७२ ॥
प्रेषयामास संक्रुद्धो दर्शयन्पाणिलाघवम् ।
स कार्मुकवरोत्सृष्टैर्नवभिर्निशितैः शरैः ॥ ७३ ॥
समाहतो महाराज कालिंगेन महात्मना ।
सञ्चुक्रुशे भृशं भीमो दण्डाहत इवोरगः ॥ ७४ ॥
क्रुद्धश्च चापमायम्य बलवद्बलिनां वरः ।
कालिंगमवधीत्पार्थो भीमः सप्तभिरायसैः ॥ ७५ ॥
क्षुराभ्यां चक्ररक्षौ च कालिंगस्य महाबलौ ।
सत्यदेवं च सत्यं च प्राहिणोद्यमसादनम् ॥ ७६ ॥

गिर पड़े । बहुत लोग उन्हें देखकर ही भय के मारे मर गये ॥६२।६६॥ इस प्रकार उस अमित कलिङ्ग-सेना को जब भीमसेन मारने लगे तब उस सेना के लोग भीष्म की शरण में गये । भीष्म के साथ फिर कलिङ्गसेना भीमसेन की ओर बढ़ी । भीमसेन उस कलिङ्गसेना के साथ श्रुतायु को आते देखकर उनकी ओर चले । पराक्रमी कलिङ्गराज श्रुतायु ने भीमसेन को आते देखकर उनकी वक्षःस्थल में तीक्ष्ण नव बाण मारे । ईंधन पड़ने से जैसे अग्नि जल उठती है, अथवा अङ्कुश मारने से जैसे हाथी उत्तेजित हो उठता है, वैसे ही उन बाणों के लगने से भीमसेन क्रोध के मारे प्रज्वलित हो उठे । इसी समय सारथी अशोक भीमसेन के पास सुवर्णमण्डित रथ लेकर पहुँचा । भीमसेन उस रथ पर सवार हुए और "ठहर तो जा, ठहर तो जा" कहते हुए कलिङ्गराज की ओर दौड़े ॥६६।७२॥ बलवान् कलिङ्गराज श्रुतायु ने कुपित होकर स्फूर्ति के साथ भीमसेन के ऊपर नव बाण छोड़े । महाबली पराक्रमी भीमसेन ने कलिङ्गराज के धनुष से

ततः पुनरमेयात्मा नाराचैर्निशितैस्त्रिभिः ।
केतुमन्तं रणे भीमोऽगमयद्यमसादनम् ॥ ७७ ॥
ततः कलिंगाः सन्नद्धा भीमसेनममर्षणम् ।
अनीकैर्बहुसाहस्रैः क्षत्रियाः समवारयन् ॥ ७८ ॥
ततः शक्तिगदाखङ्गतोमरर्ष्टिपरश्वधैः ।
कलिंगाश्च ततो राजन्भीमसेनमवाकिरन् ॥ ७९ ॥
सन्निवार्य स तां घोरां शरवृष्टिं समुत्थिताम् ।
गदामादाय तरसा सन्निपत्य महाबलः ॥ ८० ॥
भीमः सप्तशतान्वीराननयद्यमसादनम् ।
पुनश्चैव द्विसाहस्रान्कलिंगानरिमर्दनः ॥ ८१ ॥
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय तदद्भुतमिवाऽभवत् ।
एवं स तान्यनीकानि कलिंगानां पुनः पुनः ॥ ८२ ॥
बिभेद समरे तूर्णं प्रेक्ष्य भीष्मं महारथम् ।
हतारोहाश्च मातङ्गाः पाण्डवेन कृता रणे ॥ ८३ ॥
विप्रजग्मुरनीकेषु मेघा वातहता इव ।
मृद्नन्तः स्वान्यनीकानि विनदन्तः शरातुराः ॥ ८४ ॥
ततो भीमो महाबाहुः खङ्गहस्तो महाभुजः ।
सम्प्रहृष्टो महाघोषं शङ्खं प्राध्मापयद्बली ॥ ८५ ॥

छूटे हुए बाणों की चोट खाकर, डण्डे से मारे गये विषैले सर्प के तुल्य अत्यन्त कुपित होकर धनुष चढाया। इसके पश्चात् लोहमय सात बाणों से कलिङ्गराज को, दो बाणों से उनके चक्ररक्षक सत्यदेव को और तीन तीक्ष्ण नाराच बाणों से केतुमान् को मार कर गिरा दिया ॥७२।७७॥ अब कलिङ्ग देश के क्षत्रिय लोग क्रोध-वश होकर कई सहस्र सैनिकों सहित भीमसेन से संग्राम करने लगे। सैकड़ों कलिङ्गदेशीय वीरगण शक्ति, गदा, खड्ग, तोमर, ऋष्टि, परश्वध आदि शस्त्र भीमसेन के ऊपर बरसाने लगे ॥७८। ७९॥ महाबली भीमसेन उस बाण आदि शस्त्रों की वर्षा को निष्फल करके, भारी गदा लेकर, वेग से दौड़े। गदा के प्रहार से उन्होंने सात सौ क्षत्रियों को मार गिराया। इसी तरह भीष्म के सामने ही दो सहस्र और वीरों को मारा। यह बड़ा अद्भुत कार्य हुआ। भीमसेन इस तरह कलिङ्ग देश की सेना को समर में बारम्बार छिन्न-भिन्न करने लगे। असंख्य हाथियों पर सवार योद्धा भीम के हाथों मारे गये। सवारों से हीन, बाण की चोट खाये हुए हाथी, सेना में प्रवेश होकर, वायु से हटाये गये मेघों की तरह चिल्लाते और गरजते हुए अपनी ही सेना को कुचलने और रौंदने लगे ॥८०।८४॥ इसी समय खड्ग हाथ में लिये हुए भीमसेन हर्ष के साथ शङ्ख बजाने लगे। उस शब्द से सब कलिङ्गसेना

सर्वकालिंगसैन्यानां मनांसि समकम्पयत् ।
मोहश्चाऽपि कलिंगानामाविवेश परन्तप ॥ ८६ ॥
प्राकम्पन्त च सैन्यानि वाहनानि च सर्वशः ।
भीमेन समरे राजन्गजेन्द्रेणेव सर्वशः ॥ ८७ ॥
मार्गान्बहून्विचरता धावता च ततस्ततः ।
मुहुरुत्पतता चैव सम्मोहः समपद्यत ॥ ८८ ॥
भीमसेनभयत्रस्तं सैन्यं च समकम्पत ।
क्षोभ्यमाणमसम्बाधं ग्राहेणेव महत्सरः ॥ ८९ ॥
त्रासितेषु च सर्वेषु भीमेनाऽद्भुतकर्मणा ।
पुनरावर्तमानेषु विद्रवत्सु च संघशः ॥ ९० ॥
सर्वकालिंगयोधेषु पाण्डूनां ध्वजिनीपतिः ।
अब्रवीत्स्वान्यनीकानि युध्यध्वमिति पार्षतः ॥ ९१ ॥
सेनापतिवचः श्रुत्वा शिखंडिप्रमुखा गणाः ।
भीममेवाऽभ्यवर्तन्त रथानीकैः प्रहारिभिः ॥ ९२ ॥
धर्मराजश्च तान्सर्वानुपजग्राह पाण्डवः ।
महता मेघवर्णेन नागानीकेन पृष्ठतः ॥ ९३ ॥
एवं सन्नोद्य सर्वाणि स्वान्यनीकानि पार्षतः ।
भीमसेनस्य जग्राह पार्ष्णिं सत्पुरुषैर्वृतः ॥ ९४ ॥
नहि पञ्चालराजस्य लोके कश्चन विद्यते ।
भीमसात्यकयोरन्यः प्राणेभ्यः प्रियकृत्तमः ॥ ९५ ॥

के लोग बहुत व्याकुल हो गये। उनके दिल धड़कने लगे। अनेक पैंतरे बदलकर, बारम्बार उछलकर, इधर-उधर दौड़कर, गजराज सदृश भीम को वीर-सेना का संहार करते देख शत्रुपक्ष के वीर बहुत ही व्याकुल हो गये। जैसे कोई विकट ग्राह बड़े तालाब को मथ डाले वैसे ही भीमसेन ने भी उस सेना को मथ डाला। सब सैनिकों के हृदय काँपने लगे। वे भय के मारे प्राण लेकर इधर-उधर भाग खड़े हुए ॥८५।८९॥ भीमसेन का यह अद्भुत कार्य देख-कर और भागी हुई कलिङ्गसेना को फिर वापस आते हुए देख पाण्डव-सेना के प्रधान सेनापति धृष्टद्युम्न ने अपनी सेना को युद्ध करने की आज्ञा दी। सेना-पति की आज्ञा पाकर शिखण्डी आदि योद्धा लोग बहुत से रथी-अतिरथी आदि के साथ, भीमसेन की सहायता करते हुए शत्रुसेना से युद्ध करने लगे ॥९०।९२॥ धर्मराज युधिष्ठिर भी मेघवर्ण हाथियों का भारी दल साथ लिये उन लोगों के पीछे सहायता के लिये चले। इस प्रकार अपनी सारी सेना को

सोऽपश्यच्च कलिंगेषु चरन्तमरिसूदनः ।
भीमसेनं महाबाहुं पार्षतः परवीरहा ॥ ९६ ॥
ननर्द बहुधा राजन्हृष्टश्चाऽऽसीत्परन्तपः ।
शङ्खं दध्मौ च समरे सिंहनादं ननाद च ॥ ९७ ॥
स च पारावताश्वस्य रथे हेमपरिष्कृते ।
कोविदारध्वजं दृष्ट्वा भीमसेनः समाश्वसत् ॥ ९८ ॥
धृष्टद्युम्नस्तु तं दृष्ट्वा कलिंगैः समभिद्रुतम् ।
भीमसेनममेयात्मा त्राणायाऽऽजौ समभ्ययात् ॥ ९९ ॥
तौ दूरात्सात्यकिं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नवृकोदरौ ।
कलिंगान्समरे वीरौ योधयेतां मनस्विनौ ॥ १०० ॥
स तत्र गत्वा शैनेयो जवेन जयतां वरः ।
पार्थपार्षतयोः पार्ष्णिं जग्राह पुरुषर्षभः ॥ १०१ ॥
स कृत्वा दारुणं कर्म प्रगृहीतशरासनः ।
आस्थितो रौद्रमात्मानं कलिंगानन्ववैक्षत ॥ १०२ ॥
कलिंगप्रभवां चैव मांसशोणितकर्दमां ।
रुधिरस्यन्दिनीं तत्र भीमः प्रावर्तयन्नदीम् ॥ १०३ ॥
अन्तरेण कलिङ्गानां पाण्डवानां च वाहिनीम् ।
तां सन्ततार दुस्तारां भीमसेनो महाबलः ॥ १०४ ॥

युद्ध की आज्ञा देकर वीर धृष्टद्युम्न भीमसेन के पार्श्व स्थान पर स्थित होकर उनकी सहायता करने लगे। उनके साथ और भी बहुतेरे श्रेष्ठ योद्धा थे। भीमसेन और सात्यकि से बढ़कर और कोई भी धृष्टद्युम्न को प्रिय नहीं था ॥९०।९५॥ भीमसेन को शत्रु सेना के मध्य काल की भांति विचरते देखकर, महाबली शत्रुनाशन पाञ्चालनन्दन, प्रसन्नतापूर्वक गरजने और शङ्ख बजाने लगे। धृष्टद्युम्न के कपोत के रङ्गवाले घोड़ों से युक्त, सुवर्णमण्डित, रथ पर कोविदार (लाल कचनार)चिह्न की ध्वजा फहराते देखकर भीमसेन को भी आश्वास हुआ। कलिङ्गसेना को भीमसेन पर आक्रमण करने के लिये दौड़ते देखकर महावीर धृष्टद्युम्न उनकी रक्षा करने के लिये आगे बढ़े ॥९६।९९॥ महावीर सात्यकि ने दूर से भीमसेन और धृष्टद्युम्न को कलिङ्ग सेना के साथ युद्ध करते देखा तो वे भी शीघ्र ही वहाँ पहुँचकर उनके पार्श्वभाग की रक्षा करने लगे। महावीर भीमसेन ने धनुष हाथ में लेकर, रौद्रभाव धारण कर, ऐसा दारुण युद्ध किया कि कलिङ्गदेशीय वीरों के शरीरों का कटकर ढेर लग गया, रक्त की नदी बह चली और उनमें मांस की कीचड़ मच गई। कलिङ्ग-सेना और पाण्डव सेना के मध्य यह भयानक रक्त की नदी बहने लगी। उस दुस्तर नदी के उस पार महाबली भीमसेन ही उतर सके, और सब लोग

भीमसेनं तथा दृष्ट्वा प्राक्रोशंस्तावका नृप ।
कालोऽयं भीमरूपेण कलिंगैः सह युध्यते ॥१०५॥
ततः शान्तनवो भीष्मः श्रुत्वा तं निनदं रणे ।
अभ्ययात्त्वरितो भीमं व्यूढानीकः समन्ततः ॥१०६॥
तं सात्यकिर्भीमसेनो धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
अभ्यद्रवन्त भीष्मस्य रथं हेमपरिष्कृतम् ॥१०७॥
परिवार्य तु ते सर्वे गाङ्गेयं तरसा रणे ।
त्रिभिस्त्रिभिः शरैर्घोरैर्भीष्ममानर्च्छुरोजसा ॥१०८॥
प्रत्यविध्यत तान्सर्वान्पिता देवव्रतस्तव ।
यतमानान्महेष्वासांस्त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ॥१०९॥
ततः शरसहस्रेण संनिवार्य महारथान् ।
हयान्काञ्चनसन्नाहान्भीमस्य न्यहनच्छरैः ॥११०॥
हताश्वे स रथे तिष्ठन्भीमसेनः प्रतापवान् ।
शक्तिं चिक्षेप तरसा गाङ्गेयस्य रथं प्रति ॥१११॥
अप्राप्तामथ तां शक्तिं पिता देवव्रतस्तव ।
त्रिधा चिच्छेद समरे सा पृथिव्यामशीर्यत ॥११२॥
ततः शैक्यायसीं गुर्वीं प्रगृह्य बलवान्गदाम् ।
भीमसेनस्ततस्तूर्णं पुप्लुवे मनुजर्षभ ॥११३॥
सात्यकोऽपि ततस्तूर्णं भीमस्य प्रियकाम्यया ।
गाङ्गेयसारथिं तूर्णं पातयामास सायकैः ॥११४॥

डूब गये ॥१००।१०४॥ हे महाराज ! उस समय आपके पक्ष के योद्धा चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगे— यह साक्षात् काल ही भीमसेन का रूप रखकर कलिङ्ग-सेना के साथ युद्ध कर रहा है ! तब भीष्म पितामह अपनी सेना का चिल्लाना सुनकर, व्यूह-रचनापूर्वक सेना साथ लेकर, शीघ्रता से भीमसेन की ओर दौड़े ॥१०५।१०७॥ उधर महाबली भीमसेन, धृष्टद्युम्न और सात्यकि, भीष्म के रथ के पास पहुँचकर, उनका रथ घेरकर, युद्ध करने लगे। तीनों वीरों ने भीष्म को तीन-तीन तीक्ष्ण बाण मारे। आपके पिता देवव्रत ने भी तीन-तीन बाण तीनों वीरों को मारे। इसके पश्चात् एक सहस्र बाण छोड़कर भीष्म ने तीनो महारथियों का वेग रोककर कई तीक्ष्ण बाणों से भीमसेन के सुवर्ण-भूषित घोड़ों को मार डाला ॥१०८।११०॥ रिक्त रथ पर स्थित प्रतापी भीमसेन ने वेग से भीष्म के रथ के ऊपर एक शक्ति चलाई। भीष्म ने बाणों से राह में ही उस शक्ति को तीन टुकड़े करके पृथ्वी पर गिरा दिया।

भीष्मस्तु निहते तस्मिन्सारथौ रथिनां वरः ।
वातायमानैस्तैरश्वैरपनीतो रणाजिरात् ॥११५॥
भीमसेनस्ततो राजन्नपयाते महाव्रते ।
प्रजज्वाल यथा वह्निर्दहन्कक्षमिवैधितः ॥११६॥
स हत्वा सर्वकालिङ्गान्सेनामध्ये व्यतिष्ठत ।
नैनमभ्युत्सहन्केचित्तावका भरतर्षभ ॥११७॥
धृष्टद्युम्नस्तमारोप्य स्वरथे रथिनां वरः ।
पश्यतां सर्वसैन्यानामपोवाह यशस्विनम् ॥११८॥
सम्पूज्यमानः पाञ्चाल्यैर्मत्स्यैश्च भरतर्षभ ।
धृष्टद्युम्नं परिष्वज्य समेयादथ सात्यकिम् ॥११९॥
अथाऽब्रवीद्भीमसेनं सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
प्रहर्षयन्यदुव्याघ्रो धृष्टद्युम्नस्य पश्यतः ॥१२०॥
दिष्ट्या कालिङ्गराजश्च राजपुत्रश्च केतुमान् ।
शक्रदेवश्च कालिङ्गः कलिङ्गाश्च मृधे हताः ॥१२१॥
स्वबाहुबलवीर्येण नागाश्वरथसंकुलः ।
महापुरुषभूयिष्ठो धीरयोधनिषेवितः ॥१२२॥
महाव्यूहः कलिङ्गानामेकेन मृदितस्त्वया ।
एवमुक्त्वा शिनेर्नप्ता दीर्घबाहुररिन्दम ॥१२३॥

तब भीमसेन एक लोहमयी गदा लेकर रथ से उतर पड़े। इसी समय महावीर सात्यकि ने भीमसेन का प्रिय करने की इच्छा से तीक्ष्ण बाण मारकर भीष्म के सारथी को मारकर रथ पर से गिरा दिया। सारथी के मरते ही इधर-उधर अव्यवस्थित रूप से भागते हुए घोड़े भीष्म के रथ को युद्धभूमि से हटा ले गये ॥१११।११५॥ महाव्रत भीष्म के युद्धभूमि से हटते ही भीमसेन फिर प्रज्वलित होकर, सूखी घास को अग्नि की तरह, शत्रुसेना को नष्ट करने लगे। कलिङ्ग देश की सेना के सब वीरों को मारकर भीमसेन अपनी सेना के मध्य पहुँच गये। हे महाराज! आपकी सेना का कोई भी वीर उनके प्रताप और पराक्रम को नहीं सह सका, किसी में उनका सामना करने का साहस नहीं देख पड़ता था। इसी समय महारथी धृष्टद्युम्न उनके पास आये और उनको अपने रथ पर बिठा कर युद्धभूमि से हटा ले गये। पाञ्चाल और मत्स्य देश की सेना के सब लोग भीमसेन की प्रशंसा कर रहे थे। भीमसेन, धृष्टद्युम्न को गले से लगाकर, सात्यकि के पास गये ॥११६।११९॥ यदुश्रेष्ठ पराक्रमी सात्यकि धृष्टद्युम्न के सामने भीमसेन को प्रसन्न करते हुए कहने लगे—'हे वृकोदर! बड़े ही भाग्य की बात है कि तुमने कलिङ्गराज श्रुतायु, राजकुमार केतुमान्, शक्रदेव और सम्पूर्ण कलिङ्गसेना को मार डाला। अपने

रथाद्रथमभिद्रुत्य पर्यष्वजत पाण्डवम् ।
ततः स्वरथमास्थाय पुनरेव महारथः ।
तावकानवधीत्क्रुद्धो भीमस्य बलमादधत् ॥ १२४ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि द्वितीययुद्धदिवसे कलिङ्गराजवधे चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५४॥

बाहुबल और पराक्रम से हाथियों, घोड़ों, रथों और महाबली पुरुषों से कलिङ्गसेना को दुर्भेद्य महाव्यूह नष्ट-भ्रष्ट करके तुमने दुष्कर और अद्भुत कर्म किया है" महावीर सात्यकि ने अब शीघ्रता से अपने रथ से उतरकर भीमसेन के रथ पर जाकर उनको गले से लगा लिया। महारथी सात्यकि फिर अपने रथ पर आकर भीमसेन की सेना को साथ लेकर आपकी सेना का संहार करने लगे ॥१२०।१२४॥

भीष्मपर्व का चौवनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५४ ॥

अथ पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

सञ्जय उवाच—गतपूर्वाह्णभूयिष्ठे तस्मिन्नहनि भारत ।
रथनागाश्वपत्तीनां सादिनां च महाक्षये ॥ १ ॥
द्रोणपुत्रेण शल्येन कृपेण च महात्मना ।
समसज्जत पाञ्चाल्यस्त्रिभिरेतैर्महारथैः ॥ २ ॥
स लोकविदितानश्वान्निजघान महाबलः ।
द्रौणेः पाञ्चालदायादः शितैर्दशभिराशुगैः ॥ ३ ॥
ततः शल्यरथं तूर्णमास्थाय हतवाहनः ।
द्रौणिः पाञ्चालदायादमभ्यवर्षदथेषुभिः ॥ ४ ॥
धृष्टद्युम्नं तु संयुक्तं द्रौणिना वीक्ष्य भारत ।
सौभद्रोऽभ्यपतत्तूर्णं विकिरन्निशिताञ्शरान् ॥ ५ ॥
स शल्यं पञ्चविंशत्या कृपं च नवभिः शरैः ।
अश्वत्थामानमष्टाभिर्विव्याध पुरुषर्षभः ॥ ६ ॥

पचपनवाँ अध्याय ॥ ५५ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज! इस दिन का आधा भाग व्यतीत हो जाने पर असंख्य रथ, हाथी, घोड़े, उनके सवार और पैदल मारे जा चुके थे। पाञ्चालपुत्र धृष्टद्युम्न अकेले ही तीन महारथियों—अश्वत्थामा, शल्य और कृपाचार्य—से युद्ध करने लगे। महावीर धृष्टद्युम्न ने अश्वत्थामा के प्रसिद्ध श्रेष्ठ घोड़ों को तीक्ष्ण दस बाणों से मार डाला। घोड़ों की मृत्यु हो जाने पर अश्वत्थामा शल्य के रथ पर चढ़कर धृष्टद्युम्न के ऊपर बाण बरसाने लगे ॥१।४॥ वीर अभिमन्यु धृष्टद्युम्न को अश्वत्थामा से युद्ध करते देखकर अत्यन्त तीक्ष्ण बाण बरसाते हुए उनके पास पहुँचे। उनके वहाँ पहुँचकर उन्होंने शल्य के ऊपर

आर्जुनिं तु ततस्तूर्णं द्रौणिर्विव्याध पत्रिणा ।
शल्योऽथ दशभिश्चैव कृपश्च निशितैस्त्रिभिः ॥ ७ ॥
लक्ष्मणस्तव पौत्रस्तु सौभद्रं समवस्थितम् ।
अभ्यवर्तत संहृष्टस्ततो युद्धमवर्तत ॥ ८ ॥
दौर्योधनिः सुसंक्रुद्धः सौभद्रं परवीरहा ।
विव्याध समरे राजंस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ९ ॥
अभिमन्युः सुसंक्रुद्धो भ्रातरं भरतर्षभ ।
शरैः पञ्चाशता राजन्क्षिप्रहस्तोऽभ्यविध्यत ॥ १० ॥
लक्ष्मणोऽपि पुनस्तस्य धनुश्चिच्छेद पत्रिणा ।
मुष्टिदेशे महाराज ततस्ते चुक्रुशुर्जनाः ॥ ११ ॥
तद्विहाय धनुश्छिन्नं सौभद्रः परवीरहा ।
अन्यदादत्तवांश्चित्रं कार्मुकं वेगवत्तरम् ॥ १२ ॥
तौ तत्र समरे युक्तौ कृतप्रतिकृतैषिणौ ।
अन्योन्यं विशिखैस्तीक्ष्णैर्जघ्नतुः पुरुषर्षभौ ॥ १३ ॥
ततो दुर्योधनो राजा दृष्ट्वा पुत्रं महारथम् ।
पीडितं तव पौत्रेण प्रायात्तत्र प्रजेश्वरः ॥ १४ ॥
सन्निवृत्ते तव सुते सर्व एव जनाधिपाः ।
आर्जुनिं रथवंशेन समन्तात्पर्यवारयन् ॥ १५ ॥
स तैः परिवृतः शूरैः शूरो युधि सुदुर्जयैः ।
न स्म प्रव्यथते राजन्कृष्णतुल्यपराक्रमः ॥ १६ ॥

पचीस, कृपाचार्य के ऊपर नव और अश्वत्थामा के ऊपर आठ बाण चलाये। तब अश्वत्थामा ने बडे वेग से अभिमन्यु को बाणों से घायल करना आरम्भ किया। शल्य ने भी बारह और कृपाचार्य ने भी तीन बाण अभिमन्यु को मारे ॥५।७॥ हे राजेन्द्र ! आपके पौत्र लक्ष्मण ने जब अभिमन्यु को युद्ध करते देखा तब वे भी क्रोध करके, पास पहुँचकर, प्रहार करने लगे। उसके पश्चात् वे परस्पर घोर युद्ध करने लगे। अभिमन्यु ने क्रोध मे अधीर होकर स्फूर्ति के साथ पाँच सौ बाण अपने चचेरे भाई लक्ष्मण को मारे। लक्ष्मण ने भी एक बाण मारकर अभिमन्यु के धनुष की मुष्टि काट डाली। यह देखकर लोग चीत्कार कर उठे ॥८।११॥ शत्रुनाशन अभिमन्यु ने कटा हुआ धनुष फेंककर दूसरा धनुष हाथ में लिया। वे दोनों वीर परस्पर जय की इच्छा से एक दूसरे पर अयन्त तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे। इसके पश्चात् राजा दुर्योधन अभिमन्यु के हाथों अपने पुत्र को पीडित देखकर शीघ्र उस स्थान पर पहुँचे। तब

सौभद्रमथ संसक्तं दृष्ट्वा तत्र धनञ्जयः ।
अभिदुद्राव वेगेन त्रातुकामः स्वमात्मजम् ॥ १७ ॥
ततः सरथनागाश्वा भीष्मद्रोणपुरोगमाः ।
अभ्यवर्तन्त राजानः सहिताः सव्यसाचिनम् ॥ १८ ॥
उद्धूतं सहसा भौमं नागाश्वरथपत्तिभिः ।
दिवाकररथं प्राप्य रजस्तीव्रमदृश्यत ॥ १९ ॥
तानि नागसहस्राणि भूमिपालशतानि च ।
तस्य बाणपथं प्राप्य नाऽभ्यवर्तन्त सर्वशः ॥ २० ॥
प्रणेदुः सर्वभूतानि बभूवुस्तिमिरा दिशः ।
कुरूणां चाऽनयस्तीव्रः समदृश्यत दारुणः ॥ २१ ॥
नाऽप्यन्तरिक्षं न दिशो न भूमिर्न च भास्करः ।
प्रजज्ञे भरतश्रेष्ठ शस्त्रसङ्घैः किरीटिनः ॥ २२ ॥
सादिता रथनागाश्च हताश्वा रथिनो रणे ।
विप्रद्रुतरथाः केचिद् दृश्यन्ते रथयूथपाः ॥ २३ ॥
विरथा रथिनश्चाऽन्ये धावमानाः समन्ततः ।
तत्र तत्रैव दृश्यन्ते सायुधाः साङ्गदैर्भुजैः ॥ २४ ॥
हयारोहा हयांस्त्यक्त्वा गजारोहाश्च दन्तिनः ।
अर्जुनस्य भयाद्राजन्समन्ताद्विप्रदुद्रुवुः ॥ २५ ॥

भीष्म, द्रोण आदि सब योद्धाओं ने रथों के समूह से चारों ओर से अभिमन्यु को घेर लिया ॥१२।१५॥ वासुदेव के समान पराक्रमी युद्धदुर्मद शूर अभिमन्यु शूर-वीरों के मध्य घिर जाने पर भी विचलित या खिन्न नहीं हुए। अर्जुन ने जब अभिमन्यु को रथों के मध्य घिरा हुआ देखा तब, उनकी रक्षा के लिये, वे क्रुद्ध होकर उसी ओर चल पड़े ॥१६।१८॥ हाथियों, घोड़ों, रथों और पैदलों के पाओं से उड़ी हुई धूल ने ऊपर उठकर सूर्यमण्डल तक को छा लिया। हजारों हाथियों और घोड़ों पर सवार राजा लोग किसी प्रकार अर्जुन के बाणों की राह से बचकर उनके पास तक नहीं पहुँच सकते थे। उस समय सब प्राणी युद्धभूमि में निरन्तर आर्तनाद और कोलाहल करने लगे। दिशाओं में अँधेरा छा गया। कौरवों के दारुण अन्याय का फल उस समय प्रत्यक्ष देख पड़ने लगा। अर्जुन के बाण अन्तरिक्ष, दिशा, उपदिशा, पृथ्वीमण्डल आदि सब स्थानों में व्याप्त देख पड़ते थे ॥१९।२२॥ बाणों के अतिरिक्त पृथ्वी, आकाश या सूर्यमण्डल कुछ भी नहीं देख पड़ता था। उस समय हाथियों और घोड़ों के झुण्ड और उनके सवार मर-मरकर पृथ्वी पर गिरते देख पड़ते थे और रथ टूट-टूटकर गिर रहे थे। रथियों से हीन रथ इधर-उधर दौड़ते देख पड़ते थे। रथ-हीन होकर रथी लोग इधर-उधर दौड़ रहे थे। स्थान स्थान पर

रथेभ्यश्च गजेभ्यश्च हयेभ्यश्च नराधिपाः ।
पतिताः पात्यमानाश्च दृश्यन्तेऽर्जुनसायकैः ॥ २६ ॥
सगदानुद्यतान्बाहून्सखड्गांश्च विशाम्पते ।
सप्रासांश्च सतूणीरान्सशरान्सशरासनान् ॥ २७ ॥
सांकुशान्सपताकांश्च तत्र तत्राऽर्जुनो नृणाम् ।
निचकर्त शरैरुग्रै रौद्रं वपुरधारयत् ॥ २८ ॥
परिघाणां प्रदीप्तानां मुद्गराणां च मारिष ।
प्रासानां भिन्दिपालानां निस्त्रिंशानां च संयुगे ॥ २९ ॥
परश्वधानां तीक्ष्णानां तोमराणां च भारत ।
वर्मणां चाऽपविद्धानां काञ्चनानां च भूमिप ॥ ३० ॥
ध्वजानां चर्मणां चैव व्यजनानां च सर्वशः ।
छत्राणां हेमदण्डानां तोमराणां च भारत ॥ ३१ ॥
प्रतोदानां च योक्त्राणां कशानां चैव मारिष ।
राशयः स्माऽत्र दृश्यन्ते विनिकीर्णा रणक्षितौ ॥ ३२ ॥
नाऽऽसीत्तत्र पुमान्कश्चित्तव सैन्यस्य भारत ।
योऽर्जुनं समरे शूरं प्रत्युद्यायात्कथञ्चन ॥ ३३ ॥
यो यो हि समरे पार्थं प्रत्युद्याति विशाम्पते ।
स संख्ये विशिखैस्तीक्ष्णैः परलोकाय नीयते ॥ ३४ ॥
तेषु विद्रवमाणेषु तव योधेषु सर्वशः ।
अर्जुनो वासुदेवश्च दध्मतुर्वारिजोत्तमौ ॥ ३५ ॥

अङ्गद आदि आभूषणों से शोभित कटे हुए हाथ पडे हुए थे। अर्जुन के भय से हाथियो के सवार हाथी छोडकर और घोड़ों के सवार घोड़े छोड़कर चारों ओर भागे जा रहे थे। अर्जुन के बाणों की चोट से वीर लोग हाथी, घोड़े, रथ आदि वाहनों के ऊपर मे गिरते या गिरे हुए देख पडते थे ॥२३।२६॥ भयङ्कर मूर्त्ति धारण किये हुए अर्जुन युद्धभूमि मे इधर-उधर योद्धाओं के गदा, खड्ग, तरकस, धनुष, बाण, अंकुश, पताका आदि सहित उठे हुए हाथों को काटते हुए देख पड रहे थे। परिघ, मुद्गर, प्रास, भिन्दिपाल, निस्त्रिंश, तीक्ष्ण परश्वध, तोमर, ढाल, ध्वजा, कवच आदि सर्वत्र पडे हुए थे और अन्यान्य शस्त्र, छत्र, सोने के दण्ड, अंकुश, प्रतोद, कोडे, योत्र आदि के ढेर इधर-उधर बिखर रहे थे। इन छिन्न-भिन्न वस्तुओ से समग्र समरभूमि आच्छादित हुई पड़ी थी ॥२७।३२॥ हे राजेन्द्र! आपकी ओर कोई ऐसा साहसी वीर नहीं था, जो इस संग्राम में अर्जुन के सन्मुख खड़ा होता। जो मनुष्य अर्जुन के सामने

तत्प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा पिता देवव्रतस्तव ।
अब्रवीत्समरे शूरं भारद्वाजं स्मयन्निव ॥ ३६ ॥
एष पाण्डुसुतो वीर कृष्णेन सहितो बली ।
तथा करोति सैन्यानि यथा कुर्याद्धनञ्जयः ॥ ३७ ॥
न ह्येष समरे शक्यो विजेतुं हि कथञ्चन ।
यथाऽस्य दृश्यते रूपं कालान्तकयमोपमम् ॥ ३८ ॥
न निवर्तयितुं चाऽपि शक्येयं महती चमूः ।
अन्योन्यप्रेक्षया पश्य द्रवतीयं वरूथिनी ॥ ३९ ॥
एष चाऽस्तं गिरिश्रेष्ठं भानुमान्प्रतिपद्यते ।
चक्षूंषि सर्वलोकस्य संहरन्निव सर्वथा ॥ ४० ॥
तत्राऽवहारं सम्प्राप्तं मन्येऽहं पुरुषर्षभ ।
श्रान्ता भीताश्च नो योधा न योत्स्यन्ति कथञ्चन ॥ ४१ ॥
एवमुक्त्वा ततो भीष्मो द्रोणमाचार्यसत्तमम् ।
अवहारमथो चक्रे तावकानां महारथः ॥ ४२ ॥
ततोऽवहारः सैन्यानां तव तेषां च भारत ।
अस्तं गच्छति सूर्येऽभूत्सन्ध्याकाले च वर्तति ॥ ४३ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि द्वितीययुद्धदिवसावहारे पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

गया वहीं, उनके तीक्ष्ण बाण की चोट से, सुरपुर सिधारा। आपके पक्ष के सब योद्धा जब भाग गये तब वासुदेव और अर्जुन दोनों हर्ष की सूचना के लिए शङ्ख बजाने लगे ॥३३।३५॥ हे राजेन्द्र! देवव्रत भीष्म ने जब अपनी सेना को इस प्रकार साहस छोड़कर भागते हुए देखा तब उन्होंने हँसकर द्रोणाचार्य से कहा —हे आचार्य! ये वासुदेव सहित वीर अर्जुन अपने योग्य ही युद्ध कर रहे हैं। इनका रूप साक्षात् यम के समान देख पड़ता है। इस समय ये समर में किसी प्रकार जीते नहीं जा सकते। ॥३६।३८॥ देखो, यह विशाल सेना एक दूसरे का मुख देखकर प्राण लेकर भागी ही जा रही है। इस समय इन सैनिकों को लौटाना सब प्रकार असम्भव है। सबकी दृष्टि को नष्ट करते हुए सूर्य नारायण भी अब अस्ताचल पर पहुँच गये हैं। हे पुरुषश्रेष्ठ! मैं समझता हूँ कि आज का युद्ध अब समाप्त किया जाय। हमारे योद्धा थके और भयभीत हुए-हुए हैं, इस कारण अब ये किसी प्रकार युद्ध न कर सकेंगे ॥३९।४१॥ हे महाराज! यह कहकर महारथी भीष्म ने युद्ध रोक दिया। सूर्य अस्त हो गये, सायँकाल हो गया, यह देखकर दोनों पक्ष के योद्धाओं ने युद्ध समाप्त कर दिया ॥४२।४३॥

भीष्मपर्व का पचपनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५५ ॥

अथ षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

सञ्जय उवाच—प्रभातायां च शर्वर्यां भीष्मः शान्तनवस्तदा ।
अनीकान्यनुसंयाने व्यादिदेशाऽथ भारत ॥ १ ॥
गारुडं च महाव्यूहं चक्रे शान्तनवस्तदा ।
पुत्राणां ते जयाकांक्षी भीष्मः कुरुपितामहः ॥ २ ॥
गरुडस्य स्वयं तुण्डे पिता देवव्रतस्तव ।
चक्षुषी च भरद्वाजः कृतवर्मा च सात्वतः ॥ ३ ॥
अश्वत्थामा कृपश्चैव शीर्षमास्तां यशस्विनौ ।
त्रैगर्त्तैरथ कैकेयैर्वाटधानैश्च संयुगे ॥ ४ ॥
भूरिश्रवाः शलः शल्यो भगदत्तश्च मारिष ।
मद्रकः सिन्धुसौवीरास्तथा पाञ्चनदाश्च ये ॥ ५ ॥
जयद्रथेन सहिता ग्रीवायां सन्निवेशिताः ।
पृष्ठे दुर्योधनो राजा सोदर्यैः सानुगैर्वृतः ॥ ६ ॥
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ काम्बोजश्च शकैः सह ।
पुच्छमासन्महाराज शूरसेनाश्च सर्वशः ॥ ७ ॥
मागधाश्च कालिङ्गाश्च दासेरकगणैः सह ।
दक्षिणं पक्षमासाद्य स्थिता व्यूहस्य दंशिताः ॥ ८ ॥
कारूपाश्च विकुञ्जाश्च मुण्डाः कुण्डीवृपास्तथा ।
वृहद्बलेन सहिता वामं पार्श्वमवस्थिताः ॥ ९ ॥

छप्पनवाँ अध्याय ॥ ५६ ॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! प्रातःकाल शान्तनुनन्दन भीष्म ने सैनिकों को युद्ध के लिये तैयार होने की आज्ञा दी । पितामह भीष्म ने उस दिन आपके पुत्रों की विजय की इच्छा से गरुड व्यूह नाम के दुर्भेद्य व्यूह की रचना की । उस व्यूह के मुख पर स्वयं देवव्रत भीष्म स्थित हुए । दोनों नेत्रों के स्थान पर महात्मा द्रोणाचार्य और यादवश्रेष्ठ कृतवर्मा स्थित हुए ॥१।३॥ सम्पूर्ण त्रिगर्त, कैकेय और वाटधान देश की सेना साथ लेकर यशस्वी अश्वत्थामा और कृपाचार्य मस्तक के स्थान पर खड़े हुए । मद्रक, सिन्धु-सौवीर, पञ्चनद आदि देशों की सेना के साथ भूरिश्रवा, शल, शल्य, भगदत्त और जयद्रथ उसकी ग्रीवा के स्थान पर स्थित हुए । अपने अनुगत राजाओं और भाइयों सहित राजा दुर्योधन उसके पृष्ठभाग की रक्षा करने लगे ॥४।६॥ अवन्ति देश के विन्द और अनुविन्द अपने साथ काम्बोज, शक, शूरसेन आदि देशों की सेना लेकर उसके पुच्छ स्थान पर खड़े हुए । मगध और कलिङ्ग देश की सेना तथा दासेरकगण उसके दक्षिण पक्ष की रक्षा में नियुक्त हुए । कारूष, विकुञ्ज, मुण्ड, कुण्डीवृष

व्यूढं दृष्ट्वा तु तत्सैन्यं सव्यसाची परन्तपः ।
धृष्टद्युम्नेन सहितः प्रत्यव्यूहत संयुगे ॥ १० ॥
अर्धचन्द्रेण व्यूहेन व्यूहन्तमतिदारुणम् ।
दक्षिणं शृङ्गमास्थाय भीमसेनो व्यरोचत ॥ ११ ॥
नानाशस्त्रौघसम्पन्नैर्नानादेश्यैर्नृपैर्वृतः ।
तदन्वेव विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥ १२ ॥
तदनन्तरमेवाऽऽसीन्नीलो नीलायुधैः सह ।
नीलादनन्तरश्चैव धृष्टकेतुर्महाबलः ॥ १३ ॥
चेदिकाशिकरूषैश्च पौरवैरपि संवृतः ।
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च पञ्चालाश्च प्रभद्रकाः ॥ १४ ॥
मध्ये सैन्यस्य महतः स्थिता युद्धाय भारत ।
तत्रैव धर्मराजोऽपि गजानीकेन संवृतः ॥ १५ ॥
ततस्तु सात्यकी राजन्द्रौपद्याः पञ्च चाऽऽत्मजाः ।
अभिमन्युस्ततः शूर इरावांश्च ततः परम् ॥ १६ ॥
भैमसेनिस्ततो राजन्केकयाश्च महारथाः ।
ततोऽभूद् द्विपदां श्रेष्ठो वामं पार्श्वमुपाश्रितः ॥ १७ ॥
सर्वस्य जगतो गोप्ता गोप्ता यस्य जनार्दनः ।
एवमेतं महाव्यूहं प्रत्यव्यूहन्त पाण्डवाः ॥ १८ ॥
वधार्थं तव पुत्राणां तत्पक्षं ये च सङ्गताः ।
ततः प्रववृते युद्धं व्यतिषक्तरथद्विपम् ॥ १९ ॥

आदि की सेना के साथ राजा बृहद्बल उसके वामपक्ष की रक्षा में नियुक्त हुए ॥७।९॥ हे महाराज ! शत्रु पक्ष की ऐसी व्यूह-रचना देखकर धृष्टद्युम्न के साथ मिलकर अर्जुन ने भी अपनी सेना का व्यूह बनाया। हे राजेन्द्र ! पाण्डवों ने आपकी सेना के व्यूह के विरुद्ध अर्द्धचन्द्र नाम के दुर्भेद्य व्यूह की रचना की। उसके दक्षिण भाग में अनेक शस्त्र धारण किये हुए अनेक देशों के राजाओं के साथ भीमसेन स्थित हुए। उनके पीछे विराट और महारथी द्रुपद और उनके पीछे नीलायुधधारिणी सेना सहित राजा नील स्थित हुए। नील के पश्चात् चेदि, काशी, करूष आदि देशों की सेना के साथ धृष्टकेतु स्थित हुए। धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, पाञ्चालगण और प्रभद्रकगण व्यूह के मध्य भाग में स्थित हुए ॥१०।१५॥ वहीं पर हाथियों के दल को साथ लिये धर्मराज युधिष्ठिर स्थित हुए। वामभाग में सात्यकि, द्रौपदी के पाँचों पुत्र, शूर अभिमन्यु, इरावान्, घटोत्कच और महारथी कैकयगण स्थित हुए। इसके पश्चात् ही सब जगत् की रक्षा

तावकानां परेषां च निघ्नतामितरेतरम् ।
हयौघाश्च रथौघाश्च तत्र तत्र विशाम्पते ॥ २० ॥
सम्पतन्तो व्यदृश्यन्त निघ्नन्तस्ते परस्परम् ।
धावतां च रथौघानां निघ्नतां च पृथक्पृथक् ॥ २१ ॥
बभूव तुमुलः शब्दो विमिश्रो दुन्दुभिस्वनैः ।
दिवस्पृङ् नरवीराणां निघ्नतामितरेतरम् ।
सम्प्रहारे सुतुमुले तव तेषां च भारत ॥ २२ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि तृतीये युद्धदिवसे परस्परव्यूहरचनायां षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५६॥

करनेवाले वासुदेव के द्वारा सुरक्षित पुरुषोत्तम महावीर अर्जुन स्थित हुए। हे राजेन्द्र! पाण्डवों ने आपके पुत्रों और उनके पक्षवाले राजाओं को मारने के लिए इस व्यूह की रचना की ॥१५।१९॥ इसके पश्चात् दोनों पक्ष के रथी, घोड़ों और हाथियों के सवार तथा पैदल वीर परस्पर युद्ध करने लगे। वे परस्पर घायल होने और मारे जाने लगे। स्थान-स्थान पर रथों और हाथियों पर सवार झुण्ड के झुण्ड वीरगण युद्ध करते और एक दूसरे को मारते देख पड़ने लगे। उस तुमुल संग्राम में परस्पर प्रहार करते हुए दोनों पक्ष के वीर पुरुषों का कोलाहल, चीत्कार और नगाड़ों का गम्भीर शब्द आकाश तक गूँज उठा ॥१९।२२॥

भीष्मपर्व का छप्पनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५६ ॥



अथ सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

सञ्जय उवाच— ततो व्यूढेष्वनीकेषु तावकेषु परेषु च ।
धनञ्जयो रथानीकमवधीत्तव भारत ॥ १ ॥
शरैरतिरथो युद्धे दारयन्रथयूथपान् ।
ते वध्यमानाः पार्थेन कालेनेव युगक्षये ॥ २ ॥
धार्तराष्ट्रा रणे यत्नात्पाण्डवान्प्रत्ययोधयन् ।
प्रार्थयाना यशो दीप्तं मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥ ३ ॥
एकाग्रमनसो भूत्वा पाण्डवानां वरूथिनीम् ।
बभञ्जुर्बहुशो राजंस्ते चाऽसजन्त संयुगे ॥ ४ ॥

सत्तावनवाँ अध्याय ॥ ५७ ॥

सञ्जय ने कहा —हे महाराज! दोनों पक्ष की सेना जब व्यूह बना करके युद्ध करने लगी तब समर्थ महावीर अर्जुन बाणवर्षा से रथरक्षकों को गिरा-गिराकर रथी वीरों को मारने लगे। यश प्राप्त करने की इच्छा से कौरवपक्ष के सब वीर पाण्डवपक्ष के वीरों के साथ यथाशक्ति युद्ध करने लगे। उन्होंने कई बार पाण्डव-सेना को छिन्न-भिन्न कर दिया। पाण्डवपक्ष के वीर भी बारम्बार कौरव-सेना को छिन्-

द्रवद्भिरथ भग्नैश्च परिवर्तद्भिरेव च ।
पाण्डवैः कौरवेयैश्च न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ ५ ॥
उदतिष्ठद्रजो भौमं छादयानं दिवाकरम् ।
न दिशः प्रदिशो वापि तत्र हन्युः कथं नराः ॥ ६ ॥
अनुमानेन संज्ञाभिर्नामगोत्रैश्च संयुगे ।
वर्तते च तथा युद्धं तत्र तत्र विशाम्पते ॥ ७ ॥
न व्यूहो भिद्यते तत्र कौरवाणां कथञ्चन ।
रक्षितः सत्यसन्धेन भारद्वाजेन संयुगे ॥ ८ ॥
तथैव पाण्डवानां च रक्षितः सव्यसाचिना ।
नाऽभिद्यत महाव्यूहो भीमेन च सुरक्षितः ॥ ९ ॥
सेनाग्रादपि निष्पत्य प्रायुध्यंस्तत्र मानवाः ।
उभयोः सेनयो राजन्व्यतिपक्तरथद्विपाः ॥ १० ॥
हयारोहैर्हयारोहाः पात्यन्ते स्म महाहवे ।
ऋष्टिभिर्विमलाभिश्च प्रासैरपि च संयुगे ॥ ११ ॥
रथी रथिनमासाद्य शरैः कनकभूषणैः ।
पातयामास समरे तस्मिन्नतिभयङ्करे ॥ १२ ॥
गजारोहा गजारोहान्नाराचशरतोमरैः ।
संसक्तान्पातयामासुस्तव तेषां च सर्वशः ॥ १३ ॥

भिन्न और अस्त-व्यस्त करने लगे ॥१।४॥ दोनों पक्ष की सेना इधर-उधर दौड़ने, भागने और फिर लौटने के कारण एक मे ही ऐसी मिल गई कि कौन किस पक्ष का है, यह जानना बड़ा कठिन सा हो गया। रणक्षेत्र से उड़ी हुई धूलि ने भगवान् सूर्य को और सब दिशाओं को क्षणभर में ही ढककर चारों ओर घने अँधेरे का राज्य कर दिया। उस समय केवल अनुमान और नाम-गोत्र के उच्चारण पर विश्वास करके लोग एक दूसरे पर प्रहार करते थे; कोई किसी को पहचान नहीं पाता था ॥५।७॥ कौरवपक्ष के व्यूह की रक्षा महारथी द्रोणाचार्य कर रहे थे, और पाण्डव-पक्ष के व्यूह की रक्षा महावीर भीमसेन और अर्जुन कर रहे थे। इस कारण कोई भी पक्ष दूसरे पक्ष के व्यूह को तोड़ नहीं पाता था। दोनों ओर के सैनिक वीर सेनाव्यूह के अग्रभाग से निकल-निकलकर युद्ध कर रहे थे। रथ, हाथी आदि उनके वाहन एक दूसरे से भिड़े हुए देख पड़ते थे। उस भयङ्कर सग्राम में घुड़सवार योद्धा तीक्ष्ण ऋष्टि, प्रास आदि शस्त्रों से घुड़सवारों को मारते और गिराते थे ॥८।११॥ रथी योद्धा सुवर्ण भूषित बाणों से अपने प्रतिद्वन्द्वी रथी वीरों को मारते और गिराते थे। हाथियों पर सवार योद्धा नाराच बाण, तोमर आदि चलाकर गजारूढ वीरों को मारते थे। किसी हाथी के सवार ने दूसरे को केश पकड़कर खींच लिया और खड्ग

कश्चिदुत्पत्य समरे वरवारणमास्थितः ।
केशपक्षे परामृश्य जहार समरे शिरः ॥ १४ ॥
अन्ये द्विरददन्ताग्रनिर्भिन्नहृदया रणे ।
वेमुश्च रुधिरं वीरा निःश्वसन्तः समन्ततः ॥ १५ ॥
कश्चित्करिविषाणस्थो वीरो रणविशारदः ।
प्रावेपच्छक्तिनिर्भिन्नो गजशिक्षास्त्रवेदिना ॥ १६ ॥
पत्तिसङ्घा रणे पत्तीन्भिन्दिपालपरश्वधैः ।
न्यपातयन्त संहृष्टाः परस्परकृतागसः ॥ १७ ॥
रथी च समरे राजन्नासाद्य गजयूथपम् ।
सगजं पातयामास गजी च रथिनां वरम् ॥ १८ ॥
रथिनं च हयारोहः प्रासेन भरतर्षभ ।
पातयामास समरे रथी च हयसादिनम् ॥ १९ ॥
पदाती रथिनं संख्ये रथी चापि पदातिनम् ।
न्यपातयच्छितैः शस्त्रैः सेनयोरुभयोरपि ॥ २० ॥
गजारोहा हयारोहान्पातयाञ्चक्रिरे तदा ।
हयारोहा गजस्थांश्च तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ २१ ॥
गजारोहवरैश्चापि तत्र तत्र पदातयः ।
पातिताः समदृश्यन्त तैश्चापि गजयोधिनः ॥ २२ ॥
पत्तिसङ्घा हयारोहैः सादिसङ्घाश्च पत्तिभिः ।
पात्यमाना व्यदृश्यन्त शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २३ ॥

से उसका सिर काट डाला। हाथियों के दाँतों से हृदय फट जाने पर कुछ वीर बारम्बार श्वास लेते हुए मुख से रक्त वहा रहे थे। कोई युद्धनिपुण वीर हाथी के दाँत पर पाँव रखकर चढ गया, शत्रु ने शक्ति मारकर उसे अधमरा कर दिया और वह काँप-कर गिर पड़ा ॥१२।१६॥ पैदल सिपाहियों के झुण्ड के झुण्ड युद्ध में भिन्दिपाल, परश्वध आदि शस्त्रों से पैदल सेना का संहार करते देख पड़ते थे। किसी रथी ने हाथी के सवार को, हाथी के सवार ने रथी को, घोड़े के सवार ने प्रास से रथी को, रथी ने घोडे के सवार को, पैदल ने तीक्ष्ण शस्त्रों से रथी को और रथी ने पैदल को मार गिराया। दोनों सेनाओं मे यही मार-काट देख पडती थी ॥१७।२०॥ हाथियों के सवार घुडसवारों को और घुड़सवार हाथियों के सवारों को मारने लगे। हाथियों के सवार पैदलों को और पैदल वीर हाथियों के सवारों को, ऐसे ही घुड़सवार पैदलों को और पैदल घुड़सवारों को सहस्रों की संख्या मे मार-मारकर गिरा रहे थे ॥२१।२३॥

ध्वजैस्तत्राऽपविद्धैश्च कार्मुकैस्तोमरैस्तथा ।
प्रासैस्तथा गदाभिश्च परिघैः कम्पनैस्तथा ॥ २४ ॥
शक्तिभिः कवचैश्चित्रैः कणपैरंकुशैरपि ।
निस्त्रिंशैर्विमलैश्चाऽपि स्वर्णपुङ्खैः शरैस्तथा ॥ २५ ॥
परिस्तोमैः कुथाभिश्च कम्बलैश्च महाधनैः ।
भूर्भाति भरतश्रेष्ठ स्रग्दामैरिव चित्रिता ॥ २६ ॥
नराश्वकायैः पतितैर्दन्तिभिश्च महाहवे ।
अगम्यरूपा पृथिवी मांसशोणितकर्दमा ॥ २७ ॥
प्रशशाम रजो भौमं व्युक्षितं रणशोणितैः ।
दिशश्च विमलाः सर्वाः सम्बभूवुर्जनेश्वर ॥ २८ ॥
उत्थितान्यगणेयानि कबन्धानि समन्ततः ।
चिह्नभूतानि जगतो विनाशार्थाय भारत ॥ २९ ॥
तस्मिन्युद्धे महारौद्रे वर्तमाने सुदारुणे ।
प्रत्यदृश्यन्त रथिनो धावमानाः समन्ततः ॥ ३० ॥
ततो भीष्मश्च द्रोणश्च सैन्धवश्च जयद्रथः ।
पुरुमित्रो जयो भोजः शल्यश्चापि ससौबलः ॥ ३१ ॥
एते समरदुर्धर्षाः सिंहतुल्यपराक्रमाः ।
पाण्डवानामनीकानि बभंजुः स्म पुनः पुनः ॥ ३२ ॥
तथैव भीमसेनोऽपि राक्षसश्च घटोत्कचः ।
सात्यकिश्चेकितानश्च द्रौपदेयाश्च भारत ॥ ३३ ॥

असंख्य धनुष, ध्वजा, तोमर, विचित्र कम्बल, महामूल्य कम्बल, प्रास, परिघ, गदा, कम्पन, शक्ति, कवच, विचित्र कणप, अंकुश, निस्त्रिंश, स्वर्णपुङ्ख बाण, क्षुद्र कम्बलासन आदि वस्तुएँ इधर-उधर पड़ी हुई थीं। उनसे वह युद्धभूमि विचित्र मालाओं से विभूषित सी जान पड़ती थी। हाथियों, घोड़ों और मनुष्यों के शवों के ढेर से वह भूमि अगम्य सी हो रही थी। सब ओर मांस और रक्त की कीचड़ देख पड़ती थी। युद्ध में इतना रक्त गिरा कि वह उठी हुई धूलि उससे बैठ गई। सब दिशाएँ निर्मल हो गईं ॥२४।२८॥ जगत् के नाश के चिह्न स्वरूप असंख्य कबन्ध उठने लगे। उस महादारुण युद्ध में इधर-उधर सब योद्धा दौड़ते देख पड़ने लगे। उस भयानक समर में सिंह के समान पराक्रमी समर-दुर्द्धर्ष महावीर भीष्म, द्रोण, जयद्रथ, पुरुमित्र, जय, भोज, शल्य और शकुनि आदि महावीर बारम्बार पाण्डवसेना के व्यूह को तोड़ने और उसका संहार करने लगे ॥२९।३२॥ पूर्व समय में जैसे देवताओं ने दानवों को पीड़ित

तावकांस्तव पुत्रांश्च सहितान्सर्वराजभिः ।
द्रावयामासुराजौ ते त्रिदशा दानवानिव ॥ ३४ ॥
तथा ते समरेऽन्योन्यं निघ्नन्तः क्षत्रियर्षभाः ।
रक्तोक्षिता घोररूपा विरेजुर्दानवा इव ॥ ३५ ॥
विनिर्जित्य रिपून्वीराः सेनयोरुभयोरपि ।
व्यदृश्यन्त महामात्रा ग्रहा इव नभस्तले ॥ ३६ ॥
ततो रथसहस्रेण पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
अभ्ययात्पाण्डवं युद्धे राक्षसं च घटोत्कचम् ॥ ३७ ॥
तथैव पाण्डवाः सर्वे महत्या सेनया सह ।
द्रोणभीष्मौ रणे यत्तौ प्रत्युद्ययुररिन्दमौ ॥ ३८ ॥
किरीटी च ययौ क्रुद्धः समन्तात्पार्थिवोत्तमान् ।
आर्जुनिः सात्यकिश्चैव ययतुः सौबलं बलम् ॥ ३९ ॥
ततः प्रववृते भूयः संग्रामो लोमहर्षणः ।
तावकानां परेषां च समरे विजयैषिणाम् ॥ ४० ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि तृतीययुद्धदिवसे संकुलयुद्धे सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

किया था वैसे ही भीमसेन, घटोत्कच, सात्यकि, चेकितान और द्रौपदी के पाँचों पुत्रों ने, अपने पक्ष के अन्य राजाओं के साथ मिलकर, आपके पुत्रों को युद्ध में मार भगाया। युद्ध में परस्पर प्रहार करते हुए क्षत्रियश्रेष्ठ वीर रक्त से सनेहुए, घोररूप, दानव-से जान पड़ने लगे ॥३३।३४।३५॥ दोनों सेनाओं के वीर-गण शत्रुओं को जीतकर, आकाश में प्रधान ग्रहों के समान, युद्धभूमि में विराजमान हुए। हे महाराज! तब आपके पुत्र राजा दुर्योधन सहस्र रथ साथ लेकर राक्षस घटोत्कच से युद्ध करने को आगे बढ़े। उधर शत्रुदमन पाण्डवगण भी यत्नपूर्वक द्रोण और भीष्म से युद्ध करने के लिए चले ॥३६।३७।३८॥ क्रोधित अर्जुन शत्रुपक्ष के राजाओं को मारने लगे। अभिमन्यु और सात्यकि दोनों ही वीर शकुनि की सेना पर आक्रमण करने चले। हे राजेन्द्र! इसके अनन्तर संग्राम में विजय चाहनेवाले दोनों पक्ष के वीर फिर रोमहर्षण घोर युद्ध करने लगे ॥३९।४०॥

भीष्मपर्व का सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५७ ॥

अथ अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

सञ्जय उवाच—ततस्ते पार्थिवाः क्रुद्धाः फाल्गुनं वीक्ष्य संयुगे ।
रथैरनेकसाहस्रैः समन्तात्पर्यवारयन् ॥ १ ॥
अथैनं रथवृन्देन कोष्ठकीकृत्य भारत ।

शरैः सुबहुसाहस्रैः समन्तादभ्यवारयन् ॥ २ ॥
शक्तीश्च विमलास्तीक्ष्णा गदाश्च परिघैः सह ।
प्रासान्परश्वधांश्चैव मुद्गरान्मुसलानपि ॥ ३ ॥
चिक्षिपुः समरे क्रुद्धाः फाल्गुनस्य रथं प्रति ।
शस्त्राणामथ तां वृष्टिं शलभानामिवाऽऽयतिम् ॥ ४ ॥
रुरोध सर्वतः पार्थः शरैः कनकभूषणैः ।
तत्र तल्लाघवं दृष्ट्वा बीभत्सोरतिमानुषम् ॥ ५ ॥
देवदानवगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः ।
साधु साध्विति राजेन्द्र फाल्गुनं प्रत्यपूजयन् ॥ ६ ॥
सात्यकिश्चाऽभिमन्युश्च महत्या सेनया वृतौ ।
गान्धारान्समरे शूराञ्जग्मतुः सहसौबलान् ॥ ७ ॥
तत्र सौबलकाः क्रुद्धा वार्ष्णेयस्य रथोत्तमम् ।
तिलशश्चिच्छिदुः क्रोधाच्छस्त्रैर्नानाविधैर्युधि ॥ ८ ॥
सात्यकिस्तु रथं त्यक्त्वा वर्तमाने भयावहे ।
अभिमन्यो रथं तूर्णमारुरोह परन्तपः ॥ ९ ॥
तावेकरथसंयुक्तौ सौबलेयस्य वाहिनीम् ।
व्यधमेतां शितैस्तूर्णं शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ १० ॥
द्रोणभीष्मौ रणे यत्तौ धर्मराजस्य वाहिनीम् ।
नाशयेतां शरैस्तीक्ष्णैः कङ्कपत्रपरिच्छदैः ॥ ११ ॥

अट्ठावनवाँ अध्याय ॥ ५८ ॥

सञ्जय ने कहा– हे महाराज ! कौरवपक्ष के राजा लोग महावीर अर्जुन को युद्ध के लिए सामने आते देखकर, क्रोध के आवेश में आकर, असंख्य रथों से उन्हें घेरकर उनके रथ के ऊपर बाण, तीक्ष्ण शक्ति, गदा, परिघ, प्रास, परशु, मुद्गर, मुशल आदि विविध शस्त्रों की वर्षा करने लगे ॥१।४॥ अर्जुन ने भी टीड़ियों की पङ्क्ति के समान आती हुई उस शस्त्रवर्षा को स्वर्णपुङ्ख बाणों से मध्य में ही रोक दिया। अर्जुन की यह असाधारण स्फूर्ति देखकर देव, दानव, गन्धर्व, पिशाच, नाग, राक्षस आदि सब दर्शक "धन्य-धन्य" कहकर उनकी प्रशंसा करने लगे ॥५।६॥ सात्यकि और अभिमन्यु दोनों वीर बहुत सी सेना साथ लेकर शूर गान्धार सेना और शकुनि से युद्ध करने चले। शकुनि के सैनिकों ने क्रुद्ध होकर सात्यकि के श्रेष्ठ रथ को शस्त्रों से खण्ड-खण्ड करके काट डाला। तब सात्यकि उस भयानक समय में अभिमन्यु के रथ पर चले गये। दोनों वीर एक ही रथ पर बैठकर तीक्ष्ण बाणों से शकुनि की सेना का संहार करने

ततो धर्मसुतो राजा माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
मिषतां सर्वसैन्यानां द्रोणानीकमुपाद्रवन् ॥ १२ ॥
तत्राऽऽसीत्सुमहद्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
यथा देवासुरं युद्धं पूर्वमासीत्सुदारुणम् ॥ १३ ॥
कुर्वाणौ सुमहत्कर्म भीमसेनघटोत्कचौ ।
दुर्योधनस्ततोऽभ्येत्य तावुभावप्यवारयत् ॥ १४ ॥
तत्राऽद्भुतमपश्याम हैडिम्बस्य पराक्रमम् ।
अतीत्य पितरं युद्धे यदयुध्यत भारत ॥ १५ ॥
भीमसेनस्तु संक्रुद्धो दुर्योधनममर्षणम् ।
हृद्यविध्यत्पृषत्केन प्रहसन्निव पाण्डवः ॥ १६ ॥
ततो दुर्योधनो राजा प्रहारवरपीडितः ।
निषसाद रथोपस्थे कश्मलं च जगाम ह ॥ १७ ॥
तं विसंज्ञं विदित्वा तु त्वरमाणोऽस्य सारथिः ।
अपोवाह रणाद्राजंस्ततः सैन्यमभज्यत ॥ १८ ॥
ततस्तां कौरवीं सेनां द्रवमाणां समन्ततः ।
निघ्नन्भीमः शरैस्तीक्ष्णैरनुवव्राज पृष्ठतः ॥ १९ ॥
पार्षतश्च रथश्रेष्ठो धर्मपुत्रश्च पाण्डवः ।
द्रोणस्य पश्यतः सैन्यं गाङ्गेयस्य च पश्यतः ॥ २० ॥

लगे ॥७।१०॥ उधर द्रोण और भीष्म सावधान होकर कङ्कपत्रयुक्त तीक्ष्ण बाणों से युधिष्ठिर की सेना को नष्ट करने लगे। तब राजा युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव सब सैनिकों के सामने ही द्रोण की सेना को मारने लगे। जैसे पूर्वकाल में देवताओं और दैत्यों का युद्ध हुआ था वैसे ही वे लोग घोर युद्ध करने लगे ॥११।१३॥ भीमसेन और घटोत्कच को युद्ध में अद्भुत कर्म करते देखकर राजा दुर्योधन उनके सामने गये और उन्हें रोकने का यत्न करने लगे। हे राजेन्द्र ! उस समय हम लोगों ने भीमसेन के पुत्र घटोत्कच का ऐसा अद्भुत पराक्रम देखा कि हम चकित से रह गये। वह उस समय भीमसेन से भी बढ़कर पराक्रम दिखाने लगा। भीमसेन ने क्रुद्ध होकर असहनशील दुर्योधन के हृदय में एक तीक्ष्ण बाण मारा। भीमसेन के वज्रतुल्य बाण की चोट से मूर्छित होकर राजा दुर्योधन रथ पर गिर पड़े। उन्हें अचेत देखकर सारथी शीघ्र ही रणभूमि से हटा ले गया। दुर्योधन की यह दशा देखकर सब सैनिक निरुत्साह और भयभीत होकर भागने लगे ॥१४।१८॥ कौरव-सेना को इधर-उधर भागते हुए देखकर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करते हुए भीमसेन उसके पीछे दौड़े। राजा युधिष्ठिर और धृष्टद्युम्न दोनों वीर द्रोणाचार्य और भीष्म के सामने ही उनकी सेना को तीक्ष्ण बाणों से मार गिराने लगे। महारथी भीष्म और द्रोण आपके

जघ्नतुर्विशिखैस्तीक्ष्णैः परानीकविनाशनैः ।
द्रवमाणं तु तत्सैन्यं तव पुत्रस्य संयुगे ॥ २१ ॥
नाऽशक्नुतां वारयितुं भीष्मद्रोणौ महारथौ ।
वार्यमाणं च भीष्मेण द्रोणेन च महात्मना ॥ २२ ॥
विद्रवत्येव तत्सैन्यं पश्यतोर्द्रोणभीष्मयोः ।
ततो रथसहस्रेषु विद्रवत्सु ततस्ततः ॥ २३ ॥
तावास्थितावेकरथं सौभद्रशिनिपुङ्गवौ ।
सौबलीं समरे सेनां शातयेतां समन्ततः ॥ २४ ॥
शुशुभाते तदा तौ तु शैनेयकुरुपुङ्गवौ ।
अमावास्यां गतौ यद्वत्सोमसूर्यौ नभस्तले ॥ २५ ॥
अर्जुनस्तु ततः क्रुद्धस्तवसैन्यं विशाम्पते ।
ववर्ष शरवर्षेण धाराभिरिव तोयदः ॥ २६ ॥
वध्यमानं ततस्तत्र शरैः पार्थस्य संयुगे ।
दुद्राव कौरवं सैन्यं विषाद्भयकम्पितम् ॥ २७ ॥
द्रवतस्तान्समालक्ष्य भीष्मद्रोणौ महारथौ ।
न्यवारयेतां संरब्धौ दुर्योधनहितैषिणौ ॥ २८ ॥
ततो दुर्योधनो राजा समाश्वस्य विशाम्पते ।
न्यवर्तयत तत्सैन्यं द्रवमाणं समन्ततः ॥ २९ ॥
यत्र यत्र सुतस्तुभ्यं यं यं पश्यति भारत ।
तत्र तत्र न्यवर्तन्त क्षत्रियाणां महारथाः ॥ ३० ॥

भागे हुए सैनिकों को रोक नहीं सके। वे उन सैनिकों को मना करते थे, तो भी भयभीत सैनिक भागते ही जाते थे ॥१९।२३॥ सहस्रों रथ इधर उधर भागते दिख पड़ रहे थे। इसी समय अमावस्या के दिन आकाश स्थित सोम सूर्य के समान एक रथ पर स्थित शिनिकुलभूषण सात्यकि और अभिमन्यु दोनों वीर, चारों ओर बाण बरसाकर, शकुनि की सेना को नष्ट करने लगे। अर्जुन भी क्रोध के वश होकर आपकी सेना के ऊपर, मेघों की जलवर्षा के समान, बाण-वर्षा करने लगे ॥२३।२६॥ समग्र कौरव सेना अर्जुन के बाणों से पीड़ित होकर, विषाद और भय से अभिभूत हो, युद्धभूमि से भागने लगी। दुर्योधन के हितैषी महारथी भीष्म और द्रोण सैनिकों को भागते देखकर उन्हें लौटाने की चेष्टा करने लगे। राजा दुर्योधन ने चारों ओर भागती हुई सेना को आश्वस्त करके लौटाया ॥२७॥२९॥ जिसने जहाँ से आपके पुत्र को देखा वह वहीं से लौट पड़ा। महारथी क्षत्रियों को लौटते देखकर और-और साधारण सैनिक

तान्निवृत्तान्समीक्ष्यैव ततोऽन्येऽपीतरे जनाः ।
अन्योन्यस्पर्धया राजँल्लज्जया चाऽवतस्थिरे ॥ ३१ ॥
पुनरावर्ततां तेषां वेग आसीद्विशाम्पते ।
पूर्यतः सागरस्येव चन्द्रस्योदयनं प्रति ॥ ३२ ॥
सन्निवृत्तांस्ततस्तांस्तु दृष्ट्वा राजा सुयोधनः ।
अब्रवीत्त्वरितो गत्वा भीष्मं शान्तनवं वचः ॥ ३३ ॥
पितामह निबोधेदं यत्त्वां वक्ष्यामि भारत ।
नाऽनुरूपमहं मन्ये त्वयि जीवति कौरव ॥ ३४ ॥
द्रोणे चाऽस्त्रविदां श्रेष्ठे सपुत्रे ससुहृज्जने ।
कृपे चैव महेष्वासे द्रवते यद्वरूथिनी ॥ ३५ ॥
न पाण्डवान्प्रतिबलांस्तव मन्ये कथञ्चन ।
तथा द्रोणस्य संग्रामे द्रौणेश्चैव कृपस्य च ॥ ३६ ॥
अनुग्राह्याः पाण्डुसुतास्तव नूनं पितामह ।
यथेमां क्षमसे वीर वध्यमानां वरूथिनीम् ॥ ३७ ॥
सोऽस्मि वाच्यस्त्वया राजन्पूर्वमेव समागमे ।
न योत्स्ये पाण्डवान्संख्ये नाऽपि पार्षतसात्यकी ॥ ३८ ॥
श्रुत्वा तु वचनं तुभ्यमाचार्यस्य कृपस्य च ।
कर्णेन सहितः कृत्यं चिन्तयानस्तदैव हि ॥ ३९ ॥

भी स्पर्धा और लज्जा के कारण भागना छोड़कर खड़े हो गये । हे महाराज ! चन्द्रमा का उदय देखकर समुद्र जैसे उमड़ पड़ता है वैसे ही सब सेना राजा को देखकर वेग से लौट पड़ी ॥३०।३२॥ योद्धाओं को लौटते देखकर राजा दुर्योधन ने शीघ्रता से भीष्म के पास जाकर कहा — हे पितामह ! मैं आपसे जो कहता हूँ, सो सुनिए । पुत्र और सुहृदों सहित अस्त्र विद्या निपुण द्रोणाचार्य के, आपके और महाधनुर्द्धर कृपाचार्य के जीवित रहते मेरी सेना का इस प्रकार भागना आप लोगों के पराक्रम के अनुरूप मैं नहीं मान सकता । मैं किसी प्रकार यह मानने के लिए प्रस्तुत नहीं हूँ कि पाण्डवगण संग्राम में द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा और आपके समान बलशाली पराक्रमी हैं, या वे आप लोगों को अपने पराक्रम से अशक्त बना सकते हैं ॥३३।३६॥ आप इस प्रकार सेना का नाश होते देखकर भी क्षमा कर रहे हैं, इससे मुझे निश्चय जान पड़ता है कि आप पाण्डवों पर कृपा करके उन्हें ऐसा करने में बाधा नहीं पहुँचाते । हे पितामह ! यदि आपका ऐसा ही अभिप्राय था, तो पहले सम्मति के समय ही आपको कह देना था कि "मैं धृष्टद्युम्न, सात्यकि और पाण्डवों से युद्ध नहीं करूँगा ।" मैंने केवल आपके और द्रोणाचार्य तथा कृपाचार्य के वचन पर विश्वास करके ही, कर्ण के साथ कर्तव्य की सम्मति करके यह युद्ध आरम्भ

यदि नाऽहं परित्याज्यो युवाभ्यामिह संयुगे ।
विक्रमेणाऽनुरूपेण युध्येतां पुरुषर्षभौ ॥ ४० ॥
एतच्छ्रुत्वा वचो भीष्मः प्रहसन्वै मुहुर्मुहुः ।
अब्रवीत्तनयं तुभ्यं क्रोधादुद्वृत्य चक्षुषी ॥ ४१ ॥
बहुशोऽसि मया राजंस्तथ्यमुक्तो हितं वचः ।
अजेयाः पाण्डवा युद्धे देवैरपि सवासवैः ॥ ४२ ॥
यत्तु शक्यं मया कर्तुं वृद्धेनाऽद्य नृपोत्तम ।
करिष्यामि यथाशक्ति प्रेक्षेदानीं सबान्धवः ॥ ४३ ॥
अद्य पाण्डुसुतानेकः ससैन्यान्सह बन्धुभिः ।
सोऽहं निवारयिष्यामि सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ ४४ ॥
एवमुक्ते तु भीष्मेण पुत्रास्तव जनेश्वर ।
दध्मुः शङ्खान्मुदा युक्ता भेरीः सञ्जघ्निरे भृशम् ॥ ४५ ॥
पाण्डवा हि ततो राजञ्श्रुत्वा तं निनदं महत् ।
दध्मुः शङ्खांश्च भेरींश्च मुरजांश्चाऽप्यनादयन् ॥ ४६ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि तृतीय युद्धदिवसे भीष्मदुर्योधनसंवादे अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५८॥

किया है। यदि युद्ध में आप लोग मेरा साथ नहीं छोड़ना चाहते तो अब अपने पराक्रम के अनुरूप युद्ध करके शत्रुओं को नष्ट कीजिए ॥३७।४०॥ दुर्योधन के ये वचन सुनकर महावीर भीष्म बारम्बार हँसकर और फिर क्रोध से नेत्र लाल करके अपने पुत्र से बोले—हे राजेन्द्र ! मैंने बहुत बार तुमसे सत्य और हितकारी वचन कहे हैं। मैं तुमसे कई बार कह चुका हूँ कि इन्द्रसहित सब देवता भी युद्ध में पाण्डवों को पराजय नहीं कर सकते। मैं इस समय वृद्ध और गतायु होकर भी जो कुछ कर सकता हूँ वह यथाशक्ति करूंगा। तुम अपने भाइयों सहित मेरा पराक्रम देखो। इस समय सब लोगों के सामने मैं अकेला ही सेना और भाइ-बन्धुओं सहित पाण्डवों को रोकूंगा ॥४१।४४॥ हे महाराज ! महारथी भीष्म के ये वचन सुनकर आपके पुत्रगण प्रसन्न होकर शङ्ख बजाने लगे। समरभूमि के मध्य कौरवसेना में नगाड़े आदि बाजे बजने लगे। पाण्डवगण भी उस महानाद को सुनकर शङ्ख, भेरी, मुरज आदि बाजे बजाने लगे ॥४५।४६॥

भीष्मपर्व का अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५८ ॥

अथ एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—प्रतिज्ञाते ततस्तस्मिन्युद्धे भीष्मेण दारुणे ।
क्रोधितो मम पुत्रेण दुःखितेन विशेषतः ॥ १ ॥

भीष्मः किमकरोत्तत्र पाण्डवेयेषु भारत ।
पितामहे वा पञ्चालास्तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ २ ॥

सञ्जय उवाच — गतपूर्वाह्णभूयिष्ठे तस्मिन्नहनि भारत ।
पश्चिमां दिशमास्थाय स्थिते चाऽपि दिवाकरे ॥ ३ ॥
जयं प्राप्तेषु हृष्टेषु पाण्डवेषु महात्मसु ।
सर्वधर्मविशेषज्ञः पिता देवव्रतस्तव ॥ ४ ॥
अभ्ययाज्जवनैरश्वैः पाण्डवानामनीकिनीम् ।
महत्या सेनया गुप्तस्तव पुत्रैश्च सर्वशः ॥ ५ ॥
प्रावर्तत ततो युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
अस्माकं पाण्डवैः सार्धमनयात्तव भारत ॥ ६ ॥
धनुषां कूजतां तत्र तलानां चाऽभिहन्यताम् ।
महान्समभवच्छब्दो गिरीणामिव दीर्यताम् ॥ ७ ॥
तिष्ठ स्थितोऽस्मि विद्ध्येनं निवर्तस्व स्थिरो भव ।
स्थिरोऽस्मि प्रहरस्वेति शब्दोऽश्रूयत सर्वशः ॥ ८ ॥
काञ्चनेषु तनुत्रेषु किरीटेषु ध्वजेषु च ।
शिलानामिव शैलेषु पतितानामभूद् ध्वनिः ॥ ९ ॥
पतितान्युत्तमाङ्गानि बाहवश्च विभूषिताः ।
व्यचेष्टन्त महीं प्राप्य शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १० ॥

उनसठवाँ अध्याय ॥ ५९ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! युद्ध में मेरे दुःखित पुत्र की प्रार्थना से कुपित होकर प्रतिज्ञा करने के पश्चात् भीष्म ने पाण्डवों के साथ कैसा युद्ध किया ? और पाञ्चालों सहित पाण्डवों ने भीष्म के साथ किस प्रकार कैसा युद्ध किया ? सब वृत्तान्त ठीक-ठीक कहो ॥१।२॥ सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! उस दिन का पूर्व भाग समाप्तप्राय हो चुका था; सूर्यदेव कुछ पश्चिम आकाश की ओर झुक चले थे और पाण्डव लोग विजयलाभ करके प्रसन्नता प्रकट कर रहे थे, इसी समय भीष्म ने यथाशक्ति युद्ध करके पाण्डवों को रोकने की प्रतिज्ञा की । सब धर्मों के ज्ञाता देवव्रत भीष्म भारी सेना लेकर आपके पुत्रों के साथ शीघ्रगामी घोड़ों से युक्त रथ पर बैठकर पाण्डव-सेना की ओर बढ़े ॥३।५॥ हे भारत ! इसके अनन्तर पाण्डवों के साथ कौरवों का घोर युद्ध होने लगा । हे कुरुश्रेष्ठ ! आपकी ही अनीति इस घोर युद्ध का मूल कारण है । उस समय रणभूमि में निरन्तर पर्वत के शिखर फटने के समान भयानक धनुषों की टङ्कार और ताल ठोकने का कठोर शब्द चारों ओर सुन पड़ने लगा । सब ओर "ठहर तो जा !" "ठहरा हूँ," "यह है," "लौटो," "स्थिर होकर खड़े रहो !" "खड़ा हूँ, प्रहार करो" इत्यादि शब्द ही

हृतोत्तमाङ्गाः केचित्तु तथैवोद्यतकार्मुकाः ।
प्रगृहीतायुधाश्चाऽपि तस्थुः पुरुषसत्तमाः ॥ ११ ॥
प्रावर्तत महावेगा नदी रुधिरवाहिनी ।
मातङ्गाङ्गशिला रौद्रा मांसशोणितकर्दमा ॥ १२ ॥
वराश्वनरनागानां शरीरप्रभवा तदा ।
परलोकार्णवमुखी गृध्रगोमायुमोदिनी ॥ १३ ॥
न दृष्टं न श्रुतं वापि युद्धमेतादृशं नृप ।
यथा तव सुतानां च पाण्डवानां च भारत ॥ १४ ॥
नाऽऽसीद्रथपथस्तत्र योधैर्युधि निपातितैः ।
गजैश्च पतितैर्नीलैर्गिरिशृङ्गैरिवाऽऽवृतः ॥ १५ ॥
विकीर्णैः कवचैश्चित्रैः शिरस्त्राणैश्च मारिष ।
शुशुभे तद्रणस्थानं शरदीव नभस्तलम् ॥ १६ ॥
विनिर्भिन्नाः शरैः केचिदन्त्रापीडप्रकर्षिणः ।
अभीताः समरे शत्रूनभ्यधावन्त दर्पिताः ॥ १७ ॥
तात भ्रातः सखे बन्धो वयस्य मम मातुल ।
मा मां परित्यजेत्यन्ये चुक्रुशुः पतिता रणे ॥ १८ ॥
अथाऽभ्येहि त्वमागच्छ किं भीतोऽसि क यास्यसि ।
स्थितोऽहं समरे मा भैरिति चाऽन्ये विचुक्रुशुः ॥ १९ ॥

सुन पड़ते थे। सुवर्ण-मण्डित लोहकवच, किरीट-मुकुट, ध्वजा आदि के ऊपर बाण लगने से वैसा ही घोर शब्द होता था, जैसा कि पर्वत के ऊपर फट-फटकर शिलाओं के गिरने से होता है ॥९।१०॥ सैकड़ों-हजारों कटे हुए विभूषित सिर और हाथ पृथ्वी पर गिरकर तड़प रहे थे। कुछ वीरश्रेष्ठों के कबन्ध, सिर कट जाने पर भी, वैसे ही धनुष बाण हाथ में लिये, या शस्त्र उठाये प्रहार करने के लिए युद्धभूमि में खड़े थे। उस समय वहाँ मनुष्य, हाथी, घोड़े आदि के शरीरों से बहते हुए रक्त की नदियाँ बह चलीं। गिद्ध, गीदड़ आदि मांसभोजी पशु-पक्षी उन्हें देखकर अत्यन्त प्रसन्न हो रहे थे। हाथियों के अङ्ग शिला के समान उनमें पड़े थे। मांस और रक्त की कीचड़ से वे अगम्य हो रही थीं। वे नदियाँ परलोक-सागर की ओर बहने लगीं ॥११।१३॥ हे महाराज! पाण्डवों के साथ आपके पुत्रों का जैसा घोर युद्ध हुआ वैसा युद्ध न किसी ने देखा होगा और न सुना होगा। गिरे हुए योद्धाओं और गिरिशिखर-तुल्य नील रङ्ग के हाथियों के शरीरों से समरभूमि परिपूर्ण हो उठी। उसमें रथों के चलने की राह नहीं रही। बिखरे हुए कवचों और शिरस्त्राणों के द्वारा युद्ध-भूमि शरत्काल के आकाश के समान दीखने लगी ॥१४।१६॥ कोई-कोई वीर शस्त्र की आघात से पीड़ित होकर भी, दीनभाव-हीन होकर, दर्प के साथ शत्रुओं

तत्र भीष्मः शान्तनवो नित्यं मण्डलकार्मुकः ।
मुमोच बाणान्दीप्ताग्रानहीनाशीविषानिव ॥ २० ॥
शरैरेकायनीकुर्वन् दिशः सर्वा यतव्रतः ।
जघान पाण्डवरथानादिश्य भरतर्षभ ॥ २१ ॥
स नृत्यन्वै रथोपस्थे दर्शयन्पाणिलाघवम् ।
अलातचक्रवद्राजंस्तत्र तत्र स्म दृश्यते ॥ २२ ॥
तमेकं समरे शूरं पाण्डवाः सृञ्जयैः सह ।
अनेकशतसाहस्रं समपश्यन्त लाघवात् ॥ २३ ॥
मायाकृतात्मानमिव भीष्मं तत्र स्म मेनिरे ।
पूर्वस्यां दिशि तं दृष्ट्वा प्रतीच्यां ददृशुर्जनाः ॥ २४ ॥
उदीच्यां चैवमालोक्य दक्षिणस्यां पुनः प्रभो ।
एवं स समरे शूरो गाङ्गेयः प्रत्यदृश्यत ॥ २५ ॥
न चैवं पाण्डवेयानां कश्चिच्छक्नोति वीक्षितुम् ।
विशिखानेव पश्यन्ति भीष्मचापच्युतान्बहून् ॥ २६ ॥
कुर्वाणं समरे कर्म सूदयानं च वाहिनीम् ।
व्याक्रोशन्त रणे तत्र नरा बहुविधा बहु ॥ २७ ॥
अमानुषेण रूपेण चरन्तं पितरं तव ।
शलभा इव राजानः पतन्ति विधिचोदिताः ॥ २८ ॥

की ओर दौडने लगा । बहुत मनुष्य रणस्थल मे गिरकर "हाय पिता !, हाय भाई !, हाय सखा !, हाय बन्धु !, हाय वयस्य !, हाय मामा ! मुझे मत छोडो" कहकर ऊँचे स्वर से रो रहे थे। बहुत लोग "आओ, पास आओ, तुम क्या भयभीत हो गये हो ? कहाँ जाओगे ? मैं युद्ध में हूँ । तुम भयभीत होना नहीं।" कहकर चिल्ला रहे थे ॥१७।१९॥ उस समय भीष्म पितामह हाथ मे मण्डलाकार धनुष लेकर नागसदृश प्रज्वलित अग्रभागवाले बाण छोडने लगे । सत्यव्रत महावीर भीष्म बाण-वर्षा द्वारा दसो दिशाओ को एकाकार करते हुए पाण्डवपक्ष के वीरो के नाम ले-लेकर उन्हे मारने लगे । हे महाराज ! वे सभी स्थानो मे अपने हाथो की स्फूर्ति दिखाते हुए, अलातचक्र की तरह, इधर उधर सब जगह दिखाई पडने लगे। भीष्म के हाथ की स्फूर्ति के कारण पाण्डव और सृञ्जयगण युद्ध-भूमि मे एकमात्र वीर भीष्म को सैकडों-हजारो के तुल्य देख रहे थे ॥२०।२३॥ वहाँ के सब वीर उनको मायावी जानने लगे । वे पल भर मे पूर्व ओर, पल भर मे पश्चिम ओर, क्षण भर में दक्षिण ओर और क्षण भर मे उत्तर ओर देख पडते थे । भीष्म के धनुष से निकले हुए बाण ही पाण्डवपक्ष के वीरो को देख पडते थे, भीष्म की मूर्त्ति को कोई नहीं देख सकता था ॥२४।२६॥ वीरगण उन्हें सेना का नाश और अद्भुत कर्म करते देखकर अनेक प्रकार

भीष्माग्निमभिसंक्रुद्धं विनाशाय सहस्रशः ।
नहि मोघः शरः कश्चिदासीद्भीष्मस्य संयुगे ॥ २९ ॥
नरनागाश्वकायेषु बहुत्वाल्लघुयोधिनः ।
भिनत्त्येकेन बाणेन सुमुखेन पतत्त्रिणा ॥ ३० ॥
गजकण्टकसन्नद्धं वज्रेणेव शिलोच्चयम् ।
द्वौ त्रीनपि गजारोहान्पिण्डितान्वर्मितानपि ॥ ३१ ॥
नाराचेन सुमुक्तेन निजघान पिता तव ।
यो यो भीष्मं नरव्याघ्रमभ्येति युधि कश्चन ॥ ३२ ॥
मुहूर्तदृष्टः स मया पातितो भुवि दृश्यते ।
एवं सा धर्मराजस्य वध्यमाना महाचमूः ॥ ३३ ॥
भीष्मेणाऽतुलवीर्येण व्यशीर्यत सहस्रधा ।
प्राकम्पत महासेना शरवर्षेण तापिता ॥ ३४ ॥
पश्यतो वासुदेवस्य पार्थस्याऽथ शिखण्डिनः ।
यतमानाऽपि ते वीरा द्रवमाणान्महारथान् ॥ ३५ ॥
नाऽशक्नुवन्वारयितुं भीष्मबाणप्रपीडितान् ।
महेन्द्रसमवीर्येण वध्यमाना महाचमूः ॥ ३६ ॥
अभज्यत महाराज न च द्वौ सह धावतः ।
आविद्धनरनागाश्वं पतितध्वजकूबरम् ॥ ३७ ॥

में चिल्लाने और आर्तनाद करने लगे। सहस्रों क्षत्रिय गण पतङ्गों की तरह मोहित होकर आप ही अपने नाश के लिए उन अमानुषिक रूप में विचरनेवाले क्रुद्ध भीष्मरूप अग्नि में गिर गिरकर भस्म होने लगे। भीष्म के बाण मनुष्य, हाथी, घोड़े आदि सबके शरीरों पर गिरकर व्यर्थ नहीं जाते थे। वज्र से पर्वत फटने के समान, उनके एक ही बाण से बड़े बड़े हाथी कट कटकर गिर पड़ते थे ॥२७।३१॥ वे नाराच बाण मारकर एक साथ दो-दो तीन तीन हाथियों के सवारों को मार गिराते थे। हे महाराज! जो वीर भीष्म के पास जाता था वह उसी क्षण मर कर पृथ्वी पर गिर पड़ता था। इस के तुल्य अतुल वीर्यशाली भीष्म के हाथों मारी जाती हुई युधिष्ठिर की सेना सहस्रों भागों में बँटकर इधर-उधर भागने लगी। युधिष्ठिर की सेना महात्मा वासुदेव और अर्जुन के सामने ही भीष्म के बाणों से कम्पायमान और पीड़ित होकर भागने लगी ॥३१।३५॥ सेनापतिगण बारम्बार यत्न करके भी भीष्म के बाणों से पीड़ित होकर भागती हुई सेना को नहीं रोक सके। हे राजेन्द्र! प्रधान प्रधान योद्धा भी महेन्द्र सदृश वीर्य सम्पन्न भीष्म के द्वारा की चोट खाकर, साथियों और आश्रितों को छोड़कर, रणभूमि में भागने लगे। इस प्रकार पाण्डवों की सेना अचेत सी होकर अत्यन्त हाहाकार करने लगी। युद्धभूमि में मनुष्य, हाथी और

अनीकं पाण्डुपुत्राणां हाहाभूतमचेतनम् ।
जघानाऽत्र पिता पुत्रं पुत्रश्च पितरं तथा ॥ ३८ ॥
प्रियं सखायं चाऽऽक्रन्दे सखा दैवबलात्कृतः ।
विमुच्य कवचान्यन्ये पाण्डुपुत्रस्य सैनिकाः ॥ ३९ ॥
विमुक्तकेशा धावन्तः प्रत्यदृश्यन्त भारत ।
तद्गोकुलमिवोद्भ्रान्तमुद्भ्रान्तरथयूथपम् ॥ ४० ॥
ददृशे पाण्डुपुत्रस्य सैन्यमार्तस्वरं तदा ।
प्रभज्यमानं सैन्यं तु दृष्ट्वा यादवनन्दनः ॥ ४१ ॥
उवाच पार्थं बीभत्सुं निगृह्य रथमुत्तमम् ।
अयं स कालः सम्प्राप्तः पार्थ यस्तेऽभिकांक्षितः ॥ ४२ ॥
प्रहरस्व नरव्याघ्र न चेन्मोहाद्विमुह्यसे ।
यत्त्वया कथितं वीर पुरा राज्ञां समागमे ॥ ४३ ॥
भीष्मद्रोणमुखान्सर्वान्धार्तराष्ट्रस्य सैनिकान् ।
सानुबन्धान्हनिष्यामि ये मां योत्स्यन्ति संयुगे ॥ ४४ ॥
इति तत्कुरु कौन्तेय सत्यं वाक्यमरिन्दम ।
बीभत्सो पश्य सैन्यं स्वं भज्यमानं ततस्ततः ॥ ४५ ॥
द्रवतश्च महीपालान्पश्य यौधिष्ठिरे बले ।
दृष्ट्वा हि भीष्मं समरे व्यात्ताननमिवाऽन्तकम् ॥ ४६ ॥

घोड़े मर-मरकर गिरने लगे। रथ, ध्वजा, रथदण्ड आदि के ढेर के ढेर स्थान-स्थान पर पड़े हुए थे ॥३५।३८॥ उस महायुद्ध में भाग्य के वशीभूत होकर पिता पुत्र को, पुत्र पिता को और मित्र अपने प्रिय मित्र को मार रहे थे। पाण्डवपक्ष के बहुत से योद्धा कवच और केश खोलकर इधर उधर प्राणों की रक्षा करते हुए भागते देख पड़ते थे। सिंह के आने से गायों के झुण्ड जैसे व्याकुल होकर भय के मारे चिल्लाते हुए इधर उधर भागते हैं वैसे ही उद्भ्रान्त रथयूथप-पूर्ण पाण्डव-सेना आर्त्तनाद शब्द करती हुई इधर-उधर भाग रही थी ॥३८।४१॥ तब यदुनन्दन श्रीकृष्ण ने सैनिकों को भागते देखकर, रथ लौटाकर, अर्जुन से कहा—हे पार्थ! यह वही समय है जिस की तुम प्रतीक्षा कर रहे थे। हे पुरुषसिंह! इस समय तुम भीष्म पर प्रहार करो; नहीं तो मोहवश होकर तुम कुछ नहीं कर पाओगे। पहले वीर राजाओं की मण्डली में तुमने प्रतिज्ञा की थी कि "भीष्म, द्रोण आदि कौरव-पक्ष के जो योद्धा युद्धभूमि में मुझ-से युद्ध करने आवेंगे उनको और उनके अनुचरों को मैं अवश्य मारूँगा।" ॥४१।४४॥ हे शत्रुनाशन! इस समय वह अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करो। यह देखो, हमारी सेना के राजा लोग और युधिष्ठिर के पास की सेना, मुख फैलाये मृत्यु के समान आते हुए भीष्म को देखकर, भागी जा रही है। सिंह को देखकर भयभीत

भयार्ताः प्रपलायन्ते सिंहात्क्षुद्रमृगा इव ।
एवमुक्तः प्रत्युवाच वासुदेवं धनञ्जयः ॥ ४७ ॥
नोदयाऽश्वान्यतो भीष्मो विगाह्यैतद्बलार्णवम् ।
पातयिष्यामि दुर्धर्षं वृद्धं कुरुपितामहम् ॥ ४८ ॥
सञ्जय उवाच — ततोऽश्वान्रजतप्रख्यान्नोदयामास माधवः ।
यतो भीष्मरथो राजन्दुष्प्रेक्ष्यो रश्मिवानिव ॥ ४९ ॥
ततस्तत्पुनरावृत्तं युधिष्ठिरबलं महत् ।
दृष्ट्वा पार्थं महाबाहुं भीष्मायोद्यतमाहवे ॥ ५० ॥
ततो भीष्मः कुरुश्रेष्ठ सिंहवद्विनदन्मुहुः ।
धनञ्जयरथं शीघ्रं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ५१ ॥
क्षणेन स रथस्तस्य सहयः सहसारथिः ।
शरवर्षेण महता सञ्छन्नो न प्रकाशते ॥ ५२ ॥
वासुदेवस्त्वसम्भ्रान्तो धैर्यमास्थाय सत्त्ववान् ।
चोदयामास तानश्वान्विचितान्भीष्मसायकैः ॥ ५३ ॥
ततः पार्थो धनुर्गृह्य दिव्यं जलदनिःस्वनम् ।
पातयामास भीष्मस्य धनुश्छित्त्वा त्रिभिः शरैः ॥ ५४ ॥
स च्छिन्नधन्वा कौरव्यः पुनरन्यन्महद्धनुः ।
निमिषान्तरमात्रेण सज्जं चक्रे पिता तव ॥ ५५ ॥

डर-डरकर मृगों के समान सब भागे चले जा रहे हैं ॥४५।४७॥ यह सुनकर अर्जुन ने कहा- हे वासुदेव! जहाँ पर भीष्म पितामह का रथ है वहाँ इस सैन्य-सागर के मध्य में होकर मेरा रथ ले चलिए। मैं अवश्य इन दुर्धर्ष कुरुवृद्ध पितामह भीष्म को मार गिराऊँगा ॥४७।४८॥ सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र! इसके अनन्तर माधव ने रथ को हाँका और जहाँ पर भीष्म का सूर्य के समान दुर्निरीक्ष्य रथ खड़ा था वहाँ पर श्वेत घोड़ों से शोभित अर्जुन का रथ पहुँचा दिया। युधिष्ठिर की सेना अर्जुन को भीष्म से युद्ध करने के लिए उद्यत देखकर लौट पड़ी ॥४९।५०॥ इसके पश्चात् कुरुकुल-प्रधान भीष्म ने बारम्बार सिंहनाद करके शीघ्र ही बाणवर्षा से अर्जुन का रथ ढक दिया। वह रथ क्षण भर में ध्वजा और सारथी वासुदेव सहित भीष्म के बाणों से अदृश्य हो गया। सत्त्वसम्पन्न वासुदेव धैर्य धारणपूर्वक, तनिक भी विचलित न होकर, भीष्म के बाणों से पीड़ित अर्जुन के रथ के घोड़ों को हाँकने लगे ॥५१।५३॥ अर्जुन ने मेघ के समान गर्जनेवाला दिव्य गाण्डीव धनुष चढ़ाकर तीक्ष्ण बाण से भीष्म का धनुष काट डाला। धनुष कट जाने पर कुरुकुल-तिलक भीष्म ने तुरन्त दूसरा दृढ़ धनुष हाथ में लिया और उस पर तत्काल डोरी चढ़ा ली। वे उसे दोनों हाथों से खींचने लगे। अर्जुन ने कुपित होकर वह धनुष भी काट डाला

विचकर्ष ततो दोर्भ्यां धनुर्जलदनिःस्वनम् ।
अथाऽस्य तदपि क्रुद्धश्चिच्छेद धनुरर्जुनः ॥ ५६ ॥
तस्य तत्पूजयामास लाघवं शान्तनोः सुतः ।
साधु पार्थ महाबाहो साधु भो पाण्डुनन्दन ॥ ५७ ॥
त्वय्येवैतद्युक्तरूपं महत्कर्म धनञ्जय ।
प्रीतोऽस्मि सुभृशं पुत्र कुरु युद्धं मया सह ॥ ५८ ॥
इति पार्थं प्रशस्याऽथ प्रगृह्याऽन्यन्महद्धनुः ।
मुमोच समरे वीरः शरान्पार्थरथं प्रति ॥ ५९ ॥
अदर्शयद्वासुदेवो हययाने परं बलम् ।
मोघान्कुर्वञ्शरांस्तस्य मण्डलान्याचरल्लघु ॥ ६० ॥
तथा भीष्मस्तु सुदृढं वासुदेवधनञ्जयौ ।
विव्याध निशितैर्बाणैः सर्वगात्रेषु भारत ॥ ६१ ॥
शुशुभाते नरव्याघ्रौ तौ भीष्मशरविक्षतौ ।
गोवृषाविव संरब्धौ विषाणोल्लिखिताङ्कितौ ॥ ६२ ॥
पुनश्चाऽपि सुसंरब्धः शरैः शतसहस्रशः ।
कृष्णयोर्युधि संरब्धो भीष्मोऽथाऽवारयद्दिशः ॥ ६३ ॥
वार्ष्णेयं च शरैस्तीक्ष्णैः कम्पयामास रोषितः ।
मुहुरभ्यर्दयन्भीष्मः प्रहस्य स्वनवत्तदा ॥ ६४ ॥
ततस्तु कृष्णः समरे दृष्ट्वा भीष्मपराक्रमम् ।
सम्प्रेक्ष्य च महाबाहुः पार्थस्य मृदुयुद्धताम् ॥ ६५ ॥

॥५४।५६॥ तब अर्जुन की स्फूर्ति की प्रशंसा करके भीष्म कहने लगे—हे महाबाहो ! शाबाश ! ऐसा अद्भुत कर्म तुम्हारे योग्य ही है। हे वत्स अर्जुन ! मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। अब तुम दृढतापूर्वक मेरे साथ युद्ध करो। इस प्रकार अर्जुन की प्रशंसा करके और धनुष लेकर वे फिर युद्ध करने और बाण बरसाने लगे ॥५७।५९॥ वासुदेव ने घोडे हाँकने की निपुणता दिखाते हुए मण्डलाकार रथ-गति से भीष्म के उन बाणों को व्यर्थ कर दिया। हे राजेन्द्र ! तब महावीर भीष्म ने तीक्ष्ण बाणों से वासुदेव और अर्जुन दोनों को घायल कर डाला। भीष्म के बाणों से शरीर क्षत-विक्षत हो जाने पर, सींग की चोटों से घायल होकर गरजते हुए दो साँडों के समान, श्रीकृष्ण और अर्जुन शोभायमान हुए ॥६०।६२॥ भीष्म ने फिर क्रुद्ध होकर बाण-वर्षा करके चारों ओर से श्रीकृष्ण और अर्जुन को छिपा दिया। वे अट्टहास करके तीक्ष्ण बाणों के प्रहार से श्रीकृष्ण को विचलित करके बारम्बार अर्जुन को पीडित करने लगे॥६३।६४॥

भीष्मं च शरवर्षाणि सृजन्तमनिशं युधि ।
प्रतपन्तमिवाऽऽदित्यं मध्यमासाद्य सेनयोः ॥ ६६ ॥
वरान्वरान्विनिघ्नन्तं पाण्डुपुत्रस्य सैनिकान् ।
युगान्तमिव कुर्वाणं भीष्मं यौधिष्ठिरे बले ॥ ६७ ॥
अमृष्यमाणो भगवान्केशवः परवीरहा ।
अचिन्तयदमेयात्मा नाऽस्ति यौधिष्ठिरं बलम् ॥ ६८ ॥
एकाह्ना हि रणे भीष्मो नाशयेद्देवदानवान् ।
किन्नु पाण्डुसुतान्युद्धे सबलान्सपदानुगान् ॥ ६९ ॥
द्रवते च महासैन्यं पाण्डवस्य महात्मनः ।
एते च कौरवास्तूर्णं प्रभग्नान्वीक्ष्य सोमकान् ॥ ७० ॥
प्राद्रवन्ति रणे हृष्टा हर्षयन्तः पितामहम् ।
सोऽहं भीष्मं निहन्म्यद्य पाण्डवार्थाय दंशितः ॥ ७१ ॥
भारमेतं विनेष्यामि पाण्डवानां महात्मनाम् ।
अर्जुनो हि शरैस्तीक्ष्णैर्वध्यमानोऽपि संयुगे ॥ ७२ ॥
कर्तव्यं नाऽभिजानाति रणे भीष्मस्य गौरवात् ।
तथा चिन्तयतस्तस्य भूय एव पितामहः ।
प्रेषयामास संक्रुद्धः शरान्पार्थरथं प्रति ॥ ७३ ॥
तेषां बहुत्वात्तु भृशं शराणां दिशश्च सर्वाः पिहिता बभूवुः ।
न चाऽन्तरिक्षं न दिशो न भूमिर्न भास्करोऽदृश्यत रश्मिमाली ॥ ७४ ॥

शत्रु-वीरघाती श्रीकृष्ण ने देखा कि युद्ध में भीष्म पितामह घोर पराक्रम दिखा रहे हैं, किन्तु अर्जुन उनके साथ कोमल युद्ध कर रहे हैं। दोनों सेनाओं के मध्य में खड़े होकर भीष्म निरन्तर बाणवर्षा करते हुए सूर्य के समान तप रहे थे। वे मानों प्रलय कर देंगे, इस प्रकार युद्ध करके युधिष्ठिर पक्ष के चुने-चुने श्रेष्ठ योद्धाओं को मार रहे थे। श्रीकृष्ण यह नहीं सह सके। उन्होंने सोचा कि पाण्डवों की सेना बहुत थोड़ी रह गई है ॥६५।६८॥ भीष्म पितामह युद्ध में आकर एक ही दिन में सब देवताओं और दानवों का संहार कर सकते हैं, फिर सेना और अनुचरों सहित पाण्डवों को नष्ट करना तो उनके लिए कोई बात ही नहीं। और पाण्डवों की और सोमकों की सेना को भागते देखकर कौरव लोग पितामह को आनन्दित करते हुए उनका पीछा कर रहे हैं। अतएव पाण्डवों के हित के लिए आज मैं ही भीष्म को मारूँगा। यद्यपि भीष्म तीक्ष्ण बाण मार रहे हैं; किन्तु अर्जुन, पितामह के गौरव की रक्षा के लिए, अपने कर्तव्य का पालन नहीं करते ॥६९।७३॥ कृष्ण भगवान् यों मन ही मन विचार कर रहे थे, और उधर भीष्म पितामह क्रुद्ध होकर अर्जुन के ऊपर दारुण बाण बरसाने लगे। भीष्म के चलाये हुए असंख्य बाण दसों दिशाओं में भर गये। उस समय

ववुश्च वातास्तुमुलाः सधूमा दिशश्च सर्वाः क्षुभिता बभूवुः ।
द्रोणो विकर्णोऽथ जयद्रथश्च भूरिश्रवाः कृतवर्मा कृपश्च ॥ ७५ ॥
श्रुतायुरम्बष्ठपतिश्च राजा विन्दानुविन्दौ च सुदक्षिणश्च ।
प्राच्याश्च सौवीरगणाश्च सर्वे वसातयः क्षुद्रकमालवाश्च ॥ ७६ ॥
किरीटिनं त्वरमाणाऽभिसस्रुर्निदेशगाः शान्तनवस्य राज्ञः ।
तं वाजिपादातरथौघजालैरनेकसाहस्रशतैर्ददर्श ॥ ७७ ॥
किरीटिनं सम्परिवार्यमाणं शिनेर्नप्ता वारणयूथपैश्च ।
ततस्तु दृष्ट्वाऽर्जुनवासुदेवौ पदातिनागाश्वरथैः समन्तात् ॥ ७८ ॥
अभिद्रुतौ शस्त्रभृतां वरिष्ठौ शिनिप्रवीरोऽभिससार तूर्णम् ।
स तान्यनीकानि महाधनुष्माञ्शिनिप्रवीरः सहसाऽभिपत्य ॥ ७९ ॥
चकार साहाय्यमथाऽर्जुनस्य विष्णुर्यथा वृत्रनिषूदनस्य ।
विशीर्णनागाश्वरथध्वजौघं भीष्मेण वित्रासितसर्वयोधम् ॥ ८० ॥
युधिष्ठिरानीकमभिद्रवन्तं प्रोवाच सन्दृश्य शिनिप्रवीरः ।
क क्षत्रिया यास्यथ नैष धर्मः सतां पुरस्तात्कथितः पुराणैः ॥ ८१ ॥
मा स्वां प्रतिज्ञां त्यजत प्रवीराः स्वं वीरधर्मं परिपालयध्वम् ।
तान्वासवानन्तरजो निशाम्य नरेन्द्रमुख्यान्द्रवतः समन्तात् ॥ ८२ ॥
पार्थस्य दृष्ट्वा मृदुयुद्धतां च भीष्मं च संख्ये समुदीर्यमाणम् ।
अमृष्यमाणः स ततो महात्मा यशस्विनं सर्वदशार्हभर्ता ॥ ८३ ॥

अन्तरिक्ष, दिशा, पृथ्वीतल या सूर्यमण्डल कुछ भी नहीं सूझ पड़ता था । धुएँ के रङ्ग की प्रचण्ड आँधी चलने लगी । सब दिशाएँ क्षोभ को प्राप्त हुईं ॥७३। ७५॥ द्रोण, विकर्ण, जयद्रथ, भूरिश्रवा, कृतवर्मा, कृपाचार्य, श्रुतायु, अम्बष्ठराज, विन्द, अनुविन्द, सुदक्षिण, प्राच्य, सौवीरगण, वसातिगण, क्षुद्रकगण, मालवगण आदि सब राजा भीष्म की आज्ञा से शीघ्रतापूर्वक युद्ध करने के लिए अर्जुन की ओर दौड़े । सात्यकि ने देखा कि हाथी-घोड़े-रथ पैदल इन चार अङ्गोंवाली असंख्य सेना चारों ओर से अर्जुन को घेर रही है । इस प्रकार वासुदेव और अर्जुन को चतुरङ्गिणी सेना से घिरे देखकर महापराक्रमी सात्यकि उनकी सहायता के लिए शीघ्र अपना रथ दौड़ाते हुए वहाँ पहुँचे ॥७५।७९॥ विष्णु ने जैसे इन्द्र की सहायता की थी, वैसे ही प्रधान धनुर्द्धर यादवश्रेष्ठ सात्यकि एकाएक उस सेना में प्रवेश कर अर्जुन की सहायता करने लगे । सात्यकि ने देखा कि भीष्म ने पाण्डवपक्ष की सेना के सब वीरों को भयभीत कर दिया है और हाथी, घोड़े, रथ, ध्वजा आदि काट-काटकर उनके ढेर लगा दिये हैं । भीष्म को युधिष्ठिर की भागती हुई सेना का पीछा करते देखकर सात्यकि ने अपनी सेना के वीरों से कहा—हे क्षत्रियो ! कहाँ भागे चले जा रहे हो ? प्राचीन पण्डितों का कहना है कि युद्ध से भागना क्षत्रिय का

उवाच शैनेयमभिप्रशंसन्दृष्ट्वा कुरूनापततः समग्रान् ।
ये यान्ति ते यान्तु शिनिप्रवीर येऽपि स्थिताः सात्वत तेऽपि यान्तु॥ ८४ ॥
भीष्मं रथात्पश्य निपात्यमानं द्रोणं च संख्ये सगणं मयाऽद्य ।
न मे रथी सात्वत कौरवाणां क्रुद्धस्य मुच्येत रणेऽद्य कश्चित्॥ ८५ ॥
तस्मादहं गृह्य रथाङ्गमुग्रं प्राणं हरिष्यामि महाव्रतस्य ।
निहत्य भीष्मं सगणं तथाऽऽजौ द्रोणं च शैनेयरथप्रवीरौ ॥ ८६ ॥
प्रीतिं करिष्यामि धनञ्जयस्य राज्ञश्च भीमस्य तथाऽश्विनोश्च ।
निहत्य सर्वान्धृतराष्ट्रपुत्रांस्तत्पक्षिणो ये च नरेन्द्रमुख्याः ॥ ८७ ॥
राज्येन राजानमजातशत्रुं सम्पादयिष्याम्यहमद्य हृष्टः ।
ततः सुनाभं वसुदेवपुत्रः सूर्यप्रभं वज्रसमप्रभावम् ॥ ८८ ॥
क्षुरान्तमुद्यम्य भुजेन चक्रं रथादवप्लुत्य विसृज्य वाहान् ।
सङ्कम्पयन्गां चरणैर्महात्मा वेगेन कृष्णः प्रससार भीष्मम् ॥ ८९ ॥
मदान्धमाजौ समुदीर्णदर्पं सिंहो जिघांसन्निव वारणेन्द्रम् ।
सोऽभिद्रवन्भीष्ममनीकमध्ये क्रुद्धो महेन्द्रावरजः प्रमाथी ॥ ९० ॥
व्यालम्बिपीतान्तपटश्चकाशे घनो यथा खे तडिताऽवनद्धः ।
सुदर्शनं चाऽस्य रराज शौरेस्तच्चक्रपद्मं सुभुजोरुनालम् ॥ ९१ ॥
यथाऽऽदिपद्मं तरुणार्कवर्णं रराज नारायणनाभिजातम् ।
तत्कृष्णकोपोदयसूर्यबुद्धं क्षुरान्ततीक्ष्णाग्रसुजातपत्रम् ॥ ९२ ॥

धर्म नहीं है । हे वीरो ! अपनी प्रतिज्ञा को मत तोड़ो। अपने वीर-धर्म का पालन करो ॥७९।८२॥ यशस्वी श्रीकृष्ण ने भी देखा कि सब क्षत्रिय भागे चले जा रहे हैं, भीष्म पितामह संग्राम में प्रचण्ड रूप धारण करते जा रहे हैं, अर्जुन कोमल युद्ध कर रहे हैं और कौरवसेना के वीर दौड़-दौड़कर आक्रमण कर रहे हैं। सब यादवों के स्वामी कृष्णचन्द्र से यह नहीं देखा गया। वे सात्यकि की प्रशंसा करते हुए कुपित होकर कहने लगे–॥८२।८४॥ हे यदुश्रेष्ठ ! जो जा रहे हैं उन्हें जाने दो। जो खड़े हैं वे भी भाग जायँ। आज मैं अकेला ही भीष्म को और अनुचरों सहित द्रोण को मारकर रथ से गिराता हूँ, तुम खड़े-खड़े यह कौतुक देखो। आज कौरवसेना का एक भी वीर मेरे क्रोध से नहीं बच सकता। मैं अभी भयङ्कर चक्र हाथ में लेकर भीष्म को मार डालूँगा। इस प्रकार भीष्म, द्रोणाचार्य और उनके अनुचरों को मारकर युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव का प्रिय करूँगा। धृतराष्ट्र के सब पुत्रों को और उनके पक्ष के मुख्य राजाओं को मारकर आज मैं प्रसन्नतापूर्वक राजा युधिष्ठिर को राजसिंहासन पर बिठाऊँगा ॥८४।८८॥ अब महात्मा वासुदेव ने घोड़ों की रास हाथ से छोड़ दी। सहस्रवज्र-सदृश, बहुत ही तीक्ष्ण, सूर्यसदृश प्रभा सम्पन्न चक्र को हाथ में लेकर घुमाते हुए वे रथ से कूद पड़े। सिंह जैसे गजराज को

तस्यैव देहोरुसरः प्ररूढं रराज नारायणवाहुनालम् ।
तमात्तचक्रं प्रणदन्तमुच्चैः क्रुद्धं महेन्द्रावरजं समीक्ष्य ॥ ९३ ॥
सर्वाणि भूतानि भृशं विनेदुः क्षयं कुरूणामिव चिन्तयित्वा ।
स वासुदेवः प्रगृहीतचक्रः संवर्तयिष्यन्निव सर्वलोकम् ॥ ९४ ॥
अभ्युत्पतल्लोकगुरुर्बभासे भूतानि धक्ष्यन्निव धूमकेतुः ।
तमाद्रवन्तं प्रगृहीतचक्रं दृष्ट्वा देवं शान्तनवस्तदानीम् ॥ ९५ ॥
असम्भ्रमं तद्विचकर्ष दोर्भ्यां महाधनुर्गाण्डिवतुल्यघोषम् ।
उवाच भीष्मस्तमनन्तपौरुषं गोविन्दमाजावविमूढचेताः ॥ ९६ ॥
एह्येहि देवेश जगन्निवास नमोऽस्तु ते माधव चक्रपाणे ।
प्रसह्य मां पातय लोकनाथ रथोत्तमात्सर्वशरण्य संख्ये ॥ ९७ ॥
त्वया हतस्याऽपि ममाऽद्य कृष्ण श्रेयः परस्मिन्निह चैव लोके ।
सम्भावितोऽस्म्यन्धकवृष्णिनाथ लोकैस्त्रिभिर्वीर तवाऽभियानात्॥ ९८ ॥
रथादवप्लुत्य ततस्त्वरावान्पार्थोऽप्यनुद्रुत्य यदुप्रवीरम् ।
जग्राह पीनोत्तमलम्बबाहुं बाह्वोर्हरिं व्यायतपीनबाहुः ॥ ९९ ॥
निगृह्यमाणश्च तदाऽऽदिदेवो भृशं सरोषः किल चाऽऽत्मयोगी ।
आदाय वेगेन जगाम विष्णुर्जिष्णुं महावात इवैकवृक्षम् ॥ १०० ॥

मारने के लिए दौड़े वैसे कृष्णचन्द्र भीष्म को मारने के लिए कौरवसेना की ओर दौड़े ॥८८।९०॥ उस समय उनके शरीर का पीताम्बर आकाश में स्थिर बिजली से युक्त मेघ के समान शोभा को प्राप्त होने लगा। श्रीकृष्ण के कोपरूप सूर्य के उदय से प्रफुल्लित, क्षुरधारसदृश तीक्ष्ण अग्रभाग रूप पत्तों से शोभित, श्रीकृष्ण के शरीररूप सरोवर से उत्पन्न बाहु-मृणाल पर स्थित, सुदर्शन चक्र रूप पद्म—विष्णु की नाभि से उत्पन्न, बालसूर्य-सन्निभ, सृष्टि के आदिकाल के पद्म के समान—शोभा को प्राप्त हुआ ॥९०।९३॥ क्रुद्ध श्रीकृष्ण को चक्र हाथ में लिये देखकर सब प्राणी ऊँचे स्वर से हाहाकार करने लगे। सबने समझा कि अब कुरुकुल का नाश हुआ। धूमकेतु जैसे चराचर जगत को जलाने के लिए उदित होता है वैसे ही लोकगुरु वासुदेव चक्र हाथ में लेकर, जीवलोक को जलानेवाले प्रलयकाल के अग्नि के समान, भीष्म पितामह की ओर वेग से दौड़े ॥९३।९५॥ श्रीकृष्ण को अपनी ओर चक्र लेकर आते देखकर महात्मा भीष्म तनिक भी विचलित नहीं हुए। वे अविचलित भाव से गाण्डीव के समान श्रेष्ठ धनुष की डोरी बजाते हुए कहने लगे—हे श्रीकृष्ण! हे जगन्निवास! हे चक्रपाणि! आपको मैं प्रणाम करता हूँ। आप प्राणियों की रक्षा करनेवाले शरण्य हैं। आप बलपूर्वक इस श्रेष्ठ रथ पर से मुझे मार गिराइए। आप मुझको मारेंगे तो मुझे इस लोक और परलोक में कल्याण प्राप्त होगा। हे यदुनाथ! आप मुझे मारने दौड़े, इससे मेरी प्रतिष्ठा और कीर्ति और भी बढ़ गई ॥९६।९८॥ भीष्म के ये वचन सुनकर वेग

पार्थस्तु विष्टभ्य बलेन पादौ भीष्मान्तिकं तूर्णमभिद्रवन्तम् ।
बलान्निजग्राह हरिं किरीटी पदेऽथ राजन्दशमे कथञ्चित् ॥१०१॥
अवस्थितं च प्रणिपत्य कृष्णं प्रीतोऽर्जुनः काञ्चनचित्रमाली ।
उवाच कोपं प्रतिसंहरेति गतिर्भवान्केशव पाण्डवानाम् ॥१०२॥
न हास्यते कर्म यथाप्रतिज्ञं पुत्रैः शपे केशव सोदरैश्च ।
अन्तं करिष्यामि यथा कुरूणां त्वयाऽहमिन्द्रानुज सम्प्रयुक्तः ॥१०३॥
ततः प्रतिज्ञां समयं च तस्य जनार्दनः प्रीतमना निशम्य ।
स्थितः प्रिये कौरवसत्तमस्य रथं सचक्रः पुनरारुरोह ॥१०४॥
स तानभीषून्पुनराददानः प्रगृह्य शङ्खं द्विषतां निहन्ता ।
विनादयामास ततो दिशश्च स पाञ्चजन्यस्य रवेण शौरिः ॥१०५॥
व्याविद्धनिष्काङ्गदकुण्डलं तं रजोविकीर्णाञ्चितपद्मनेत्रम् ।
विशुद्धदंष्ट्रं प्रगृहीतशङ्खं विचुक्रुशुः प्रेक्ष्य कुरुप्रवीराः ॥१०६॥
मृदङ्गभेरीपणवप्रणादा नेमिस्वना दुन्दुभिनिःस्वनाश्च ।
ससिंहनादाश्च बभूवुरुग्राः सर्वेष्वनीकेषु ततः कुरूणाम् ॥१०७॥

के साथ उनके सामने जाने के लिए उद्यत श्रीकृष्णचन्द्र ने कहा – हे भीष्म! तुम्हीं इस महाविनाश के मूल कारण हो। तुम्हारे ही कारण आज दुर्योधन भाई-बन्धुओं सहित विनष्ट होगा। हे भीष्म! द्यूत में आसक्त राजा को उससे रोकना ही धार्मिक मन्त्रियों का कर्तव्य है। यदि कोई राजा काल निर्णय के कारण उस उपदेश को न मानकर धर्म विरुद्ध कार्य को न छोड़ना चाहे तो उसको छोड़ देना ही श्रेयस्कर होता है। महानुभाव यदुवीर वासुदेव के वचन सुनकर भीष्म ने कहा – हे जनार्दन! दैव ही प्रबल है। मैंने हित कामना से बारम्बार धृतराष्ट्र से कहा कि यादवों ने अपने हित के लिए कंस को छोड़ दिया था, तुम भी दुर्योधन को त्याग दो। परन्तु उन्होंने दैववश बुद्धि विपरीत होने के कारण मेरा वह हितोपदेश नहीं सुना। इसी समय विशालबाहु वीर अर्जुन रथ से कूदकर यदुवीर श्रीकृष्ण के पीछे दौड़े। अर्जुन ने जाकर श्रीकृष्ण के दोनों हाथ पकड़ लिये। योगेश्वर कृष्णचन्द्र उस समय क्रोध में थे, इस कारण यद्यपि अर्जुन ने उनको रोकना चाहा, तो भी वे उसी प्रकार अर्जुन को खींचते हुए भीष्म की ओर चले जैसे प्रबल आँधी किसी वृक्ष को खींच ले जाती है। दसवें पग पर जाकर अर्जुन सम्पूर्ण पाँवों जमाकर श्रीकृष्ण को रोक सके। उनके दोनों पाँवों को अर्जुन ने अपने जोर भर पकड़ रखा ॥१००।१०१॥ सुवर्ण की विचित्र माला पहने हुए अर्जुन ने श्रीकृष्ण के चरणों में सिर रख दिया और उन्हें प्रसन्न करने के लिए कहा – हे केशव! अपना क्रोध शान्त कीजिए। आप ही पाण्डवों की एकमात्र गति हैं। हे कृष्णचन्द्र! मैं अपने भाइयों और पुत्रों की शपथ खाकर कहता हूँ कि जो प्रतिज्ञा कर चुका हूँ उसे अवश्य पूर्ण करूँगा। मैं आपकी आज्ञा से अवश्य कुरुकुल का संहार करूँगा ॥१०२।१०३॥ अर्जुन की प्रतिज्ञा और शपथ सुनकर जनार्दन का क्रोध शान्त हो गया। वे [illegible] चक्र हाथ में लिये उसी

गाण्डीवघोषः स्तनयित्नुकल्पो जगाम पार्थस्य नभो दिशश्च ।
जग्मुश्च बाणा विमलाः प्रसन्नाः सर्वा दिशः पाण्डवचापमुक्ताः ॥ १०८ ॥
तं कौरवाणामधिपो जवेन भीष्मेण भूरिश्रवसा च सार्धम् ।
अभ्युद्ययावुद्यतबाणपाणिः कक्षं दिधक्षन्निव धूमकेतुः ॥ १०९ ॥
अथाऽर्जुनाय प्रजिघाय भल्लान्भूरिश्रवाः सप्त सुवर्णपुङ्खान् ।
दुर्योधनस्तोमरमुग्रवेगं शल्यो गदां शान्तनवश्च शक्तिम् ॥ ११० ॥
स सप्तभिः सप्त शरप्रवेकान्संवार्य भूरिश्रवसा विसृष्टान् ।
शितेन दुर्योधनबाहुमुक्तं क्षुरेण तत्तोमरमुन्ममाथ ॥ १११ ॥
ततः शुभामापततीं स शक्तिं विद्युत्प्रभां शान्तनवेन मुक्ताम् ।
गदां च मद्राधिपबाहुमुक्तां द्वाभ्यां शराभ्यां निचकर्त वीरः ॥ ११२ ॥
ततो भुजाभ्यां बलवद्विकृष्य चित्रं धनुर्गाण्डिवमप्रमेयम् ।
माहेन्द्रमस्त्रं विधिवत्सुघोरं प्रादुश्चकाराऽद्भुतमन्तरिक्षे ॥ ११३ ॥
तेनोत्तमास्त्रेण ततो महात्मा सर्वाण्यनीकानि महाधनुष्मान् ।
शरौघजालैर्विमलाग्निवर्णैर्निवारयामास किरीटमाली ॥ ११४ ॥
शिलीमुखाः पार्थधनुःप्रमुक्ता रथान्ध्वजाग्राणि धनूंषि बाहून् ।
निकृत्त्य देहान्विविशुः परेषां नरेन्द्रनागेन्द्रतुरङ्गमाणाम् ॥ ११५ ॥

तरह खड़े रहकर फिर लौटकर अर्जुन के रथ पर सवार हुए। घोड़ों की रास हाथ में लेकर उन्होंने पाञ्चजन्य शङ्ख के शब्द से आकाशमण्डल और चारों दिशाओं को प्रतिध्वनित कर दिया। कृष्णचन्द्र निष्क, अङ्गद, कुण्डल आदि भूषण पहने हुए थे; उनके केशों और कमलरूपी नेत्रों की पलकों पर धूल जम रही थी। श्वेत दाँत और दाढ़ें चमक रही थीं। ऐसे रूप में हाथ में शङ्ख लिये श्रीकृष्ण को देखकर सब श्रेष्ठ कुरुवीर ऊँचे स्वर से चिल्लाने लगे ॥१०५।१०६॥ उस समय कौरव-सेना के मध्य मृदङ्ग, भेरी, पटह, पणव, दुन्दुभि आदि बाजों का शब्द, रथों के पहियों की घरघराहट और उग्र सिंहनाद चारों ओर छा गया। अर्जुन के गाण्डीव धनुष का शब्द बिजली की कड़क के समान आकाशमण्डल में और सब दिशाओं में व्याप्त हो गया। अर्जुन के धनुष से छूटे हुए विमल बाण सब ओर फैलने लगे। सूखी घास को जलाने के लिए उद्यत अग्नि के समान राजा दुर्योधन, धनुष और बाण हाथ में लेकर, भीष्म और भूरिश्रवा के साथ अर्जुन की ओर चले ॥१०७।१०९॥ इसके पश्चात् अर्जुन के ऊपर भूरिश्रवा ने सुवर्णपुङ्ख सात भल्लबाण, दुर्योधन ने बड़े वेग से तोमर, शल्य ने गदा और भीष्म ने शक्ति मारी। महाधनुर्द्धर अर्जुन ने भूरिश्रवा के सातों बाणों को सात बाणों से और दुर्योधन के तोमर को तीक्ष्ण क्षुरप्र बाण से निष्फल करके भीष्म की बिजली के समान चमकीली शक्ति और शल्य की मारी गदा को दो बाणों से काट डाला ॥११०।११२॥ इसके पश्चात् अर्जुन ने विचित्र अप्रमेय गाण्डीव धनुष को दोनों हाथों से खींचकर विधिपूर्वक आकाश में अमोघ माहेन्द्र

ततो दिशः सोऽनुदिशश्च पार्थः शरैः सुधारैः समरे वितत्य ।
गाण्डीवशब्देन मनांसि तेषां किरीटमाली व्यथयाञ्चकार ॥११६॥
तस्मिंस्तथा घोरतमे प्रवृत्ते शङ्खस्वना दुन्दुभिनिःस्वनाश्च ।
अन्तर्हिता गाण्डिवनिःस्वनेन बभूवुरुग्राश्वरथप्रणादाः ॥११७॥
गाण्डीवशब्दं तमथो विदित्वा विराटराजप्रमुखाः प्रवीराः ।
पाञ्चालराजो द्रुपदश्च वीरस्तं देशमाजग्मुरदीनसत्त्वाः ॥११८॥
सर्वाणि सैन्यानि तु तावकानि यतो यतो गाण्डिवजः प्रणादः ।
ततस्ततः सन्नतिमेव जग्मुर्न तं प्रतीपोऽभिससार कश्चित् ॥११९॥
तस्मिन्सुघोरे नृपसम्प्रहारे हताः प्रवीराः सरथाश्वसूताः ।
गजाश्च नाराचनिपाततप्ता महापताकाः शुभरुक्मकक्ष्याः ॥१२०॥
परीतसत्त्वाः सहसा निपेतुः किरीटिना भिन्नतनुत्रकायाः ।
दृढं हताः पत्रिभिरुग्रवेगैः पार्थेन भल्लैर्विमलैः शिताग्रैः ॥१२१॥
निकृत्तयन्त्रा निहतेन्द्रकीला ध्वजा महान्तो ध्वजिनीमुखेषु ।
पदातिसङ्घाश्च रथाश्च संख्ये हयाश्च नागाश्च धनञ्जयेन ॥१२२॥
बाणाहतास्तूर्णमपेतसत्त्वा विष्टभ्य गात्राणि निपेतुरुर्व्याम् ।
ऐन्द्रेण तेनाऽस्त्रवरेण राजन्महाहवे भिन्नतनुत्रदेहाः ॥१२३॥

अस्त्र छोड़ा। धनुर्धर अर्जुन उस उत्तम अस्त्र और विमल अग्निवर्ण बाणों के द्वारा सम्पूर्ण शत्रुसेना को रोकने लगे। अर्जुन के धनुष से छूटे हुए बाण रथ, ध्वजा, धनुष, बाहु आदि काटकर शत्रुपक्ष के मनुष्य हाथी, घोड़े आदि के शरीरों में प्रवेश करने लगे ॥११३।११५॥ अर्जुन ने युद्ध में तीक्ष्ण बाणों से दसों दिशाओं को व्याप्त करके गाण्डीव धनुष के शब्द से शत्रुओं के हृदयों को व्यथित करना आरम्भ किया। उस घोर संग्राम में गाण्डीव के शब्द ने शङ्ख, दुन्दुभि, रथ, घोड़े, हाथी आदि के उस शब्दों को छिपा दिया। गाण्डीव की ध्वनि को सुनकर विराट आदि वीर राजा और पाञ्चालराज द्रुपद निर्भय भाव से अर्जुन के पास आ गये ॥११६।११८॥ हे महाराज! आपकी सारी सेना में जहाँ जिसने गाण्डीव धनुषका शब्द सुना वहीं वह दबा सा रह गया। किसी शत्रु को अर्जुन के सामने जाने का साहस नहीं हुआ। उस घोरतर युद्ध में अर्जुन के तीक्ष्ण भल्ल बाणों की गहरी चोट खाकर रथ, घोड़े, सारथी, वीर रथी आदि मर मरकर गिर रहे थे। नाराच बाण लगने से प्राणहीन होकर सुवर्णभूषणयुक्त पताका-शोभित हाथी और उनके ऊपर के योद्धा पृथ्वी पर गिर रहे थे ॥१२०।१२१॥ उग्रवेगशाली अर्जुन के बाणों से जिनके कवच कट गये हैं और शरीर फट गये हैं, ऐसे वीर योद्धा मर मरकर गिरने लगे। जिनके यन्त्र कट गये और इन्द्रकील नष्ट हो गये हैं, ऐसे बड़े-बड़े सेना के आगे के ध्वज कट-कटकर गिरने लगे। अर्जुन के बाण लगने से शीघ्र ही मरकर रथी, हाथी, घोड़े और पैदल आदि अङ्गों को पकड़े हुए पृथ्वी पर गिरते देख पड़ते थे ॥१२२।१२३॥

अथ षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

सञ्जय उवाच–व्युष्टां निशां भारत भारतानामनीकिनीनां प्रमुखे महात्मा ।
ययौ सपत्नान्प्रति जातकोपो वृतः समग्रेण बलेन भीष्मः ॥ १ ॥
तं द्रोणदुर्योधनबाह्लिकाश्च तथैव दुर्मर्षणचित्रसेनौ ।
जयद्रथश्चाऽतिबलो बलौघैर्नृपास्तथाऽन्ये प्रययुः समन्तात् ॥ २ ॥
स तैर्महद्भिश्च महारथैश्च तेजस्विभिर्वीर्यवद्भिश्च राजन् ।
रराज राजा स तु राजमुख्यैर्वृतः स देवैरिव वज्रपाणिः ॥ ३ ॥
तस्मिन्ननीकप्रमुखे विषक्ता दोधूयमानाश्च महापताकाः ।
सुरक्तपीतासितपाण्डुराभा महागजस्कन्धगता विरेजुः ॥ ४ ॥
सा वाहिनी शान्तनवेन गुप्ता महारथैर्वारणवाजिभिश्च ।
बभौ सविद्युत्स्तनयित्नुकल्पा जलागमे द्यौरिव जातमेघा ॥ ५ ॥
ततो रणायाऽभिमुखी प्रयाता प्रत्यर्जुनं शान्तनवाभिगुप्ता ।
सेना महोग्रा सहसा कुरूणां वेगो यथा भीम इवाऽऽपगायाः ॥ ६ ॥
तं व्यालनानाविधगूढसारं गजाश्वपादातरथौघपक्षम् ।
व्यूहं महामेघसमं महात्मा ददर्श दूरात्कपिराजकेतुः ॥ ७ ॥
विनिर्ययौ केतुमता रथेन नरर्षभः श्वेतहयेन वीरः ।
वरूथिना सैन्यमुखे महात्मा वधे धृतः सर्वसपत्नयूनाम् ॥ ८ ॥
सूपस्करं सोत्तरबन्धुरेषं यत्तं यदूनामृषभेण संख्ये ।
कपिध्वजं प्रेक्ष्य विषेदुराजौ सहैव पुत्रैस्तव कौरवेयाः ॥ ९ ॥

साठवाँ अध्याय ॥ ६० ॥

सञ्जय कहते है– हे भारत ! रात्रि व्यतीत हो गई। शत्रुओं के ऊपर क्रुद्ध भीष्म पितामह अपनी सब सेना साथ लेकर शत्रुसेना से युद्ध करने के लिए युद्धभूमि को चले। उनके साथ बहुत सी सेना लेकर द्रोणाचार्य, दुर्योधन, बाह्लीक, दुर्मर्षण, चित्रसेन, महाबली जयद्रथ और अन्य सब महारथी राजा चले। उन सब तेजस्वी महाबली राजा लोगों के मध्य में महारथी भीष्म देवगण सहित इन्द्र के समान शोभा को प्राप्त हुए ॥१।३॥ उस सेना के मध्य हाथियों और रथों के ऊपर लाल, पीले, श्वेत आदि अनेक रङ्ग के झण्डे फहरा रहे थे। वह कौरवसेना भीष्म, अन्य महारथियों, हाथियों और घोड़ों से, सौदामिनी मण्डित मेघमाला के समान, शोभित हुई। इसके पश्चात् भीष्म द्वारा सुरक्षित वह कौरवसेना सहसा अर्जुन से युद्ध करने के लिए पाण्डवसेना के सामने, भयङ्कर नदीप्रवाह के समान, आगे बढ़ने लगी ॥४।६॥ महावीर अर्जुन ने दूर से हाथियों, घोड़ों, रथों और पदलों से परिपूर्ण उस मेघमाला के समान कौरवसेना को अपनी ओर आते देखा। वे अपने पक्ष की सेना को साथ लेकर, श्वेत घोड़ों से युक्त रथ पर चढ़कर,

प्रकर्षता गुप्तमुदायुधेन किरीटिना लोकमहारथेन ।
तं व्यूहराजं ददृशुस्त्वदीयाश्चतुश्चतुर्व्यालसहस्रकर्णम् ॥ १० ॥
यथा हि पूर्वेऽहनि धर्मराज्ञा व्यूहः कृतः कौरवसत्तमेन ।
तथा न भूतो भुवि मानुषेषु न दृष्टपूर्वो न च संश्रुतश्च ॥ ११ ॥
ततो यथादेशमुपेत्य तस्थुः पाञ्चालमुख्याः सह चेदिमुख्यैः ।
ततः समादेशसमाहतानि भेरीसहस्राणि विनेदुराजौ ॥ १२ ॥
शङ्खस्वनास्तूर्यरथस्वनाश्च सर्वेष्वनीकेषु ससिंहनादाः ।
ततः सबाणानि महास्वनानि विस्फार्यमाणानि धनूंषि वीरैः ॥ १३ ॥
क्षणेन भेरीपणवप्रणादानन्तर्दधुः शङ्खमहास्वनाश्च ।
तच्छङ्खशब्दावृतमन्तरिक्षमुद्धूतभौमद्रुतरेणुजालम् ॥ १४ ॥
महावितानावततप्रकाशमालोक्य वीराः सहसाऽभिपेतुः ।
रथी रथेनाऽभिहतः ससूतः पपात साश्वः सरथः सकेतुः ॥ १५ ॥
गजो गजेनाऽभिहतः पपात पदातिना चाऽभिहतः पदातिः ।
आवर्तमानान्यभिवर्तमानैर्घोरीकृतान्यद्भुतदर्शनानि ॥ १६ ॥
प्रासैश्च खड्गैश्च समाहतानि सदश्ववृन्दानि सदश्ववृन्दैः ।
सुवर्णतारागणभूषितानि सूर्यप्रभाभानि शरावराणि ॥ १७ ॥
विदार्यमाणानि परश्वधैश्च प्रासैश्च खड्गैश्च निपेतुरुर्व्याम् ।
गजैर्विषाणैर्वरहस्तरुग्णाः केचित्ससूता रथिनः प्रपेतुः ॥ १८ ॥

शत्रुसेना के सामने चले। आपके पुत्र, सब कौरवगण और उनके सैनिक अर्जुन के सुन्दर रथ और सारथी को देखकर अत्यन्त व्याकुल हुए ॥७-९॥ पाण्डवों ने आज जिस व्यूह की रचना की थी उसके दांतों और चार हजार गजराज थे। महारथी अर्जुन शस्त्र हाथ में लिये सावधान होकर उस व्यूह की रक्षा कर रहे थे। आपके पक्ष के वीर उत्सुक होकर उस श्रेष्ठ व्यूह को देखने लगे। धर्मराज युधिष्ठिर ने पहले दिन जैसा अद्भुत अदृष्टपूर्व व्यूह रचा था वैसा ही यह व्यूह भी था। इसके अनन्तर समरभूमि में हजारों भेरी, शङ्ख आदि बाजे बजने लगे। उसके साथ तूर्य-ध्वनि और सिंहनाद भी सुन पड़ने लगा ॥१०-१३॥

फिर क्षण भर में धनुष और बाण चढाने का शब्द और शङ्खों का शब्द इतना बढ गया कि उसमें भेरी, पणव आदि का शब्द छिप गया। आकाशमण्डल में धूल का तम्बू सा तन गया। रथी योद्धा के प्रहार से दूसरा रथी रथ, सारथी और घोड़ों समेत मरकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। इसी प्रकार हाथियों और घोड़ों के सवारों के प्रहार से मरकर हाथी और घोड़े पृथ्वी पर गिरने लगे। इधर-उधर दौड़ते हुए घुड़सवार लोग, दूसरे घुड़सवारों के हाथों, प्रास और शक्ति आदि शस्त्रों के प्रहार से मरकर पृथ्वी पर गिरने लगे। उस समय उनकी दशा अद्भुत देख पड़ती थी। सुवर्ण-तारागण-भूषित, सूर्य के समान प्रभासम्पन्न

गजर्षभाश्चाऽपि रथर्षभेण निपातिता बाणहताः पृथिव्याम् ।
गजौघवेगोद्धतसादितानां श्रुत्वा विषेदुः सहसा मनुष्याः ॥ १९ ॥
आर्तस्वनं सादिपदातियूनां विषाणगात्रावरताडितानाम् ।
सम्भ्रान्तनागाश्वरथे मुहूर्ते महाक्षये सादिपदातियूनाम् ॥ २० ॥
महारथैः सम्परिवार्यमाणो ददर्श भीष्मः कपिराजकेतुम् ।
तं पञ्चतालोच्छ्रिततालकेतुः सदश्ववेगाद्भुतवीर्ययानः ॥ २१ ॥
महास्त्रबाणाशनिदीप्तिमन्तं किरीटिनं शान्तनवोऽभ्यधावत् ।
तथैव शक्रप्रतिमप्रभावमिन्द्रात्मजं द्रोणमुखा विसस्रुः ॥ २२ ॥
कृपश्च शल्यश्च विविंशतिश्च दुर्योधनः सौमदत्तिश्च राजन् ।
ततो रथानां प्रमुखादुपेत्य सर्वास्त्रवित्काञ्चनचित्रवर्मा ॥ २३ ॥
जवेन शूरोऽभिससार सर्वांस्तानर्जुनस्याऽऽत्मसुतोऽभिमन्युः ।
तेषां महास्त्राणि महारथानामसह्यकर्मा विनिहत्य कार्ष्णिः ॥ २४ ॥
बभौ महामन्त्रहुतार्चिमाली सदोगतः सन्भगवानिवाऽग्निः ।
ततः स तूर्णं रुधिरोदफेनां कृत्वा नदीमाशु रणे रिपूणाम् ॥ २५ ॥
जगाम सौभद्रमतीत्य भीष्मो महारथं पार्थमदीनसत्त्वः ।
ततः प्रहस्याऽद्भुतविक्रमेण गाण्डीवमुक्तेन शिलाशितेन ॥ २६ ॥
विपाठजालेन महास्त्रजालं विनाशयामास किरीटमाली ।
तमुत्तमं सर्वधनुर्धराणामसक्तकर्मा कपिराजकेतुः ॥ २७ ॥

तरकस, प्रास, परश्वध और खड्ग आदि के प्रहार से काट-काटकर वे पृथ्वी पर गिरने लगे ॥१४।१८॥ बहुत से रथी और सारथी हाथियों की सूँड और दाँतों के प्रहार से मरकर और हाथियों के सवार श्रेष्ठ रथियों के बाणों की चोट खाकर पृथिवी पर गिरने लगे। उस समय अनेक पैदल भी हाथियों के वेग और दाँतों की चोट से पीड़ित होकर आर्तनाद करने लगे ॥१८।२०॥ इस प्रकार घुड़सवार और पैदल कम होने लगे। हाथी, घोड़े और रथ भ्रान्त से होकर इधर-उधर दौड़ने लगे। उस समय महारथी भीष्म ने महारथियों के साथ स्थित अर्जुन के रथ की ध्वजा दूर पर देखी। पाँच ताल ऊँची तालचिह्नयुक्त ध्वजा से शोभायमान, वेगशाली घोड़ों से युक्त, रथ पर सवार महाबली भीष्म उस समय महाअस्त्र, बाण आदि से प्रकाशमान अर्जुन की ओर चले ॥२०।२२॥ उनके साथ ही इन्द्र के समान प्रभावशाली अर्जुन पर आक्रमण करने के लिए द्रोण, कृप, शल्य, विविंशति, दुर्योधन, सोमदत्त के पुत्र आदि वीर भी चले। इसी समय सब अस्त्रों के ज्ञाता, सुवर्णकवच-धारी अभिमन्यु बड़े वेग के साथ युद्ध के लिए इन लोगों के आगे आये। भीमकर्मा अभिमन्यु—कृपाचार्य आदि महाबली वीरों के अस्त्र-शस्त्रों को काट-काटकर महामन्त्र द्वारा आहुतियों को प्राप्त, ज्वालामाली अग्नि के समान शोभायमान हुए ॥२३।२५॥ उधर परम

भीष्मं महात्माऽभिववर्ष तूर्णं शरौघजालैर्विमलश्च भल्लैः ।
तथैव भीष्माहतमन्तरिक्षे महास्त्रजालं कपिराजकेतोः ॥ २८ ॥
विशीर्यमाणं ददृशुस्त्वदीया दिवाकरेणेव तमोभिभूतम् ।
एवंविधं कार्मुकभीमनादमदीनवत्सत्पुरुषोत्तमाभ्याम् ।
ददर्श लोकः कुरुसृञ्जयाश्च तद् द्वैरथं भीष्मधनञ्जयाभ्याम् ॥ २९ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मार्जुनद्वैरथे षष्टितमोऽध्याय ॥ ६० ॥

पराक्रमी भीष्म पितामह युद्ध में शत्रुओं के रक्त की नदी बहाकर, अभिमन्यु को लाँघकर, अर्जुन के समीप जाकर बाणों की वर्षा करने लगे । हँसते हुए अर्जुन ने अद्भुत गाण्डीव धनुष चढ़ाकर इतने बाण छोड़े कि भीष्म के सब अस्त्र शस्त्र खण्ड-खण्ड होकर कट गये । इसके पश्चात् वे भीष्म के ऊपर अमोघ तीक्ष्ण भल्ल बाण बरसाने लगे । हे महाराज ! आपके पक्ष के योद्धाओं ने आश्चर्य के साथ देखा कि सूर्य जैसे अपनी किरणों से घने अँधेरे को नष्ट कर देते हैं, वैसे ही अर्जुन के अस्त्रजाल को भीष्म ने आकाश में ही अपने दिव्य अस्त्रों से नष्ट कर दिया । कौरव, सृञ्जय और अन्य सब लोग प्रधान योद्धा भीष्म और अर्जुन का इस प्रकार प्रबल धनुष चढ़ाने के घोर शब्द के साथ द्वन्द्व युद्ध देखने लगे ॥२५।२९॥

भीष्मपर्व का साठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६० ॥

अथ एकषष्टितमोऽध्याय ॥ ६१ ॥

सञ्जय उवाच

द्रौणिर्भूरिश्रवाः शल्यश्चित्रसेनश्च मारिष ।
पुत्रः सांयमनेश्चैव सौभद्रं पर्यवारयन् ॥ १ ॥
संसक्तमतितेजोभिस्तमेकं ददृशुर्जनाः ।
पञ्चभिर्मनुजव्याघ्रैर्गजैः सिंहशिशुं यथा ॥ २ ॥
नाऽभिलक्ष्यतया कश्चिन्न शौर्ये न पराक्रमे ।
बभूव सदृशः कार्ष्णेर्नास्त्रे नाऽपि च लाघवे ॥ ३ ॥
तथा तमात्मजं युद्धे विक्रमन्तमरिन्दमम् ।
दृष्ट्वा पार्थः सुसंयत्तं सिंहनादमथाऽनदत् ॥ ४ ॥

इकसठवाँ अध्याय ॥ ६१ ॥

सञ्जय ने कहा — हे महाराज ! अश्वत्थामा, भूरिश्रवा, शल्य, चित्रसेन और शल के पुत्र, ये सब एकत्रित होकर एक साथ अभिमन्यु से युद्ध करने लगे । सबने देखा कि तेजस्वी बालक अभिमन्यु इन पाँचों योद्धाओं के सामने, पाँच गजराजों के सम्मुख एक सिंह-शावक के समान, निर्भय भाव से खड़ा युद्ध कर रहा था । लक्ष्यवेध, पराक्रम, अस्त्रप्रयोग, स्फूर्ति आदि किसी बात में कोई योद्धा अभिमन्यु की बराबरी नहीं कर पाता था ॥१।२॥ अर्जुन अपने शत्रुतापन पुत्र को युद्ध में ऐसा पराक्रम प्रकट करते देखकर आनन्द से सिंहनाद करने लगे । हे राजेन्द्र ! आपके पक्ष के योद्धाओं ने अभिमन्यु को

पीडयानं तु तत्सैन्यं पौत्रं तव विशाम्पते ।
दृष्ट्वा त्वदीया राजेन्द्र समन्तात्पर्यवारयन् ॥ ५ ॥
ध्वजिनीं धार्तराष्ट्राणां दीनशत्रुरदीनवत् ।
प्रत्युद्ययौ ससौभद्रस्तेजसा च बलेन च ॥ ६ ॥
तस्य लाघवमार्गस्थमादित्यसदृशप्रभम् ।
व्यदृश्यत महच्चापं समरे युध्यतः परैः ॥ ७ ॥
स द्रौणिमिषुणैकेन विध्वा शल्यं च पञ्चभिः ।
ध्वजं सांयमनेश्चैव सोऽष्टाभिश्चिच्छिदे ततः ॥ ८ ॥
रुक्मदण्डां महाशक्तिं प्रेषितां सौमदत्तिना ।
शितेनोरगसङ्काशां पत्रिणाऽपजहार ताम् ॥ ९ ॥
शल्यस्य च महावेगानस्यतः समरे शरान् ।
निवार्याऽर्जुनदायादो जघान चतुरो हयान् ॥ १० ॥
भूरिश्रवाश्च शल्यश्च द्रौणिः सांयमनिः शलः ।
नाऽभ्यवर्तन्त संरब्धाः कार्ष्णेर्बाहुबलोदयम् ॥ ११ ॥
ततस्त्रिगर्ता राजेन्द्र मद्राश्च सह केकयैः ।
पञ्चविंशतिसाहस्रास्तव पुत्रेण चोदिताः ॥ १२ ॥
धनुर्वेदविदो मुख्या अजेयाः शत्रुभिर्युधि ।
सहपुत्रं जिघांसन्तं परिवव्रुः किरीटिनम् ॥ १३ ॥

इस प्रकार कौरवसेना को मथते देखकर चारों ओर से उन पर आक्रमण किया। तब शत्रुनाशन अभिमन्यु ने निर्भय भाव से, तेज और बल के साथ, उन लोगों के सम्मुख आकर अत्यन्त घोर संग्राम करना आरम्भ किया ॥५।६॥ शत्रुओं के साथ युद्ध करते समय अभिमन्यु का श्रेष्ठ धनुष सूर्यमण्डल के समान प्रभा-सम्पन्न और घूमता हुआ देख पड़ने लगा। अभिमन्यु ने अश्वत्थामा को एक और शल्य को पाँच बाण मारकर आठ बाणों से शल के पुत्र की ध्वजा के कई टुकड़े कर डाले। तब सोमदत्त के पुत्र ने सुवर्ण-दण्डयुक्त, नागसदृश एक महाशक्ति अभिमन्यु के ऊपर चलाई। अभिमन्यु ने एक ही बाण से वह शक्ति काटकर गिरा दी। तब शल्य उन पर सैकड़ों बाण बरसाने लगे। अभिमन्यु ने फुर्ती के साथ चार बाणों से शल्य के रथ के चारों घोड़ों को मार डाला। उस समय भूरिश्रवा, शल्य, अश्वत्थामा और शल कोई भी अभिमन्यु के सामने ठहरकर युद्ध नहीं कर सका ॥७।११॥ हे महाराज! इसके पश्चात् युद्ध में अजेय, प्रधान-प्रधान धनुर्वेद के विद्वान्, रण-निपुण योद्धा लोग आपके पुत्र की आज्ञा से अभिमन्यु और अर्जुन से युद्ध करने चले। ऐसे पच्चीस हजार मुख्य योद्धाओं ने त्रिगर्त, मद्र और केकय देशों की सेना के साथ जाकर चारों ओर से अर्जुन और अभिमन्यु को घेर लिया ॥१२।१३॥

तौ तु तत्र पितापुत्रौ परिक्षिप्तौ महारथौ ।
ददर्श राजन्पाञ्चाल्यः सेनापतिररिन्दम ॥ १४ ॥
स वारणरथौघानां सहस्रैर्बहुभिर्वृतः ।
वाजिभिः पत्तिभिश्चैव वृतः शतसहस्रशः ॥ १५ ॥
धनुर्विस्फार्य संक्रुद्धो नोदयित्वा च वाहिनीम् ।
ययौ तं मद्रकानीकं केकयांश्च परन्तप ॥ १६ ॥
तेन कीर्तिमता गुप्तमनीकं दृढधन्वना ।
संरब्धरथनागाश्वं योत्स्यमानमशोभत ॥ १७ ॥
सोऽर्जुनप्रमुखे यान्तं पाञ्चालकुलवर्धनः ।
त्रिभिः शारद्वतं बाणैर्जत्रुदेशे समार्पयत् ॥ १८ ॥
ततः स मद्रकान्हत्वा दशैव दशभिः शरैः ।
पृष्ठरक्षं जघानाऽऽशु भल्लेन कृतवर्मणः ॥ १९ ॥
दमनं चाऽपि दायादं पौरवस्य महात्मनः ।
जघान विमलाग्रेण नाराचेन परन्तपः ॥ २० ॥
ततः सांयमनेः पुत्रः पाञ्चाल्यं युद्धदुर्मदम् ।
अविध्यत्त्रिंशता बाणैर्दशभिश्चाऽस्य सारथिम् ॥ २१ ॥
सोऽतिविद्धो महेष्वासः सृक्किणीपरिसंलिहन् ।
भल्लेन भृशतीक्ष्णेन निचकर्ताऽस्य कार्मुकम् ॥ २२ ॥
अथैनं पञ्चविंशत्या क्षिप्रमेव समार्पयत् ।
अश्वांश्चाऽस्याऽवधीद्राजन्नुभौ तौ पार्ष्णिसारथी ॥ २३ ॥

शत्रुविजयी सेनापति धृष्टद्युम्न ने अर्जुन और अभिमन्यु के रथ को इस प्रकार शत्रुसेना से घिरते देखकर सब सेना को उनकी सहायता के लिए बढ़ने की आज्ञा दी। क्रुद्ध धृष्टद्युम्न कई हजार गजों, रथों और घोड़ों के सवारों को तथा पैदल सेना को साथ ले धनुष चढ़ाकर मद्र, केकय आदि देशों की सेना से युद्ध करने चले ॥१४।१६॥ रथों, हाथियों, घोड़ों और पैदलों से परिपूर्ण वह पाण्डव-सेना दृढ़ धनुष-वाले धृष्टद्युम्न के द्वारा सुरक्षित और सञ्चालित होकर उधर चली। उस समय वह सेना बहुत ही शोभा को प्राप्त हुई। धृष्टद्युम्न ने अर्जुन के पास जाकर कृपाचार्य के कन्धे में तीन बाण मारे। फिर मद्रराज शल्य को दस बाणों से व्याकुल करके शीघ्रतापूर्वक एक भल्ल बाण से कृतवर्मा के पृष्ठरक्षक को मार डाला। इसके अनन्तर एक भारी नाराच बाण से पौरवपुत्र दमन को मार डाला ॥१७।२०॥ तब शल्य के पुत्र ने युद्धदुर्मद धृष्टद्युम्न और उनके सारथी को दस बाण मारे। श्रेष्ठ योद्धा धृष्टद्युम्न उन बाणों से

स हताऽश्वे रथे तिष्ठन्ददर्श भरतर्षभ ।
पुत्रः सांयमनेः पुत्रं पाञ्चाल्यस्य महात्मनः ॥ २४ ॥
स प्रगृह्य महाघोरं निस्त्रिंशवरमायसम् ।
पदातिस्तूर्णमानर्च्छद्रथस्थं पुरुषर्षभः ॥ २५ ॥
तं महौघमिवायान्तं खात्पतन्तमिवोरगम् ।
भ्रान्तावरणनिस्त्रिंशं कालोत्सृष्टमिवान्तकम् ॥ २६ ॥
दीप्यमानमिवाऽऽदित्यं मत्तवारणविक्रमम् ।
अपश्यन्पाण्डवास्तत्र धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ २७ ॥
तस्य पाञ्चालदायादः प्रतीपमभिधावतः ।
शितनिस्त्रिंशहस्तस्य शरावरणधारिणः ॥ २८ ॥
बाणवेगमतीतस्य तथाऽभ्याशमुपेयुषः ।
त्वरन्सेनापतिः क्रुद्धो बिभेद गदया शिरः ॥ २९ ॥
तस्य राजन्सनिस्त्रिंशं सुप्रभं च शरावरम् ।
हतस्य पततो हस्ताद्वेगेन न्यपतद्भुवि ॥ ३० ॥
तं निहत्य गदाग्रेण स लेभे परमां मुदम् ।
पुत्रः पाञ्चालराजस्य महात्मा भीमविक्रमः ॥ ३१ ॥
तस्मिन्हते महेष्वासे राजपुत्रे महारथे ।
हाहाकारो महानासीत्तत्र सैन्यस्य मारिष ॥ ३२ ॥

अत्यन्त घायल होकर क्रोध के मारे दाँत पीसने लगे। उन्होंने एक तीक्ष्ण भल्ल बाण से शत्रु का धनुष काट कर पचीस बाण और मारे। अब धृष्टद्युम्न ने शल के पुत्र के सारथी, घोडे और पार्श्वरक्षकों को मार डाला ॥२१।२३॥ हे महाराज ! शल के पुत्र इस प्रकार बिना घोडे और सारथी के रथ पर अपने को असहाय निरुपाय देखकर क्रोध के मारे धृष्टद्युम्न को मारने के लिए एक श्रेष्ठ खड्ग लेकर रथ से कूद-कर पैदल ही दौडे। पाण्डवों और धृष्टद्युम्न ने देखा कि वह वीर आकाश से गिरे हुए बडे सर्प या काल-प्रेरित मृत्यु के समान आ रहा है ॥२४।२७॥ महा-वीर शल-पुत्र बाण-वेग के मार्ग को लाँघकर ज्योंही स्फूर्ति से धृष्टद्युम्न के रथ के पास पहुँचे त्योंही धृष्टद्युम्न ने अवसर पाकर गदा से उनका सिर चूर्ण कर दिया। हे महाराज ! गदा के प्रहार से मृत्यु को प्राप्त होकर शल पुत्र गिर पडे; उनके हाथ से चमकीली तलवार और ढाल पृथ्वी पर गिर पडी। अपने शत्रु को गदा के आघात से मारकर पाञ्चाल-पुत्र धृष्टद्युम्न बहुत ही प्रसन्न हुए ॥२८।३१॥ धनुर्धरश्रेष्ठ महारथी शल पुत्र के मरने पर आपकी सेना में हाहाकार मच गया। इसके पश्चात महाराज शल अपने पुत्र की मृत्यु देखकर क्रोध के मारे वेग से दौडते हुए युद्धप्रिय धृष्टद्युम्न के पास पहुँचे। कौरवों और पाण्डवों की सेना के सामने वे घोर संग्राम करने लगे। हाथी को जैसे

ततः सांयमनिः क्रुद्धो दृष्ट्वा निहतमात्मजम् ।
अभिदुद्राव वेगेन पाञ्चाल्यं युद्धदुर्मदम् ॥ ३३ ॥
तौ तत्र समरे शूरौ समेतौ युद्धदुर्मदौ ।
ददृशुः सर्वराजानः कुरवः पाण्डवास्तथा ॥ ३४ ॥
ततः सांयमनिः क्रुद्धः पार्षतं परवीरहा ।
आजघान त्रिभिर्बाणैस्तोत्रैरिव महाद्विपम् ॥ ३५ ॥
तथैव पार्षतं शूरं शल्यः समितिशोभनः ।
आजघानोरसि क्रुद्धस्ततो युद्धमवर्तत ॥ ३६ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि चतुर्थयुद्धदिवसे सांयमनिपुत्रवधे एकषष्टितमोऽध्याय ॥ ६१ ॥

कोई अंकुश मारता है वैसे ही महावीर शल्य ने धृष्टद्युम्न को तीन बाण मारे । उधर शल्य ने भी क्रुद्ध होकर धृष्टद्युम्न के हृदय मे प्रहार किया । इस प्रकार उनका घोर संग्राम होने लगा ॥३२।३६॥

भीष्मपर्व का इकसठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६१ ॥

अथ द्विषष्टितमोऽध्याय ॥ ६२ ॥

धृतराष्ट्र उवाच — दैवमेव परं मन्ये पौरुषादपि सञ्जय ।
यत्सैन्यं मम पुत्रस्य पाण्डुसैन्येन बाध्यते ॥ १ ॥
नित्यं हि मामकांस्तात हतानेव हि शंससि ।
अव्यग्रांश्च प्रहृष्टांश्च नित्यं शंससि पाण्डवान् ॥ २ ॥
हीनान्पुरुषकारेण मामकानद्य सञ्जय ।
पातितान्पात्यमानांश्च हतानेव च शंससि ॥ ३ ॥
युध्यमानान्यथाशक्ति घटमानाञ्जयं प्रति ।
पाण्डवा हि जयन्त्येव जीयन्ते चैव मामकाः ॥ ४ ॥
सोऽहं तीव्राणि दुःखानि दुर्योधनकृतानि च ।
श्रोष्यामि सततं तात दुःसहानि बहूनि च ॥ ५ ॥

बासठवाँ अध्याय ॥ ६२ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! मैं पौरुष की अपेक्षा दैव को ही श्रेष्ठ समझता हूँ; क्योंकि पाण्डव-पक्ष के वीर ही निरन्तर मेरे पक्ष के वीरों को मारते चले आते हैं । हे सञ्जय ! तुम हर एक बार मेरे पक्ष की सेना के विनाश का वर्णन करते हो ॥१।३॥ मेरे पक्षवालों को पौरुष मे हीन और निहत बताकर पाण्डवों की प्रशंसा करते हो और उन्हें अव्यग्र, प्रसन्न और उत्साही बतलाते हो । मेरे पक्ष के योद्धा

स हताऽश्वे रथे तिष्ठन्ददर्श भरतर्षभ ।
पुत्रः सांयमनेः पुत्रं पाञ्चाल्यस्य महात्मनः ॥ २४ ॥
स प्रगृह्य महाघोरं निस्त्रिंशवरमायसम् ।
पदातिस्तूर्णमानच्छेद्रथस्थं पुरुषर्षभः ॥ २५ ॥
तं महौघमिवायान्तं खात्पतन्तमिवोरगम् ।
भ्रान्तावरणनिस्त्रिंशं कालोत्सृष्टमिवान्तकम् ॥ २६ ॥
दीप्यमानमिवाऽऽदित्यं मत्तवारणविक्रमम् ।
अपश्यन्पाण्डवास्तत्र धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ २७ ॥
तस्य पाञ्चालदायादः प्रतीपमभिधावतः ।
शितनिस्त्रिंशहस्तस्य शरावरणधारिणः ॥ २८ ॥
बाणवेगमतीतस्य तथाऽभ्याशमुपेयुषः ।
त्वरन्सेनापतिः क्रुद्धो बिभेद गदया शिरः ॥ २९ ॥
तस्य राजन्सनिस्त्रिंशं सुप्रभं च शरावरम् ।
हतस्य पततो हस्ताद्वेगेन न्यपतद्भुवि ॥ ३० ॥
तं निहत्य गदाग्रेण स लेभे परमां मुदम् ।
पुत्रः पाञ्चालराजस्य महात्मा भीमविक्रमः ॥ ३१ ॥
तस्मिन्हते महेष्वासे राजपुत्रे महारथे ।
हाहाकारो महानासीत्तव सैन्यस्य मारिष ॥ ३२ ॥

अत्यन्त घायल होकर क्रोध के मारे दाँत पीसने लगे। उन्होंने एक तीक्ष्ण भल्ल बाण से शत्रु का धनुष काट कर पच्चीस बाण और मारे। अब धृष्टद्युम्न ने शल के पुत्र के सारथी, घोडे और पार्श्वरक्षकों को मार डाला ॥२१।२३॥ हे महाराज ! शल के पुत्र इस प्रकार बिना घोडे और सारथी के रथ पर अपने को असहाय निरुपाय देखकर क्रोध के मारे धृष्टद्युम्न को मारने के लिए एक श्रेष्ठ खड्ग लेकर रथ से कूद-कर पैदल ही दौडे। पाण्डवों और धृष्टद्युम्न ने देखा कि वह वीर आकाश से गिरे हुए बडे सर्प या काल-प्रेरित मृत्यु के समान आ रहा है ॥२४।२७॥ महा-वीर शल-पुत्र बाण-वेग के मार्ग को लाँघकर ज्योंही स्फूर्त्ति से धृष्टद्युम्न के रथ के पास पहुँचे त्योंही धृष्टद्युम्न ने अवसर पाकर गदा से उनका सिर चूर्ण कर दिया। हे महाराज ! गदा के प्रहार से मृत्यु को प्राप्त होकर शल पुत्र गिर पडे; उनके हाथ से चमकीली तलवार और ढाल पृथ्वी पर गिर पडी। अपने शत्रु को गदा के आघात से मारकर पाञ्चाल-पुत्र धृष्टद्युम्न बहुत ही प्रसन्न हुए ॥२८।३१॥ धनुर्द्धरश्रेष्ठ महारथी शल-पुत्र के मरने पर आपकी सेना में हाहाकार मच गया। इसके पश्चात् महावीर शल अपने पुत्र की मृत्यु देखकर क्रोध के मारे वेग से दौडते हुए युद्धप्रिय धृष्टद्युम्न के पास पहुँचे। कौरवों और पाण्डवों की सेना के सामने वे घोर संग्राम करने लगे। हाथी को जैसे

तत: सांयमनि: क्रुद्धो दृष्ट्वा निहतमात्मजम् ।
अभिदुद्राव वेगेन पाञ्चाल्यं युद्धदुर्मदम् ॥ ३३ ॥
तौ तत्र समरे शूरौ समेतौ युद्धदुर्मदौ ।
ददृशु: सर्वराजान: कुरव: पाण्डवास्तथा ॥ ३४ ॥
तत: सांयमनि: क्रुद्ध: पार्षतं परवीरहा ।
आजघान त्रिभिर्बाणैस्तोत्रैरिव महाद्विपम् ॥ ३५ ॥
तथैव पार्षतं शूरं शल्य: समितिशोभन: ।
आजघानोरसि क्रुद्धस्ततो युद्धमवर्तत ॥ ३६ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि चतुर्थयुद्धदिवसे सांयमनिपुत्रवधे एकषष्टितमोऽध्याय ॥ ६१ ॥

कोई अंकुश मारता है वैसे ही महावीर शल ने धृष्टद्युम्न को तीन बाण मारे। उधर शल्य ने भी क्रुद्ध होकर धृष्टद्युम्न के हृदय में प्रहार किया। इस प्रकार उनका घोर संग्राम होने लगा ॥३२।३६॥

भीष्मपर्व का इकसठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६१ ॥

अथ द्विषष्टितमोऽध्याय ॥ ६२ ॥

धृतराष्ट्र उवाच दैवमेव परं मन्ये पौरुषादपि सञ्जय ।
यत्सैन्यं मम पुत्रस्य पाण्डुसैन्येन बाध्यते ॥ १ ॥
नित्यं हि मामकांस्तात हतानेव हि शंससि ।
अव्यग्रांश्च प्रहृष्टांश्च नित्यं शंससि पाण्डवान् ॥ २ ॥
हीनान्पुरुषकारेण मामकानद्य सञ्जय ।
पातितान्पात्यमानांश्च हतानेव च शंससि ॥ ३ ॥
युध्यमानान्यथाशक्ति घटमानाञ्जयं प्रति ।
पाण्डवा हि जयन्त्येव जीयन्ते चैव मामका: ॥ ४ ॥
सोऽहं तीव्राणि दु:खानि दुर्योधनकृतानि च ।
श्रोष्यामि सततं तात दु:सहानि बहूनि च ॥ ५ ॥

बासठवाँ अध्याय ॥ ६२ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! मैं पौरुष की अपेक्षा दैव को ही श्रेष्ठ समझता हूँ; क्योंकि पाण्डव-पक्ष के वीर ही निरन्तर मेरे पक्ष के वीरों को मारते रहते हैं। हे सञ्जय ! तुम हर एक बार मेरे पक्ष की सेना के विनाश का वर्णन करते हो ॥१।३॥ मेरे पक्षवालों को पौरुष से हीन और निहत बतलाकर पाण्डवों की प्रशंसा करते हो और उन्हें अव्यग्र, प्रसन्न और उत्साही बतलाते हो। मेरे पक्ष के योद्धा

ततस्तु तावका राजन्परीप्सन्तोऽऽर्जुनिं रणे ।
मद्रराजरथं तूर्णं परिवार्याऽवतस्थिरे ॥ १५ ॥
दुर्योधनो विकर्णश्च दुःशासनविविंशती ।
दुर्मर्षणो दुःसहश्च चित्रसेनोऽथ दुर्मुखः ॥ १६ ॥
सत्यव्रतश्च भद्रं ते पुरुमित्रश्च भारत ।
एते मद्राधिपरथं पालयन्तः स्थिता रणे ॥ १७ ॥
तान्भीमसेनः संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
द्रौपदेयाभिमन्युश्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ १८ ॥
धार्तराष्ट्रान्दश रथान्दशैव प्रत्यवारयन् ।
नानारूपाणि शस्त्राणि विसृजन्तो विशाम्पते ॥ १९ ॥
अभ्यवर्तन्त संहृष्टाः परस्परवधैषिणः ।
ते वै समेयुः संग्रामे राजन्दुर्मन्त्रिते तव ॥ २० ॥
तस्मिन्दशरथे क्रुद्धे वर्तमाने महाभये ।
तावकानां परेषां वा प्रेक्षका रथिनोऽभवन् ॥ २१ ॥
शस्त्राण्यनेकरूपाणि विसृजन्तो महारथाः ।
अन्योन्यमभिनर्दन्तः सम्प्रहारं प्रचक्रिरे ॥ २२ ॥
ते तदा जातसंरम्भाः सर्वेऽन्योऽन्यं जिघांसवः ।
अन्योन्यमभिमर्दन्तः स्पर्धमानाः परस्परम् ॥ २३ ॥
अन्योन्यस्पर्धया राजन्ज्ञातयः सङ्गता मिथः ।
महास्त्राणि विमुञ्चन्तः समापेतुरमर्षिणः ॥ २४ ॥

आवेश में आकर शल्य को तीन वेधक बाणों से घायल किया। यह देखकर आपके पक्ष के योद्धा लोग अभिमन्यु पर आक्रमण करने के लिए शल्य के चारों ओर आ गये। दुर्योधन, दुःशासन, विकर्ण, विविंशति दुर्मर्षण, दुःसह, चित्रसेन, दुर्मुख, सत्यव्रत और पुरुमित्र, ये दस योद्धा शल्य के रथ की रक्षा करने लगे। ॥१४।१७॥ हे महाराज ! उधर भीमसेन, धृष्टद्युम्न, द्रौपदी के पाँचों पुत्र, अभिमन्यु, नकुल और सहदेव, ये दस योद्धा मिलकर असंख्य अस्त्र-शस्त्रों के द्वारा शत्रुसेना के उक्त दसों योद्धाओं को रोकने की चेष्टा करने लगे। हे राजेन्द्र ! आपकी बुरी सम्मति के कारण ही ये सब क्रोधवश होकर परस्पर वध की इच्छा से युद्ध करने लगे। ॥१८।२०॥ इस समय अन्य रथी और योद्धा युद्ध बन्द करके इन लोगों का घोर संग्राम देखने लगे। उस समय वे महारथी योद्धा, परस्पर वध की इच्छा से, क्रोध से नेत्र लाल करके, सिंहनाद पूर्वक, शस्त्रों के साथ अस्त्र-प्रहार करने लगे। ॥२१।२४॥ क्रुद्ध होकर दुर्योधन ने चार, दुर्मर्षण

धृष्टद्युम्नहतानन्यानपश्याम महागजान् ।
पततः पात्यमानांश्च पार्षतेन महात्मना ॥ ४५ ॥
मागधोऽथ महीपालो गजमैरावणोपमम् ।
प्रेषयामास समरे सौभद्रस्य रथं प्रति ॥ ४६ ॥
तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य मागधस्य महागजम् ।
जघानैकेषुणा वीरः सौभद्रः परवीरहा ॥ ४७ ॥
तस्याऽऽवर्जितनागस्य कार्ष्णिः परपुरञ्जयः ।
राज्ञो रजतपुङ्खेन भल्लेनाऽपाहरच्छिरः ॥ ४८ ॥
विगाह्य तद्गजानीकं भीमसेनोऽपि पाण्डवः ।
व्यचरत्समरे मृद्नन्गजानिन्द्रो गिरीनिव ॥ ४९ ॥
एकप्रहारनिहता भीमसेनेन दन्तिनः ।
अपश्याम रणे तस्मिन्गिरीन्वज्रहतानिव ॥ ५० ॥
भग्नदन्तान्भग्नकटान्भग्नसक्थांश्च वारणान् ।
भग्नपृष्ठत्रिकानन्यान्निहतान्पर्वतोपमान् ॥ ५१ ॥
नदतः सीदतश्चाऽन्यान्विमुखान्समरे गतान् ।
विद्रुतान्भयसंविग्नांस्तथा विशकृतोऽपरान् ॥ ५२ ॥
भीमसेनस्य मार्गेषु पतितान्पर्वतोपमान् ।
अपश्यं निहतान्नागान्राजन्निष्ठीवतोऽपरान् ॥ ५३ ॥
वमन्तो रुधिरं चाऽन्ये भिन्नकुम्भा महागजाः ।
विह्वलन्तो गताभूमिं शैला इव धरातले ॥ ५४ ॥

महावीर धृष्टद्युम्न ने असंख्य हाथियों को मार गिराया। ऐरावत सदृश एक बड़े हाथी पर सवार मगधराज अभिमन्यु के रथ की ओर चले। शत्रुनाशन अभिमन्यु ने मगधराज के महाराज को, आते देखकर, एक ही बाण से मार डाला॥४४।४७॥ इसके पश्चात् एक चाँदी के समान चमकीले भल्ल बाण से मगधराज का सिर काट गिराया। इधर गजसेना के भीतर प्रवेश कर भीमसेन हाथियों को छिन्न-भिन्न कर वज्रपाणि इन्द्र के समान समरभूमि में विचरने लगे। वे एक ही एक प्रहार में प्रत्येक हाथी को पृथ्वी पर गिरा देते थे। युद्धभूमि में पड़े हुए वे हाथी वज्र से फटे हुए पर्वतों के शिखर से जान पड़ते थे ॥४८।५०॥ कुछ हाथियों के दाँत, कुछ हाथियों के मस्तक, कुछ हाथियों की पीठ टूट फूट गई और वे पृथ्वी पर गिर पड़े। कुछ हाथी समर में भाग खड़े हुए। कुछ हाथियों ने डरकर मल-मूत्र त्याग कर दिया। कोई-कोई पर्वत सा हाथी भीमसेन के वेग से ही गिरकर मर गया। कोई हाथी चोट खाकर चीत्कार करता हुआ आर्त-

मेदोरुधिरदिग्धाङ्गो वसामज्जासमुक्षितः ।
व्यचरत्समरे भीमो दण्डपाणिरिवाऽन्तकः ॥ ५५ ॥
गजानां रुधिरक्लिन्नां गदां बिभ्रद्वृकोदरः ।
घोरः प्रतिभयश्चाऽऽसीत्पिनाकीव पिनाकधृक् ॥ ५६ ॥
सम्मथ्यमानाः क्रुद्धेन भीमसेनेन दन्तिनः ।
सहसा प्राद्रवन्क्लिष्टा मृद्नन्तस्तव वाहिनीम् ॥ ५७ ॥
तं हि वीरं महेष्वासं सौभद्रप्रमुखा रथाः ।
पर्यरक्षन्त युध्यन्तं वज्रायुधमिवाऽमराः ॥ ५८ ॥
शोणिताक्तां गदां बिभ्रदुक्षितां गजशोणितैः ।
कृतान्त इव रौद्रात्मा भीमसेनो व्यदृश्यत ॥ ५९ ॥
व्यायच्छमानं गदया दिक्षु सर्वासु भारत ।
अपश्याम रणे भीमं नृत्यन्तमिव शङ्करम् ॥ ६० ॥
यमदण्डोपमां गुर्वीमिन्द्राशनिसमस्वनाम् ।
अपश्याम महाराज रौद्रां विशसनीं गदाम् ॥ ६१ ॥
विमिश्रां केशमज्जाभिः प्रदिग्धां रुधिरेण च ।
पिनाकमिव रुद्रस्य क्रुद्धस्याऽभिघ्नतः पशून् ॥ ६२ ॥
यथा पशूनां सङ्घातं यष्ट्या पालः प्रकालयेत् ।
तथा भीमो गजानीकं गदया समकालयत् ॥ ६३ ॥
गदया वध्यमानास्ते मार्गणैश्च समन्ततः ।
स्वान्यनीकानि मृद्नन्तः प्राद्रवन्कुञ्जरास्तव ॥ ६४ ॥

नाद करने लगा। किसी किसी हाथी का मस्तक फट गया और वह निरन्तर रक्त बहने से दुर्बल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥५१।५४॥ भीमसेन के सब अङ्ग मेदा, रक्त, वसा, मज्जा आदि से सन गये और वे दण्डपाणि यमराज के तुल्य गदा हाथ में लिये विचरते देख पड़ने लगे। भीमसेन के हाथों से मर्दित हाथियों का दल उलटे लौटकर आपकी ही सेना को कुचलने लगा। देवता जैसे इन्द्र की रक्षा करते हैं वैसे ही अभिमन्यु आदि महाधनुर्द्धर वीर भीमसेन की रक्षा करने लगे ॥५५।५८॥ हाथियों के रक्त से भीगी हुई गदा को लिये भीमसेन यमराज की तरह भयङ्कर देख पड़ते थे। गदा घुमाते हुए भीमसेन नृत्य करते हुए शङ्कर की तरह जान पड़ते थे। यमदण्ड की सी भीमसेन की गदा बहुत भारी थी और वज्र के तुल्य उससे शब्द होता था। उस भयङ्कर गदा में रक्त, मज्जा, केश आदि लिपटे हुए थे। वह गदा पशु को मारनेवाले रुद्र के 'पिनाक' धनुष की तरह थी ॥५९।६२॥ जैसे पशुपाल डण्डे

महावात इवाऽभ्राणि विधमित्वा सवारणान् ।
अतिष्ठत्तुमुले भीमः श्मशान इव शूलभृत् ॥ ६५ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि चतुर्थदिवसे भीमयुद्धे द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

से पशुओं को मारता है वैसे ही भीमसेन गदा के द्वारा हाथियों के सवारों की सेना को मारने लगे। भीमसेन की गदा और चारों ओर से आ रहे बाणों के आघात से घायल होकर भागे हुए हाथी अपने ही पक्ष की सेना को मथने और कुचलने लगे। आँधी से छिन्न-भिन्न मेघों के समान हाथियों के दल को नष्ट-भ्रष्ट करके भीमकर्मा भीमसेन श्मशानवासी भूतनाथ शङ्कर के समान शोभित हुए ॥६३।६५॥

भीष्मपर्व का बासठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६२ ॥

अथ त्रिषष्टितमोऽध्याय ॥ ६३ ॥

सञ्जय उवाच — हते तस्मिन्गजानीके पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
भीमसेनं घ्नतेत्येवं सर्वसैन्यान्यचोदयत् ॥ १ ॥
ततः सर्वाण्यनीकानि तव पुत्रस्य शासनात् ।
अभ्यद्रवन्भीमसेनं नदन्तं भैरवान्रवान् ॥ २ ॥
तं बलौघमपर्यन्तं देवैरपि सुदुःसहम् ।
आपतन्तं सुदुष्पारं समुद्रमिव पर्वणि ॥ ३ ॥
रथनागाश्वकलिलं शङ्खदुन्दुभिनादितम् ।
अनन्तरथपादातं नरेन्द्रस्तिमितह्रदम् ॥ ४ ॥
तं भीमसेनः समरे महोदधिमिवाऽपरम् ।
सेनासागरमक्षोभ्यं वेलेव समवारयत् ॥ ५ ॥
तदाश्चर्यमपश्याम पाण्डवस्य महात्मनः ।
भीमसेनस्य समरे राजन्कर्मातिमानुषम् ॥ ६ ॥
उदीर्णान्पार्थिवान्सर्वान्साश्वान्सरथकुञ्जरान् ।
असम्भ्रमं भीमसेनो गदया समवारयत् ॥ ७ ॥

तिरसठवाँ अध्याय ॥ ६३ ॥

सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र ! हाथियों की सेना के यों मारे जाने पर आपके पुत्र दुर्योधन ने अपनी सेना को भीमसेन के वध की आज्ञा दी। उस समय आपके पक्ष की सेना भयानक शब्द करके भीमसेन पर आक्रमण करने के लिए दौड़ी। समुद्र के वेग को जैसे तटभूमि रोकती है वैसे ही भीमसेन उस असंख्य रथ हाथी-घोड़े-पैदल आदि से पूर्ण, उड़ी हुई धूल से व्याप्त, देवताओं के लिए भी दुःसह कौरव-सेना के वेग को रोकने लगे ॥१।५॥ हे राजेन्द्र ! इस युद्ध में हमने भीमसेन का अद्भुत पराक्रम और

स संवार्य बलौघांस्तान्गदया रथिनां वरः ।
अतिष्ठत्तुमुले भीमो गिरिर्मेरुरिवाऽचलः ॥ ८ ॥
तस्मिन्सुतुमुले घोरे काले परमदारुणे ।
भ्रातरश्चैव पुत्राश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ ९ ॥
द्रौपदेयाऽभिमन्युश्च शिखण्डी चाऽपराजितः ।
न प्राजहन्भीमसेनं भये जाते महाबलम् ॥ १० ॥
ततः शैक्यायसीं गुर्वी प्रगृह्य महतीं गदाम् ।
अधावत्तावकान्योधान्दण्डपाणिरिवाऽन्तकः ॥ ११ ॥
पोथयन्रथवृन्दानि वाजिवृन्दानि चाऽभिभूः ।
कर्षयन्रथवृन्दानि बाहुवेगेन पाण्डवः ॥ १२ ॥
विनिघ्नन्व्यचरत्संख्ये युगान्ते कालवद्विभुः ।
ऊरुवेगेन सङ्कर्षन्रथजालानि पाण्डवः ॥ १३ ॥
बलानि सम्ममर्दाशु नड्वलानीव कुञ्जरः ।
मृद्नन्रथेभ्यो रथिनो गजेभ्यो गजयोधिनः ॥ १४ ॥
सादिनश्चाऽश्वपृष्ठेभ्यो भूमौ चाऽपि पदातिनः ।
गदया व्यधमत्सर्वान्वातो वृक्षानिवौजसा ॥ १५ ॥
भीमसेनो महाबाहुस्तव पुत्रस्य वै बले ।
साऽपि मज्जावसामांसैः प्रदिग्धा रुधिरेण च ॥ १६ ॥
अदृश्यत महारौद्रा गदा नागाश्वपातनी ।
तत्र तत्र हतैश्चाऽपि मनुष्यगजवाजिभिः ॥ १७ ॥

अलौकिक काम देखे। वे अनायास उन सब राजाओं को और चतुरङ्गिणी सेना को केवल गदा की मार से रोकने लगे। महापराक्रमी भीमसेन ने गदा के द्वारा उस सेना का वेग रोक लिया। वे पर्वतराज सुमेरु की तरह अचल बने रहे। उस भयानक युद्ध के समय भीमसेन के पुत्र, भाई, धृष्टद्युम्न, द्रौपदी के पाँचों पुत्र, अभिमन्यु और शिखण्डी ने भीमसेन का साथ नहीं छोड़ा॥६।१०॥ भीमसेन लोहे की गदा हाथ में लेकर साक्षात् काल की तरह आपके योद्धाओं को मारने दौड़े, और प्रलयकाल के अग्नि की तरह आसपास के शत्रुओं को भस्म करते हुए युद्धभूमि में घूमने लगे। वे घोड़ों को खदेड़कर और घुटनों के वेग से रथों को खींचकर उन पर के योद्धाओं को मारने लगे। हाथी जैसे नरकुल के जङ्गल को मथ डालता है वैसे ही वे रथों, घोड़ों, हाथियों के सवारों और पैदलों को गदा के प्रहार से नष्ट करने लगे। प्रचण्ड आँधी से उखड़े वृक्षों की तरह काँपते हुए योद्धा गिरने लगे॥११।१६॥ उस समय भीमसेन की गदा

रणाङ्गणं समभवन्मृत्योरावाससन्निभम् ।
पिनाकमिव रुद्रस्य क्रुद्धस्याऽभिघ्नतः पशून् ॥ १८ ॥
यमदण्डोपमामुग्रामिन्द्राशनिसमस्वनाम् ।
ददृशुर्भीमसेनस्य रौद्रीं विशसनीं गदाम् ॥ १९ ॥
आविध्यतो गदां तस्य कौन्तेयस्य महात्मनः ।
बभौ रूपं महाघोरं कालस्येव युगक्षये ॥ २० ॥
तं तथा महतीं सेनां द्रावयन्तं पुनः पुनः ।
दृष्ट्वा मृत्युमिवाऽऽयान्तं सर्वे विमनसोऽभवन् ॥ २१ ॥
यतो यतः प्रेक्षते स्म गदामुद्यम्य पाण्डवः ।
तेन तेन स्म दीर्यन्ते सर्वसैन्यानि भारत ॥ २२ ॥
प्रदारयन्तं सैन्यानि बलेनाऽमितविक्रमम् ।
ग्रसमानमनीकानि व्यादितास्यमिवान्तकम् ॥ २३ ॥
तं तथा भीमकर्माणं प्रगृहीत महागदम् ।
दृष्ट्वा वृकोदरं भीष्मः सहसैव समभ्ययात् ॥ २४ ॥
महता रथघोषेण रथेनाऽऽदित्यवर्चसा ।
छादयन्शरवर्षेण पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥ २५ ॥
तमायान्तं तथा दृष्ट्वा व्यात्ताननमिवाऽन्तकम् ।
भीष्मं भीमो महाबाहुः प्रत्युदीयादमर्षितः ॥ २६ ॥

मे रक्त, मास, मेदा, मज्जा और वसा लिपी हुई थी, इसी कारण वह बहुत भयङ्कर देख पडती थी । चारो ओर पडी मनुष्यों, हाथियो, घोड़ो आदि के शवो से वह समरभूमि काल की वध्यभूमि के समान जान पड़ने लगी । सब लोगो को महावीर भीमसेन की वह प्रचण्ड गदा यमराज के दण्ड सी, इन्द्र के वज्र सी, और संहारकर्ता शङ्कर के पिनाक धनुष सी जान पड़ती थी ॥१६।१९॥ उस गदा को लिये घूमते हुए भीमसेन उस समय प्रलयकाल मे यमराज के समान शोभा को प्राप्त हुए । सब वीरो को मारते और भगाते हुए भीमसेन को आते देखकर कौरव पक्ष के सब लोग बहुत ही व्याकुल हुए । महावीर भीमसेन गदा तानकर जिधर देखते थे उधर ही सेना डरकर भागने लगती थी ॥२०।२२॥ हे महाराज ! इस प्रकार सैन्य संहारकर्ता, मुख फैलाये हुए काल के समान भयङ्कर, भीमसेन भयावनी गदा के प्रहार से सेना को छिन्न भिन्न कर रहे थे । यह देखकर महावीर भीष्म मेघ के समान गरजनेवाले और सूर्यमण्डल के समान प्रकाश पूर्ण रथ पर बैठकर वर्षा के मेघ की तरह बाण बरसाते हुए भीमसेन के सन्मुख दौड़े ॥२३।२५॥ साक्षात् काल के समान भीष्म को आते देखकर भीमसेन और भी क्रुद्ध हो उठे और एकाएक दौड़कर उनके समीप पहुँचे । तब सत्यपरायण सात्यकि भी दृढ धनुष हाथ में लेकर बाण-वर्षा से दुर्योधन

तस्मिन्क्षणे सात्यकिः सत्यसन्धः शिनिप्रवीरोऽभ्यपतत्पितामहम् ।
निघ्नन्नमित्रान्धनुषा दृढेन सङ्कम्पयंस्तव पुत्रस्य सैन्यम् ॥ २७ ॥
तं यान्तमश्वै रजतप्रकाशैः शरान्वपन्तं निशितान्सुपुङ्खान् ।
नाऽशक्नुवन्धारयितुं तदानीं सर्वे गणा भारत ये त्वदीयाः ॥ २८ ॥
अविध्यदेनं दशभिः पृषत्कैरलम्बुषो राक्षसोऽसौ तदानीम् ।
शरैश्चतुर्भिः प्रतिविद्धय तं च नप्ता शिनेरभ्यपतद्रथेन ॥ २९ ॥
अन्वागतं वृष्णिवरं निशम्य तं शत्रुमध्ये परिवर्तमानम् ।
प्रद्रावयन्तं कुरुपुङ्गवांश्च पुनः पुनश्च प्रणदन्तमाजौ ॥ ३० ॥
योधास्त्वदीयाः शरवर्षैरवर्षन्मेघा यथा भूधरमम्बुवेगैः ।
तथाऽपि तं धारयितुं न शेकुर्मध्यन्दिने सूर्यमिवाऽऽतपन्तम् ॥ ३१ ॥
न तत्र कश्चिन्नविषण्ण आसीदृते राजन्सोमदत्तस्य पुत्रात् ।
स वै समादाय धनुर्महात्मा भूरिश्रवा भारत सौमदत्तिः ॥ ३२ ॥
दृष्ट्वा रथान्स्वान्व्यपनीयमानान्प्रत्युद्ययौ सात्यकिं योद्धुमिच्छन् ॥ ३३ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि सात्यकिभूरिश्रवस्समागमे त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

की सेना को कम्पित और नष्ट करते हुए भीष्म की ओर दौड़ पड़े। हे राजेन्द्र! आपके पक्ष का कोई भी वीर श्वेत घोड़ों से युक्त रथ पर बैठे हुए तीक्ष्ण बाण बरसा रहे, शिनिवीर सात्यकि को रोक नहीं सका ॥२६।२८॥ केवल राक्षस अलम्बुष ने सामने जाकर उनको दस बाण मारे। महावीर सात्यकि ने रथ पर से चार बाण मारकर उसे शिथिल कर दिया और अपना रथ आगे बढ़ाया। हे राजन्! आपके पक्ष के योद्धा लोग, उन वृष्णिवंशावतंस सात्यकि को शत्रुसेना के मध्य विचरकर कौरवों को विमुख करके बारम्बार सिंहनाद करते देख, पर्वत के ऊपर जलवर्षा के समान बाणों की वर्षा करने लगे, किन्तु वे किसी प्रकार सात्यकि के वेग को या रथ को रोक नहीं सके। उस समय सोमदत्त के पुत्र भूरिश्रवा के अतिरिक्त और सभी व्याकुल हो गये। वीर भूरिश्रवा ने जब अपने पक्ष के वीरों को सात्यकि के युद्ध कौशल और पराक्रम से पीड़ित देखा तब वे सात्यकि की स्पर्धा करने की इच्छा से, बड़े वेग से, धनुष हाथ में लेकर उनके सम्मुख पहुँचे ॥२९।३३॥

भीष्मपर्व का तिरसठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६३ ॥

अथ चतुष्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

सञ्जय उवाच—ततो भूरिश्रवा राजन्सात्यकिं नवभिः शरैः ।
प्राविध्यद्भृशसंक्रुद्धस्तोत्रैरिव महाद्विपम् ॥ १ ॥
कौरवं सात्यकिश्चैव शरैः सन्नतपर्वभिः ।
अवारयदमेयात्मा सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ २ ॥

ततो दुर्योधनो राजा सोदर्यैः परिवारितः ।
सौमदत्तिं रणे यत्तः समन्तात्पर्यवारयत् ॥ ३ ॥
तं चैव पाण्डवाः सर्वे सात्यकिं रभसं रणे ।
परिवार्य स्थिताः संख्ये समन्तात्सुमहौजसः ॥ ४ ॥
भीमसेनस्तु संक्रुद्धो गदामुद्यम्य भारत ।
दुर्योधनमुखान्सर्वान्पुत्रांस्ते पर्यवारयत् ॥ ५ ॥
रथैरनेकसाहस्रैः क्रोधामर्षसमन्वितः ।
नन्दकस्तव पुत्रस्तु भीमसेनं महाबलम् ॥ ६ ॥
विव्याध विशिखैः षड्भिः कङ्कपत्रैः शिलाशितैः ।
दुर्योधनश्च समरे भीमसेनं महारथम् ॥ ७ ॥
आजघानोरसि क्रुद्धो मार्गणैर्नवभिः शितैः ।
ततो भीमो महाबाहुः स्वरथं सुमहाबलः ॥ ८ ॥
आरुरोह रथश्रेष्ठं विशोकं चेदमब्रवीत् ।
एते महारथाः शूरा धार्तराष्ट्राः समागताः ॥ ९ ॥
मामेव भृशसंक्रुद्धा हन्तुमभ्युद्यता युधि ।
मनोरथद्रुमोऽस्माकं चिन्तितो बहुवार्षिकः ॥ १० ॥
सफलः सूत चाऽद्येह योऽहं पश्यामि सोदरान् ।
यत्राऽऽशोकसमुत्क्षिप्ता रेणवो रथनेमिभिः ॥ ११ ॥

चौसठवाँ अध्याय ॥ ६४ ॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज! भूरिश्रवा ने क्रोध से अधीर होकर सात्यकि को नव बाण मारे। उदारहृदय सात्यकि ने भी सबके सन्मुख झुके हुए तीक्ष्ण असंख्य बाण मारकर भूरिश्रवा को लौटा दिया। अब राजा दुर्योधन अपने भाइयों को साथ लेकर भूरिश्रवा की रक्षा के लिए पहुँचे। दुर्योधन जिस प्रकार चारों ओर से घेरकर भूरिश्रवा की रक्षा करने लगे उसी प्रकार अन्यान्य महाबली पराक्रमी पाण्डव पक्ष के वीर सात्यकि को घेरकर उनकी रक्षा करने लगे ॥१।४॥ भीमसेन क्रोध के आवेग में जब गदा हाथ में लेकर आपके पुत्रों पर प्रहार करने लगे तब आपके पुत्र नन्दक ने, बहुत से रथी योद्धाओं के साथ मिलकर, क्रोधपूर्वक तीक्ष्ण कङ्कपत्रभूषित बाण उनको मारे। दुर्योधन ने भी क्रुद्ध होकर भीमसेन की छाती में नव बाण मारे ॥५।८॥ अमितपराक्रमी भीमसेन ने अपने रथ पर बैठकर सारथी अशोक से कहा—"हे सारथी! ये धृतराष्ट्र के पुत्र बहुत ही क्रोधित होकर मुझे मारने को प्रस्तुत हैं; इन्हें मारने का मेरा बहुत पुराना सङ्कल्प है, सो आज उसे सफल समझो; क्योंकि भाइयों समेत दुर्योधन मेरे सामने है। अन्तरिक्ष में बाण ही बाण और रथ के पहियों से उड़ी हुई धूल ही धूल देख पड़ेगी। सुयोधन प्रस्तुत

प्रयास्यन्त्यन्तरिक्षं हि शरवृन्दैर्दिगन्तरे ।
तत्र तिष्ठति सन्नद्धः स्वयं राजा सुयोधनः ॥ १२ ॥
भ्रातरश्चाऽस्य सन्नद्धाः कुलपुत्रा मदोत्कटाः ।
एतानद्य हनिष्यामि पश्यतस्ते न संशयः ॥ १३ ॥
तस्मान्ममाश्वान्संग्रामे यत्तः संयच्छ सारथे ।
एवमुक्त्वा ततः पार्थस्तव पुत्रं विशाम्पते ॥ १४ ॥
विव्याध निशितैस्तीक्ष्णैः शरैः कनकभूषणैः ।
नन्दकं च त्रिभिर्बाणैरभ्यविध्यत्स्तनान्तरे ॥ १५ ॥
तं तु दुर्योधनः षष्ट्या विद्ध्वा भीमं महाबलम् ।
त्रिभिरन्यैः सुनिशितैर्विशोकं प्रत्यविध्यत ॥ १६ ॥
भीमस्य च रणे राजन्धनुश्चिच्छेद भासुरम् ।
मुष्टिदेशे भृशं तीक्ष्णैस्त्रिभिर्भल्लैर्हसन्निव ॥ १७ ॥
समरे प्रेक्ष्य यन्तारं विशोकं तु वृकोदरः ।
पीडितं विशिखैस्तीक्ष्णैस्तव पुत्रेण धन्विना ॥ १८ ॥
अमृष्यमाणः संरब्धो धनुर्दिव्यं परामृशत् ।
पुत्रस्य ते महाराज वधार्थं भरतर्षभ ॥ १९ ॥
समादधत्सुसंक्रुद्धः क्षुरप्रं लोमवाहिनम् ।
तेन चिच्छेद नृपतेर्भीमः कार्मुकमुत्तमम् ॥ २० ॥
सोऽपविद्ध्य धनुश्छिन्नं पुत्रस्ते क्रोधमूर्छितः ।
अन्यत्कार्मुकमादत्त सत्वरं वेगवत्तरम् ॥ २१ ॥
सन्दधे विशिखं घोरं कालमृत्युसमप्रभम् ।
तेनाऽजघान संक्रुद्धो भीमसेनं स्तनान्तरे ॥ २२ ॥

खड़ा है और उसके मनवाले भाई भी साथ देने को तुले हुए हैं। मैं आज तुम्हारे सन्मुख ही इन्हें यमपुरी भेज दूँगा। इसलिए तुम इस युद्ध में चतुरता के साथ मेरा रथ चलाओ।" ॥८।१४॥ हे महाराज! भीमसेन ने यों कहकर बहुत से स्वर्णमण्डित तीक्ष्ण बाण दुर्योधन को मारे। नन्दक को वक्षस्थल में भी तीन बाण मारे। दुर्योधन ने भी महाबली भीमसेन को साठ बाण मारकर सारथी को तीन बाणों से घायल किया। इसके अनन्तर हँसकर तीन बाणों से भीमसेन का धनुष काट डाला ॥१४।१७॥ सारथी को घायल देखकर भीमसेन को क्रोध चढ़ आया। उन्होंने आपके पुत्र को मारने के लिए दिव्य धनुष और क्षुरप्र बाण हाथ में लेकर दुर्योधन का धनुष काट डाला ॥१८।२०॥ तब दुर्योधन ने क्रोध

स गाढविद्धो व्यथितः स्यन्दनोपस्थ आविशत् ।
स निषण्णो रथोपस्थे मूर्छामभिजगाम ह ॥ २३ ॥
तं दृष्ट्वा व्यथितं भीममभिमन्युपुरोगमाः ।
नाऽमृष्यन्त महेष्वासाः पाण्डवानां महारथाः ॥ २४ ॥
ततस्तु तुमुलां वृष्टिं शस्त्राणां तिग्मतेजसाम् ।
पातयामासुरव्यग्राः पुत्रस्य तव मूर्धनि ॥ २५ ॥
प्रतिलभ्य ततः संज्ञां भीमसेनो महाबलः ।
दुर्योधनं त्रिभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः ॥ २६ ॥
शल्यं च पञ्चविंशत्या शरैर्विव्याध पाण्डवः ।
रुक्मपुङ्खैर्महेष्वासः स विद्धो व्यपयाद्रणात् ॥ २७ ॥
प्रत्युद्ययुस्ततो भीमं तव पुत्राश्चतुर्दश ।
सेनापतिः सुषेणश्च जलसन्धः सुलोचनः ॥ २८ ॥
उग्रो भीमरथो भीमो वीरबाहुरलोलुपः ।
दुर्मुखो दुष्प्रधर्षश्च विवित्सुर्विकटः समः ॥ २९ ॥
विसृजन्तो बहून्बाणान्क्रोधसंरक्तलोचनाः ।
भीमसेनमभिद्रुत्य विव्यधुः सहिता भृशम् ॥ ३० ॥
पुत्रांस्तु तव सम्प्रेक्ष्य भीमसेनो महाबलः ।
सृक्किणी विलिहन्वीरः पशुमध्ये यथा वृकः ॥ ३१ ॥
अभिपत्य महाबाहुर्गरुत्मानिव वेगिनः ।
सेनापतेः क्षुरप्रेण शिरश्चिच्छेद पाण्डवः ॥ ३२ ॥

सम्प्रहृष्य च हृष्टात्मा त्रिभिर्बाणैर्महाभुजः ।
जलसन्धं विनिर्भिद्य सोऽनयद्यमसादनम् ॥ ३३ ॥
सुषेणं च ततो हत्वा प्रेषयामास मृत्यवे ।
उग्रस्य स शिरस्त्राणं शिरश्चन्द्रोपमं भुवि ॥ ३४ ॥
पातयामास भल्लेन कुण्डलाभ्यां विभूषितम् ।
वीरबाहुं च सप्तत्या साश्वकेतुं ससारथिम् ॥ ३५ ॥
निनाय समरे वीरः परलोकाय पाण्डवः ।
भीमभीमरथौ चोभौ भीमसेनो हसन्निव ॥ ३६ ॥
पुत्रौ ते दुर्मदौ राजन्ननयद्यमसादनम् ।
ततः सुलोचनं भीमः क्षुरप्रेण महामृधे ॥ ३७ ॥
मिषतां सर्वसैन्यानामनयद्यमसादनम् ।
पुत्रास्तु तव तं दृष्ट्वा भीमसेनपराक्रमम् ॥ ३८ ॥
शेषा येऽन्ये भवंस्तत्र ते भीमस्य भयार्दिताः ।
विप्रद्रुता दिशो राजन्वध्यमाना महात्मना ॥ ३९ ॥
ततोऽब्रवीच्छान्तनवः सर्वानेव महारथान् ।
एष भीमो रणे क्रुद्धो धार्तराष्ट्रान्महारथान् ॥ ४० ॥
यथाप्राग्यान्यथाज्येष्ठान्यथाशूरांश्च सङ्गतान् ।
निपातयत्युग्रधन्वा तं प्रगृह्णीत मा चिरम् ॥ ४१ ॥
एवमुक्तास्ततः सर्वे धार्तराष्ट्रस्य सैनिकाः ।
अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धा भीमसेनं महाबलम् ॥ ४२ ॥

तुल्य होंठ चबाते हुए, गरुड़ के से वेग से उनके सामने जाकर एक क्षुरप्र बाण से सेनापति का सिर काट डाला। फिर तीन बाणों से जलसन्ध और सुषेण को यमराज के घर भेज दिया। इसके अनन्तर भल्ल बाण से उग्र का शिरस्त्राणसहित कुण्डल-शोभित मस्तक काट गिराया ॥३०।३५॥ घोड़े, ध्वजा और सारथी को नष्ट कर उन्होंने वीरबाहु को सत्तर बाणों से मारा तथा वेगशाली भीमरथ और भीम को भी मारकर यमलोक पहुँचा दिया। फिर सब सेना के सामने क्षुरप्र बाण से सुलोचन को भी मार डाला। इनके सिवा जो आपके पुत्र वहाँ उपस्थित थे वे भी, भीमसेन के पराक्रम और प्रहार से, भय करके इधर-उधर भाग खड़े हुए और कुछ मार डाले गये ॥३५।३९॥ हे महाराज! तब पितामह भीष्म ने कौरवपक्ष के महारथियों से कहा—हे वीरो! उग्रधन्वा भीमसेन क्रोधवश होकर प्रधान-प्रधान वीरों को मार रहे हैं, इसलिए तुम लोग शीघ्र ही उन पर आक्रमण करो ॥४०।४१॥ यह आज्ञा पाकर दुर्योधन के सैनिक

भगदत्तः प्रभिन्नेन कुञ्जरेण विशाम्पते ।
अभ्ययात्सहसा तत्र यत्र भीमो व्यवस्थितः ॥ ४३ ॥
आपतन्नेव च रणे भीमसेनं शिलीमुखैः ।
अदृश्यं समरे चक्रे जीमूत इव भास्करम् ॥ ४४ ॥
अभिमन्युमुखास्तत्तु नाऽमृष्यन्त महारथाः ।
भीमस्याऽऽच्छादनं संख्ये स्वबाहुबलमाश्रिताः ॥ ४५ ॥
त एनं शरवर्षेण समन्तात्पर्यवारयन् ।
गजं च शरवृष्ट्या तु विभिदुस्ते समन्ततः ॥ ४६ ॥
स शस्त्रवृष्ट्याऽभिहतः समस्तैस्तैर्महारथैः ।
प्राग्ज्योतिषगजो राजन्नानालिङ्गैः सुतेजनैः ॥ ४७ ॥
सञ्जातरुधिरोत्पीडः प्रेक्षणीयोऽभवद्रणे ।
गभस्तिभिरिवाऽर्कस्य संस्यूतो जलदो महान् ॥ ४८ ॥
सञ्चोदितो मदस्रावी भगदत्तेन वारणः ।
अभ्यधावत तान्सर्वान्कालोत्सृष्ट इवाऽन्तकः ॥ ४९ ॥
द्विगुणं जवमास्थाय कम्पयंश्चरणैर्महीम् ।
तस्य तत्सुमहद्रूपं दृष्ट्वा सर्वे महारथाः ॥ ५० ॥
असह्यं मन्यमानाश्च नाऽतिप्रमनसोऽभवन् ।
ततस्तु नृपतिः क्रुद्धो भीमसेनं स्तनान्तरे ॥ ५१ ॥
आजघान महाराज शरेणाऽऽनतपर्वणा ।
सोऽतिविद्धो महेष्वासस्तेन राज्ञा महारथः ॥ ५२ ॥

क्रोधविह्वल हो भीमसेन पर आक्रमण करने चले। उन्मत्त महागजराज पर सवार भगदत्त भीमसेन के पास पहुँचे। उन्होंने असख्य बाणो की वर्षा से भीमसेन को उसी प्रकार छा लिया जैसे मेघ सूर्य को छिपा लेते है ॥४३।४४॥ यह अभिमन्यु आदि वीर न सह सके। उन्होंने क्रोध करके बाणो से राजा भगदत्त और उनके हाथी को ढक दिया। महारथियों के प्रहार से प्राग्ज्योतिषेश्वर भगदत्त का हाथी रक्त से तर हो गया। वह उस समय सूर्यकिरण मण्डित मेघ सा जान पड़ने लगा ॥४५।४८॥ महाबली भगदत्त ने क्रुद्ध होकर हाथी को आगे बढ़ाया। गजराज पहले की अपेक्षा दुगने वेग से बढ़ा। उसके पाँओ के भार से पृथ्वी काँपने लगी। यह हाथी कालप्रेरित मृत्यु के तुल्य योद्धाओं के ऊपर दौड़ा। उस हाथी का भयानक आकार देखकर सब योद्धा बड़े उद्विग्न और व्याकुल हुए ॥४९।५१॥ राजा भगदत्त ने क्रोध में आकर भीमसेन के वक्षःस्थल में तीक्ष्ण बाण मारा। मर्मस्थल में भगदत्त के बाण की

मूर्च्छयाऽभिपरीतात्मा ध्वजयष्टिं समाश्रयत् ।
तांस्तु भीतान्समालक्ष्य भीमसेनं च मूर्च्छितम् ॥ ५३ ॥
ननाद वलवन्नादं भगदत्तः प्रतापवान् ।
ततो घटोत्कचो राजन्प्रेक्ष्य भीमं तथा गतम् ॥ ५४ ॥
संक्रुद्धो राक्षसो घोरस्तत्रैवाऽन्तरधीयत ।
स कृत्वा दारुणां मायां भीरूणां भयवर्धिनीम् ॥ ५५ ॥
अदृश्यत निमेषार्धाद्घोररूपं समास्थितः ।
ऐरावतं समारूढः स वै मायाकृतं स्वयम् ॥ ५६ ॥
तस्य चाऽन्येऽपि दिङ्नागा वभूवुरनुयायिनः ।
अञ्जनो वामनश्चैव महापद्मश्च सुप्रभः ॥ ५७ ॥
त्रय एते महानागा राक्षसैः समधिष्ठिताः ।
महाकायास्त्रिधा राजन्प्रस्रवन्तो मदं बहु ॥ ५८ ॥
तेजोवीर्यवलोपेता महावलपराक्रमाः ।
घटोत्कचस्तु स्वं नागं चोदयामास तं तदा ॥ ५९ ॥
सगजं भगदत्तं तु हन्तुकामः परन्तपः ।
ते चाऽन्ये चोदिता नागा राक्षसैस्तैर्महावलैः ॥ ६० ॥
परिपेतुः सुसंरब्धाश्चतुर्दंष्ट्राश्चतुर्दिशम् ।
भगदत्तस्य तं नागं विषाणैरभ्यपीडयन् ॥ ६१ ॥
स पीड्यमानस्तैर्नागैर्वेदनार्तः शराहतः ।
अनदत्सुमहानादमिन्द्राशनिसमस्वनम् ॥ ६२ ॥

चोट खाकर भीमसेन अत्यन्त व्यथित हो ध्वजा के डण्डे का आश्रय लेकर बैठ गये। शत्रुपक्ष के योद्धाओं को डरे हुए और भीमसेन को मूर्च्छित देखकर प्रभावशाली भगदत्त गम्भीर शब्द से गरजने लगे ॥५३।५४॥ हे राजेन्द्र ! भीमसेन की यह दशा देखकर राक्षस घटोत्कच बहुत क्रुद्ध हुआ। वह तुरन्त माया बल से अन्तर्द्धान होकर, कायरों को दहला देनेवाली माया उत्पन्न कर, मायामय ऐरावत हाथी पर चढ़कर लोगों के सामने भयङ्कर रूप से प्रकट हुआ। उसके मायाबल से अञ्जन, वामन और महापद्म नाम के तीनों दिग्गज सन्मुख देख पड़े ॥५४।५०॥ वे भी ऐरावत के पीछे चले। उन तीनों दिग्गजों के मद बह रहा था। वे बड़े डील डौलवाले चार-चार दाँतों से शोभित और तेज-वीर्य-बल-वेग पराक्रम सम्पन्न थे। उन पर विकराल राक्षस बैठे हुए थे। घटोत्कच ने हाथी से हाथी को नष्ट करने के लिए भगदत्त के हाथी के सन्मुख अपना हाथी बढ़ाया। अन्य तीन हाथी भी उसी के साथ राक्षसों द्वारा

तस्य तं नदतो नादं सुघोरं भीमनिःस्वनम् ।
श्रुत्वा भीष्मोऽब्रवीद्द्रोणं राजानं च सुयोधनम् ॥ ६३ ॥
एष युध्यति संग्रामे हैडिम्बेन दुरात्मना ।
भगदत्तो महेष्वासः कृच्छ्रे च परिवर्तते ॥ ६४ ॥
राक्षसश्च महाकायः स च राजाऽतिकोपनः ।
एतौ समेतौ समरे कालमृत्युसमावुभौ ॥ ६५ ॥
श्रूयते चैव हृष्टानां पाण्डवानां महास्वनः ।
हस्तिनश्चैव सुमहान्भीतस्य रुदितध्वनिः ॥ ६६ ॥
तत्र गच्छाम भद्रं वो राजानं परिरक्षितुम् ।
अरक्षमाणः समरे क्षिप्रं प्राणान्विमोक्ष्यति ॥ ६७ ॥
ते त्वरध्वं महावीर्याः किं चिरेण प्रयामहे ।
महान्हि वर्तते रौद्रः संग्रामो लोमहर्षणः ॥ ६८ ॥
भक्तश्च कुलपुत्रश्च शूरश्च पृतनापतिः ।
युक्तं तस्य परित्राणं कर्तुमस्माभिरच्युत ॥ ६९ ॥
भीष्मस्य तद्वचः श्रुत्वा सर्व एव महारथाः ।
द्रोणभीष्मौ पुरस्कृत्य भगदत्तपरीप्सया ॥ ७० ॥
उत्तमं जवमास्थाय प्रययुर्यत्र सोऽभवत ।
तान्प्रयातान्समालोक्य युधिष्ठिरपुरोगमाः ॥ ७१ ॥

पञ्चालाः पाण्डवैः सार्धं पृष्ठतोऽनुययुः परान् ।
तान्यनीकान्यथालोक्य राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ॥ ७२ ॥
ननाद सुमहानादं विस्फोटमशनेरिव ।
तस्य तं निनदं श्रुत्वा दृष्ट्वा नागांश्च युध्यतः ॥ ७३ ॥
भीष्मः शान्तनवो भूयो भारद्वाजमभाषत ।
न रोचते मे संग्रामो हैडिम्बेन दुरात्मना ॥ ७४ ॥
बलवीर्यसमाविष्टः ससहायश्च साम्प्रतम् ।
नैष शक्यो युधा जेतुमपि वज्रभृता स्वयम् ॥ ७५ ॥
लब्धलक्षः प्रहारी च वयं च श्रान्तवाहनाः ।
पञ्चालैः पाण्डवेयैश्च दिवसं क्षतविक्षताः ॥ ७६ ॥
तन्न मे रोचते युद्धं पाण्डवैर्जितकाशिभिः ।
घुष्यतामवहारोऽद्य श्वो योत्स्यामः परैः सह ॥ ७७ ॥
पितामहवचः श्रुत्वा तथा चक्रुः स्म कौरवाः ।
उपायेनाऽपयानं ते घटोत्कचभयार्दिताः ॥ ७८ ॥
कौरवेषु निवृत्तेषु पाण्डवा जितकाशिनः ।
सिंहनादान्भृशं चक्रुः शङ्खान्दध्मुश्च भारत ॥ ७९ ॥
एवं तदभवद्युद्धं दिवसं भरतर्षभ ।
पाण्डवानां कुरूणां च पुरस्कृत्य घटोत्कचम् ॥ ८० ॥
कौरवास्तु ततो राजन्प्रययुः शिबिरं स्वकम् ।
व्रीडमाना निशाकाले पाण्डवेयैः पराजिताः ॥ ८१ ॥

पहुँचे। इधर युधिष्ठिर आदि पाण्डव और पाञ्चालगण शत्रुओं को आते देखकर उनके पीछे दौड़े। प्रतापी घटोत्कच ने उन सबको आते देखकर घोर सिंहनाद किया ॥७०।७३॥ उस महाशब्द को सुनकर और दिग्गजों को युद्ध करते देखकर भीष्म ने द्रोणाचार्य से कहा—हे आचार्य! दुरात्मा घटोत्कच के साथ युद्ध करने को मेरा अन्तःकरण नहीं चाहता। इस समय यह वीर्यशाली और सहायसम्पन्न हो रहा है। इस समय इन्द्र भी इसे जीत नहीं सकते। विशेषकर हमारे वाहन बहुत थक गये हैं। पाञ्चालों और पाण्डवों ने हमें घायल भी कर दिया है। आज पाण्डवों की जय हुई है। इस कारण, मेरी समझ में, आज उनसे युद्ध करना उचित नहीं है। आज का युद्ध समाप्त कर दीजिए, कल शत्रुओं से युद्ध किया जायगा ॥७३।७७॥ घटोत्कच से डरे हुए कौरवों ने भीष्म के ये वचन सुनकर, उनके बताये उपाय के अनुसार, सेना को युद्ध से रोक दिया। कौरवों के युद्ध समाप्त करने पर विजयी पाण्डवगण शङ्ख, वेणु आदि बाजे

शरविक्षतगात्रास्तु पाण्डुपुत्रा महारथाः ।
युद्धे सुमनसो भूत्वा जग्मुः स्वशिविरं प्रति ॥ ८२ ॥
पुरस्कृत्य महाराज भीमसेनघटोत्कचौ ।
पूजयन्तस्तदाऽन्योन्यं मुदा परमया युताः ॥ ८३ ॥
नदन्तो विविधान्नादांस्तूर्यस्वनविमिश्रितान् ।
सिंहनादांश्च कुर्वन्तो विमिश्रान्शङ्खनिःस्वनैः ॥ ८४ ॥
विनदन्तो महात्मानः कम्पयन्तश्च मेदिनीम् ।
घट्टयन्तश्च मर्माणि तव पुत्रस्य मारिष ॥ ८५ ॥
प्रयाताः शिबिरायैव निशाकाले परन्तप ।
दुर्योधनस्तु नृपतिर्दीनो भ्रातृवधेन च ॥ ८६ ॥
मुहूर्तं चिन्तयामास बाष्पशोकसमाकुलः ।
ततः कृत्वा विधिं सर्वं शिविरस्य यथाविधि ।
प्रदध्यौ शोकसंतप्तो भ्रातृव्यसनकर्शितः ॥ ८७ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि चतुर्थदिवसावहारे चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

बजाते हुए सिंहनाद करने लगे। हे भारत! उस दिन कौरवों के साथ घटोत्कच और पाण्डवों का युद्ध इस प्रकार हुआ ॥७८।८०॥ पाण्डवों से पराजित और लज्जित होकर कौरव अपने-अपने शिविर को गये। घायल पाण्डवगण भी घटोत्कच और भीमसेन की प्रशंसा करते हुए प्रसन्न मन से अपने शिविरों को गये ॥८१।८३॥ वे आनन्दित होकर दुर्योधन के मर्मस्थल को पीड़ा पहुँचानेवाले बाजे और शङ्ख के शब्द के साथ सिंहनाद करते तथा पृथ्वी को कँपाते हुए रात्रि को अपने शिविरों में पहुँचे। भाइयों के मारे जाने के शोक से राजा दुर्योधन बहुत ही चिन्तित और अधमरे से हो गये। शिविर के यथायोग्य कार्य-पूर्ण करके वे फिर अपने भाइयों का शोक मनाने लगे ॥८४।८७॥

भीष्मपर्व का चौसठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६४ ॥

अथ पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—भयं मे सुमहज्जातं विस्मयश्चैव सञ्जय ।
श्रुत्वा पाण्डुकुमाराणां कर्म देवैः सुदुष्करम् ॥ १ ॥
पुत्राणां च पराभावं श्रुत्वा सञ्जय सर्वशः ।
चिन्ता मे महती सूत भविष्यति कथं त्विति ॥ २ ॥
ध्रुवं विदुरवाक्यानि धक्ष्यन्ति हृदयं मम ।
यथा हि दृश्यते सर्वं दैवयोगेन सञ्जय ॥ ३ ॥

यत्र भीष्मप्रमुखान्सर्वाञ्शस्त्रज्ञान्योधसत्तमान् ।
पाण्डवानामनीकेषु योधयन्ति प्रहारिणः ॥ ४ ॥
केनाऽवध्या महात्मानः पाण्डुपुत्रा महाबलाः ।
केन दत्तवरास्तात किं वा ज्ञानं विदन्ति ते ॥ ५ ॥
येन क्षयं न गच्छन्ति दिवि तारागणा इव ।
पुनः पुनर्न मृष्यामि हतं सैन्यं तु पाण्डवैः ॥ ६ ॥
मय्येव दण्डः पतति दैवात्परमदारुणः ।
यथाऽवध्याः पाण्डुसुता यथा वध्याश्च मे सुताः ॥ ७ ॥
एतन्मे सर्वमाचक्ष्व याथातथ्येन सञ्जय ।
न हि पारं प्रपश्यामि दुःखस्याऽस्य कथञ्चन ॥ ८ ॥
समुद्रस्येव महतो भुजाभ्यां प्रतरन्नरः ।
पुत्राणां व्यसनं मन्ये ध्रुवं प्राप्तं सुदारुणम् ॥ ९ ॥
घातयिष्यति मे सर्वान्पुत्रान्भीमो न संशयः ।
नहि पश्यामि तं वीरं यो मे रक्षेत्सुतान्रणे ॥ १० ॥
ध्रुवं विनाशः सम्प्राप्तः पुत्राणां मम सञ्जय ।
तस्मान्मे कारणं सूत शक्तिं चैव विशेषतः ॥ ११ ॥
पृच्छतो वै यथातत्त्वं सर्वमाख्यातुमर्हसि ।
दुर्योधनश्च यच्चक्रे दृष्ट्वा स्वान्विमुखान्रणे ॥ १२ ॥

वैंसठवाँ अध्याय ॥ ६५ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! पाण्डवों के अद्भुत कर्म सुन-सुनकर मेरे मन में बहुत ही भय और आश्चर्य उत्पन्न हो रहा है। हे सञ्जय ! पुत्रों की पराजय सुनकर मैं इसी चिन्ता से व्याकुल हो रहा हूँ कि आगे चलकर और क्या होगा। दैवाधीन घटनाओं को देखकर मुझे जान पड़ता है कि विदुर की बात न मानने के कारण मुझे पीछे से पश्चाताप करना पड़ेगा। उन महात्मा ने जो कहा है वह उसी प्रकार हो रहा है ॥१।४॥ हे वत्स ! सब समय वे प्रधान योद्धा लोग महाबली भीष्म के साथ युद्ध करके उन पर प्रहार करते हैं और आकाशमण्डल के तारागण के समान अक्षय बने हुए हैं। जान पड़ता है, उन्हें किसी ने वरदान दे दिया है, अथवा वे कुछ प्रहार-मन्त्र जानते हैं। यह मुझे असह्य हो रहा है कि बारम्बार पाण्डव मेरी सेना और योद्धाओं को नष्ट करते जा रहे हैं। दैवकोप से मुझ पर ही दारुण दण्ड पड़ रहा है। हे सञ्जय ! तुम मुझे बताओ, पाण्डव क्यों नहीं मरते और मेरे पुत्र ही क्यों मरते हैं ? ॥५।८॥ जैसे मनुष्य बाहुबल से तैर-कर समुद्र के पार नहीं जा सकता वैसे ही मैं भी इस दुःखसागर के पार जाने का उपाय नहीं देखता। मेरे पुत्रों के लिए दारुण सङ्कट उपस्थित है। मुझे

भीष्मद्रोणौ कृपश्चैव सौवलश्च जयद्रथः ।
द्रौणिर्वाऽपि महेष्वासो विकर्णो वा महाबलः ॥ १३ ॥
निश्चयो वाऽपि कस्तेषां तदा ह्यासीन्महात्मनाम् ।
विमुखेषु महाप्राज्ञ मम पुत्रेषु सञ्जय ॥ १४ ॥
सञ्जय उवाच—शृणु राजन्नवहितः श्रुत्वा चैवाऽवधारय ।
नैव मन्त्रकृतं किञ्चिन्नैव मायां तथाविधाम् ॥ १५ ॥
न वै विभीषिकां काञ्चिद्राजन्कुर्वन्ति पाण्डवाः ।
युध्यन्ति ते यथान्यायं शक्तिमन्तश्च संयुगे ॥ १६ ॥
धर्मेण सर्वकार्याणि जीवितादीनि भारत ।
आरभन्ते सदा पार्थाः प्रार्थयाना महद्यशः ॥ १७ ॥
न ते युद्धान्निवर्तन्ते धर्मोपेता महाबलाः ।
श्रिया परमया युक्ता यतो धर्मस्ततो जयः ॥ १८ ॥
तेनाऽवध्या रणे पार्था जययुक्ताश्च पार्थिव ।
तव पुत्रा दुरात्मानः पापेष्वभिरताः सदा ॥ १९ ॥
निष्ठुरा हीनकर्माणस्तेन हीयन्ति संयुगे ।
सुबहूनि नृशंसानि पुत्रैस्तव जनेश्वर ॥ २० ॥
निकृतानीह पाण्डूनां नीचैरिव यथा नरैः ।
सर्वं च तदनादृत्य पुत्राणां तव किल्बिषम् ॥ २१ ॥

जान पड़ता है कि अकेला ही भीमसेन मेरे सब पुत्रों को मार डालेगा। युद्ध में मेरे पुत्रों की रक्षा कर सकनेवाला कोई वीर नहीं देख पड़ता। इस कारण मेरे पुत्र अवश्य मारे जायँगे ॥८।११॥ हे सञ्जय! पाण्डवों की जय और मेरे पुत्रों के नाश का कारण तुम विशेष रूप से मुझसे कहो। अपने पक्ष की सेना जब युद्ध-स्थल से हट गई तब दुर्योधन, भीष्म, द्रोण, शकुनि, जयद्रथ, कृपाचार्य, अश्वत्थामा और विकर्ण आदि महाबली वीरों ने क्या किया? मेरे पुत्रों को रण से विमुख देखकर उन शूरों के हृदय में क्या भाव उत्पन्न हुआ? ॥११।१४॥ सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र! मेरी बातों को मन लगाकर सुनिए। पाण्डव कुछ मन्त्रप्रयोग, मायाजाल या विभीषिका दिखाकर जय प्राप्त नहीं करते। वे शक्ति और धर्मन्याय के अनुसार ही युद्ध करते हैं। हे राजेन्द्र! पाण्डव लोग यश प्राप्त करने की इच्छा से धर्मपूर्वक ही जीविका-निर्वाह आदि सब कार्यों का आरम्भ करते हैं ॥१५।१७॥ श्रीयुक्त पाण्डव अपने धर्म के अनुवर्ती होकर ही युद्ध कर रहे हैं। जहाँ धर्म है, वहीं जय है। इसी कारण धर्मनिरत पाण्डव समर में अवध्य और विजयी हो रहे हैं। आपके पुत्र दुरात्मा, निष्ठुर, ओछे कार्य करनेवाले और पापी हैं। इसी से पराजय पा रहे हैं। आपके पुत्र अब तक बराबर पाण्डवों के साथ नीचों का सा, नृशंस,

सापन्हवाः सदैवासन्पाण्डवाः पाण्डुपूर्वज ।
न चैतान्बहुमन्यन्ते पुत्रास्तव विशाम्पते ॥ २२ ॥
तस्य पापस्य सततं क्रियमाणस्य कर्मणः ।
साम्प्रतं सुमहद्घोरं फलं प्राप्तं जनेश्वर ॥ २३ ॥
स त्वं भुंक्ष्व महाराज सपुत्रः ससुहृज्जनः ।
नाऽवबुध्यसि यद्राजन्वार्यमाणः सुहृज्जनैः ॥ २४ ॥
विदुरेणाऽथ भीष्मेण द्रोणेन च महात्मना ।
तथा मया चाऽप्यसकृद्वार्यमाणो न बुध्यसे ॥ २५ ॥
वाक्यं हितं च पथ्यं च मर्त्यः पथ्यमिवौषधम् ।
पुत्राणां मतमाज्ञाय जितान्मन्यसि पाण्डवान् ॥ २६ ॥
शृणु भूयो यथातत्त्वं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
कारणं भरतश्रेष्ठ पाण्डवानां जयं प्रति ॥ २७ ॥
तत्तेऽहं कथयिष्यामि यथाश्रुतमरिन्दम ।
दुर्योधनेन सम्पृष्ट एतमर्थं पितामहः ॥ २८ ॥
दृष्ट्वा भ्रातॄन्रणे सर्वान्निर्जितांस्तु महारथान् ।
शोकसम्मूढहृदयो निशाकाले स्म कौरवः ॥ २९ ॥
पितामहं महाप्राज्ञं विनयेनोपगम्य ह ।
यदब्रवीत्सुतस्तेऽसौ तन्मे शृणु जनेश्वर ॥ ३० ॥

दुर्योधन उवाच — द्रोणश्च त्वं च शल्यश्च कृपो द्रौणिस्तथैव च ।
कृतवर्मा च हार्दिक्यः काम्बोजश्च सुदक्षिणः ॥ ३१ ॥

निन्दित व्यवहार करते आये है; किन्तु पाण्डवों ने आपके पुत्रों के छल और अपराधों की कुछ अपेक्षा नहीं की। पाण्डव सदा धर्म के आश्रय रहे हैं। आपके पुत्र उन्हे तुच्छ समझकर उनसे दुर्व्यवहार करते रहे हैं ॥१८।२२॥ उसी पाप का यह घोर परिणाम मिल रहा है। उसे आप अपने सुहृदो और पुत्रों आदि के साथ भोगिए। महात्मा विदुर, भीष्म और द्रोणाचार्य ने आपको कई बार मना किया परन्तु आपने उधर ध्यान नहीं दिया। मैंने भी बार-बार आपको मना किया, पर आप नहीं समझे। हित और पथ्य के वचन आपको वैसे ही नहीं रुचते जैसे रोगी को पथ्य और औषधि नहीं अच्छी लगती। पुत्रों के मन को ठीक समझकर आप समझते हैं कि पाण्डव पराजय पा जायेंगे ॥२३।२६॥ हे महाराज! पाण्डवों के जयलाभ का कारण जो आप मुझसे पूछते है सो मै, जैसा सुना है वैसा ही, कहता हूँ। यही बात पहले दुर्योधन ने भीष्म पितामह से पूछी थी। उन्होंने इसके उत्तर मे जो कहा, सो मैं आप

भूरिश्रवा विकर्णश्च भगदत्तश्च वीर्यवान् ।
महारथाः समाख्याताः कुलपुत्रास्तनुत्यजः ॥ ३२ ॥
त्रयाणामपि लोकानां पर्याप्ता इति मे मतिः ।
पाण्डवानां समस्ताश्च नाऽतिष्ठन्त पराक्रमे ॥ ३३ ॥
तत्र मे संशयो जातस्तन्ममाऽऽचक्ष्व पृच्छतः ।
यं समाश्रित्य कौन्तेया जयन्त्यस्मान्क्षणे क्षणे ॥ ३४ ॥
भीष्म उवाच—शृणु राजन्वचो मह्यं यथा वक्ष्यामि कौरव ।
बहुशश्च मयोक्तोऽसि न च मे तत्त्वया कृतम् ॥ ३५ ॥
क्रियतां पाण्डवैः सार्धं शमो भरतसत्तम ।
एतत्क्षेममहं मन्ये पृथिव्यास्तव वा विभो ॥ ३६ ॥
भुंक्ष्वेमां पृथिवीं राजन्भ्रातृभिः सहितः सुखी ।
दुर्हृदस्तापयन्सर्वान्नन्दयंश्चाऽपि बान्धवान् ॥ ३७ ॥
न च मे क्रोशतस्तात श्रुतवानसि वै पुरा ।
तदिदं समनुप्राप्तं यत्पाण्डूनवमन्यसे ॥ ३८ ॥
यश्च हेतुरवध्यत्वे तेषामक्लिष्टकर्मणाम् ।
तं शृणुष्व महाबाहो मम कीर्तयतः प्रभो ॥ ३९ ॥
नाऽस्ति लोकेषु तद्भूतं भविता नो भविष्यति ।
यो जयेत्पाण्डवान्सर्वान्पालिताञ्छार्ङ्गधन्वना ॥ ४० ॥

को सुनाता हूँ ॥२७।२८॥ हे नराधिप ! महाबली *भाइयों को पराजित देखकर शोकाकुल दुर्योधन रात्रि* को पितामह के पास जाकर बोले—॥२९।३०॥ हे पितामह ! *आप, महावीर आचार्य द्रोण, शल्य, कृप,* अश्वत्थामा, कृतवर्मा हार्दिक्य, काम्बोजाधिप सुदक्षिण, *भूरिश्रवा,* विकर्ण और *भगदत्त ये सभी महारथी,* कुलीन और जमकर युद्ध करनेवाले योद्धा हैं। मेरी *समझ में आपके समान योद्धा तीनों लोकों में द्वितीय* नहीं है। पाण्डव पक्ष के सब योद्धा मिलकर भी आपके पराक्रम को नहीं सह सकते। मुझे बड़ा संशय है कि पाण्डव और किसी के आश्रय से क्षण-क्षण हम लोगों को जीत रहे हैं। बताइए, वह कौन महापुरुष हैं ?' ॥३१।३४॥ भीष्म ने कहा—हे *दुर्योधन ! मैं तुमसे जो कहता हूँ उसे ध्यान देकर* सुनो। मैं तुमसे कई बार कह चुका हूँ, पर तुमने *उसे माना नहीं। हे दुर्योधन ! मैं तुमसे अब भी* कहता हूँ कि पाण्डवों से सन्धि कर लो। सन्धि *करने से तुम्हारा और सब पृथ्वी का कल्याण होगा।* पाण्डवों से मिलाप करके तुम मित्रों और भाई-बन्धुओं *को आनन्दित करते हुए भाइयों के साथ बड़े सुख* से राज्य करो। हे धर्म ! तुमने पहले पाण्डवों का *अपमान किया; मैंने मना किया, पर तुमने नहीं सुना* अब उसका परिणाम भोग रहे हो ॥३५।३८॥ हे कुरुराज ! प्रत्येक काम को सहज ही कर सकनेवाले

यत्तु मे कथितं तात मुनिभिर्भावितात्मभिः ।
पुराणगीतं धर्मज्ञ तच्छृणुष्व यथा तथम् ॥ ४१ ॥
पुरा किल सुराः सर्वे ऋषयश्च समागताः ।
पितामहमुपासेदुः पर्वते गन्धमादने ॥ ४२ ॥
तेषां मध्ये समासीनः प्रजापतिरपश्यत ।
विमानं प्रज्वलद्भासा स्थितं प्रवरमम्बरे ॥ ४३ ॥
ध्यानेनाऽऽवेद्य तद्ब्रह्मा कृत्वा च नियतोऽञ्जलिम् ।
नमश्चकार हृष्टात्मा पुरुष परमेश्वरम् ॥ ४४ ॥
ऋषयस्त्वथ देवाश्च दृष्ट्वा ब्रह्माणमुत्थितम् ।
स्थिताः प्राञ्जलयः सर्वे पश्यन्तो महदद्भुतम् ॥ ४५ ॥
यथावच्च तमभ्यर्च्य ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः ।
जगाद जगतः स्रष्टा परं परमधर्मवित् ॥ ४६ ॥
विश्वावसुर्विश्वमूर्तिर्विश्वेशो विष्वक्सेनो विश्वकर्मा वशी च ।
विश्वेश्वरो वासुदेवोऽसि तस्माद्योगात्मानं दैवतं त्वामुपैमि ॥ ४७ ॥
जय विश्वमहादेव जय लोकहिते रत ।
जय योगीश्वर विभो जय योगपरावर ॥ ४८ ॥
पद्मगर्भविशालाक्ष जय लोकेश्वरेश्वर ।
भूतभव्य भवन्नाथ जय सौम्यात्मजात्मज ॥ ४९ ॥

पाण्डव जिस कारण अवध्य हैं, वह भी सुनो। हे जनाधिप! भगवान् कृष्ण स्वयं जिन पाण्डवों की रक्षा कर रहे हैं उन्हें पराजय कर सकनेवाला या मार सकनेवाला प्राणी तीनों लोकों में कोई नहीं देख पड़ता। ऐसा प्राणी न कभी हुआ है और न होगा। हे वत्स! पूर्व समय में आत्मज्ञानी मुनियों से जो पुराणगाथा मैंने सुन रक्खी है वही मैं कहता हूँ, मन लगाकर सुनो ॥३९।४१॥ पूर्व समय में सब देवता और ऋषि गन्धमादन पर्वत पर कमलासन ब्रह्माजी के पास गये। उन सबके मध्य में स्थित ब्रह्माजी ने अन्तरिक्ष में एक परम प्रकाशमान श्रेष्ठ विमान देखा। इसके अनन्तर ध्यान के द्वारा परमपुरुष परमेश्वर को जानकर, प्रसन्नतापूर्वक उठकर, पवित्र हृदय से हाथ जोड़कर ब्रह्माजी ने उनको प्रणाम किया। ऋषि और देवता भी यह अद्भुत घटना देखकर और ब्रह्माजी को उस प्रकार अभ्यर्थना करते देख हाथ जोड़कर खड़े हो गये। जगत् के रक्षक ब्रह्माजी उन परमदेव विष्णु नारायण को देखकर उनकी पूजा करके इस प्रकार स्तुति करने लगे—॥४२।४६॥ हे देव! तुम विश्ववसु, विश्वमूर्ति, विश्वेश, विश्वक्सेन, विश्वकर्मा, नियामक, वासुदेव और योगी हो। हे प्रभो! मैं तुम्हारी शरण में हूँ ॥४७॥ हे महादेव! तुम्हारी जय हो। हे लोकहितैषी! तुम योगीश्वर, योगपरावर ॥४८॥ पद्मनाभ और विशालाक्ष हो। तुम लोकेश्वरों

असंख्येयगुणाधार जय सर्वपरायण ।
नारायण सुदुष्पार जय शार्ङ्गधनुर्धर ॥ ५० ॥
जय सर्वगुणोपेत विश्वमूर्ते निरामय ।
विश्वेश्वर महाबाहो जय लोकार्थतत्पर ॥ ५१ ॥
महोरग वराहाऽद्य हरिकेश विभो जय ।
हरिवास दिशामीश विश्ववासामिताव्यय ॥ ५२ ॥
व्यक्ताव्यक्तामितस्थान नियतेन्द्रिय सत्क्रिय ।
असंख्येयात्मभावज्ञ जय गम्भीरकामद ॥ ५३ ॥
अनन्तविदित ब्रह्मन्नित्यभूतविभावन ।
कृतकार्य कृतप्रज्ञ धर्मज्ञ विजयावह ॥ ५४ ॥
गुह्यात्मन्सर्वयोगात्मन्स्फुटसम्भूत सम्भव ।
भूताद्य लोकतत्त्वेश जय भूतविभावन ॥ ५५ ॥
आत्मयोने महाभाग कल्पसङ्क्षेपतत्पर ।
उद्भावन मनोभाव जय ब्रह्म जयप्रिय ॥ ५६ ॥
निसर्गसर्गनिरत कामेश परमेश्वर ।
अमृतोद्भव सद्भाव मुक्तात्मन्विजयप्रद ॥ ५७ ॥
प्रजापतिपते देव पद्मनाभ महाबल ।
आत्मभूत महाभूत सत्वात्मन् जय सर्वदा ॥ ५८ ॥
पादौ तव धरा देवी दिशो बाहू दिवं शिरः ।
मूर्तिस्तेऽहं सुराः कायश्चन्द्रादित्यौ च चक्षुषी ॥ ५९ ॥

के ईश्वर, त्रिलोकनाथ, साध्य, आत्मा, अज, ॥४९॥ सब गुणों के आधार, नारायण, अनन्त और अनन्त महिमावाले हो। हे शार्ङ्ग धनुष धारण करनेवाले! ॥५०॥ हे सर्व गुण-सम्पन्न! तुम विश्वमूर्ति, निरामय, महाबाहु, वराहमूर्ति, आदिकारण, पिङ्गलकेश, व्यापक, पीताम्बरधारी, दिक्पाल और विश्व के आधार हो। तुम अमित हो, अव्यय हो, ॥५१।५२॥ तुम व्यक्त और अव्यक्त हो। तुम अमिताधार हो, तुम जितेन्द्रिय हो, तुम सत्कर्म करनेवाले हो, तुम असंख्य हो, तुम आत्मस्वरूप के ज्ञाता हो। तुम गम्भीर हो, तुम सब कामनाओं का फल देनेवाले हो। हे अविदित! तुम ब्रह्म हो, तुम नित्य हो, तुम भूतभावन हो। तुम कृतकार्य और कृतज्ञ हो। तुम धर्मज्ञ और जय-पराजय से अतीत हो। तुम गुह्यरूप, सर्वयोगस्वरूप, योगेश, भूतभावन, ॥५३।५५॥ आत्मयोनि, महाभाग, कल्पान्त में संहार-निरत, ब्रह्म और जनप्रिय हो। तुम नैसर्गिक-सृष्टि-निरत, कामेश, परमेश्वर, अमृतसम्भूत, सत्स्वभावसम्पन्न, मुक्तात्मा

वलं तपश्च सत्यं च कर्मधर्मात्मकं तव ।
तेजोऽग्निः पवनः श्वास आपस्ते स्वेदसम्भवाः ॥ ६० ॥
अश्विनौ श्रवणौ नित्यं देवी जिह्वा सरस्वती ।
वेदाः संस्कारनिष्ठा हि त्वयीदं जगदाश्रितम् ॥ ६१ ॥
न संख्यानं परीमाणं न तेजो न पराक्रमम् ।
न वलं योगयोगीश जानीमस्ते न सम्भवम् ॥ ६२ ॥
त्वद्भक्तिनिरता देव नियमैस्त्वां समाश्रिताः ।
अर्चयामः सदा विष्णो परमेशं महेश्वरम् ॥ ६३ ॥
ऋषयो देवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ।
पिशाचा मानुषाश्चैव मृगपक्षिसरीसृपाः ॥ ६४ ॥
एवमादि मया सृष्टं पृथिव्यां त्वत्प्रसादजम् ।
पद्मनाभ विशालाक्ष कृष्ण दुःखप्रणाशन ॥ ६५ ॥
त्वं गतिः सर्वभूतानां त्वं नेता त्वं जगद्गुरुः ।
त्वत्प्रसादेन देवेश सुखिनो विवुधाः सदा ॥ ६६ ॥
पृथिवी निर्भया देव त्वत्प्रसादात्सदाऽभवत् ।
तस्माद्भव विशालाक्ष यदुवंशविवर्धनः ॥ ६७ ॥
धर्मसंस्थापनार्थाय दैत्यानां च वधाय च ।
जगतो धारणार्थाय विज्ञाप्यं कुरु मे विभो ॥ ६८ ॥

विजयप्रद, प्रजापति पति देव पद्मनाभ महाबली, आत्मभूत, महाभूत, धर्मरूप और सर्वप्रद हो। तुम्हारी जय हो ॥५६।५८॥ पृथ्वी तुम्हारे दोनों चरण हैं। दिशाएँ तुम्हारे हाथ हैं। अन्तरिक्ष तुम्हारा मस्तक है। मैं तुम्हारी मूर्ति हूँ। देवगण तुम्हारा शरीर हैं। चन्द्र सूर्य तुम्हारे नेत्र हैं। सङ्कल्प, तप और सत्य तुम्हारा बल है। धर्म कर्म तुम्हारा आत्मा है। अग्नि तुम्हारा तेज है। वायु तुम्हारा श्वास है। जल तुम्हारा स्वेद है। अश्विनीकुमार तुम्हारे कान हैं। सरस्वती देवी तुम्हारी जिह्वा हैं। वेद तुम्हारी संस्कारनिष्ठा हैं। यह सब जगत् तुम्हारे ही आश्रित है ॥५९।६१॥ हे योगीश ! हम तुम्हारी संख्या, परिमाण तेज, बल और जन्म कुछ नहीं जानते। हे देव ! तुम महेश्वर और परमेश्वर हो। हम तुम्हारे आश्रित होकर भक्ति के साथ नियमपूर्वक तुम्हारी पूजा करते हैं। हे विशाललोचन ! हे कृष्ण ! हे दुःखनाशन ! मैंने ऋषि देवता, गन्धर्व, राक्षस, नाग, पिशाच मनुष्य मृग पक्षी कीट सरीसृप आदि को तुम्हारे प्रसाद से उत्पन्न किया है ॥६२।६५॥ हे देवेश ! तुम सब प्राणियों की गति हो। तुम्हीं सबके आदि हो। देवगण तुम्हारे ही प्रसाद से सब सुख भोगते हैं। तुम्हारे ही प्रसाद से यह पृथ्वी निर्भय भाव से स्थित है। इस समय तुम धर्म की स्थापना, दैत्यों के विनाश और पृथ्वी का भार उतारने

यत्तत्परमकं गुह्यं त्वत्प्रसादादिदं विभो ।
वासुदेव तदेतत्ते मयोद्गीतं यथातथम् ॥ ६९ ॥
सृष्ट्वा सङ्कर्षणं देवं स्वयमात्मानमात्मना ।
कृष्ण त्वमात्मनाऽस्राक्षीः प्रद्युम्नं चाऽऽत्मसम्भवम् ॥७०॥
प्रद्युम्नादनिरुद्धं त्वं यं विदुर्विष्णुमव्ययम् ।
अनिरुद्धोऽसृजन्मां वै ब्रह्माणं लोकधारिणम् ॥ ७१ ॥
वासुदेवमयः सोऽहं त्वयैवाऽस्मि विनिर्मितः ।
विभज्य भागशोऽऽत्मानं व्रज मानुषतां विभो ॥ ७२ ॥
तत्राऽसुरवधं कृत्वा सर्वलोकसुखाय वै ।
धर्मं प्राप्य यशः प्राप्य योगं प्राप्स्यसि तत्त्वतः ॥ ७३ ॥
त्वां हि ब्रह्मर्षयो लोके देवाश्चाऽमितविक्रम ।
तैस्तैर्हि नामभिर्युक्ता गायन्ति परमात्मकम् ॥ ७४ ॥
स्थिताश्च सर्वे त्वयि भूतसङ्घाः कृत्वाऽऽश्रयं त्वां वरदं सुबाहो ।
अनादिमध्यान्तमपारयोगं लोकस्य सेतुं प्रवदन्ति विप्राः ॥ ७५ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि विश्वोपाख्याने पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

के लिए पृथ्वी पर यदुवंश में अवतार लो। हे प्रभो! इस मेरी प्रार्थना के अनुसार कार्य करो ॥६६।६८॥ मैंने तुम्हारी ही कृपा से वेद में सब गुह्य विषयों का वर्णन किया है। तुम्हीं ने आत्मा के द्वारा आत्म-स्वरूप सङ्कर्षण की सृष्टि की है। तुमने आत्मा से आत्मज-स्वरूप प्रद्युम्न की सृष्टि की है। प्रद्युम्न से अव्यय अनिरुद्ध की सृष्टि की है और अनिरुद्ध ने ही सृष्टिकर्ता-रूप में मुझे उत्पन्न किया है। अतएव मैं तुम्हारी आत्मा से ही उत्पन्न हुआ हूँ। अब तुम अपने अंश से मनुष्यशरीर ग्रहण करो ॥६९।७२॥

मनुष्यों को सुखी बनाने के लिए तुम असुरों को मारकर धर्म की स्थापना करो। फिर यश प्राप्त करके अपने लोक को चले आओ। हे विष्णु! देवर्षिगण और ब्रह्मर्षिगण पृथक्-पृथक् तुम्हारे उन नामों को गाकर, तुम्हें परम अद्भुत कहकर, तुम्हारी ही स्तुति किया करते हैं। सब प्राणी तुम्हीं में स्थित हैं। ब्राह्मण लोग तुम्हारा आश्रय पाकर तुम्हीं को अनादि, मध्यहीन, अनन्त, असीम और संसार का कारण कहते हैं ॥७३।७५॥

भीष्मपर्व का पैंसठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६५ ॥

अथ षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

भीष्म उवाच- ततः स भगवान्देवो लोकानामीश्वरेश्वरः ।
ब्रह्माणं प्रत्युवाचेदं स्निग्धगम्भीरया गिरा ॥ १ ॥

विदितं तात योगान्मे सर्वमेतत्तवेप्सितम् ।
तथा तद्भवितेत्युक्त्वा तत्रैवाऽन्तरधीयत ॥ २ ॥
ततो देवर्षिगन्धर्वा विस्मयं परमं गताः ।
कौतूहलपराः सर्वे पितामहमथाऽब्रुवन् ॥ ३ ॥
को न्वयं यो भगवता प्रणम्य विनयाद्विभो ।
वाग्भिः स्तुतो वरिष्ठाभिःश्रोतुमिच्छाम तं वयम् ॥ ४ ॥
एवमुक्तस्तु भगवान्प्रत्युवाच पितामहः ।
देवब्रह्मर्षिगन्धर्वान्सर्वान्मधुरया गिरा ॥ ५ ॥
यत्तत्परं भविष्यं च भवितव्यं च यत्परम् ।
भूतात्मा च प्रभुश्चैव ब्रह्म यच्च परं पदम् ॥ ६ ॥
तेनाऽस्मि कृतसंवादः प्रसन्नेन सुरर्षभाः ।
जगतोऽनुग्रहार्थाय याचितो मे जगत्पतिः ॥ ७ ॥
मानुषं लोकमातिष्ठ वासुदेव इति श्रुतः ।
असुराणां वधार्थाय सम्भवस्व महीतले ॥ ८ ॥
संग्रामे निहता ये ते दैत्यदानवराक्षसाः ।
त इमे नृषु सम्भूता घोररूपा महाबलाः ॥ ९ ॥
तेषां वधार्थं भगवान्नरेण सहितो वशी ।
मानुषीं योनिमास्थाय चरिष्यति महीतले ॥ १० ॥

छाछठवाँ अध्याय ॥ ६६ ॥

भीष्म कहते हैं कि हे दुर्योधन ! तब देवाधिदेव भगवान् विष्णु ने स्निग्ध गम्भीर स्वर से ब्रह्मा से कहा—हे "वत्स ! मैंने योगबल से तुम्हारे अन्तःकरण की बात जान ली है । हे ब्रह्मा ! मैं तुम्हारी प्रार्थना पूर्ण करूँगा ।" यह कहकर नारायण वहाँ से अन्तर्द्धान हो गये ॥१।२॥ तब देवता, ऋषि, गन्धर्व आदि सब अत्यन्त आश्चर्य के साथ ब्रह्माजी से बोले—हे विभो ! आपने जिनको प्रणाम किया और जिनकी नम्रभाव से स्तुति की, वे कौन हैं ? हम जानने के लिए अत्यन्त उत्सुक हैं ॥३।४॥ देवताओं, गन्धर्वों और ऋषियों के यों पूछने पर ब्रह्माजी ने मधुर स्वर में कहा —हे महात्मा पुरुषो ! तत्-पद-वाच्य, सबसे श्रेष्ठ, भूत-भविष्य-वर्तमान तीनों कालों में नित्य, सब प्राणियों के आत्मा और प्रभु, परब्रह्म यह हैं । उन्होंने प्रसन्न होकर मुझसे वार्तालाप किया है । मैंने जगत् के हित के लिए उनसे प्रार्थना की है । मैंने उनसे प्रार्थना की है कि हे प्रभो ! तुम वसुदेव के पुत्र-रूप से मनुष्य-लोक में अवतार लो ॥५।८॥ संग्राम में मारे गये सब महाबली दैत्य, दानव और राक्षस पृथ्वी पर उत्पन्न हुए हैं । उनके वध के लिए तुम नर के साथ पृथ्वी पर जन्म लो । सब देवता भी मिलकर उन्हें जीत नहीं सकते । वे

नरनारायणौ यौ तौ पुराणावृषिसत्तमौ ।
सहितौ मानुषे लोके सम्भूतावमितद्युती ॥ ११ ॥
अजेयौ समरे यत्तौ सहितैरमरैरपि ।
मूढास्त्वेतौ न जानन्ति नरनारायणावृषी ॥ १२ ॥
तस्याऽहमग्रजः पुत्रः सर्वस्य जगतः प्रभुः ।
वासुदेवोऽर्चनीयो वः सर्वलोकमहेश्वरः ॥ १३ ॥
तथा मनुष्योऽयमिति कदाचित्सुरसत्तमाः ।
नाऽवज्ञेयो महावीर्यः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ १४ ॥
एतत्परमकं गुह्यमेतत्परमकं पदम् ।
एतत्परमकं ब्रह्म एतत्परमकं यशः ॥ १५ ॥
एतदक्षरमव्यक्तमेतद्वै शाश्वतं महः ।
यत्तत्पुरुषसंज्ञं वै गीयते ज्ञायते न च ॥ १६ ॥
एतत्परमकं तेज एतत्परमकं सुखम् ।
एतत्परमकं सत्यं कीर्तितं विश्वकर्मणा ॥ १७ ॥
तस्मात्सेन्द्रैः सुरैः सर्वैर्लोकैश्चाऽमितविक्रमः ।
नाऽवज्ञेयो वासुदेवो मानुषोऽयमिति प्रभुः ॥ १८ ॥
यश्च मानुषमात्रोऽयमिति ब्रूयात्स मन्दधीः ।
हृषीकेशमवज्ञानात्तमाहुः पुरुषाधमम् ॥ १९ ॥
योगिनं तं महात्मानं प्रविष्टं मानुषीं तनुम् ।
अवमन्येद्वासुदेवं तमाहुस्तामसं जनाः ॥ २० ॥

महातेजस्वी प्राचीन ऋषि नर नारायण पृथ्वी पर अवतार लेंगे। मूढ़ लोग उन्हें नहीं जानते ॥११।१२॥ मैं उनका बड़ा आत्मज होकर सब जगत् का स्वामी हुआ हूं। सब लोकों के महेश्वर वासुदेव तुम सबके पूजनीय हैं। उन महावीर्य वीर्यशाली शङ्ख-चक्र गदाधारी वासुदेव को मनुष्य समझकर कभी उनकी अवज्ञा न करना। ये परमगुह्य, परमपद, परब्रह्म, परमयश, अक्षर और शाश्वत हैं। उन तेजस्वी को सब लोग पुरुष कहते और जानते हैं ॥१३।१६॥ विश्वकर्मा ने उन्हीं को परमतेज, परमसुख और परमसत्य कहा है। देवता, इन्द्र, असुर या मनुष्य, किसी को उन पराक्रमी वासुदेव का अनादर न करना चाहिए। जो मूढ़मति मनुष्य उनको मनुष्य समझते हैं, उन्हें पण्डितजन पुरुषाधम कहते हैं। जो व्यक्ति उन महायोगी महात्मा को मनुष्यदेहधारी समझकर उनका अनादर करता है, अथवा जो व्यक्ति उन भगवान् पद्मनाभ को जान नहीं सकता, उसे श्रेष्ठ लोग तामसी कहते हैं ॥१७।२१॥ जो व्यक्ति उन

देवं चराचरात्मानं श्रीवत्साङ्कं सुवर्चसम् ।
पद्मनाभं न जानाति तमाहुस्तामसं बुधाः ॥ २१ ॥
किरीटकौस्तुभधरं मित्राणामभयङ्करम् ।
अवजानन्महात्मानं घोरे तमसि मज्जति ॥ २२ ॥
एवं विदित्वा तत्त्वार्थं लोकानामीश्वरेश्वरः ।
वासुदेवो नमस्कार्यः सर्वलोकैः सुरोत्तमाः ॥ २३ ॥
भीष्म उवाच—एवमुक्त्वा स भगवान्देवान्सर्षिगणान्पुरा ।
विसृज्य सर्वभूतात्मा जगाम भवनं स्वकम् ॥ २४ ॥
ततो देवाः सगन्धर्वा मुनयोऽप्सरसोऽपि च ।
कथां तां ब्रह्मणा गीतांश्रुत्वा प्रीता दिवं ययुः॥ २५ ॥
एतच्छ्रुतं मया तात ऋषीणां भावितात्मनाम्।
वासुदेवं कथयतां समवाये पुरातनम् ॥ २६ ॥
रामस्य जामदग्न्यस्य मार्कण्डेयस्य धीमतः ।
व्यासनारदयोश्चाऽपि सकाशाद्भरतर्षभ ॥ २७ ॥
एतमर्थं च विज्ञाय श्रुत्वा च प्रभुमव्ययम् ।
वासुदेवं महात्मानं लोकानामीश्वरेश्वरम् ॥ २८ ॥
यस्य चैवाऽऽत्मजो ब्रह्मा सर्वस्य जगतः पिता ।
कथं न वासुदेवोऽयमर्च्यश्चेज्यश्च मानवैः ॥ २९ ॥
वारितोऽसि मया तात मुनिभिर्वेदपारगैः ।
मा गच्छ संयुगं तेन वासुदेवेन धन्विना ॥ ३० ॥

कौस्तुभ किरीटधारी और मित्रों को अभय देनेवाले योगी ईश्वर का अपमान करता है वह घोर पाप का भागी होता है। हे देवताओं ! उन लोकमहेश्वर भगवान् वासुदेव को इस प्रकार जानकर सब लोगों को प्रणाम करना चाहिए ॥२२।२३॥ भीष्म कहते हैं—देवताओं और ऋषियों से इस प्रकार नारायण की महिमा कहकर ब्रह्माजी अपने लोक को चले गये। हे दुर्योधन ! उन ऋषियों से ही मैंने वासुदेव की यह पुरानी कथा सुनी है ॥२४।२६॥ परशुराम, मार्कण्डेय, व्यास और नारद ने भी मुझसे यही बात कही है। हे वत्स ! जगत्पिता ब्रह्मा जिनसे उत्पन्न हैं, उन सब लोकों के ईश्वर महात्मा वासुदेव की यह महिमा जानकर कौन मनुष्य उनकी पूजा और सत्कार नहीं करेगा ? हे दुर्योधन ! पूर्व समय में मैंने और शुद्धहृदय योगी मुनियों ने आकर तुम्हें रोका था और कहा था कि वासुदेव और पाण्डवों से युद्ध मत करो। तुमने मोहवश होकर किसी का कहना नहीं माना और अब तक नहीं समझते हो। तुम

मा पाण्डवैः सार्द्धमिति तत्त्वं मोहान्न बुध्यसे ।
मन्ये त्वां राक्षसं क्रूरं तथा चाऽसि तमोवृतः ॥ ३१ ॥
यस्माद् द्विषसि गोविन्दं पाण्डवं तं धनञ्जयम् ।
नरनारायणौ देवौ कोऽन्यो द्विष्याद्धि मानवः ॥ ३२ ॥
तस्माद्ब्रवीमि ते राजन्नेष वै शाश्वतोऽव्ययः ।
सर्वलोकमयो नित्यः शास्ता धात्रीधरो ध्रुवः ॥ ३३ ॥
यो धारयति लोकांस्त्रींश्चराचरगुरुः प्रभुः ।
योद्धा जयश्च जेता च सर्वप्रकृतिरीश्वरः ॥ ३४ ॥
राजन्सर्वमयो ह्येष तमोरागविवर्जितः ।
यतः कृष्णस्ततो धर्मो यतो धर्मस्ततो जयः ॥ ३५ ॥
तस्य माहात्म्ययोगेन योगेनाऽऽत्ममयेन च ।
धृताः पाण्डुसुता राजञ्जयश्चैषां भविष्यति ॥ ३६ ॥
श्रेयोयुक्तां सदा बुद्धिं पाण्डवानां दधाति यः ।
बलं चैव रणे नित्यं भयेभ्यश्चैव रक्षति ॥ ३७ ॥
स एष शाश्वतो देवः सर्वगुह्यमयः शिवः ।
वासुदेव इति ज्ञेयो यन्मां पृच्छसि भारत ॥ ३८ ॥
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्च कृतलक्षणैः ।
सेव्यतेऽभ्यर्च्यते चैव नित्ययुक्तैः स्वकर्मभिः ॥ ३९ ॥

ऐसे तमोगुणी हो रहे हो कि मैं तुमको क्रूर राक्षस समझता हूँ। तुम उन्हीं वासुदेव और पाण्डवोंसहित अर्जुन से द्वेषभाव रखते हो। तुम्हारे बिना और कौन मनुष्य नर-नारायण के अवतार अर्जुन और श्रीकृष्ण से द्रोह करेगा? ॥२७।३२॥ हे दुर्योधन! तुमसे मैं फिर कहता हूँ, ये श्रीकृष्ण शाश्वत, अव्यय, सर्वलोकमय, नित्य, शासक, विधाता, विश्व धार और ध्रुव हैं। यही त्रिलोक का धारण करनेवाले धर्म, चराचर के गुरु, प्रभु, योद्धा, विजेता, सबकी प्रकृति और ईश्वर हैं। ये सत्त्वगुणमय हैं, तमोगुण और रजोगुण से इनका कुछ सम्बन्ध नहीं। ये परम से परम भगवान् वासुदेव जिस पक्ष में हैं उसी पक्ष में धर्म है, और उसी पक्ष को जय प्राप्त होगी॥३३।३५॥ इन्हीं के आत्मयोगबल से पाण्डव सुरक्षित हैं। इसलिए वही विजयी होंगे। जो पाण्डवों को सदा उत्तम सम्मति देते और सहायता करते हैं, वे श्रीकृष्ण ही सदा सब प्रकार के भय से उनकी रक्षा करते हैं। हे भारत! तुमने जो मुझसे पूछा था, वह सब मैंने तुम्हारे आगे वर्णन कर दिया। वे सर्वमय, पाण्डवों के सहायक, महात्मा वासुदेव कहलाते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नित्य एकाग्र होकर उनकी सेवा और पूजा करते हैं। सङ्कर्षण बलदेव द्वापर युग के अन्त में, कलियुग के आरम्भ में, सात्वत विधि से, जिनकी उपासना और गुणगान करते हैं,

द्वापरस्य युगस्याऽन्ते आदौ कलियुगस्य च ।
सात्वतं विधिमास्थाय गीतः सङ्कर्षणेन वै ॥ ४० ॥
स एष सर्वं सुरमर्त्यलोकं समुद्रकक्ष्यान्तरितां पुरीं च ।
युगे युगे मानुषं चैव वासं पुनः पुनः सृजते वासुदेवः ॥ ४१ ॥
इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि विश्वोपाख्याने षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

वही विश्वकर्मा वसुदेव हर एक युग में देवलोक, सत्यलोक, समुद्र के भीतर की पुरी और मनुष्यों के निवासस्थान आदि की सृष्टि करते हैं ॥३६।४१॥

- ० —

भीष्मपर्व का छाछठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६६ ॥

अथ सप्तषष्टितमोऽध्याय ॥ ६७ ॥

दुर्योधन उवाच—वासुदेवो महद्भूतं सर्वलोकेषु कथ्यते ।
तस्याऽऽगमं प्रतिष्ठां च ज्ञातुमिच्छे पितामह ॥ १ ॥
भीष्म उवाच—वासुदेवो महद्भूतं सर्वदैवतदैवतम् ।
न परं पुण्डरीकाक्षाद् दृश्यते भरतर्षभ ॥ २ ॥
मार्कण्डेयश्च गोविन्दे कथयत्यद्भुतं महत् ।
सर्वभूतानि भूतात्मा महात्मा पुरुषोत्तमः ॥ ३ ॥
आपो वायुश्च तेजश्च त्रयमेतदकल्पयत् ।
स सृष्ट्वा पृथिवीं देवीं सर्वलोकेश्वरः प्रभुः ॥ ४ ॥
अप्सु वै शयनं चक्रे महात्मा पुरुषोत्तमः ।
सर्वतेजोमयो देवो योगात्सुष्वाप तत्र ह ॥ ५ ॥
मुखतः सोऽग्निमसृजत्प्राणाद्वायुमथाऽपि च ।
सरस्वतीं च वेदांश्च मनसः ससृजेऽच्युतः ॥ ६ ॥

सड़सठवाँ अध्याय ॥ ६७ ॥

दुर्योधन ने कहा—हे पितामह ! जो वासुदेव सब लोकों में महान् प्राणी या परम पुरुष माने जाते हैं उनका आविर्भाव और स्थिति जानने की मेरी बड़ी इच्छा है । कृपा करके कहिए ॥१॥ भीष्म ने कहा—हे कुरुकुलश्रेष्ठ ! वासुदेव जी महामत्त्वसम्पन्न और देवताओं के भी देवता हैं । उनसे श्रेष्ठ और कोई नहीं है । चिरञ्जीवि महर्षि मार्कण्डेय उनको महत् और अद्भुत कहते हैं । वे सब प्राणियों के आत्मा अव्यय पुरुष ही जल, वायु, तेज आदि तत्त्वों को और चराचर जगत् को उत्पन्न करते हैं । उन सर्वदेवमय देव पुरुषोत्तम ने योगबल से पृथ्वी को प्रकट कर सागर-जल की शय्या पर शयन करके मुख से अग्नि को, प्राण से वायु को और मन से सरस्वती तथा वेद को प्रकट किया ॥२।६॥ इस प्रकार पहले

एष लोकान्ससर्जाऽऽदौ देवांश्च ऋषिभिः सह ।
निधनं चैव मृत्युं च प्रजानां प्रभवाप्ययौ ॥ ७ ॥
एष धर्मश्च धर्मज्ञो वरदः सर्वकामदः ।
एष कर्ता च कार्यं च पूर्वदेवः स्वयं प्रभुः ॥ ८ ॥
भूतं भव्यं भविष्यच्च पूर्वमेतदकल्पयत् ।
उभे सन्ध्ये दिशः खं च नियमांश्च जनार्दनः ॥ ९ ॥
ऋषींश्चैव हि गोविन्दस्तपश्चैवाऽभ्यकल्पयत् ।
स्रष्टारं जगतश्चाऽपि महात्मा प्रभुरव्ययः ॥ १० ॥
अग्रजं सर्वभूतानां सङ्कर्षणमकल्पयत् ।
तस्मान्नारायणो जज्ञे देवदेवः सनातनः ॥ ११ ॥
नाभौ पद्मं बभूवाऽस्य सर्वलोकस्य सम्भवात् ।
तस्मात्पितामहो जातस्तस्माज्जातास्त्विमाः प्रजाः ॥ १२ ॥
शेषं चाऽकल्पयद्देवमनन्तं विश्वरूपिणम् ।
यो धारयति भूतानि धरां चेमां सपर्वताम् ॥ १३ ॥
ध्यानयोगेन विप्राश्च तं विदन्ति महौजसम् ।
कर्णस्रोतोभवं चाऽपि मधुं नाम महासुरम् ॥ १४ ॥
तमुग्रमुग्रकर्माणमुग्रां बुद्धिं समास्थितम् ।
ब्रह्मणोऽपचितिं यातुं जघान पुरुषोत्तमः ॥ १५ ॥
तस्य तात वधादेव देवदानवमानवाः ।
मधुसूदनमित्याहुर्ऋषयश्च जनार्दनम् ॥ १६ ॥

उन्होंने देवता, ऋषि और उनके सब लोक उत्पन्न करके फिर अमृत, मृत्यु, प्रजा की उत्पत्ति और प्रलय के कारण आदि की सृष्टि की। वे धर्मज्ञ, धर्म, वरद, सब कामना देनेवाले, कर्ता, कार्य, आदि के आदि और स्वयंप्रभु है। पहले उन्होंने भूत, भविष्य, वर्तमान, दोनों सन्ध्याकाल, दिशाएँ, आकाश और सब नियम रचे है। महात्मा प्रभु अव्यय ने फिर ऋषिगण, तप और जगत् की सृष्टि करनेवाले प्रजापति को उत्पन्न किया। फिर सब प्राणियों के अग्रज सङ्कर्षण को उत्पन्न किया। सङ्कर्षण से देवदेव सनातन नारायण उत्पन्न हुए ॥७।११॥ इनकी नाभि से कमल निकला, कमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुए और ब्रह्मा से सारी प्रजा की उत्पत्ति हुई है। लोग जिन्हें अनन्त कहते है, जिन्होंने पर्वतों सहित इस पृथ्वी को धारण कर रखा है, उन शेषनाग को भी उन्हीं प्रभु ने उत्पन्न किया है। ब्राह्मण लोग ध्यानयोग के द्वारा उन वासुदेव को जान सकते है। उग्रकर्मा मधु नाम के असुर ने प्रजापति के कान से उत्पन्न

वराहश्चैव सिंहश्च त्रिविक्रमगतिः प्रभुः ।
एष माता पिता चैव सर्वेषां प्राणिनां हरिः ॥ १७ ॥
परं हि पुण्डरीकाक्षान्न भूतं न भविष्यति ।
मुखतः सोऽसृजद्विप्रान्बाहुभ्यां क्षत्रियांस्तथा ॥ १८ ॥
वैश्यांश्चाऽप्युरुतो राजन्शूद्रान्वै पादतस्तथा ।
तपसा नियतो देवो निधानं सर्वदेहिनाम् ॥ १९ ॥
ब्रह्मभूतममावास्यां पौर्णमास्यां तथैव च ।
योगभूतं परिचरन्केशवं महदाप्नुयात् ॥ २० ॥
केशवः परमं तेजः सर्वलोकपितामहः ।
एवमाहुर्हृषीकेशं मुनयो वै नराधिप ॥ २१ ॥
एवमेनं विजानीहि आचार्यं पितरं गुरुम् ।
कृष्णो यस्य प्रसीदेत लोकास्तेनाऽक्षया जिताः॥ २२ ॥
यश्चैवैनं भयस्थाने केशवं शरणं व्रजेत् ।
सदा नरः पठंश्चेदं स्वस्तिमान्स सुखी भवेत् ॥ २३ ॥
ये च कृष्णं प्रपद्यन्ते ते न मुह्यन्ति मानवाः ।
भये महति मग्नांश्च पाति नित्यं जनार्दनः ॥ २४ ॥
स तं युधिष्ठिरो ज्ञात्वा याथातथ्येन भारत ।
सर्वात्मना महात्मानं केशवं जगदीश्वरम् ।
प्रपन्नः शरणं राजन्योगानां प्रभुमीश्वरम् ॥ २५ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि विश्वोपाख्याने सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

होकर उन्हें मारना चाहा था। उस समय असुर को मारने के कारण देवता, दानव और मानव उन्हें मधुसूदन कहते हैं। ऋषिगण उन्हीं को जनार्दन कहते हैं ॥१२-१६॥ वही वाराह, नृसिंह, और वामन का रूप रखकर समय-समय पर प्रकट हुए हैं। वे पुण्डरीकाक्ष हरि सबके माता और पिता हैं। उनसे श्रेष्ठ कोई भी नहीं हो सकता। उनके मुख से ब्राह्मण, हाथों से क्षत्रिय, ऊरुओं से वैश्य और पाओं से शूद्र उत्पन्न हुए हैं। अमावस और पूर्णिमा को तप में तत्पर होकर उनकी आराधना करने से मनुष्य उन सर्वयोग या परम या वासुदेव को प्राप्त कर सकता है ॥१७-२०॥ वही तेज और चराचर जगत् के स्वामी हैं। मुनिगण उन्हें हृषीकेश कहते हैं। वही आचार्य, पिता और गुरु हैं। वे जिस पर प्रसन्न होते हैं उनको अक्षयलोक प्राप्त होते हैं। जो भयपीड़ित होकर उन वासुदेव के शरणागत होता है और सदा इस उपाख्यान को पढ़ता है, वह परम-मङ्गल और परम सुख प्राप्त करता है। उसे किसी प्रकार का मोह नहीं होता। वे महाभय में सब मनुष्यों की रक्षा करते हैं। हे भारत! धर्मराज

युधिष्ठिर उन महाभाग भगवान् योगेश्वर कृष्ण को ऐसा जानकर सब प्रकार से उनके शरणागत हो। चुके हैं ॥२१।२५॥

—०—

भाष्मपर्व का सडसठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६७ ॥

अथ अष्टषष्टितमोऽध्याय ॥ ६८ ॥

भीष्म उवाच—शृणु चेदं महाराज ब्रह्मभूतं स्तवं मम ।
ब्रह्मर्षिभिश्च देवैश्च यः पुरा कथितो भुवि ॥ १ ॥
साध्यानामपि देवानां देवदेवेश्वरः प्रभुः ।
लोकभावन भावज्ञ इति त्वां नारदोऽब्रवीत् ॥ २ ॥
भूतं भव्यं भविष्यं च मार्कण्डेयोऽभ्युवाच ह ।
यज्ञं त्वां चैव यज्ञानां तपश्च तपसामपि ॥ ३ ॥
देवानामपि देवं च त्वामाह भगवान्भृगुः ।
पुराणं चैव परमं विष्णो रूपं तवेति च ॥ ४ ॥
वासुदेवो वसूनां त्वं शक्रं स्थापयिता तथा ।
देवदेवोऽसि देवानामिति द्वैपायनोऽब्रवीत् ॥ ५ ॥
पूर्वे प्रजानिसर्गे च दक्षमाहुः प्रजापतिम् ।
स्रष्टारं सर्वलोकानामङ्गिरास्त्वां तथाऽब्रवीत् ॥ ६ ॥
अव्यक्तं ते शरीरोत्थं व्यक्तं ते मनसि स्थितम् ।
देवास्त्वत्सम्भवाश्चैव देवलस्त्वसितोऽब्रवीत् ॥ ७ ॥
शिरसा ते दिवं व्याप्तं बाहुभ्यां पृथिवी तथा ।
जठरं ते त्रयो लोकाः पुरुषोऽसि सनातनः ॥ ८ ॥

अडसठवाँ अध्याय ॥ ६८ ॥

भाष्म कहते हैं—हे राजन्द्र ! पूर्व समय में भगवान् प्रजापति ने जैसे वासुदेव की स्तुति की थी वह मैं कह चुका, अब महर्षियों और देवताओं ने जैसे उनकी महिमा का वर्णन किया था, वह वेदमय स्तव मैं तुम्हारे आगे कहता हूँ, सुनो। महर्षि नारद ने उनको लोकभावन, भावज्ञ, साध्यगण और देवगण के प्रभु और देवेश्वर कहा है। महर्षि मार्कण्डेय ने यज्ञों का यज्ञ, तप का तप और भूत भविष्य-वर्तमान रूप कहा है। महर्षि भृगु ने उनको देवदेव और उनके रूप को विष्णु का पुरातन परमरूप कहा है ॥१।४॥ महर्षि द्वैपायन व्यास ने उन्हें इन्द्र को स्थापित करनेवाला, वसुओं में वासुदेव और देवताओं मे देवदेव कहा है। कुछ श्रेष्ठ ऋषियों ने कहा है कि वे वासुदेव पूर्वकालीन सृष्टि के कल्प में प्रजापति दक्ष थे। अङ्गिरा ऋषि ने उनको सब प्राणियों की सृष्टि करनेवाला कहा है। महर्षि असित

एवं त्वामभिजानन्ति तपसा भाविता नराः ।
आत्मदर्शनतृप्तानामृषीणां चाऽसि सत्तमः ॥ ९ ॥
राजर्षीणामुदाराणामाहवेष्वनिवर्तिनाम् ।
सर्वधर्मप्रधानानां त्वं गतिर्मधुसूदन ॥ १० ॥
इति नित्यं योगविद्भिर्भगवान्पुरुषोत्तमः ।
सनत्कुमारप्रमुखैः स्तूयतेऽभ्यर्च्यते हरिः ॥ ११ ॥
एष ते विस्तरस्तात संक्षेपश्च प्रकीर्तितः ।
केशवस्य यथातत्त्वं सुप्रीतो भज केशवम् ॥ १२ ॥
सञ्जय उवाच—पुण्यं श्रुत्वैतदाख्यानं महाराज सुतस्तव ।
केशवं बहु मेने स पाण्डवांश्च महारथान् ॥ १३ ॥
तमब्रवीन्महाराज भीष्मः शान्तनवः पुनः ।
माहात्म्यं ते श्रुतं राजन्केशवस्य महात्मनः ॥ १४ ॥
नरस्य च यथातत्त्वं यन्मां त्वं पृच्छसे नृप ।
यदर्थं नृषु सम्भूतौ नरनारायणावृषी ॥ १५ ॥
अवध्यौ च यथा वीरौ संयुगेष्वपराजितौ ।
यथा च पाण्डवा राजन्नवध्या युधि कस्यचित् ॥ १६ ॥
प्रीतिमान्हि दृढं कृष्णः पाण्डवेषु यशस्विषु ।
तस्माद्ब्रवीमि राजेन्द्र शमो भवतु पाण्डवैः ॥ १७ ॥

देवों का कथन है कि 'अव्यक्त' वासुदेव के शरीर से और 'व्यक्त' वासुदेव के अन्तःकरण से उत्पन्न हुआ है। उन्हीं से सब देवता प्रकट हुए हैं ॥५।७॥ सनत्कुमार आदि ऋषियों का कहना है कि वासुदेव के सिर से आकाश और बाहुओं से पृथ्वी व्याप्त है। उनके उदर में तीनों लोक हैं। वही सनातन पुरुष हैं। तप से अन्तःकरण विशुद्ध होने पर मनुष्यगण उनको जानते हैं। आत्मदर्शन से तृप्त ऋषियों में वासुदेव ही श्रेष्ठ हैं। वही युद्ध से न लौटनेवाले उदार राजर्षियों की और सब प्रधान धर्मों की गति हैं। इस प्रकार योग के जानकार सनत्कुमार प्रभृति मुनि नित्य भगवान् पुरुषोत्तम हरि की पूजा, आराधना और स्तुति किया करते हैं। हे पुत्र! मैंने यह भगवान् वासुदेव का माहात्म्य तुम्हारे आगे विस्तार से और संक्षेप से भी कह दिया। इस [illegible] से प्रसन्न होकर तुम वासुदेव को भजो ॥८।१२॥ सञ्जय कहते हैं—हे महाराज! भीष्म के मुख से यह पवित्र उपाख्यान सुनकर राजा दुर्योधन ने मन ही मन महारथी पाण्डवों को और श्रीकृष्ण को आदि से श्रेष्ठ और बड़ा समझा ॥१३॥ इसके पश्चात् भीष्म ने फिर दुर्योधन से कहा—हे वत्स! तुम्हारे प्रश्न के अनुसार मैंने वासुदेव और अर्जुन का माहात्म्य और उनके मनुष्यलोक में जन्म लेने का कारण कह सुनाया। जिस कारण से वे अवध्य हैं और [illegible] नहीं

पृथिवीं भुंक्ष्व सहितो भ्रातृभिर्बलिभिर्वशी ।
नरनारायणौ देवाववज्ञाय न शिष्यसि ॥ १८ ॥
एवमुक्त्वा तव पिता तूष्णीमासीद्विशाम्पते ।
व्यसर्जयच्च राजानं शयनं च विवेश ह ॥ १९ ॥
राजा च शिविरं प्रायात्प्रणिपत्य महात्मने ।
शिश्ये च शयने शुभ्रे रात्रिं तां भरतर्षभ ॥ २० ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि विश्वोपाख्याने अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

सकना, वह भी तुम सुन चुके ॥१४।१६॥ हे राजेन्द्र ! भगवान् केशव पाण्डवों पर अत्यन्त प्रसन्न और अनुरक्त हैं । इसी लिए मैं तुमसे बारम्बार कहता हूँ कि अब तुम पाण्डवों से सन्धि कर लो और भाइयों के साथ सुख से राज्य करो। नर और नारायण से द्रोह रख-कर उनका अनादर करने से अवश्य ही तुम्हारा विनाश होगा । पितामह भीष्म इतना कहकर चुप हो रहे । दुर्योधन उनके पास से उठकर, उनको प्रणाम करके, अपने शिविर में गये और पलँग पर लेट रहे ॥१७।२०॥

—०—

भीष्मपर्व का अड़सठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६८ ॥

अथ ऊनसप्ततितमोऽध्याय ॥ ६९ ॥

सञ्जय उवाच— व्युषितायां तु शर्वर्यामुदिते च दिवाकरे ।
उभे सेने महाराज युद्धायैव समीयतुः ॥ १ ॥
अभ्यधावन्त संक्रुद्धाः परस्परजिगीषवः ।
ते सर्वे सहिता युद्धे समालोक्य परस्परम् ॥ २ ॥
पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च राजन्दुर्मन्त्रिते तव ।
व्यूहौ च व्यूह्य संरब्धाः सम्प्रहृष्टाः प्रहारिणः ॥ ३ ॥
अरक्षन्मकरव्यूहं भीष्मो राजन्समन्ततः ।
तथैव पाण्डवा राजन्नरक्षन्व्यूहमात्मनः ॥ ४ ॥
स निर्ययौ महाराज पिता देवव्रतस्तव ।
महता रथवंशेन संवृतो रथिनां वरः ॥ ५ ॥

उनत्तरवाँ अध्याय ॥ ६९ ॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! रात्रि व्यतीत होने पर दोनों ओर की सेनाएँ युद्ध के लिए रणभूमि को चलीं । पाण्डव और कौरव जयप्राप्ति के लिए उत्सुक और क्रोध से अधीर होकर परस्पर युद्ध करने को सम्मुख आये । हे राजेन्द्र ! यह सब आपकी ही बुरी सम्मति का फल है । कौरवपक्ष के प्रसन्नहृदय योद्धा कवच और शस्त्र धारणकर मकरव्यूह की रचना करके भीष्म के चारों ओर स्थित हुए। महाबाहु भीष्म चारों

इतरेतरमन्वीयुर्यथाभागमवस्थिताः ।
रथिनः पत्तयश्चैव दन्तिनः सादिनस्तथा ॥ ६ ॥
तान्दृष्ट्वाऽभ्युद्यतान्संख्ये पाण्डवा हि यशस्विनः ।
श्येनेन व्यूहराजेन तेनाऽजय्येन संयुगे ॥ ७ ॥
अशोभत मुखे तस्य भीमसेनो महाबलः ।
नेत्रे शिखण्डी दुर्धर्षो धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ ८ ॥
शीर्षे तस्याऽभवद्वीरः सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
विधुन्वन्गाण्डिवं पार्थो ग्रीवायामभवत्तदा ॥ ९ ॥
अक्षौहिण्या समं तत्र वामपक्षोऽभवत्तदा ।
महात्मा द्रुपदः श्रीमान्सह पुत्रेण संयुगे ॥ १० ॥
दक्षिणश्चाऽभवत्पक्षः कैकेयोऽक्षौहिणीपतिः ।
पृष्ठतो द्रौपदेयाश्च सौभद्रश्चाऽपि वीर्यवान् ॥ ११ ॥
पृष्ठे समभवच्छ्रीमान्स्वयं राजा युधिष्ठिरः ।
भ्रातृभ्यां सहितो वीरो यमाभ्यां चारुविक्रमः ॥ १२ ॥
प्रविश्य तु रणे भीमो मकरं मुखतस्तदा ।
भीष्ममासाद्य संग्रामे छादयामास सायकैः ॥ १३ ॥
ततो भीष्मो महास्त्राणि पातयामास भारत ।
मोहयन्पाण्डुपुत्राणां व्यूढं सैन्यं महाहवे ॥ १४ ॥

ओर से मकरव्यूह की रक्षा करने लगे ॥१।४॥ पितामह जब ध्वजाओं से शोभित असंख्य रथों के साथ निकले तब असंख्य रथी, पैदल, हाथियों और घोड़ों के सवार यथास्थान स्थित होकर उनके पीछे पीछे चले। उधर पाण्डवों ने कौरवों को युद्ध के लिए उद्यत देखकर श्येनव्यूह की रचना की ॥५।७॥ महाबली भीमसेन उस व्यूह के मुखभाग में, शिखण्डी और धृष्टद्युम्न नेत्रों के स्थान पर, सत्यपराक्रमी सात्यकि सिर के स्थान पर और गम्भीर गाण्डीव धनुष का शब्द करते हुए अर्जुन ग्रीवा के स्थान पर स्थित हुए। महात्मा द्रुपद अपने पुत्रों के साथ एक अक्षौहिणी सेना लेकर व्यूह के वामभाग की रक्षा करने लगे ॥८।१०॥ अक्षौहिणीपति कैकेय राजकुमार [पाँचों भाई] दक्षिण भाग की रक्षा करने लगे। द्रौपदी के पाँचों पुत्र, अभिमन्यु धर्मराज युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव उस व्यूह के पृष्ठभाग की रक्षा करने लगे। इसके अनन्तर भीमसेन शत्रुओं के मकरव्यूह में प्रवेश हो गये। उन्होंने भीष्म के पास पहुँचकर उन्हें बाणों की वर्षा से ढक दिया। महात्मा भीष्म भी पाण्डवों की, व्यूह के मध्य खड़ी हुई, सेना को मोहित करते हुए अस्त्रों का प्रयोग करके असंख्य तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे ॥११।१४॥ अपनी सेना को भीष्म के बाणों से मोहित और उत्साहहीन देखकर वीर अर्जुन शीघ्र वहाँ पहुँच गये। उन्होंने दृढ और तीक्ष्ण सहस्रों बाण भीष्म के ऊपर

सम्मुह्यति तदा सैन्ये त्वरमाणो धनञ्जयः ।
भीष्मं शरसहस्रेण विव्याध रणमूर्धनि ॥ १५ ॥
प्रतिसंवार्य चाऽस्त्राणि भीष्ममुक्तानि संयुगे ।
स्वेनाऽनीकेन हृष्टेन युद्धाय समुपस्थितः ॥ १६ ॥
ततो दुर्योधनो राजा भारद्वाजमभाषत ।
पूर्वं दृष्ट्वा वधं घोरं बलस्य बलिनां वरः ॥ १७ ॥
भ्रातॄणां च वधं युद्धे स्मरमाणो महारथः ।
आचार्य सततं हि त्वं हितकामो ममाऽनघ ॥ १८ ॥
वयं हि त्वां समाश्रित्य भीष्मं चैव पितामहम् ।
देवानपि रणे जेतुं प्रार्थयामो न संशयः ॥ १९ ॥
किमु पाण्डुसुतान्युद्धे हीनवीर्यपराक्रमान् ।
स तथा कुरु भद्रं ते यथा वध्यन्ति पाण्डवाः ॥ २० ॥
एवमुक्तस्ततो द्रोणस्तव पुत्रेण मारिष ।
अभिनत्पाण्डवानीकं प्रेक्षमाणस्य सात्यकेः ॥ २१ ॥
सात्यकिस्तु ततो द्रोणं वारयामास भारत ।
तयोः प्रववृते युद्धं घोररूपं भयावहम् ॥ २२ ॥
शैनेयं तु रणे क्रुद्धो भारद्वाजः प्रतापवान् ।
अविध्यन्निशितैर्बाणैर्जत्रुदेशे हसन्निव ॥ २३ ॥
भीमसेनस्ततः क्रुद्धो भारद्वाजमविध्यत ।
संरक्षन्सात्यकिं राजन्द्रोणाच्छस्त्रभृतां वरात् ॥ २४ ॥

छोडे । भीष्म ने भी अपने बाणों से स्फूर्ति के साथ उन बाणों को व्यर्थ कर दिया । अपने पक्ष की सेना को प्रसन्न तथा उत्साहित करते हुए वे घोर युद्ध करने लगे ॥१५।१६॥ पहले दिन बहुत सी सेना और कई भाइयों के मारे जाने से राजा दुर्योधन यों ही अत्यन्त क्रुद्ध थे। इस समय युद्ध की अवस्था देखकर उन्होंने द्रोणाचार्य से कहा—हे आचार्य ! आप निरन्तर नित्य मेरी भलाई सोचा करते हैं। हम आपके और पितामह के आश्रय से देवताओं को भी परास्त कर सकते हैं। पराक्रम और वीर्य से हीन पाण्डवों को आप लोगों की सहायता से जीत लेना तो कोई आश्चर्य की बात ही नहीं है। इसलिए वह उपाय शीघ्र कीजिए जिससे पाण्डव मारे जा सकें ॥१७।२०॥ सञ्जय कहते हैं—हे महाराज ! युद्धभूमि में दुर्योधन ने आचार्य से जब यह प्रार्थना की तब द्रोणाचार्य सात्यकि के सामने ही पाण्डव-सेना का संहार करने लगे। उधर सात्यकि भी द्रोणाचार्य को रोकने की चेष्टा करने लगे। द्रोणाचार्य और सात्यकि

ततो द्रोणश्च भीष्मश्च तथा शल्यश्च मारिष ।
भीमसेनं रणे क्रुद्धाश्छादयाश्चक्रिरे शरैः ॥ २५ ॥
तत्राऽभिमन्युः संक्रुद्धो द्रौपदेयाश्च मारिष ।
विव्यधुर्निशितैर्बाणैः सर्वांस्तानुद्यतायुधान् ॥ २६ ॥
द्रोणभीष्मौ तु संक्रुद्धावापतन्तौ महाबलौ ।
प्रत्युद्ययौ शिखण्डी तु महेष्वासो महाहवे ॥ २७ ॥
प्रगृह्य बलवद्वीरो धनुर्जलदनिःस्वनम् ।
अभ्यवर्षच्छरैस्तूर्णं छादयानो दिवाकरम् ॥ २८ ॥
शिखण्डिनं समासाद्य भरतानां पितामहः ।
अवर्जयत संग्रामं स्त्रीत्वं तस्याऽनुसंस्मरन् ॥ २९ ॥
ततो द्रोणो महाराज अभ्यद्रवत तं रणे ।
रक्षमाणस्तदा भीष्मं तव पुत्रेण चोदितः ॥ ३० ॥
शिखण्डी तु समासाद्य द्रोणं शस्त्रभृतां वरम् ।
अवर्जयत सन्त्रस्तो युगान्ताग्निमिवोल्बणम् ॥ ३१ ॥
ततो बलेन महता पुत्रस्तव विशाम्पते ।
जुगोप भीष्ममासाद्य प्रार्थयानो महद्यशः ॥ ३२ ॥
तथैव पाण्डवा राजन्पुरस्कृत्य धनञ्जयम् ।
भीष्ममेवाऽभ्यवर्तन्त जये कृत्वा दृढां मतिम् ॥ ३३ ॥

से दारुण युद्ध होने लगा। प्रतापशाली आचार्य ने क्रोध से कुछ मुसकराकर सात्यकि के जत्रुस्थान पर दस बाण मारे ॥२१।२३॥ उधर महाबली भीमसेन कुपित होकर प्रधान अस्त्रविद्याविशारद द्रोणाचार्य के हाथ से सात्यकि की रक्षा करने के लिए उन पर निरन्तर असह्य बाण बरसाने लगे। तब द्रोण, भीष्म और शल्य कुपित होकर भीमसेन को बाण मारने लगे। द्रोण और भीष्म का मिलकर युद्ध करते देख अभिमन्यु और द्रौपदी के पाँचों पुत्र शस्त्रधारी द्रोण के मर्मस्थल में तीक्ष्ण बाण मारने लगे। ॥२४।२६॥ इसी मध्य में शिखण्डी भी वहाँ आ गये। मेघ के समान गरजनेवाले धनुष को चढ़ाकर स्फूर्ति के साथ उन्होंने इतने बाण बरसाये कि सूर्य नारायण उनसे छिप गये। पितामह भीष्म ने शिखण्डी को युद्ध के लिए सन्मुख देखकर भी उनके पहले के आकार का ध्यान करके, उन पर बाण नहीं चलाया ॥२७।२८॥ उधर दुर्योधन की आज्ञानुसार आचार्य द्रोण, भीष्म की रक्षा के लिए, शिखण्डी के सम्मुख आये। प्रलयकाल के प्रचण्ड अग्नि के तुल्य प्रज्वलित प्रधान योद्धा आचार्य को सम्मुख देखकर शिखण्डी भय के मारे उनसे घबराकर अन्यत्र चले गये। इसी मध्य में बहुत सी सेना साथ लिये दुर्योधन वहाँ आकर भीष्म की रक्षा करने लगे। पाण्डवगण भी अर्जुन को आगे करके, जयलाभ के

तद्युद्धमभवद्घोरं देवानां दानवैरिव ।
जयमाकांक्षतां संख्ये यशश्च सुमहाद्भुतम् ॥ ३४ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि पञ्चमदिवसयुद्धारम्भे ऊनसप्ततितमोऽध्याय ॥ ६९ ॥

लिये, भीष्म के समीप पहुँचने की चेष्टा करने लगे। तब परस्पर यश और विजय की कामना से दोनों पक्ष के वीर योद्धा भिड़कर देवताओं और दानवों का सा घोर संग्राम करने लगे ॥३०।३४॥

भीष्मपर्व का उनत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६९ ॥

अथ सप्ततितमोऽध्याय ॥ ७० ॥

सञ्जय उवाच—अकरोत्तुमुलं युद्धं भीष्मः शान्तनवस्तदा ।
भीमसेनभयादिच्छन्पुत्रांस्तारयितुं तव ॥ १ ॥
पूर्वाह्णे तन्महारौद्रं राज्ञां युद्धमवर्तत ।
कुरूणां पाण्डवानां च मुख्यशूरविनाशनम् ॥ २ ॥
तस्मिन्नाकुलसंग्रामे वर्तमाने महाभये ।
अभवत्तुमुलः शब्दः संस्पृशन्गगनं महत् ॥ ३ ॥
नदद्भिश्च महानागैर्हेषमाणैश्च वाजिभिः ।
भेरीशङ्खनिनादैश्च तुमुलं समपद्यत ॥ ४ ॥
युयुत्सवस्ते विक्रान्ता विजयाय महाबलाः ।
अन्योन्यमभिगर्जन्तो गोष्ठेष्विव महर्षभाः ॥ ५ ॥
शिरसां पात्यमानानां समरे निशितैः शरैः ।
अश्मवृष्टिरिवाऽऽकाशे बभूव भरतर्षभ ॥ ६ ॥
कुण्डलोष्णीषधारीणि जातरूपोज्ज्वलानि च ।
पतितानि स्म दृश्यन्ते शिरांसि भरतर्षभ ॥ ७ ॥

सत्तरवाँ अध्याय ॥ ७० ॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! भीमसेन से आपके पुत्रों की रक्षा करने के लिये भीष्म घोरतर संग्राम करने लगे। दिन के पूर्वभाग मे कौरवों, पाण्डवों और दोनों पक्षों के राजाओं का भयङ्कर युद्ध हुआ। उस युद्ध मे अनेक प्रधान वीर मृत्यु के मुख का कौर बनने लगे। युद्धभूमि मे ऐसा कोलाहल उठा कि आकाशमण्डल तक छा गया। हाथियों की चिंघार, घोडों की हिनहिनाहट, भेरी और शङ्ख आदि का शब्द चारों ओर गूँज उठा ॥१।४॥ युद्धार्थी वीरगण परस्पर विजय की अभिलाषा से गोशाला मे स्थित साँडों की तरह तर्जन गर्जन करने लगे। तीक्ष्ण बाणों से कट कटकर योद्धाओं के सिर पृथ्वी पर गिर रहे थे, ऐसा जान पडता था कि मानो आकाश से शिलाओं की वर्षा हो रही है।

विशिखोन्मथितैर्गात्रैर्बाहुभिश्च सकार्मुकैः ।
सहस्ताभरणैश्चाऽन्यैरभवच्छादिता मही ॥ ८ ॥
कवचोपहितैर्गात्रैर्हस्तैश्च समलंकृतैः ।
मुखैश्च चन्द्रसङ्काशै रक्तान्तनयनैः शुभैः ॥ ९ ॥
गजवाजिमनुष्याणां सर्वगात्रैश्च भूपते ।
आसीत्सर्वा समास्तीर्णा मुहूर्तेन वसुन्धरा ॥ १० ॥
रजोमेघैश्च तुमुलैः शस्त्रविद्युत्प्रकाशिभिः ।
आयुधानां च निर्घोषः स्तनयित्नुसमोऽभवत् ॥ ११ ॥
स सम्प्रहारस्तुमुलः कटुकः शोणितोदकः ।
प्रावर्तत कुरूणां च पाण्डवानां च भारत ॥ १२ ॥
तस्मिन्महाभये घोरे तुमुले लोमहर्षणे ।
ववृषुः शरवर्षाणि क्षत्रिया युद्धदुर्मदाः ॥ १३ ॥
आक्रोशन्कुञ्जरास्तत्र शरवर्षप्रतापिताः ।
तावकानां परेषां च संयुगे भरतर्षभ ॥ १४ ॥
संरब्धानां च वीराणां धीराणाममितौजसाम् ।
धनुर्ज्यातलशब्देन न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ १५ ॥
उत्थितेषु कबन्धेषु सर्वतः शोणितोदके ।
समरे पर्यधावन्त नृपारिपु वधोद्यताः ॥ १६ ॥

कुण्डल और पगडी आदि से शोभित, सुवर्ण के आभूषणों से चमकते हुए, मनुष्यों के सिर ढेर के ढेर पड़े देख पड़ते थे। कुण्डल-भूषित मस्तकों, आभूषण-युक्त हाथों और आभूषण भूषित शरीरों से पृथ्वी छिप गई ॥५।८॥ कवचयुक्त देहों, अलङ्कारयुक्त हाथों, लाल नेत्रों से विकट रक्तरञ्जित मुण्डों, हाथियों घोडों और मनुष्यों के छिन्न-भिन्न अङ्ग-प्रत्यङ्गों का क्षण भर में ही युद्धभूमि में ढेर लग गया। उस समय उड़ी हुई धूल घनघटा के समान, शस्त्र-अस्त्र बिजली के समान, अस्त्र-शस्त्रों का शब्द मेघगर्जन के समान और रक्त का प्रवाह वर्षा की जलधारा के समान जान पड़ता था ॥९।११॥ हे राजेन्द्र ! युद्धनिपुण क्षत्रिय गण उस भयङ्कर संग्राम में निरन्तर बाणवर्षा करने लगे। दोनों सेनाओं के हाथी बाणप्रहार से पीड़ित होकर चिल्लाने लगे। उनके चिल्लाने और वीरों के सिंहनाद तथा ताल ठोंकने के शब्द से और कुछ नहीं सुन पड़ता था ॥१२।१५॥ सर्वत्र रक्त-प्रवाह के मध्य से वीरों के कबन्ध उठ-उठकर घोर युद्ध करने लगे। राजा लोग और सैनिक क्षत्रियगण शत्रुओं को मारने के लिये चारों ओर दौड़ रहे थे। मोटी-मोटी भुजाओं वाले महाबली क्षत्रियगण बाण, शक्ति, गदा और खड्ग आदि शस्त्रों से एक दूसरे को मारने लगे। बाणों की चोट से विह्वल होकर हाथी और घोड़े अपने सवारों को गिराकर युद्धभूमि में दूर भागने

शरशक्तिगदाभिस्ते खड्गैश्चाऽमिततेजसः ।
निजघ्नुः समरेऽन्योन्यं शूराः परिघबाहवः ॥ १७ ॥
बभ्रमुः कुञ्जराश्चाऽत्र शरैर्विद्धा निरंकुशाः ।
अश्वाश्च पर्यधावन्त हतारोहा दिशो दश ॥ १८ ॥
उत्पत्य निपतन्त्यन्ये शरघातप्रपीडिताः ।
तावकानां परेषां च योधा भरतसत्तम ॥ १९ ॥
बाहानामुत्तमाङ्गानां कार्मुकाणां च भारत ।
गदानां परिघाणां च हस्तानां चोरुभिः सह ॥ २० ॥
पादानां भूषणानां च केयूराणां च सङ्घशः ।
राशयस्तत्र दृश्यन्ते भीष्म भीमसमागमे ॥ २१ ॥
अश्वानां कुञ्जराणां च रथानां चाऽनिवर्तिनाम् ।
सङ्घाताः स्म प्रदृश्यन्ते तत्र तत्र विशाम्पते ॥ २२ ॥
गदाभिरसिभिः प्रासैर्बाणैश्च नतपर्वभिः ।
जघ्नुः परस्परं तत्र क्षत्रियाः काल आगते ॥ २३ ॥
अपरे बाहुभिर्वीरा नियुद्धकुशला युधि ।
बहुधा समसज्जन्त आयसैः परिघैरिव ॥ २४ ॥
मुष्टिभिर्जानुभिश्चैव तलैश्चैव विशाम्पते ।
अन्योन्यं जघ्निरे वीरास्तावकाः पाण्डवैः सह ॥ २५ ॥
पतितैः पात्यमानैश्च विचेष्टद्भिश्च भूतले ।
घोरमायोधनं जज्ञे तत्र तत्र जनेश्वर ॥ २६ ॥
विरथा रथिनश्चाऽत्र निस्त्रिंशवरधारिणः ।
अन्योन्यमभिधावन्तः परस्परवधैषिणः ॥ २७ ॥

लगे। बहुत लोग बाणों के प्रहार से पीड़ित होकर उछल-उछलकर पृथ्वी पर गिर पड़ते थे ॥१६।१७॥ इस युद्ध में सब स्थान भुजा, सिर, धनुष, गदा, [illegible] और हाथों के केयूर आदि आभूषण बिखरे हुए देख पड़ते थे। स्थान-स्थान पर हाथियों, घोड़ों और रथों के झुण्ड भिड़े हुए दृष्टिगोचर होते थे। क्षत्रियगण मानो कालप्रेरित होकर परस्पर गदा, खड्ग, प्रास, बाण आदि के प्रहार कर रहे थे ॥२०।२३॥ बाहुयुद्धनिपुण बहुत वीरगण लोहे के बेलन ऐसे हाथों से भिड़कर कुश्ती के दाँव पेच दिखा रहे थे। अनेक वीर शस्त्र न रहने के कारण शत्रुओं को घूँसे, घुटने, थप्पड़ आदि से मारने लगे। बहुत से वीर पृथ्वी पर गिरकर तड़पते रहने पर भी घोर युद्ध कर रहे थे। रथ टूट जाने पर अनेक रथी एक दूसरे को मारने

ततो दुर्योधनो राजा कलिङ्गैर्बहुभिर्वृतः ।
पुरस्कृत्य रणे भीष्मं पाण्डवानभ्यवर्तत ॥ २८ ॥
तथैव पाण्डवाः सर्वे परिवार्य वृकोदरम् ।
भीष्ममभ्यद्रवन्क्रुद्धास्ततो युद्धमवर्तत ॥ २९ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि सङ्कुलयुद्धे सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

के लिए दौड़ रहे थे। इतने में राजा दुर्योधन बहुत सी कलिङ्गदेश की सेना साथ लेकर, भीष्म को आगे करके, पाण्डवों पर आक्रमण करने चले। तब पाण्डव लोग भी भीमसेन को आगे करके पितामह भीष्म के सन्मुख आये ॥२७।२९॥

— ० —

भीष्मपर्व का सत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७० ॥

अथ एकसप्ततितमोऽध्याय ॥ ७१ ॥

सञ्जय उवाच—दृष्ट्वा भीष्मेण संसक्तान्भ्रातॄनन्यांश्च पार्थिवान् ।
समभ्यधावद्गाङ्गेयमुद्यतास्त्रो धनञ्जयः ॥ १ ॥
पाञ्चजन्यस्य निर्घोषं धनुषो गाण्डिवस्य च ।
ध्वजं च दृष्ट्वा पार्थस्य सर्वान्नो भयमाविशत् ॥ २ ॥
सिंहलांगूलमाकाशे ज्वलन्तमिव पर्वतम् ।
असज्जमानं वृक्षेषु धूमकेतुमिवोत्थितम् ॥ ३ ॥
बहुवर्णं विचित्रं च दिव्यं वानरलक्षणम् ।
अपश्याम महाराज ध्वजं गाण्डीवधन्वनः ॥ ४ ॥
विद्युतं मेघमध्यस्थां भ्राजमानामिवाऽम्बरे ।
ददृशुर्गाण्डिवं योधा रुक्मपृष्ठं महामृधे ॥ ५ ॥
आशुश्रुम भृशं चाऽस्य शक्रस्येवाऽभिगर्जतः ।
सुघोरं तलयोः शब्दं निघ्नतस्तव वाहिनीम् ॥ ६ ॥

इकहत्तरवाँ अध्याय ॥ ७१ ॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज! भाइयों और अन्य राजाओं को भीष्म से युद्ध करते देखकर अर्जुन भी शस्त्र लेकर उधर ही दौड़े। पाञ्चजन्य शंख का शब्द और गाण्डीव धनुष का गर्जन सुनकर तथा अर्जुन के रथ की ध्वजा देखकर कौरव पक्ष के वीर बहुत ही भयभीत हो गये। हम लोगों ने अर्जुन की सिंहपुच्छशोभित, चित्र विचित्र, वानरचिह्नयुक्त, उठे हुए धूमकेतु के समान, आकाश को छूता हुई दिव्य ध्वजा देखी ॥१।४॥ उस तुमुल संग्राम में योद्धाओं ने अर्जुन के सुवर्णमण्डित पीठ वाले गाण्डीव धनुष को घनघटा के मध्य बिजली के समान देखा। हे राजेन्द्र! आपकी सेना का संहार करते समय अर्जुन

चण्डवातो यथा मेघः सविद्युत्स्तनयित्नुमान् ।
दिशः सम्प्लावयन्सर्वाः शरवर्षैः समन्ततः ॥ ७ ॥
समभ्यधावद्गाङ्गेयं भैरवास्त्रो धनञ्जयः ।
दिशं प्राचीं प्रतीचीं च न जानीमोऽस्त्रमोहिताः ॥ ८ ॥
कान्दिग्भूताः श्रान्तपत्रा हताश्वा हतचेतसः ।
अन्योन्यमभिसंश्लिष्य योधास्ते भरतर्षभ ॥ ९ ॥
भीष्ममेवाऽभ्यलीयन्त सह सर्वैस्तवाऽऽत्मजैः ।
तेषामार्तायनमभूद्भीष्मः शान्तनवो रणे ॥ १० ॥
समुत्पतन्ति वित्रस्ता रथेभ्यो रथिनस्तथा ।
सादिनश्चाऽश्वपृष्ठेभ्यो भूमौ चाऽपि पदातयः ॥ ११ ॥
श्रुत्वा गाण्डीवनिर्घोषं विस्फूर्जितमिवाऽशनेः ।
सर्वसैन्यानि भीतानि व्यवालीयन्त भारत ॥ १२ ॥
अथ काम्बोजजैरश्वैर्महद्भिः शीघ्रगामिभिः ।
गोपानां बहुसाहस्रैर्बालैर्गोपायनैर्वृतः ॥ १३ ॥
मद्रसौवीरगान्धारैस्त्रैगर्तैश्च विशाम्पते ।
सर्वकालिङ्गमुख्यैश्च कलिङ्गाधिपतिर्वृतः ॥ १४ ॥
नानानरगणौघैश्च दुःशासनपुरःसरः ।
जयद्रथश्च नृपतिः सहितः सर्वराजभिः ॥ १५ ॥

इन्द्र के समान गम्भीर शब्द से गरजने लगे। उनके ताल ठोकने का कठोर शब्द निरन्तर सुन पड़ने लगा। जैसे प्रचण्ड वायु और बिजली के साथ गरजता हुआ मेघ सब स्थान जल बरसाता है, वैसे ही अर्जुन भी सर्वत्र बाण बरसा रहे थे ॥५।७॥ वे भयङ्कर अस्त्र शस्त्र बरसाते हुए भीष्म की ओर दौड़े। उनके अस्त्र प्रहार से हमारी ओर के लोग अत्यन्त मोहित होकर यह निश्चय नहीं कर सकते थे कि कौन दिशा पूर्व है और कौन दिशा पश्चिम है। कौरव पक्ष के योद्धाओं में से किसी के वाहन थक गये थे, किसी के वाहन मर गये थे और कोई अचेत हो गया था। वे भागकर, हताहत होकर, दिशा-विदिशा का ज्ञान खोकर आपके पुत्रों के साथ भीष्म के शरणागत हुए। तब पितामह उनकी रक्षा करने लगे ॥८।१०॥ भयविह्वल रथी रथों पर से, घुड़सवार घोड़ों पर से और हाथियों के सवार हाथियों पर से पृथ्वी पर गिरने लगे। बिजली की कड़क जैसा गाण्डीव धनुष का शब्द सुनकर सैनिकगण भय के मारे प्राण लेकर भागने लगे ॥११।१२॥ हे राजेन्द्र ! उस समय कलिङ्गराज ने मद्र, सौवीर, गान्धार, त्रिगर्त आदि देशों की सेना प्रधान प्रधान कलिङ्ग देश के वीर, काम्बोज देश के शीघ्रगामी घोड़े और असंख्य गोप-सेना साथ लेकर युद्ध के लिये प्रस्थान किया। असंख्य सेना और राजाओं के साथ राजा जयद्रथ, दुःशासन

हयारोहवराश्चैव तव पुत्रेण चोदिताः ।
चतुर्दश सहस्राणि सौबलं पर्यवारयन् ॥ १६ ॥
ततस्ते सहिताः सर्वे विभक्तरथवाहनाः ।
अर्जुनं समरे जघ्नुस्तावका भरतर्षभ ॥ १७ ॥
रथिभिर्वारणैरश्वैः पादातैश्च समीरितम् ।
घोरमायोधनं चक्रे महाभ्रसदृशं रजः ॥ १८ ॥
तोमरप्रासनाराचगजाश्वरथयोधिनाम् ।
बलेन महता भीष्मः समसज्जत्किरीटिना ॥ १९ ॥
आवन्त्यः काशिराजेन भीमसेनेन सैन्धवः ।
अजातशत्रुर्मद्राणामृषभेण यशस्विना ॥ २० ॥
सहपुत्रः सहामात्यः शल्येन समसज्जत ।
विकर्णः सहदेवेन चित्रसेनः शिखण्डिना ॥ २१ ॥
मत्स्या दुर्योधनं जग्मुः शकुनिं च विशाम्पते ।
द्रुपदश्चेकितानश्च सात्यकिश्च महारथः ॥ २२ ॥
द्रोणेन समसज्जन्त सपुत्रेण महात्मना ।
कृपश्च कृतवर्मा च धृष्टद्युम्नमभिद्रुतौ ॥ २३ ॥
एवं प्रव्राजिताश्वानि भ्रान्तनागरथानि च ।
सैन्यानि समसज्जन्त प्रयुद्धानि समन्ततः ॥ २४ ॥

वे अनुगामी होकर, युद्ध के लिये चले। आपके पुत्र दुर्योधन की आज्ञा से चौदह हजार मुख्य-मुख्य घुड़सवार शकुनि के साथ चले ॥१३।१६॥ हे महाराज! कुरुपक्ष के योद्धा एकत्र होकर अलग अलग रथों और वाहनों पर चढ़कर अर्जुन से भिड़ गये। उस युद्धभूमि में रथों, हाथियों, घोड़ों और मनुष्यों के चलने से इतनी धूल उड़ी कि आकाशमण्डल महामेघ से घिरा हुआ सा जान पड़ने लगा। महारथी भीष्म के साथ बहुत सी चतुरङ्गिणी सेना थी। वे सैनिक तोमर, प्रास, नाराच आदि शस्त्रों के द्वारा अर्जुन से युद्ध करने लगे॥१७।१०॥ अवन्तिराज काशिराज के साथ, जयद्रथ भीमसेन के साथ, पुत्र और मन्त्री आदि के साथ अजातशत्रु राजा युधिष्ठिर शल्य के साथ, विकर्ण सहदेव के साथ और चित्रसेन शिखण्डी के साथ युद्ध करने लगे। हे कुरुश्रेष्ठ! दुर्योधन और शकुनि के साथ मत्स्य देश के वीरगण युद्ध करने लगे। द्रुपद, चेकितान और सात्यकि मिलकर अश्वत्थामा और द्रोणाचार्य से युद्ध करने लगे। कृपाचार्य और कृतवर्मा दोनों धृष्टकेतु से भिड़ गये॥२०।२३॥ इस प्रकार रथ, हाथी और घोड़े चारों ओर फिरने लगे और उन पर सवार योद्धा लोग परस्पर प्रहार करते हुए युद्ध करने लगे। उस समय मेघहीन आकाशमण्डल में बिजली चमकने लगी और घोर शब्द के साथ भयानक उल्कापात

निरभ्रे विद्युतस्तीव्रा दिशश्च रजसाऽऽवृताः ।
प्रादुरासन्महोल्काश्च सनिर्घाता विशाम्पते ॥ २५ ॥
प्रादुर्भूतो महावातः पांसुवर्षं पपात च ।
नभस्यन्तर्दधे सूर्यः सैन्येन रजसाऽऽवृतः ॥ २६ ॥
प्रमोहः सर्वसत्वानामतीव समपद्यत ।
रजसा चाऽभिभूतानामस्त्रजालैश्च तुद्यताम् ॥ २७ ॥
वीरबाहुविसृष्टानां सर्वावरणभेदिनाम् ।
सङ्घातः शरजालानां तुमुलः समपद्यत ॥ २८ ॥
प्रकाशं चक्रुराकाशमुद्यतानि भुजोत्तमैः ।
नक्षत्रविमलाभानि शस्त्राणि भरतर्षभ ॥ २९ ॥
आर्षभाणि विचित्राणि रुक्मजालावृतानि च ।
सम्पेतुर्दिक्षु सर्वासु चर्माणि भरतर्षभ ॥ ३० ॥
सूर्यवर्णैश्च निस्त्रिंशैः पात्यमानानि सर्वशः ।
दिक्षु सर्वास्वदृश्यन्त शरीराणि शिरांसि च ॥ ३१ ॥
भग्नचक्राक्षनीडाश्च निपातितमहाध्वजाः ।
हताश्वाः पृथिवीं जग्मुस्तत्र तत्र महारथाः ॥ ३२ ॥
परिपेतुर्हयाश्चाऽत्र केचिच्छस्त्रकृतव्रणाः ।
रथान्विपरिकर्षन्तो हतेषु रथयोधिषु ॥ ३३ ॥
शराहता भिन्नदेहा बद्धयोक्त्रा हयोत्तमाः ।
युगानि पर्यकर्षन्त तत्र तत्र स्म भारत ॥ ३४ ॥

होता दिखाई दिया । चारों ओर और नीचे-ऊपर धूल छा गई । आँधी चलकर ढेले बरसाने लगी । सेना की धूल से आकाशमण्डल में सूर्य छिप गये । उस धूल और अँधेरे में सब प्राणी व्याकुल होने लगे ॥२५।२७ वीर पुरुषों के हाथ से छूटे हुए बाण विकट शब्द के साथ सर्वत्र गिरने लगे । योद्धाओं के चलाये हुए बाण हाथ से छूटकर और उद्यत शस्त्र आकाश में चमकते दिखाई पड़ने लगे । विचित्र सुवर्णजालमण्डित ढालें पृथ्वी पर टूट-टूटकर गिर रही थीं ॥२८।३०॥ योद्धाओं के सूर्यसदृश चमकीले खड्गों से छिन्न भिन्न सिर और शरीर सर्वत्र पड़े हुए देखने में आने लगे । महारथियों के रथों के पहिये टूट गये, ध्वजाएँ कट गईं, घोड़े और सारथी मर गए और वे महारथी स्वयं पृथ्वी पर गिरने लगे । बहुत से योद्धाओं के मर जाने पर सारथिहीन घोड़े, बाणों से घायल होकर, युगकाष्ठ को खींचते हुए इधर उधर दौड़ते देख पड़े ॥३१।३३॥ यहीं पर देख पड़ा कि किसी पराक्रमी योद्धा के हाथों ने बाणों से रथी, सारथी और घोड़ों को मार डाला ।

अदृश्यन्त ससूताश्च साश्वाः सरथयोधिनः ।
एकेन बलिना राजन्वारणेन विमर्दिताः ॥ ३५ ॥
गन्धहस्तिमदस्रावमाघ्राय बहवो रणे ।
सन्निपाते बलौघानां वीतमाददिरे गजाः ॥ ३६ ॥
सतोमरैर्महामात्रैर्निपतद्भिर्गतासुभिः ।
बभूवाऽऽयोधनं छन्नं नाराचाभिहतैर्गजैः ॥ ३७ ॥
सन्निपाते बलौघानां प्रेषितैर्वरवारणैः ।
निपेतुर्युधि सम्भग्नाः सयोधाः सध्वजा गजाः ॥ ३८ ॥
नागराजोपमैर्हस्तैर्नागैराक्षिप्य संयुगे ।
व्यदृश्यन्त महाराज सम्भग्ना रथकूबराः ॥ ३९ ॥
विशीर्णरथसङ्घाश्च केशेष्वाक्षिप्य दन्तिभिः ।
द्रुमशाखा इवाऽऽविध्य निष्पिष्टा रथिनो रणे ॥ ४० ॥
रथेषु च रथान्युद्धे संसक्तान्वरवारणाः ।
विकर्षन्तो दिशः सर्वाः सम्पेतुः सर्वशब्दगाः ॥ ४१ ॥
तेषां तथा कर्षतां तु गजानां रूपमाबभौ ।
सरःसु नलिनीजालं विषक्तमिव कर्षताम् ॥ ४२ ॥
एवं सञ्छादितं तत्र बभूवाऽऽयोधनं महत् ।
सादिभिश्च पदातैश्च सध्वजैश्च महारथैः ॥ ४३ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि सङ्कुलयुद्धे एकसप्ततितमोऽध्याय ॥ ७१ ॥

कहीं किसी मदोन्मत्त हाथी के मद की गन्ध पाकर बहुत से हाथी भय से भाग खड़े हुए और उनके पाओं से अनेक हाथी कुचले गये ॥३५।३६॥ नाराच बाणों के प्रहार से मरकर गिरे हुए हाथियों से वह युद्धभूमि भर गई। हाथियों की पीठ से तोमर-अङ्कुश आदि हाथ में लिये महावत भी मर-मरकर गिरने लगे। उस घोर संग्राम में हाथियों के आक्रमण से योद्धा और झण्डेसहित हाथी गिरने लगे। श्रेष्ठ हाथी सूँड़ से रथों को खींचकर तोड़ डालते थे। कहीं पर किसी हाथी ने सूँड़ से किसी योद्धा के केश पकड़कर उसे खींच लिया और वृक्ष की शाखा की तरह रौंद डाला ॥३७।४०॥ कहीं पर रथ से भिड़े हुए रथ को खींचते हुए हाथी इधर उधर फिर रहे थे। उस समय वे हाथी सरोवर से परस्पर लिपटे हुए कमलों को खींचते से जान पड़ते थे। इस प्रकार वह रणभूमि घुड़सवारों, पैदलों और ध्वजाओं से शोभित महारथियों से परिपूर्ण हो रही थी ॥४१।४३॥

—:०:—

भीष्मपर्व का इकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७१ ॥

अथ द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

सञ्जय उवाच—शिखण्डी सह मत्स्येन विराटेन विशाम्पते ।
भीष्ममाशु महेष्वासमाससाद सुदुर्जयम् ॥ १ ॥
द्रोणं कृपं विकर्णं च महेष्वासं महाबलम् ।
राज्ञश्चाऽन्यान्रणे शूरान्बहूनार्च्छद्धनञ्जयः ॥ २ ॥
सैन्धवं च महेष्वासं सामात्यं सह बन्धुभिः ।
प्राच्यांश्च दाक्षिणात्यांश्च भूमिपान्भूमिपर्षभ ॥ ३ ॥
पुत्रं च ते महेष्वासं दुर्योधनममर्षणम् ।
दुःसहं चैव समरे भीमसेनोऽभ्यवर्तत ॥ ४ ॥
सहदेवस्तु शकुनिमुलूकं च महारथम् ।
पितापुत्रौ महेष्वासावभ्यवर्तत दुर्जयौ ॥ ५ ॥
युधिष्ठिरो महाराज गजानीकं महारथः ।
समवर्तत संग्रामे पुत्रेण निकृतस्तव ॥ ६ ॥
माद्रीपुत्रस्तु नकुलः शूरसंक्रन्दनो युधि ।
त्रिगर्तानां बलैः सार्धं समसज्जत पाण्डवः ॥ ७ ॥
अभ्यवर्तन्त संक्रुद्धाः समरे शाल्वकेकयान् ।
सात्यकिश्चेकितानश्च सौभद्रश्च महारथः ॥ ८ ॥
धृष्टकेतुश्च समरे राक्षसश्च घटोत्कचः ।
पुत्राणां ते रथानीकं प्रत्युद्याताः सुदुर्जयाः ॥ ९ ॥
सेनापतिरमेयात्मा धृष्टद्युम्नो महाबलः ।
द्रोणेन समरे राजन्समियायोग्रकर्मणा ॥ १० ॥

बहत्तरवाँ अध्याय ॥ ७२ ॥

सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र! राजा विराट और शिखण्डी मत्स्य के साथ महाधनुर्द्धर भीष्म के सम्मुख आये। महापराक्रमी द्रोण, कृप, विकर्ण और अन्य बहुत से राजाओं से अकेले अर्जुन युद्ध करने लगे ॥१।३॥ अमात्य और बन्धुओं सहित जयद्रथ, पूर्व और दक्षिण दिशा के नरपतियों तथा आपके पुत्र महाधनुर्द्धर दुर्योधन और दुःसह से अकेले भीमसेन युद्ध करने गये। महारथी शकुनि और उनके पुत्र उलूक से सहदेव युद्ध करने लगे। महारथी युधिष्ठिर हाथियों की सेना से युद्ध करने के लिये गये। समर में इन्द्रतुल्य पराक्रमी नकुल त्रिगर्त देश के वीरों से युद्ध करने लगे ॥४।७॥ सात्यकि, चेकितान और अभिमन्यु, ये तीनों वीर कुपित होकर शाल्व और केकय देश की सेना से युद्ध करने लगे। राक्षस घटोत्कच

एवमेते महेष्वासास्तावकाः पाण्डवैः सह ।
समेत्य समरे शूराः सम्प्रहारं प्रचक्रिरे ॥ ११ ॥
मध्यन्दिनगते सूर्ये नभस्याकुलतां गते ।
कुरवः पाण्डवेयाश्च निजघ्नुरितरेतरम् ॥ १२ ॥
ध्वजिनो हेमचित्राङ्गा विचरन्तो रणाजिरे ।
सपताका रथा रेजुर्वैयाघ्रपरिवारणाः ॥ १३ ॥
समेतानां च समरे जिगीषूणां परस्परम् ।
बभूव तुमुलः शब्दः सिंहानामिव नर्दताम् ॥ १४ ॥
तत्राऽद्भुतमपश्याम सम्प्रहारं सुदारुणम् ।
यद्कुर्वन्रणे शूराः सृञ्जयाः कुरुभिः सह ॥ १५ ॥
नैव खं न दिशो राजन्न सूर्यं शत्रुतापन ।
विदिशो वाऽपि पश्यामः शरैर्मुक्तैः समन्ततः ॥ १६ ॥
शक्तीनां विमलाग्राणां तोमराणां तथाऽस्यताम् ।
निस्त्रिंशानां च पीतानां नीलोत्पलनिभाःप्रभाः ॥ १७ ॥
कवचानां विचित्राणां भूषणानां प्रभास्तथा ।
खं दिशः प्रदिशश्चैव भासयामासुरोजसा ॥ १८ ॥
वपुर्भिश्च नरेन्द्राणां चन्द्रसूर्यसमप्रभैः ।
विरराज तदा राजंस्तत्र तत्र रणाङ्गणम् ॥ १९ ॥
रथसङ्घा नरव्याघ्राः समायान्तश्च संयुगे ।
विरेजुः समरे राजन्ग्रहा इव नभस्तले ॥ २० ॥

और धृष्टकेतु कौरवों की रथ-सेना से युद्ध करने लगे। महाबली सेनापति धृष्टद्युम्न उग्रकर्मा द्रोणाचार्य से युद्ध करने गये ॥८।१०॥ इस प्रकार दोनों ओर के महारथी योद्धा परस्पर भिड़कर प्रहार करने लगे। उस समय ठीक मध्याह्न था, आकाशमण्डल सूर्य की प्रचण्ड किरणों से परिपूर्ण था। कौरव और पाण्डव परस्पर प्रचण्ड प्रहार कर रहे थे। सुवर्णचित्रित पताका-युक्त, व्याघ्रों की खालों से मढ़े हुए,सुन्दर रथ रण भूमि में दौड़ने लगे। जयलाभ के लिये उत्सुक वीर-गण परस्पर भिड़कर सिंहों के समान गरजने लगे। ॥११।१४॥ हम लोग वह कौरवों और सृञ्जयों का अद्भुत युद्ध देखने लगे। दिशा, विदिशा, आकाश या सूर्य कुछ नहीं देख पड़ता था, चारों ओर बाण ही बाण छाये हुए थे। शक्ति,तोमर, खड्ग, विचित्र कवच और प्रकार प्रकार के मणिजटित स्वर्णमय आभूषणों की चमक से सब दिशाएँ और आकाशमण्डल जगमगा उठा। रणभूमि में प्रत्येक स्थान पर राजालोग चन्द्रमा और सूर्य के समान प्रकाशमान हो रहे थे। रथों

भीष्मस्तु रथिनां श्रेष्ठो भीमसेनं महाबलं ।
अवारयत संक्रुद्धः सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ २१ ॥
ततो भीष्मविनिर्मुक्ता रुक्मपुङ्खाः शिलाशिताः ।
अभ्यघ्नन्समरे भीमं तैलधौताः सुतेजनाः ॥ २२ ॥
तस्य शक्तिं महावेगां भीमसेनो महाबलः ।
क्रुद्धाशीविषसङ्काशां प्रेषयामास भारत ॥ २३ ॥
तामापतन्तीं सहसा रुक्मदण्डां दुरासदाम् ।
चिच्छेद समरे भीष्मः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ २४ ॥
ततोऽपरेण भल्लेन पीतेन निशितेन च ।
कार्मुकं भीमसेनस्य द्विधा चिच्छेद भारत ॥ २५ ॥
सात्यकिस्तु ततस्तूर्णं भीष्ममासाद्य संयुगे ।
आकर्णप्रहितैस्तीक्ष्णैर्निशितैस्तिग्मतेजनैः ॥ २६ ॥
शरैर्बहुभिरानर्च्छत्पितरं ते जनेश्वर ।
ततः सन्धाय वै तीक्ष्णं शरं परमदारुणम् ॥ २७ ॥
वार्ष्णेयस्य रथाद्भीष्मः पातयामास सारथिम् ।
तस्याऽश्वाः प्रद्रुता राजन्निहते रथसारथौ ॥ २८ ॥
तेन तेनैव धावन्ति मनोमारुतरंहसः ।
ततः सर्वस्य सैन्यस्य निःस्वनस्तुमुलोऽभवत् ॥ २९ ॥
हाहाकारश्च सञ्जज्ञे पाण्डवानां महात्मनाम् ।
अभ्यद्रवत गृह्णीत हयान्यच्छत धावत ॥ ३० ॥

पर बैठे हुए वीर आकाश मे इधर-उधर चलते हुए ग्रहों के समान जान पड़ने लगे ॥१५।२०॥ हे भारत ! इधर महारथी भीष्म ने क्रुद्ध होकर सब सेना के सामने ही सुवर्णपुङ्ख, शिलाओं पर रगड़े हुए, तेल-धौत बाण बरसाकर वीर भीमसेन को आगे बढ़ने से रोका । तब भीमसेन को क्रोध चढ आया । उन्होंने कुपित नाग के समान एक शक्ति बड़े वेग से भीष्म के ऊपर फेंकी । भीष्म ने उस सुवर्ण-दण्डमयी शक्ति को, अपने ऊपर गिरते देखकर, तीक्ष्ण बाणों से काट डाला; इसके पश्चात् एक तीक्ष्ण भल्ल बाण से भीमसेन का धनुष भी काट डाला ॥२१।२५॥ इतने में सात्यकि ने शीघ्रता के साथ भीष्म के पास जाकर उनको बड़े तीक्ष्ण-तीक्ष्ण बाण मारे । भीष्म ने एक तीक्ष्ण भयानक बाण मारकर सात्यकि के सारथी को रथ से गिरा दिया । सारथी के मर जाने पर वे तेज़ घोड़े अस्त-व्यस्त भाव से सात्यकि का रथ लिये फिरने लगे ॥२६।२९॥ तब युद्धभूमि में कौरवपक्ष के लोग आनन्द कोलाहल और पाण्डवपक्ष के लोग

इत्यासीत्तुमुलः शब्दो युयुधानरथं प्रति ।
एतस्मिन्नेव काले तु भीष्मः शान्तनवस्तदा ॥ ३१ ॥
न्यहनत्पाण्डवीं सेनामासुरीमिव वृत्रहा ।
ते वध्यमाना भीष्मेण पञ्चालाः सोमकैः सह ॥ ३२ ॥
स्थिरां युद्धे मतिं कृत्वा भीष्ममेवाऽभिदुद्रुवुः ।
धृष्टद्युम्नमुखाश्चाऽपि पार्थाः शान्तनवं रणे ॥ ३३ ॥
अभ्यधावञ्जिगीषन्तस्तव पुत्रस्य वाहिनीम् ।
तथैव कौरवा राजन्भीष्मद्रोणपुरोगमाः ॥ ३४ ॥
अभ्यधावन्त वेगेन ततो युद्धमवर्तत ॥ ३५ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि पञ्चमदिवसयुद्धे द्विसप्ततितमोऽध्याय ॥ ७२ ॥

हाहाकार करने लगे। पाण्डव लोग अपने सैनिकों से कहने लगे—दौड़ो, घोड़ों को पकड़ो, रोक लो। इसी अवसर में भीष्म पितामह उसी प्रकार पाण्डवसेना का संहार करने लगे जिस प्रकार इन्द्र दानवों की सेना को नष्ट करते हैं। भीष्म के हाथों मारे जाते हुए सोमकों और पाञ्चालों ने युद्ध में मरने या मारने का दृढ निश्चय करके भीष्म के ऊपर प्रचण्ड आक्रमण किया। पाण्डवों ने और धृष्टद्युम्न ने भी आक्रमण कर दिया। भीष्म, द्रोण आदि कौरव-वीर उन्हें रोकने की चेष्टा करने लगे। दोनों ओर घमासान युद्ध होने लगा ॥३०।३५॥

—०—

भीष्मपर्व का बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७२ ॥

अथ त्रिसप्ततितमोऽध्याय ॥ ७३ ॥

सञ्जय उवाच—विराटोऽथ त्रिभिर्बाणैर्भीष्ममार्च्छन्महारथम् ।
विव्याध तुरगांश्चाऽस्य त्रिभिर्बाणैर्महारथः ॥ १ ॥
तं प्रत्यविध्यद्दशभिर्भीष्मः शान्तनवः शरैः ।
रुक्मपुङ्खैर्महेष्वासः कृतहस्तो महाबलः ॥ २ ॥
द्रौणिर्गाण्डीवधन्वानं भीमधन्वा महारथः ।
अविध्यदिषुभिः षड्भिर्दृढहस्तः स्तनान्तरे ॥ ३ ॥
कार्मुकं तस्य चिच्छेद फाल्गुनः परवीरहा ।
अविध्यच्च भृशं तीक्ष्णैः पत्रिभिः शत्रुकर्शनः ॥ ४ ॥

तिहत्तरवाँ अध्याय ॥ ७३ ॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज! तब राजा विराट ने महारथी भीष्म को तीन बाण और घोड़े सहित सारथी को भी तीन ही बाण मारे। भीष्म ने उनको दस बाण मारे। भयानक धनुर्धारी महारथी

सोऽन्यत्कार्मुकमादाय वेगवान्क्रोधमूर्छितः ।
अमृष्यमाणः पार्थेन कार्मुकच्छेदमाहवे ॥ ५ ॥
अविध्यत्फाल्गुनं राजन्नवत्या निशितैः शरैः ।
वासुदेवं च सप्तत्या विव्याध परमेषुभिः ॥ ६ ॥
ततः क्रोधाभिताम्राक्षः कृष्णेन सह फाल्गुनः ।
दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य चिन्तयित्वा पुनः पुनः ॥ ७ ॥
धनुः प्रपीड्य वामेन करेणाऽमित्रकर्शनः ।
गाण्डीवधन्वा संक्रुद्धः शितान्सन्नतपर्वणः ॥ ८ ॥
जीवितान्तकरान्घोरान्समादत्त शिलीमुखान् ।
तैस्तूर्णं समरेऽविध्यद्द्रौणिं बलवतां वरः ॥ ९ ॥
तस्य ते कवचं भित्त्वा पपुः शोणितमाहवे ।
न विव्यथे च निर्भिन्नो द्रौणिर्गाण्डीवधन्वना ॥ १० ॥
तथैव च शरान्द्रौणिः प्रविमुञ्चन्नविह्वलः ।
तस्थौ स समरे राजंस्त्रातुमिच्छन्महाव्रतम् ॥ ११ ॥
तस्य तत्सुमहत्कर्म शशंसुः कुरुसत्तमाः ।
यत्कृष्णाभ्यां समेताभ्यामभ्यापतत संयुगे ॥ १२ ॥
स हि नित्यमनीकेषु युध्यतेऽभयमास्थितः ।
अस्त्रग्रामं ससंहारं द्रोणात्प्राप्य सुदुर्लभम् ॥ १३ ॥

ममैष आचार्यसुतो द्रोणस्याऽपि प्रियः सुतः ।
ब्राह्मणश्च विशेषेण माननीयो ममेति च ॥ १४ ॥
समास्थाय मतिं वीरो बीभत्सुः शत्रुतापनः ।
कृपां चक्रे रथश्रेष्ठो भारद्वाजसुतं प्रति ॥ १५ ॥
द्रौणिं त्यक्त्वा ततो युद्धे कौन्तेयः श्वेतवाहनः ।
युयुधे तावकान्निघ्नंस्त्वरमाणः पराक्रमी ॥ १६ ॥
दुर्योधनस्तु दशभिर्गार्ध्रपत्रैः शिलाशितैः ।
भीमसेनं महेष्वासं रुक्मपुङ्खैः समार्पयत् ॥ १७ ॥
भीमसेनः सुसंक्रुद्धः परासुकरणं दृढम् ।
चित्रं कार्मुकमादत्त शरांश्च निशितान्दश ॥ १८ ॥
आकर्णप्रहितैस्तीक्ष्णैर्वेगवद्भिरजिह्मगैः ।
अविध्यत्तूर्णमव्यग्रः कुरुराजं महोरसि ॥ १९ ॥
तस्य काञ्चनसूत्रस्थः शरैः सञ्छादितो मणिः ।
रराजोरसि खे सूर्यो ग्रहैरिव समावृतः ॥ २० ॥
पुत्रस्तु तव तेजस्वी भीमसेनेन ताडितः ।
नाऽमृष्यत यथा नागस्तलशब्दं मदोत्कटः ॥ २१ ॥
ततः शरैर्महाराज रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः ।
भीमं विव्याध संक्रुद्धस्त्रासयानो वरूथिनीम् ॥ २२ ॥
तौ युध्यमानौ समरे भृशमन्योन्यविक्षतौ ।
पुत्रौ ते देवसङ्काशौ व्यरोचेतां महाबलौ ॥ २३ ॥

कृपापूर्वक अश्वत्थामा को छोड़कर कौरवसेना के और वीरों को मारने चले गये ॥१३।१६॥ हे महाराज ! दुर्योधन ने सुवर्णपुङ्ख दस तीक्ष्ण बाण भीमसेन को मारे । भीमसेन ने भी कुपित होकर जीवनहारी विचित्र बाण निकाले और महावेग से कान तक धनुष खींचकर दुर्योधन के वक्षःस्थल में वे बाण मारे । उनकी छाती में काञ्चनसूत्र ग्रथित मणि शोभायमान थी । वह मणि बाणों से आच्छादित होने पर ग्रहों से घिरे हुए सूर्य के समान जान पड़ने लगी ॥१७।२०॥ जैसे मदमत्त गजराज तल-शब्द को सुनकर नहीं सह सकता, वैसे ही मानी दुर्योधन भीमसेन के बाणों की चोट खाकर उनके तल-शब्द और सिंह-नाद को नहीं सह सके । उन्होंने क्रोध से अधीर होकर अपनी सेना की रक्षा करने के लिये भीमसेन पर विकट बाण बरसाये । इस प्रकार घायल होकर भी देवतुल्य भीमसेन और दुर्योधन परस्पर युद्ध करने लगे ॥२१।२३॥ उधर देवराज-सदृश अभिमन्यु ने चित्रसेन को दस और पुरुमित्र को सात बाण मारकर

चित्रसेनं नरव्याघ्रं सौभद्रः परवीरहा ।
अविध्यद्दशभिर्बाणैः पुरुमित्रं च सप्तभिः ॥ २४ ॥
सत्यव्रतं च सप्तत्या विध्वा शक्रसमो युधि ।
नृत्यन्निव रणे वीर आर्तिं नः समजीजनत् ॥ २५ ॥
तं प्रत्यविध्यद्दशभिश्चित्रसेनः शिलीमुखैः ।
सत्यव्रतश्च नवभिः पुरुमित्रश्च सप्तभिः ॥ २६ ॥
स विद्धो विक्षरन्रक्तं शत्रुसंवारणं महत् ।
चिच्छेद चित्रसेनस्य चित्रं कार्मुकमार्जुनिः ॥ २७ ॥
भित्त्वा चाऽस्य तनुत्राणं शरेणोरस्यताडयत् ।
ततस्ते तावका वीरा राजपुत्रा महारथाः ॥ २८ ॥
समेत्य युधि संरब्धा विव्यधुर्निशितैः शरैः ।
तांश्च सर्वाञ्शरैस्तीक्ष्णैर्जघान परमास्त्रवित् ॥ २९ ॥
तस्य दृष्ट्वा तु तत्कर्म परिवव्रुः सुतास्तव ।
दहन्तं समरे सैन्यं वने कक्षं यथोल्बणम् ॥ ३० ॥
अपेतशिशिरे काले समिद्धमिव पावकम् ।
अत्यरोचत सौभद्रस्तव सैन्यानि नाशयन् ॥ ३१ ॥
तत्तस्य चरितं दृष्ट्वा पौत्रस्तव विशाम्पते ।
लक्ष्मणोऽभ्यपतत्तूर्णं सात्वतीपुत्रमाहवे ॥ ३२ ॥

स्फूर्त्ति के साथ सत्तर बाणों से भीष्म को घायल किया। वे आनन्द से नृत्य सा करने लगे। यह देखकर हमारे पक्ष के लोगों को बड़ा खेद और क्रोध उत्पन्न हुआ। तब चित्रसेन ने दस बाण, भीष्म ने नव बाण और पुरुमित्र ने सात बाण अभिमन्यु को मारे ॥२४। २६॥ अभिमन्यु के शरीर से रुधिर की धारा बहने लगी। अभिमन्यु ने चित्रसेन का बढ़िया धनुष और उत्तम कवच काटकर एक तीर बाण उनके वक्षःस्थल में मारा। आपके पक्ष के वीर और महारथी राजपुत्र मिलकर क्रोधपूर्वक तीक्ष्ण बाणों से अभिमन्यु पर आक्रमण करने लगे। फिर अस्त्रों के ज्ञाता अभिमन्यु ने भी तीक्ष्ण बाणों से सबके प्रहारों को व्यर्थ करके सबको बाण मारे ॥२७।२९॥ हे महाराज! आपके पुत्रों ने अभिमन्यु की यह अद्भुत स्फूर्त्ति देखकर चारों ओर से उन्हें घेर लिया। शिशिर के अन्त में प्रज्वलित अग्नि जैसे सूखी लकड़ियों के ढेर को जला देती है, वैसे ही अभिमन्यु श्रेष्ठ बाणों से आपके पक्ष के योद्धाओं को नष्ट करने लगे ॥३०। ३१॥ उनकी स्फूर्त्ति देखकर आपके पौत्र लक्ष्मण शीघ्रता के साथ उनके सामने आये। महारथी अभिमन्यु ने क्रोध से विह्वल होकर छः बाण लक्ष्मण को और सात बाण उनके सारथी को मारे। उधर लक्ष्मण ने भी तीक्ष्ण बाणों से अभिमन्यु का शरीर छिन्न-भिन्न करना आरम्भ किया। दोनों की स्फूर्त्ति अद्भुत

अभिमन्युस्तु संक्रुद्धो लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ।
विव्याध निशितैः षड्भिः सारथिं च त्रिभिः शरैः ॥ ३३ ॥
तथैव लक्ष्मणो राजन्सौभद्रं निशितैः शरैः ।
अविध्यत महाराज तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ३४ ॥
तस्याऽश्वांश्चतुरो हत्वा सारथिं च महाबलः ।
अभ्यद्रवत सौभद्रो लक्ष्मणं निशितैः शरैः ॥ ३५ ॥
हताश्वे तु रथे तिष्ठँल्लक्ष्मणः परवीरहा ।
शक्तिं चिक्षेप संक्रुद्धः सौभद्रस्य रथं प्रति ॥ ३६ ॥
तामापतन्तीं सहसा घोररूपां दुरासदाम् ।
अभिमन्युः शरैस्तीक्ष्णैश्चिच्छेद भुजगोपमाम् ॥ ३७ ॥
ततः स्वरथमारोप्य लक्ष्मणं गौतमस्तदा ।
अपोवाह रथेनाऽऽजौ सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ ३८ ॥
ततः समाकुले तस्मिन्वर्तमाने महाभये ।
अभ्यद्रवञ्जिघांसन्तः परस्परवधैषिणः ॥ ३९ ॥
तावकाश्च महेष्वासाः पाण्डवाश्च महारथाः ।
जुह्वन्तः समरे प्राणान्निजघ्नुरितरेतरम् ॥ ४० ॥
मुक्तकेशा विकवचा विरथाश्छिन्नकार्मुकाः ।
बाहुभिः समयुध्यन्त सृञ्जयाः कुरुभिः सह ॥ ४१ ॥
ततो भीष्मो महाबाहुः पाण्डवानां महात्मनाम् ।
सेनां जघान संक्रुद्धो दिव्यैरस्त्रैर्महाबलः ॥ ४२ ॥
हतैरश्वैर्गजैस्तत्र नरैरश्वैश्च पातितैः ।
रथिभिः सादिभिश्चैव समास्तीर्यत मेदिनी ॥ ४३ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि मद्रकुरुयुद्धे त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

थी ॥३२।३४॥ महारथी अभिमन्यु ने कई बाणों से लक्ष्मण के सारथी और रथ के चारों घोड़ों को मार डाला। लक्ष्मण ने अभिमन्यु को अपनी ओर आते देख क्रुद्ध होकर उस बिना घोड़े और सारथी के रथ पर से उनके ऊपर एक तीक्ष्ण शक्ति फेंकी। अभिमन्यु ने स्फूर्ति से उस घोरस्पर्शी नागिन सी शक्ति को सामने से आते देखकर उसे तीक्ष्ण बाणों से काट डाला ॥३५।३७॥ तब कृपाचार्य ने जाकर लक्ष्मण को अपने रथ पर बिठा लिया। सारी सेना के सन्मुख ही वे लक्ष्मण के प्राण बचाने के लिये वहाँ से हट गये। उस महाभयानक युद्ध में महाधनुर्धर कौरव और पाण्डव लोग परस्पर प्रहार करते

के लिए एक दूसरे की ओर दौड़ने लगे ॥३८।४०॥ इस समर में सृञ्जयों के केश खुल गये, कवच कट गये और रथ टूट गये । शस्त्र और धनुष न रहने पर वे कौरवसेना के साथ बाहुयुद्ध करने लगे । उधर महा पराक्रमी महाबाहु भीष्म क्रोधपूर्वक पाण्डवपक्ष की सेना को नष्ट करने लगे । उनके बाणों से असंख्य हाथी, हाथियों के सवार, घोड़े और सवार, रथ, रथों के सवार और पैदल इतने गिरे कि समरभूमि उनसे व्याप्त हो गई ॥४१।४३॥

—०—

भीष्मपर्व का तिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७३ ॥

अथ चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

सञ्जय उवाच— अथ राजन्महाबाहुः सात्यकिर्युद्धदुर्मदः ।
विकृष्य चापं समरे भारसाहमनुत्तमम् ॥ १ ॥
प्रामुञ्चत्पुङ्खसंयुक्ताञ्शरानाशीविषोपमान् ।
प्रगाढं लघु चित्रं च दर्शयन्हस्तलाघवम् ॥ २ ॥
तस्य विक्षिपतश्चापं शरानन्यांश्च मुञ्चतः ।
आददानस्य भूयश्च सन्दधानस्य चाऽपरान् ॥ ३ ॥
क्षिपतश्च परांस्तस्य रणे शत्रून्विनिघ्नतः ।
ददृशे रूपमत्यर्थं मेघस्येव प्रवर्षतः ॥ ४ ॥
तमुदीर्यन्तमालोक्य राजा दुर्योधनस्ततः ।
रथानामयुतं तस्य प्रेषयामास भारत ॥ ५ ॥
तांस्तु सर्वान्महेष्वासान्सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
जघान परमेष्वासो दिव्येनाऽस्त्रेण वीर्यवान् ॥ ६ ॥
स कृत्वा दारुणं कर्म प्रगृहीतशरासनः ।
आससाद ततो वीरो भूरिश्रवसमाहवे ॥ ७ ॥

चौहत्तरवाँ अध्याय ॥ ७४ ॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! युद्धप्रिय महावीर सात्यकि ने बोझ को सह सकनेवाला उत्तम धनुष खींचकर शत्रुपक्ष की सेना के ऊपर विषैले सर्प-सदृश सुवर्णपुङ्खयुक्त बाण बरसाना आरम्भ किया । उस समय वे अर्जुन से सीखा हुआ प्रगाढ़, लघु, चित्र हस्तलाघव (हाथ की स्फूर्त्ति) दिखाने लगे । धनुष चढ़ाकर बाण छोड़ते हुए, फिर तरकस से बाण निकालकर धनुष पर चढ़ाते हुए और उन्हें छोड़कर शत्रुओं को मारते हुए सात्यकि, बरसते हुए मेघ के समान, देख पड़ते थे ॥१।४॥ सात्यकि को पराक्रमपूर्वक शत्रुसेना का नाश करते देखकर राजा दुर्योधन ने उनका सामना करने के लिए दस हजार रथी योद्धा भेजे । धनुर्द्धरों में श्रेष्ठ वीर्यशाली सात्यकि ने दिव्य अस्त्र से उन सब वीरों को मार डाला । महावीर सात्यकि इस प्रकार दारुण कर्म करके धनुष हाथ में लिये भूरिश्रवा से युद्ध करने लगे ॥५।७॥ कुरुकुल

स हि सन्दृश्य सेनां ते युयुधानेन पातिताम् ।
अभ्यधावत संक्रुद्धः कुरूणां कीर्तिवर्धनः ॥ ८ ॥
इन्द्रायुधसवर्णं तु विस्फार्य सुमहद्धनुः ।
सृष्टवान्वज्रसङ्काशाञ्शरानाशीविषोपमान् ॥ ९ ॥
सहस्रशो महाराज दर्शयन्पाणिलाघवम् ।
शरांस्तान्मृत्युसंस्पर्शान्सात्यकेश्च पदानुगाः ॥ १० ॥
न विषेहुस्तदा राजन्दुद्रुवुस्ते समन्ततः ।
विहाय सात्यकिं राजन्समरे युद्धदुर्मदम् ॥ ११ ॥
तं दृष्ट्वा युयुधानस्य सुता दश महाबलाः ।
महारथाः समाख्याताश्चित्रवर्मायुधध्वजाः ॥ १२ ॥
समासाद्य महेष्वासं भूरिश्रवसमाहवे ।
ऊचुः सर्वे सुसंरब्धा यूपकेतुं महारणे ॥ १३ ॥
भो भो कौरवदायाद सहाऽस्माभिर्महाबल ।
एहि युध्यस्व संग्रामे समस्तैः पृथगेव वा ॥ १४ ॥
अस्मान्वा त्वं पराजित्य यशः प्राप्नुहि संयुगे ।
वयं वा त्वां पराजित्य प्रीतिं धास्यामहे पितुः ॥ १५ ॥
एवमुक्तस्तदा शूरैस्तानुवाच महाबलः ।
वीर्यश्लाघी नरश्रेष्ठस्तान्दृष्ट्वा समवस्थितान् ॥ १६ ॥
साध्विदं कथ्यते वीरा यद्येवं मतिरद्य वः ।
युध्यध्वं सहिता यत्ता निहनिष्यामि वो रणे ॥ १७ ॥

एवमुक्ता महेष्वासास्ते वीराः क्षिप्रकारिणः ।
महता शरवर्षेण अभ्यधावन्नरिन्दमम् ॥ १८ ॥
सोऽपराह्णे महाराज संग्रामस्तुमुलोऽभवत् ।
एकस्य च बहूनां च समेतानां रणाजिरे ॥ १९ ॥
तमेकं रथिनां श्रेष्ठं शरैस्ते समवाकिरन् ।
प्रावृषीव यथा मेरुं सिषिचुर्जलदा नृप ॥ २० ॥
तैस्तु मुक्ताञ्शरान्घोरान्यमदण्डाशनिप्रभान् ।
असम्प्राप्तानसम्भ्रान्तश्चिच्छेदाऽऽशु महारथः ॥ २१ ॥
तत्राऽद्भुतमपश्याम सौमदत्तेः पराक्रमम् ।
यदेको बहुभिर्युद्धे समसज्जदभीतवत् ॥ २२ ॥
विसृज्य शरवृष्टिं तां दश राजन्महारथाः ।
परिवार्य महाबाहुं निहन्तुमुपचक्रमुः ॥ २३ ॥
सौमदत्तिस्ततः क्रुद्धस्तेषां चापानि भारत ।
चिच्छेद समरे राजन्युध्यमानो महारथैः ॥ २४ ॥
अथैषां छिन्नधनुषां शरैः सन्नतपर्वभिः ।
चिच्छेद समरे राजञ्शिरांसि भरतर्षभ ॥ २५ ॥
ते हता न्यपतन्राजन्वज्रभग्ना इव द्रुमाः ।
तान्दृष्ट्वा निहतान्वीरो रणे पुत्रान्महाबलान् ॥ २६ ॥
वार्ष्णेयो विनदन्राजन्भूरिश्रवसमभ्ययात् ।
रथं रथेन समरे पीडयित्वा महाबलौ ॥ २७ ॥

तुम सब मिलकर ही युद्ध करो। मैं तुम सबको युद्ध में मारूँगा। अब सात्यकि के दसों धनुर्धर-श्रेष्ठ शक्तिशाली पुत्र प्रचण्ड वेग से आक्रमण करके भूरिश्रवा पर बाण बरसाने लगे ॥१६।१८॥ हे महाराज ! तीसरे पहर अकेले भूरिश्रवा उन दसों वीरों से घोर युद्ध करने लगे। वर्षाऋतु में मेरु जैसे पर्वत पर जल बरसाते हैं वैसे ही वे वीर योद्धा भूरिश्रवा पर चारों ओर से बाणों की वर्षा करने लगे। महारथी भूरिश्रवा ने भी उन वीरों के चलाये हुए, यमदण्ड और वज्र के समान, भयङ्कर बाणों को पास तक नहीं आने दिया, उन्हें मध्य में ही काट डाला ॥१९।२१॥ इस के अनन्तर वे वीर भूरिश्रवा को चारों ओर से घेर-कर मार डालने की चेष्टा करने लगे। महावीर भूरि-श्रवा ने कुपित होकर विविध बाणों से उनके धनुष काटकर उनके सिर काट डाले। वे भूरिश्रवा के बाणों से मरकर, वज्रपात से टूटे हुए वृक्षों की भान्ति, पृथ्वी पर गिर पड़े ॥२२।२५॥ वृष्णिवंशी महावीर सात्यकि युद्ध में अपने महारथी पुत्रों का मरना देखकर और

तावन्योन्यं हि समरे निहत्य रथवाजिनः ।
विरथावभिवल्गन्तौ समेयातां महारथौ ॥ २८ ॥
प्रगृहीतमहाखड्गौ तौ चर्मवरधारिणौ ।
शुशुभाते नरव्याघ्रौ युद्धाय समवस्थितौ ॥ २९ ॥
ततः सात्यकिमभ्येत्य निस्त्रिंशवरधारिणम् ।
भीमसेनस्त्वरन्राजन्रथमारोपयत्तदा ॥ ३० ॥
तवाऽपि तनयो राजन्भूरिश्रवसमाहवे ।
आरोपयद्रथं तूर्णं पश्यतां सर्वधन्विनाम् ॥ ३१ ॥
तस्मिंस्तथा वर्तमाने रणे भीष्मं महारथम् ।
अयोधयन्त संरब्धाः पाण्डवा भरतर्षभ ॥ ३२ ॥
लोहितायति चाऽऽदित्ये त्वरमाणो धनञ्जयः ।
पञ्चविंशतिसाहस्रान्निजघान महारथान् ॥ ३३ ॥
ते हि दुर्योधनादिष्टास्तदा पार्थनिवर्हणे ।
सम्प्राप्यैव गता नाशं शलभा इव पावकम् ॥ ३४ ॥
ततो मत्स्याः केकयाश्च धनुर्वेदविशारदाः ।
परिवव्रुस्तदा पार्थं सहपुत्रं महारथम् ॥ ३५ ॥
एतस्मिन्नेव काले तु सूर्येऽस्तमुपगच्छति ।
सर्वेषां चैव सैन्यानां प्रमोहः समजायत ॥ ३६ ॥

से गरजते हुए भूरिश्रवा के पास आये। अब उन दोनों वीरों ने परस्पर आक्रमण करके घोर युद्ध किया। दोनों के रथ चूर्ण हो गये, घोड़े और सारथी नष्ट हो गये। तब वे तीक्ष्ण खड्ग और ढाल लेकर पृथ्वी पर कूद पड़े और एक दूसरे पर आक्रमण करने लगे। उस समय युद्धभूमि में दोनों की अपूर्व शोभा हुई ॥२८।२९॥ इसी समय भीमपराक्रमी भीमसेन ने शीघ्रता से ढाल-तलवार हाथ में लिये हुए सात्यकि को अपने रथ पर चढ़ा लिया। उधर दुर्योधन ने भी शीघ्रता के साथ आकर सब योद्धाओं के सम्मुख भूरिश्रवा को अपने रथ पर बिठा लिया। हे महाराज! पाण्डव लोग क्रोधपूर्वक आक्रमण करके महारथी भीष्म के साथ दारुण संग्राम करने लगे ॥३०।३२॥ क्रमशः भगवान् सूर्य का बिम्ब लाल हो उठा, क्योंकि सन्ध्याकाल निकट था। महावीर अर्जुन ने बड़ी स्फूर्ति के साथ उतने ही समय में पचास हजार रथियों का संहार कर डाला। दुर्योधन की आज्ञा से वे महारथी वीर, अर्जुन पर आक्रमण करके, उसी प्रकार नष्ट हो गये जिस प्रकार पतङ्ग अग्नि में गिरकर भस्म हो जाते हैं ॥३३।३४॥ तब युद्धचतुर मत्स्य और केकय देश के वीरों ने अभिमन्यु सहित अर्जुन पर आक्रमण किया। इसी समय सूर्यदेव अस्ताचल पर पहुँच गये। अन्धकार होने के कारण सब सैनिक लोग भ्रान्त होने लगे। सन्ध्याकाल देखकर भीष्म ने युद्ध रोकने

अवहारं ततश्चक्रे पिता देवव्रतस्तव ।
सन्ध्याकाले महाराज सैन्यानां श्रान्तवाहनः ॥ ३७ ॥
पाण्डवानां कुरूणां च परस्परसमागमे ।
ते सेने भृशसंविग्ने ययतुः स्वं निवेशनम् ॥ ३८ ॥
ततः स्वशिविरं गत्वा न्यविशंस्तत्र भारत ।
पाण्डवाः सृञ्जयैः सार्धं कुरवश्च यथाविधि ॥ ३९ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि पञ्चमदिवसावहारे चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

की आज्ञा दी ॥३५।३७॥ कौरवों और पाण्डवों की सम्पूर्ण सेना और वाहन बहुत थक गये थे। सब लोग अपने-अपने डेरों को लौट चले। हे सृञ्जय ! पाण्डव और कौरवगण अपनी-अपनी सेना के साथ डेरों पर आकर विश्राम करने लगे ॥३८।३९॥

—०—

भीष्मपर्व का चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७४ ॥

अथ पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

सञ्जय उवाच

ते विश्रम्य ततो राजन्सहिताः कुरुपाण्डवाः ।
व्यतीतायां तु शर्वर्यां पुनर्युद्धाय निर्ययुः ॥ १ ॥
तत्र शब्दो महानासीत्तव तेषां च भारत ।
युज्यतां रथमुख्यानां कल्प्यतां चैव दन्तिनाम् ॥ २ ॥
सन्नह्यतां पदातीनां हयानां चैव भारत ।
शङ्खदुन्दुभिनादश्च तुमुलः सर्वतोऽभवत् ॥ ३ ॥
ततो युधिष्ठिरो राजा धृष्टद्युम्नमभाषत ।
व्यूहं व्यूह महाबाहो मकरं शत्रुनाशनम् ॥ ४ ॥
एवमुक्तस्तु पार्थेन धृष्टद्युम्नो महारथः ।
व्यादिदेश महाराज रथिनो रथिनां वरः ॥ ५ ॥

पचहत्तरवाँ अध्याय ॥ ७५ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज ! प्रातःकाल होने पर विश्राम के अनन्तर उठकर सुसज्जित होकर पाण्डव और कौरव फिर युद्धभूमि में उपस्थित हुए। चारों ओर शङ्ख, नगाड़े आदि का शब्द होने लगा। दोनों सेनाओं के उत्तम जुते हुए रथ, सजे हुए हाथी, सवारों सहित घोड़े और कवचधारी पैदल चारों ओर दौड़ने लगे। उनका घोर कोलाहल दूर दूर तक सुनाई पड़ने लगा ॥१।३॥ तब राजा युधिष्ठिर ने धृष्टद्युम्न को, शत्रुपक्ष के लिए बड़ा भयङ्कर, मकरव्यूह रचने की आज्ञा दी। आज्ञा पाकर रथी लोग मोर्चे-बन्दी में खड़े होने लगे ॥४।५॥ महाराज द्रुपद और महावीर अर्जुन इस व्यूह के मस्तक भाग में स्थित

शिरोऽभूद्द्रुपदस्तस्य पाण्डवश्च धनञ्जयः ।
चक्षुषी सहदेवश्च नकुलश्च महारथः ॥ ६ ॥
तुण्डमासीन्महाराज भीमसेनो महाबलः ।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च राक्षसश्च घटोत्कचः ॥ ७ ॥
सात्यकिर्धर्मराजश्च व्यूहग्रीवां समास्थिताः ।
पृष्ठमासीन्महाराज विराटो वाहिनीपतिः ॥ ८ ॥
धृष्टद्युम्नेन सहितो महत्या सेनया वृतः ।
केकया भ्रातरः पञ्च वामपार्श्वं समाश्रिताः ॥ ९ ॥
धृष्टकेतुर्नरव्याघ्रश्चेकितानश्च वीर्यवान् ।
दक्षिणं पक्षमाश्रित्य स्थितौ व्यूहस्य रक्षणे ॥ १० ॥
पादयोस्तु महाराज स्थितः श्रीमान्महारथः ।
कुन्तिभोजः शतानीको महत्या सेनया वृतः ॥ ११ ॥
शिखण्डी तु महेष्वासः सोमकैः संवृतो बली ।
इरावांश्च ततः पुच्छे मकरस्य व्यवस्थितौ ॥ १२ ॥
एवमेतं महाव्यूहं व्यूह्य भारत पाण्डवाः ।
सूर्योदये महाराज पुनर्युद्धाय दंशिताः ॥ १३ ॥
कौरवानभ्ययुस्तूर्णं हस्त्यश्वरथपत्तिभिः ।
समुच्छ्रितैर्ध्वजैश्छत्रैः शस्त्रैश्च विमलैः शितैः ॥ १४ ॥
व्यूढं दृष्ट्वा तु तत्सैन्यं पिता देवव्रतस्तव ।
क्रौञ्चेन महता राजन्प्रत्यव्यूहत वाहिनीम् ॥ १५ ॥

हुए। महारथी नकुल और सहदेव उसके दोनों नेत्रों के स्थान पर नियुक्त हुए। भीमसेन मुखभाग में स्थित हुए। अभिमन्यु, द्रौपदी के पाँचों पुत्र, राक्षस घटोत्कच, सात्यकि और धर्मराज गर्दन के स्थान पर खड़े हुए। महाराज विराट और धृष्टद्युम्न असंख्य सेना साथ लेकर उसके पृष्ठभाग की रक्षा करने लगे। केकय देश के पाँचों भाई राजकुमार वामभाग की ओर तथा धृष्टकेतु तथा वीर्यशाली चेकितान दक्षिण भाग की रक्षा करने लगे ॥६।१०॥ महारथी श्रीमान् कुन्तिभोज और शतानीक बहुत सी सेना के साथ लेकर उसके दोनों चरणों की रक्षा करने लगे। सोमकगण सहित वीर शिखण्डी और [नागकन्या से उत्पन्न] महारथी इरावान् उसके पुच्छभाग की रक्षा करने में नियुक्त हुए। पाण्डवगण सूर्योदय के समय इस प्रकार मकराकार महाव्यूह रचकर फिर संग्राम के लिए कौरवों के आगे आये। वह चतुरङ्गिणी सेना असंख्य हाथी, घोड़े, रथ, पैदल, ऊँचा फहराती हुई ध्वजा, छत्र, तीक्ष्ण उज्ज्वल अस्त्र शस्त्र आदि से बहुत शोभा को

तस्य तुण्डे महेष्वासो भारद्वाजो व्यरोचत ।
अश्वत्थामा कृपश्चैव चक्षुरासीन्नरेश्वर ॥ १६ ॥
कृतवर्मा तु सहितः काम्बोजवरवाह्लिकैः ।
शिरस्यासीन्नरश्रेष्ठः श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥ १७ ॥
ग्रीवायां शूरसेनश्च तव पुत्रश्च मारिष ।
दुर्योधनो महाराज राजभिर्बहुभिर्वृतः ॥ १८ ॥
प्राग्ज्योतिषस्तु सहितो मद्रसौवीरकेकयैः ।
उरस्यभून्नरश्रेष्ठ महत्या सेनया वृतः ॥ १९ ॥
स्वसेनया च सहितः सुशर्मा प्रस्थलाधिपः ।
वामपक्षं समाश्रित्य दंशितः समवस्थितः ॥ २० ॥
तुषारा यवनाश्चैव शकाश्च सह चूचुपैः ।
दक्षिणं पक्षमाश्रित्य स्थिता व्यूहस्य भारत ॥ २१ ॥
श्रुतायुश्च शतायुश्च सौमदत्तिश्च मारिष ।
व्यूहस्य जघने तस्थू रक्षमाणाः परस्परम् ॥ २२ ॥
ततो युद्धाय सञ्जग्मुः पाण्डवाः कौरवैः सह ।
सूर्योदये महाराज ततो युद्धमभून्महत् ॥ २३ ॥
प्रतीयू रथिनो नागा नागांश्च रथिनो ययुः ।
हयारोहान्रथारोहा रथिनश्चाऽपि सादिनः ॥ २४ ॥

प्राप्त हुई ॥११।१४॥ हे राजेन्द्र ! महावीर भीष्म ने पाण्डव-सेना की व्यूह-रचना देखकर कौरव सेना में क्रौञ्चव्यूह की रचना की। श्रेष्ठ धनुर्द्धर द्रोणाचार्य उस व्यूह के मुखभाग की रक्षा करने लगे। अश्वत्थामा और कृपाचार्य दोनों नेत्रों के स्थान में स्थित हुए। काम्बोज, वाह्लीकगण और कृतवर्मा उसके मस्तकस्थान में नियुक्त हुए। शूरसेन और असंख्य शूर राजाओं के साथ महाराज दुर्योधन उसकी गर्दन के स्थान में स्थित हुए। प्राग्ज्योतिषपुर के राजा भगदत्त, मद्रराज शल्य और सिन्धुदेश के राजा जयद्रथ, सौवीर और केकयदेश की असंख्य सेना साथ लेकर, उसके वक्षःस्थल की रक्षा करने लगे ॥१५।१९॥ राजा सुशर्मा अपनी सेना साथ लेकर वामपक्ष की रक्षा करने लगे। तुषार, यवन, शक और चूचुपगण दक्षिणपक्ष की रक्षा करने लगे। श्रुतायु, शतायु और भूरिश्रवा एक दूसरे की सहायता करने के लिए जाँघों के स्थान में स्थित हुए ॥२०।२२॥ इसके पश्चात् कौरव और पाण्डव परस्पर युद्ध करने लगे। दोनों ओर के वीर प्राणों का मोह छोड़कर भिड़ गये। उस संकुल युद्ध में हाथियों के सवार रथों के ऊपर, रथी लोग हाथियों के ऊपर, घुड़सवार घुड़सवारों पर, घुड़सवार लोग रथों-घोड़ों और हाथियों के ऊपर, रथी लोग हाथियों के सवारों पर और हाथियों के सवार घुड़सवारों के ऊपर आक्रमण करके प्रहार

सादिनश्च हयान्राजन्रथिनश्च महारणे ।
हस्त्यारोहान्हयारोहा रथिनः सादिनस्तथा ॥ २५ ॥
रथिनः पत्तिभिः सार्धं सादिनश्चाऽपि पत्तिभिः ।
अन्योन्यं समरे राजन्प्रत्यधावन्नमर्षिताः ॥ २६ ॥
भीमसेनार्जुनयमैर्गुप्ता चाऽन्यैर्महारथैः ।
शुशुभे पाण्डवी सेना नक्षत्रैरिव शर्वरी ॥ २७ ॥
तथा भीष्मकृपद्रोणशल्यदुर्योधनादिभिः ।
तवाऽपि च बभौ सेना ग्रहैर्द्यौरिव संवृता ॥ २८ ॥
भीमसेनस्तु कौन्तेयो द्रोणं दृष्ट्वा पराक्रमी ।
अभ्ययाज्जवनैरश्वैर्भारद्वाजस्य वाहिनीम् ॥ २९ ॥
द्रोणस्तु समरे क्रुद्धो भीमं नवभिरायसैः ।
विव्याध समरश्लाघी मर्माण्युद्दिश्य वीर्यवान् ॥ ३० ॥
दृढाहतस्ततो भीमो भारद्वाजस्य संयुगे ।
सारथिं प्रेषयामास यमस्य सदनं प्रति ॥ ३१ ॥
स सङ्गृह्य स्वयं वाहान्भारद्वाजः प्रतापवान् ।
व्यधमत्पाण्डवीं सेनां तूलराशिमिवाऽनलः ॥ ३२ ॥
ते वध्यमाना द्रोणेन भीष्मेण च नरोत्तमाः ।
सृञ्जयाः केकयैः सार्धं पलायनपराऽभवन् ॥ ३३ ॥
तथैव तावकं सैन्यं भीमार्जुनपरिक्षतम् ।
मुह्यते तत्र तत्रैव समदेव वराङ्गना ॥ ३४ ॥

करने लगे । पैदल, रथी और घुड़सवार परस्पर घोर आक्रमण करने लगे । भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव और अन्य महारथी वीर राजाओं से सुरक्षित पाण्डव-सेना नक्षत्रमण्डल-मण्डित रात्रि के समान शोभित हुई ॥२५।२६॥ हे महाराज ! आपके पक्ष की सेना भी भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, शल्य और दुर्योधन आदि अनेक वीरों के द्वारा सुरक्षित होकर ग्रहगण-शोभित आकाश मण्डल के समान जान पड़ती थी ॥२७।२८॥ इसके अनन्तर पराक्रमी रणभूमि पर स्थित महापराक्रमी भीमसेन ने युद्धभूमि में आचार्य द्रोण को देखकर उनकी सेना पर आक्रमण किया । तब आचार्य द्रोण ने क्रोध करके भीमसेन के मर्मस्थलों में नव बाण मारे । भीमसेन ने उस प्रहार से विकल और क्रुद्ध होकर उनके सारथी को मार डाला ॥२९।३१॥ तब महावीर द्रोणाचार्य स्वयं घोड़ों की रास पकड़कर रथ चलाते हुए, अग्नि जैसे रुई को जलाती है, वैसे ही पाण्डवों की सेना को भस्म करने लगे । हे राजेन्द्र ! इस प्रकार भीष्म और द्रोण के प्रहारों से पीड़ित और

तस्य तुण्डे महेष्वासो भारद्वाजो व्यरोचत ।
अश्वत्थामा कृपश्चैव चक्षुरासीन्नरेश्वर ॥ १६ ॥
कृतवर्मा तु सहितः काम्बोजवरवाह्लिकैः ।
शिरस्यासीन्नरश्रेष्ठः श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥ १७ ॥
ग्रीवायां शूरसेनश्च तव पुत्रश्च मारिष ।
दुर्योधनो महाराज राजभिर्बहुभिर्वृतः ॥ १८ ॥
प्राग्ज्योतिषस्तु सहितो मद्रसौवीरकेकयैः ।
उरस्यभून्नरश्रेष्ठ महत्या सेनया वृतः ॥ १९ ॥
स्वसेनया च सहितः सुशर्मा प्रस्थलाधिपः ।
वामपक्षं समाश्रित्य दंशितः समवस्थितः ॥ २० ॥
तुषारा यवनाश्चैव शकाश्च सह चूचुपैः ।
दक्षिणं पक्षमाश्रित्य स्थिता व्यूहस्य भारत ॥ २१ ॥
श्रुतायुश्च शतायुश्च सौमदत्तिश्च मारिष ।
व्यूहस्य जघने तस्थू रक्षमाणाः परस्परम् ॥ २२ ॥
ततो युद्धाय सञ्जग्मुः पाण्डवाः कौरवैः सह ।
सूर्योदये महाराज ततो युद्धमभून्महत् ॥ २३ ॥
प्रतीयू रथिनो नागा नागांश्च रथिनो ययुः ।
हयारोहान्रथारोहा रथिनश्चाऽपि सादिनः ॥ २४ ॥

प्राप्त हुई ॥११।१४॥ हे राजेन्द्र ! महावीर भीष्म ने पाण्डव सेना की व्यूह रचना देखकर कौरव-सेना में क्रौञ्चव्यूह की रचना की। श्रेष्ठ धनुर्द्धर द्रोणाचार्य उस व्यूह के मुखभाग की रक्षा करने लगे। अश्वत्थामा और कृपाचार्य दोनों नेत्रों के स्थान में स्थित हुए। काम्बोज, वाह्लीकगण और कृतवर्मा उसके मस्तकस्थान में नियुक्त हुए। शूरसेन और असंख्य शूर राजाओं के साथ महाराज दुर्योधन उसकी गर्दन के स्थान में स्थित हुए। प्राग्ज्योतिषपुर के राजा भगदत्त, मद्रराज शल्य और सिन्धुदेश के राजा जयद्रथ, सौवीर और केकयदेश की असंख्य सेना साथ लेकर, उसके वक्षस्थल की रक्षा करने लगे ॥१५।१९॥ राजा सुशर्मा अपनी सेना साथ लेकर वामपक्ष की रक्षा करने लगे। तुषार, यवन, शक और चूचुपगण दक्षिणपक्ष की रक्षा करने लगे। श्रुतायु, शतायु और भूरिश्रवा एक दूसरे की सहायता करने के लिए जाँघों के स्थान में स्थित हुए ॥२०।२२॥ इसके पश्चात् कौरव और पाण्डव परस्पर युद्ध करने लगे। दोनों ओर के वीर प्राणों का मोह छोड़कर भिड़ गये। उस संकुल युद्ध में हाथियों के सवार रथों के ऊपर, रथी लोग हाथियों के ऊपर, घुड़सवार घुड़सवारों पर, घुड़सवार लोग रथों-घोड़ों और हाथियों के ऊपर, रथी लोग हाथियों के सवारों पर और हाथियों के सवार घुड़सवारों के ऊपर आक्रमण करके प्रहार

कम्पनेषु च चापेषु कणपेषु च सर्वशः ।
क्षेपणीयेषु चित्रेषु मुष्टियुद्धेषु च क्षमम् ॥ ६ ॥
अपरोक्षं च विद्यासु व्यायामे च कृतश्रमम् ।
शस्त्रग्रहणविद्यासु सर्वासु परिनिष्ठितम् ॥ ७ ॥
आरोहे पर्यवस्कन्दे सरणे सान्तरप्लुते ।
सम्यक्प्रहरणे याने व्यपयाने च कोविदम् ॥ ८ ॥
नागाश्वरथयानेषु बहुशः सुपरीक्षितम् ।
परीक्ष्य च यथान्याय वेतनेनोपपादितम् ॥ ९ ॥
न गोष्ठ्या नोपकारेण न च बन्धुनिमित्ततः ।
न सौहृदबलैर्वाऽपि नाऽकुलीनपरिग्रहैः ॥ १० ॥
समृद्धजनमार्यं च तुष्टसम्बन्धिबान्धवम् ।
कृतोपकारभूयिष्ठं यशस्वि च मनस्वि च ॥ ११ ॥
स्वजनैस्तु नरैर्मुख्यैर्बहुशो दृष्टकर्मभिः ।
लोकपालोपमैस्तात पालितं लोकविश्रुतम् ॥ १२ ॥
बहुभिः क्षत्रियैर्गुप्तं पृथिव्यां लोकसम्मतैः ।
अस्मानभिगतैः कामात्सबलैः सपदानुगैः ॥ १३ ॥
महोदधिमिवाऽऽपूर्णमापगाभिः समन्ततः ।
अपक्षैः पक्षिसङ्काशै रथैर्नागैश्च संवृतम् ॥ १४ ॥

है। उनकी भुजाएँ मोटी और दृढ़ हैं। हमारी सेना अपार है और शस्त्र तथा कवच आदि से सुसज्जित है ॥१।४॥ सब योद्धा खड्गयुद्ध, मल्लयुद्ध, गदायुद्ध और प्रास, ऋष्टि, तोमर, परिघ, भिन्दिपाल, शक्ति, मुसल आदि शस्त्रों के युद्ध में सुशिक्षित हैं। वे कम्पनयुद्ध, चापयुद्ध, कणपयुद्ध, चित्रयुद्ध, क्षेपणीययुद्ध और मुष्टियुद्ध आदि में सर्वथा समर्थ हैं। उनका लक्ष्य भी नहीं चूकता। सब लोग सब प्रकार के व्यायामों का और सब प्रकार की युद्धविद्या का प्रत्यक्ष अभ्यास किये हुए हैं। सब प्रकार के शस्त्र चलाना उन्हें अच्छी प्रकार विदित है। वे हाथी आदि पर चढ़ने, उतरने, दूर पर कूदने, अच्छी प्रकार दृढ़ प्रहार और आक्रमण करने तथा हटने आदि में निपुण हैं ॥४।८॥ हमने सबको हाथी, घोड़े, रथ आदि की सवारियों में अनेक बार परीक्षा लेकर अच्छे उचित वेतन पर नौकर रखा है। हमारी सेना में जो लोग रखे गये हैं वे गोष्ठी, उपकार, बन्धुओं की सिफारिश, सम्बन्ध या सौहार्द आदि के कारण नहीं रखे गये हैं। सभी योद्धा कुलीन, आर्य, समृद्धिशाली, यशस्वी और मनस्वी हैं। उनके सम्बन्धी तथा भाई-बन्धु सदा सन्तुष्ट रखे जाते हैं और उनके भी उपकार करने में कमी नहीं होती ॥९।१२॥ हमारी सेना जगत में प्रसिद्ध है। अनेक बार जिनके काम देखे जा चुके हैं ऐसे मुख्य, लोकपाल तुल्य, स्वजन हमारी सेना के संचालक

अभिघेतां ततो व्यूहौ तस्मिन्वीरवरक्षये ।
आसीद्व्यतिकरो घोरस्तत्र तेषां च भारत ॥ ३५ ॥
तदद्भुतमपश्याम तावकानां परैः सह ।
एकायनगताः सर्वे यदयुध्यन्त भारत ॥ ३६ ॥
प्रतिसंवार्य चाऽस्त्राणि तेऽन्योन्यस्य विशाम्पते ।
युयुधुः पाण्डवाश्चैव कौरवाश्च महाबलाः ॥ ३७ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि षष्ठदिवसयुद्धारम्भे पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

उद्विग्न होकर सृञ्जय और कैकेयगण उनके सन्मुख से भागने लगे। इसी प्रकार भीमसेन और अर्जुन के बाणों से पीडित आपकी सेना भी, मद पिये हुए वेश्या के समान, विमूढ सी हो गई ॥३२।३४॥ दोनों ओर की सेना मरकर नष्ट होने लगी। परस्पर भिड़ी हुई दोनों सेनाओं का घोर युद्ध देखकर हम लोग विस्मित हो गये। हे भारत ! शस्त्र धारण किये कौरव और पाण्डव शत्रु-सेना का विनाश करते हुए भयानक संग्राम करने लगे ॥३५।३७॥

—०—

भीष्मपर्व का पचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७५ ॥

अथ षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच
एवं बहुगुणं सैन्यमेवं बहुविधं पुरा ।
व्यूढमेवं यथाशास्त्रममोघं चैव सञ्जय ॥ १ ॥
हृष्टमस्माकमत्यन्तमभिकामं च नः सदा ।
प्रह्वमव्यसनोपेतं पुरस्ताद् दृष्टविक्रमम् ॥ २ ॥
नाऽतिवृद्धमबालं च न कृशं न च पीवरम् ।
लघुवृत्तायतप्रायं सारगात्रमनामयम् ॥ ३ ॥
आत्तसन्नाहशस्त्रं च बहुशस्त्रपरिग्रहम् ।
असियुद्धे नियुद्धे च गदायुद्धे च कोविदम् ॥ ४ ॥
प्रासर्ष्टितोमरेष्वाजौ परिघेष्वायसेषु च ।
भिन्दिपालेषु शक्तीषु मुसलेषु च सर्वशः ॥ ५ ॥

छिहत्तरवाँ अध्याय ॥ ७६ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा— हे सञ्जय ! हमारी सेना अपार है। व्यूह-रचना भी शास्त्रोक्त विधि के अनुसार की गयी है। हमारे योद्धा युद्ध में दक्ष, हम पर अनुरक्त, उत्साही, प्रसन्नचित्त, मद्यपान आदि व्यसनों से अछूते और अनेक युद्धों में पराक्रम दिखा चुके हैं। हमारी सेना में कोई अत्यन्त वृद्ध, बालक, दुर्बल या बहुत मोटा नहीं है। सब सैनिक स्फूर्तिशाली, नम्र और लम्बे हैं, वे [illegible]

उक्तो हि विदुरेणाऽहं हितं पथ्यं च नित्यशः ।
न च जग्राह तन्मन्दः पुत्रो दुर्योधनो मम ॥ २४ ॥
तस्य मन्ये मतिः पूर्वं सर्वज्ञस्य महात्मनः ।
आसीद्यथागतं तात येन दृष्टमिदं पुरा ॥ २५ ॥
अथवा भाव्यमेवं हि सञ्जयैतेन सर्वथा ।
पुरा धात्रा यथा सृष्टं तत्तथा नैतदन्यथा ॥ २६ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि धृतराष्ट्रचिन्तायां षट्सप्ततितमोऽध्याय. ॥ ७६ ॥

भी आज तक न देखा होगा । ऐसी भारी सशस्त्र सेना युद्ध मे अनायास मारी जा रही है ! यह भाग्य का ही दोष है ! हे सञ्जय ! मुझे यह सब विपरीत ही जान पडता है । अहो ! ऐसी दुर्जय सेना भी युद्ध मे पाण्डवो को नहीं मार सकी ! ॥२०।२२॥ अवश्य ही पाण्डवो की ओर से देवता आकर युद्ध कर रहे है और मेरी सेना को नष्ट कर रहे है । हे सञ्जय ! महात्मा विदुर ने नित्य मुझसे हित की बातें कहीं, मुझे समझाया, परन्तु मेरे पुत्र मन्दमति दुर्योधन ने एक नहीं सुनी । महात्मा विदुर सर्वज्ञ है । उन्होंने इस विरोध का फल पहले ही से दिव्य ज्ञान-शक्ति से देख लिया था । उन्होंने जो कुछ कहा था, वही हो रहा है; अथवा विधाता ने ही यह लिख रक्खा था । यह होनी ही थी । होनी को कौन टाल सकता है ! विधाता ने जो पहले लिख रक्खा है वह अवश्य होगा ॥२३।२६॥

भीष्मपर्व का छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७६ ॥

अथ सप्तसप्ततितमोऽध्याय ॥ ७७ ॥

सञ्जय उवाच— आत्मदोषात्त्वया राजन्प्राप्तं व्यसनमीदृशम् ।
नहि दुर्योधनस्तानि पश्यते भरतर्षभ ॥ १ ॥
यानि त्वं दृष्टवान्राजन्धर्मसङ्करकारिते ।
तव दोषात्पुरा वृत्तं द्यूतमेव विशाम्पते ॥ २ ॥
तव दोषेण युद्धं च प्रवृत्तं सह पाण्डवैः ।
त्वमेवाऽद्य फलं भुंक्ष्व कृत्वा किल्बिषमात्मना ॥ ३ ॥
आत्मनैव कृतं कर्म आत्मनैवोपभुज्यते ।
इह च प्रेत्य वा राजंस्त्वया प्राप्तं यथातथम् ॥ ४ ॥

सतहत्तरवाँ अध्याय ॥ ७७ ॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! आप अपने ही दोष से ऐसे दु:ख और सङ्कट मे पडे हैं । आप धर्मसङ्कर की जिन बातों को जानते थे उनका ज्ञान दुर्योधन को नहीं था । इस कारण दुर्योधन की अपेक्षा आप ही इसमें अधिक दोषी हैं । पहले आपके ही दोष से जुए की क्रीडा हुई और आपके ही दोष मे युद्ध हुआ । इसलिए अब अपनी भूल का परिणाम भोगिए । लोग अपने किये का फल इस लोक या

नानायोधजलं भीमं वाहनोर्मितरङ्गिणम् ।
क्षेपण्यसिगदाशक्तिशरप्राससमाकुलम् ॥ १५ ॥
ध्वजभूषणसम्बाधं रत्नपट्टसुसञ्चितम् ।
परिधावद्भिरश्वैश्च वायुवेगविकम्पितम् ॥ १६ ॥
अपारमिव गर्जन्तं सागरप्रतिमं महत् ।
द्रोणभीष्माभिसंगुप्तं गुप्तं च कृतवर्मणा ॥ १७ ॥
कृपदुःशासनाभ्यां च जयद्रथमुखैस्तथा ।
भगदत्तविकर्णाभ्यां द्रौणिसौबलबाह्लिकैः ॥ १८ ॥
गुप्तं प्रवीरैर्लोकैश्च सारवद्भिर्महात्मभिः ।
यदहन्यत संग्रामे दैवमत्र पुरातनम् ॥ १९ ॥
नैतादृशं समुद्योगं दृष्टवन्तो हि मानुषाः ।
ऋषयो वा महाभागाः पुराणा भुवि सञ्जय ॥ २० ॥
ईदृशोऽपि बलौघस्तु संयुक्तः शस्त्रसम्पदा ।
वध्यते यत्र संग्रामे किमन्यद्भागधेयतः ॥ २१ ॥
विपरीतमिदं सर्वं प्रतिभाति हि सञ्जय ।
यत्रेदृशं बलं घोरं पाण्डवान्नाऽतरद्रणे ॥ २२ ॥
पाण्डवार्थाय नियतं देवास्तत्र समागताः ।
युध्यन्ते मामकं सैन्यं यथाऽवध्यत सञ्जय ॥ २३ ॥

है। पृथ्वी भर में प्रसिद्ध, अपनी इच्छा से हमारे अनुगत अनेक क्षत्रिय वीर अपनी सेना और अनुचर आदि के साथ हमारी सेना की रक्षा करते हैं। समुद्र जैसे अनेक नदियों से पूर्ण होता है, वैसे ही हमारी सेना में अनेक राजाओं की सेनाएँ आकर सम्मिलित हुई हैं। हमारी सेना के हाथी, घोड़े आदि वाहन पक्ष हीन होने पर भी पक्षियों के समान तेज हैं। हमारी सेना समुद्र तुल्य है। अनेक योद्धा उस में जल के समान भरे पड़े हैं। बहुतेरे वाहन उसमें तरङ्गों के समान हैं। क्षेपणी, खड्ग, गदा, शक्ति, शर, प्रास आदि शस्त्र जलजन्तुओं के समान हैं। ध्वजा, गहने, खदारङ्ग आदि उसकी शोभा बढ़ा रहे हैं। दौड़ते हुए घोड़ों का वेग देखकर ऐसा जान पड़ता है कि यह सत्यसागर वायु के वेग से क्षोभ को प्राप्त हो रहा है। उस अपार सेना में सिंहनाद, शङ्खनाद आदि का शब्द उसके गरजने का निर्घोष सा सुन पड़ता है ॥१५।१६॥ द्रोण, भीष्म, कृतवर्मा, कृपाचार्य, दुःशासन, जयद्रथ, भगदत्त, विकर्ण अश्वत्थामा, शकुनि बाह्लीक आदि अनेक लोकप्रसिद्ध पराक्रमी महारथी उस सेना की रक्षा कर रहे हैं। इतने पर भी जब यह सेना पाण्डवों के हाथ से मारी जा रही है तब मैं इसे अपने दुर्भाग्य अथवा दैवकोप के बिना और क्या कहूँ? ॥१७।१०॥ मेरे पक्ष के समान सेना और युद्ध का उद्योग प्राचीन ऋषियों और मनुष्यों ने

उक्तो हि विदुरेणाऽहं हितं पथ्यं च नित्यशः ।
न च जग्राह तन्मन्दः पुत्रो दुर्योधनो मम ॥ २४ ॥
तस्य मन्ये मतिः पूर्वं सर्वज्ञस्य महात्मनः ।
आसीद्यथागतं तात येन दृष्टमिदं पुरा ॥ २५ ॥
अथवा भाव्यमेवं हि सञ्जयैतेन सर्वथा ।
पुरा धात्रा यथा सृष्टं तत्तथा नैतदन्यथा ॥ २६ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि धृतराष्ट्रचिन्तायां षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

भी आज तक न देखा होगा। ऐसी मारी सेना युद्ध मे अनायास मारा जा रही है! यह भाग्य का ही दोष है! हे सञ्जय! मुझे यह सब विपरीत ही जान पडता है। अहो! ऐसी दुर्नय सेना भी युद्ध मे पाण्डवो का नहीं मार सकी! ॥२०।२२॥ अवश्य ही पाण्डवो का ओर से देवता आकर युद्ध कर रहे हैं और मेरी सेना का नष्ट कर रहे है। हे सञ्जय! महात्मा विदुर ने नित्य मुझसे हित की बातें कहीं, मुझे समझाया, परन्तु मेरे पुत्र मन्दमति दुर्योधन ने एक नहीं सुनी। महात्मा विदुर सर्वज्ञ है। उन्होने इस विरोध का फल पहले ही से दिव्य ज्ञान शक्ति से देख लिया था। उन्होंने जो कुछ कहा था, वही हो रहा है, अथवा विधाता ने ही यह लिख रक्खा था। यह होनी ही थी। होनी को कौन टाल सकता है! विधाता ने जो पहले लिख रक्खा है वह अवश्य होगा ॥२३।२६॥

भीष्मपर्व का छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७६ ॥

अथ सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

सञ्जय उवाच— आत्मदोषात्त्वया राजन्प्राप्तं व्यसनमीदृशम् ।
नहि दुर्योधनस्तानि पश्यते भरतर्षभ ॥ १ ॥
यानि त्वं दृष्टवान्राजन्धर्मसङ्करकारिते ।
तव दोषात्पुरा वृत्तं द्यूतमेव विशाम्पते ॥ २ ॥
तव दोषेण युद्धं च प्रवृत्तं सह पाण्डवैः ।
त्वमेवाऽद्य फलं भुंक्ष्व कृत्वा किल्बिषमात्मना ॥ ३ ॥
आत्मनैव कृतं कर्म आत्मनैवोपभुज्यते ।
इह च प्रेत्य वा राजंस्त्वया प्राप्तं यथातथम् ॥ ४ ॥

सतहत्तरवाँ अध्याय ॥ ७७ ॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज! आप अपने ही दोष से ऐसे दुःख और सङ्कट मे पडे हैं। आप धर्मसङ्कर की जिन बातों को जानते थे उनका ज्ञान दुर्योधन को नहीं था। इस कारण दुर्योधन की अपेक्षा आप ही इसमें अधिक दोषी है। पहले आपके ही दोष से जुए की क्रीडा हुई और आपके ही दोष से युद्ध हुआ। इसलिए अब अपनी भूल का परिणाम भोगिए। लोग अपने किये का फल इस लोक या

तस्माद्राजन्स्थिरो भूत्वा प्राप्येदं व्यसनं महत् ।
शृणु युद्धं यथा वृत्तं शंसतो मे नराधिप ॥ ५ ॥
भीमसेनः सुनिशितैर्बाणैर्भित्वा महाचमूम् ।
आससाद ततो वीरः सर्वान्दुर्योधनानुजान् ॥ ६ ॥
दुःशासनं दुर्विषहं दुःसहं दुर्मदं जयम् ।
जयत्सेनं विकर्णं च चित्रसेनं सुदर्शनम् ॥ ७ ॥
चारुमित्रं सुवर्माणं दुष्कर्णं कर्णमेव च ।
एतांश्चाऽन्यांश्च सुबहून्समीपस्थान्महारथान् ॥ ८ ॥
धार्तराष्ट्रान्सुसंक्रुद्धान्दृष्ट्वा भीमो महारथः ।
भीष्मेण समरे गुप्तां प्रविवेश महाचमूम् ॥ ९ ॥
अथाऽऽलोक्य प्रविष्टं तमूचुस्ते सर्व एव तु ।
जीवग्राहं निगृह्णीमो वयमेनं नराधिपाः ॥ १० ॥
स तैः परिवृतः पार्थो भ्रातृभिः कृतनिश्चयैः ।
प्रजासंहरणे सूर्यः क्रूरैरिव महाग्रहैः ॥ ११ ॥
सम्प्राप्य मध्यं सैन्यस्य न भीः पाण्डवमाविशत् ।
यथा देवासुरे युद्धे महेन्द्रं प्राप्य दानवान् ॥ १२ ॥
ततः शतसहस्राणि रथिनां सर्वशः प्रभो ।
उद्यतानि शरैस्तीक्ष्णैस्तमेकं परिवव्रिरे ॥ १३ ॥

परलोक में अवश्य भोगने हे । सो आपको यह फल ठीक ही मिला ह ॥१।५॥ अब आप इस सङ्कट का, भीमसेन आदि से अपने पक्ष के युद्ध का, वृत्तान्त सुनिए । महापराक्रमी भीमसेन ने तीक्ष्ण बाणों से भीष्म के द्वारा सुरक्षित सेना के व्यूह को तोड डाला। उन्होंने उसके भीतर प्रवेश करके दुःशासन, दुर्विषह, दुःसह, दुर्मद, जय, जयत्सेन, विकर्ण, चित्रसेन, सुदर्शन, चारुमित्र, सुवर्मा, दुष्कर्ण, कर्णआदि दुर्योधन के भाइयों और बहुत से महारथियों को देखा । भीमसेन सिंहनाद करते हुए उनके पास पहुँचे ॥५।९॥ भीमसेन को देखकर दुःशासन आदि वीर आपस मे कहने लगे कि हे भाइयो! इस समय हम सब मिलकर भीमसेन को जीवित ही पकड लेंगे ॥१०॥ दुर्योधन के भाइयो ने यह निश्चय करके भीमसेन को चारो ओर से घेर लिया । उस समय महावीर भीमसेन प्रलयकाल मे क्रूर महाग्रहो से घिरे हुए सूर्य के समान जान पडे । भीमसेन व्यूह के भीतर जा करके, देवासुर सग्राम मे दानवो के सामने महेन्द्र के समान, निर्भय भाव से खडे हो गये । अब शस्त्रो के युद्ध मे निपुण सहस्रो रथी श्रेष्ठ अस्त्र-शस्त्र उठाकर भीमसेन को, चारों ओर से घेरकर मारने को उद्यत हुए । भीमसेन भी आपके पुत्रो की कुछ अपेक्षा न करके कौरव-सेना के हाथियो, घोडो, रथों और उनके सवारों को मारने तथा तोडने लगे । भीमसेन उधर

स तेषां प्रवरान्योधान्हस्त्यश्वरथसादिनः ।
जघान समरे शूरो धार्तराष्ट्रानचिन्तयन् ॥ १४ ॥
तेषां व्यवसितं ज्ञात्वा भीमसेनो जिघृक्षताम् ।
समस्तानां वधे राजन्मतिं चक्रे महामनाः ॥ १५ ॥
ततो रथं समुत्सृज्य गदामादाय पाण्डवः ।
जघान धार्तराष्ट्राणां तं बलौघं महार्णवम् ॥ १६ ॥
भीमसेने प्रविष्टे तु धृष्टद्युम्नोऽपि पार्षतः ।
द्रोणमुत्सृज्य तरसा प्रययौ यत्र सौबलः ॥ १७ ॥
निवार्य महतीं सेनां तावकानां नरर्षभः ।
आससाद रथं शून्यं भीमसेनस्य संयुगे ॥ १८ ॥
दृष्ट्वा विशोकं समरे भीमसेनस्य सारथिम् ।
धृष्टद्युम्नो महाराज दुर्मना गतचेतनः ॥ १९ ॥
अपृच्छद्बाष्पसंरुद्धो निःश्वसन्वाचमीरयन् ।
मम प्राणैः प्रियतमः क्व भीम इति दुःखितः ॥ २० ॥
विशोकस्तमुवाचेदं धृष्टद्युम्नं कृताञ्जलिः ।
संस्थाप्य मामिह बली पाण्डवेयः पराक्रमी ॥ २१ ॥
प्रविष्टो धार्तराष्ट्राणामेतद्बलमहार्णवम् ।
मामुक्त्वा पुरुषव्याघ्रः प्रीतियुक्तमिदं वचः ॥ २२ ॥
प्रतिपालय मां सूतनियम्याऽश्वान्मुहूर्तकम् ।
यावदेतान्निहन्म्यद्य य इमे मद्वधोद्यताः ॥ २३ ॥

कौरवसेना के प्रधान प्रधान पुरुषों को मार रहे थे, इधर आपके पुत्र उन्हें घेरकर जीता ही पकड़ने की चेष्टा करने लगे। उनके अभिप्राय को जानकर बली भीमसेन ने उनको मारने का विचार किया ॥१४।१५॥ तब वे रथ से उतरकर गदा हाथ में लेकर अकेले ही दुर्योधन की अपार सेना को चौपट करने लगे। इस प्रकार जब महावीर भीमसेन कौरव सेना में प्रवेश हो गये तब धृष्टद्युम्न, द्रोणाचार्य से युद्ध करना छोड़कर, भीमसेन के पास पहुँचने की चेष्टा करने लगे। आपकी महती सेना को छिन्न भिन्न करके मार्ग को निष्कण्टक बनाते हुए धृष्टद्युम्न भीमसेन के रिक्त रथ के पास जा पहुँचे। व्याकुल और अचेत-से धृष्टद्युम्न के नेत्रों में आँसू भर आये। वे श्वास लेते हुए बड़ी व्याकुलता के साथ दुःखित भाव से सारथी से पूछने लगे—मेरे प्राणों से भी प्यारे भीमसेन कहाँ हैं? ॥१६।२०॥ भीमसेन के सारथी विशोक ने हाथ जोड़कर धृष्टद्युम्न से कहा—महाबली भीमसेन मुझे यहाँ छोड़कर अकेले ही कौरव-सेना के भीतर प्रवेश कर

ततो दृष्ट्वा प्रधावन्तं गदाहस्तं महाबलम् ।
सर्वेषामेव सैन्यानां संहर्षः समजायत ॥ २४ ॥
तस्मिन्सुतुमुले युद्धे वर्तमाने भयानके ।
भित्वा राजन्महाव्यूहं प्रविवेश वृकोदरः ॥ २५ ॥
विशोकस्य वचः श्रुत्वा धृष्टद्युम्नोऽथ पार्षतः ।
प्रत्युवाच ततः सूतं रणमध्ये महाबलः ॥ २६ ॥
न हि मे जीवितेनाऽपि विद्यतेऽद्य प्रयोजनम् ।
भीमसेनं रणे हित्वा स्नेहमुत्सृज्य पाण्डवैः ॥ २७ ॥
यदि यामि विना भीमं किं मां क्षत्रं वदिष्यति ।
एकायनगते भीमे मयि चाऽवस्थिते युधि ॥ २८ ॥
अस्वस्ति तस्य कुर्वन्ति देवाः शक्रपुरोगमाः ।
यः सहायान्परित्यज्य स्वस्तिमानाव्रजेद् गृहम् ॥ २९ ॥
मम भीमः सखा चैव सम्बन्धी च महाबलः ।
भक्तोऽस्मान्भक्तिमांश्चाऽहं तमप्यरिनिषूदनम् ॥ ३० ॥
सोऽहं तत्र गमिष्यामि यत्र यातो वृकोदरः ।
निघ्नन्तं मां रिपून्पश्य दानवानिव वासवम् ॥ ३१ ॥
एवमुक्त्वा ततो वीरो ययौ मध्येन भारत ।
भीमसेनस्य मार्गेषु गदाप्रमथितैर्गजैः ॥ ३२ ॥

गये हैं। हे पुरुषसिंह ! वे जाते समय मुझसे कह गये हैं कि हे सूत ! 'कौरवगण मुझे मारने या पकड़ने को प्रस्तुत हैं। जब तक मैं उन्हें मारकर यहाँ लौट न आऊँ तब तक घोड़ों को रोककर तुम यहीं ठहरो।' ॥२१।२३॥ हे राजकुमार ! वे मुझसे यों कहकर गदा लेकर शत्रुसेना में प्रवेश कर गये। उन्हें देखकर शत्रुसेना प्रसन्नता से कोलाहल करने लगी। भयानक युद्ध करते हुए आपके सखा भीमसेन महाव्यूह को तोड़कर भीतर प्रवेश कर गये हैं ॥२४।२६॥ भीमसेन के सारथी विशोक के ये वचन सुनकर धृष्टद्युम्न ने फिर कहा—हे सूत ! रण में भीमसेन को अकेले छोड़कर, पाण्डवों का स्नेह त्यागकर, मैं किसी प्रकार भी जीवित नहीं रह सकता। यदि मैं भीमसेन को यों शत्रुओं के मध्य अकेला छोड़कर चला जाऊँगा तो सब क्षत्रिय मुझे क्या कहेंगे ! ॥२६।२८॥ जो व्यक्ति अपने सहायक को छोड़कर आप निर्विघ्न अपने घर चला जाता है उसका इन्द्र आदि देवता अनिष्ट करते हैं। भीमसेन मेरे सखा, सम्बन्धी और भक्त हैं। मैं भी शत्रुनाशन भीमसेन का अत्यन्त अनुरक्त भक्त हूँ। चाहे जो हो, मैं इस समय वहीं जाऊँगा जहाँ भीमसेन गये हैं। हे सूत ! जैसे इन्द्र दानवों को मारते हैं वैसे ही मैं शत्रुओं को नष्ट करूँगा ॥२९।३१॥ हे महाराज ! जिस मार्ग से भीमसेन गदाप्रहार के द्वारा गजसेना को नष्ट करते

स ददर्श तदा भीमं दहन्तं रिपुवाहिनीम् ।
वातो वृक्षानिव बलात्प्रभञ्जन्तं रणे रिपून् ॥ ३३ ॥
ते वध्यमानाः समरे रथिनः सादिनस्तथा ।
पादाता दन्तिनश्चैव चक्रुरार्तस्वरं महत् ॥ ३४ ॥
हाहाकारश्च सञ्जज्ञे तव सैन्यस्य मारिष ।
वध्यतो भीमसेनेन कृतिना चित्रयोधिना ॥ ३५ ॥
ततः कृतास्त्रास्ते सर्वे परिवार्य वृकोदरम् ।
अभीताः समवर्तन्त शस्त्रवृष्ट्या परन्तप ॥ ३६ ॥
अभिद्रुतं शस्त्रभृतां वरिष्ठं समन्ततः पाण्डवं लोकवीरः ।
सैन्येन घोरेण सुसंहितेन दृष्ट्वा बली पार्षतो भीमसेनम् ॥ ३७ ॥
अथोपगच्छच्छरविक्षताङ्गं पदातिनं क्रोधविषं वमन्तम् ।
आश्वासयन्पार्षतो भीमसेनं गदाहस्तं कालमिवाऽन्तकाले ॥ ३८ ॥
विशल्यमेनं च चकार तूर्णमारोपयच्चाऽऽत्मरथे महात्मा ।
भृशं परिष्वज्य च भीमसेनमाश्वासयामास स शत्रुमध्ये ॥ ३९ ॥
भ्रातॄनथोपेत्य तवाऽपि पुत्रस्तस्मिन्विमर्दे महति प्रवृत्ते ।
अयं दुरात्मा द्रुपदस्य पुत्रः समागतो भीमसेनेन सार्धं ॥ ४० ॥
तं याम सर्वे महता बलेन मा वो रिपुः प्रार्थयतामनीकम् ।
श्रुत्वा तु वाक्यं तममृष्यमाणाज्येष्ठाज्ञया नोदिता धार्तराष्ट्राः॥ ४१ ॥

हुए गये थे उसी मार्ग से महावीर धृष्टद्युम्न शत्रुसेना में घुसकर भीमसेन के पास पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि महावीर भीमसेन शत्रुसेना को और सब राजाओं को गदा के प्रहार से मार-मारकर वृक्षों की भाँति गिरा रहे हैं। रथी, घुड़सवार, हाथियों के सवार, पैदल, घोड़े और हाथी सभी चित्रयुद्ध के करनेवाले भीमसेन की गदा के भयङ्कर प्रहार से अत्यन्त पीड़ित होकर आर्तनाद कर रहे हैं। कौरवसेना में बड़ा हाहाकार मच गया ॥३३।३५॥ उधर अस्त्रविद्याविशारद कौरव भीमसेन को चारों ओर से घेरकर, निर्भय भाव से, उनपर बाण बरसा रहे थे। इस प्रकार सारी सेना एकत्र होकर युद्ध-निपुण भीमसेन के ऊपर आक्रमण कर रही थी। यह देखकर महारथी धृष्टद्युम्न ने बाणों से क्षत-विक्षत, पैदल, अकेले, क्रोध-विष उगलते हुए, प्रलयकाल में दण्डपाणि यमराज के समान, गदा हाथ में लिये भीमसेन को आश्वासन दिया ॥३६।३८॥ धृष्टद्युम्न ने पास आकर भीमसेन को अपने रथ पर चढ़ा लिया और अच्छी प्रकार गले से लगाकर उनके घावों की पीड़ा दूर की। उसी समय आपके राजा दुर्योधन ने अपने भाइयों से कहा—हे कौरवो! यह दुरात्मा धृष्टद्युम्न भीमसेन के पास सहायता करने को पहुँच गया है। आओ, हम सब बड़ी भारी सेना साथ लेकर इन दोनों को मारने का यत्न करें।

वधाय निष्पेतुरुदायुधास्ते युगक्षये केतवो यद्वदुग्राः ।
प्रगृह्य चाऽस्त्राणि धनूंषि वीरा ज्यां नेमिघोषैः प्रविकम्पयन्तः॥ ४२ ॥
शरैरवर्षन्द्रुपदस्य पुत्रं यथाऽम्बुदा भूधरं वारिजालैः ।
निहत्य तांश्चाऽपि शरैः सुतीक्ष्णैर्न विव्यथे समरे चित्रयोधी॥ ४३ ॥
समभ्युदीर्णांश्च तवाऽऽत्मजांस्तथा निशम्य वीरानभितः स्थितान्रणे ।
जिघांसुरुग्रं द्रुपदात्मजो युवा प्रमोहनास्त्रं युयुजे महारथः ॥ ४४ ॥
क्रुद्धो भृशं तव पुत्रेषु राजन्दैत्येषु यद्वत्समरे महेन्द्रः ।
ततो व्यमुह्यन्त रणे नृवीराः प्रमोहनास्त्राहतबुद्धिसत्त्वाः ॥ ४५ ॥
प्रदुद्रुवुः कुरवश्चैव सर्वे सवाजिनागाः सरथाः समन्तात् ।
परीतकालानिव नष्टसंज्ञान्मोहोपेतांस्तव पुत्रान्निशम्य ॥ ४६ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु द्रोणः शस्त्रभृतां वरः ।
द्रुपदं त्रिभिरासाद्य शरैर्विव्याध दारुणैः ॥ ४७ ॥
सोऽतिविद्धस्ततो राजन्रणे द्रोणेन पार्थिवः ।
अपायाद् द्रुपदो राजन्पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ ४८ ॥
जित्वा तु द्रुपदं द्रोणः शङ्खं दध्मौ प्रतापवान् ।
तस्य शङ्खस्वनं श्रुत्वा वित्रेसुः सर्वसोमकाः ॥ ४९ ॥
अथ शुश्राव तेजस्वी द्रोणः शस्त्रभृतां वरः ।
प्रमोहनास्त्रेण रणे मोहितानात्मजांस्तव ॥ ५० ॥

तततो द्रोणो महाराज त्वरितोऽभ्याययौ रणात् ।
तत्राऽपश्यन्महेश्वासो भारद्वाजः प्रतापवान् ॥ ५१ ॥
धृष्टद्युम्नं च भीमं च विचरन्तौ महारणे ।
मोहाविष्टांश्च ते पुत्रानपश्यत्स महारथः ॥ ५२ ॥
ततः प्रज्ञास्त्रमादाय मोहनास्त्रं व्यनाशयत् ।
अथ प्रत्यागतप्राणास्तव पुत्रा महारथाः ॥ ५३ ॥
पुनर्युद्धाय समरे प्रययुर्भीमपार्षतौ ।
ततो युधिष्ठिरः प्राह समाहूय स्वसैनिकान् ॥ ५४ ॥
गच्छन्तु पदवीं शक्त्या भीमपार्षतयोर्युधि ।
सौभद्रप्रमुखा वीरा रथा द्वादश दंशिताः ॥ ५५ ॥
प्रवृत्तिमधिगच्छन्तु नहि शुद्ध्यति मे मनः ।
त एवं समनुज्ञाताः शूरा विक्रान्तयोधिनः ॥ ५६ ॥
बाढमित्येवमुक्त्वा तु सर्वे पुरुषमानिनः ।
मध्यन्दिनगते सूर्ये प्रययुः सर्व एव हि ॥ ५७ ॥
केकया द्रौपदेयाश्च धृष्टकेतुश्च वीर्यवान् ।
अभिमन्युं पुरस्कृत्य महत्या सेनया वृताः ॥ ५८ ॥
ते कृत्वा समरे व्यूहं सूचीमुखमरिन्दमाः ।
विभिदुर्धार्तराष्ट्राणां तद्रथानीकमाहवे ॥ ५९ ॥

सब सोमकगण बहुत ही भयभीत हो गये। [श्रेष्ठ योद्धा भीमसेन अमृत तुल्य जल पीकर, विश्राम करके, स्वस्थ हुए। वे फिर प्रस्तुत होकर धृष्टद्युम्न के पास युद्धभूमि में आये और शत्रुसेना को नष्ट करने लगे।] ॥४७।४९॥ उधर द्रोणाचार्य ने जब सुना कि धृष्टद्युम्न ने सम्मोहन अस्त्र के द्वारा दुर्योधन आदि आपके पुत्रों को मोहित और अचेत कर दिया है, तब वे शीघ्रता के साथ उनके पास पहुँचे। वहाँ पहुँचकर द्रोणाचार्य ने देखा कि धृष्टद्युम्न और भीमसेन युद्धभूमि में सेना का संहार कर रहे हैं और आपके सब पुत्र मूर्च्छित हो रहे हैं। तब आचार्य ने प्रज्ञास्त्र का प्रयोग करके सम्मोहनास्त्र को शान्त कर दिया। अब दुर्योधन आदि महारथी फिर सचेत होकर जय की इच्छा से भीमसेन और धृष्टद्युम्न के साथ युद्ध करने लगे ॥५०।५४॥ हे भारत! धर्मराज युधिष्ठिर ने अपने सैनिकों को बुलाकर कहा—हे वीरो! तुम लोग शीघ्र धृष्टद्युम्न और भीमसेन के पास जाओ। अभिमन्यु आदि बारह वीर रथी जाकर शीघ्र ही धृष्टद्युम्न और भीमसेन की सूचना लावें। उनकी कुछ सूचना न पाने से मेरा चित्त व्याकुल हो रहा है ॥५४।५६॥ धर्मराज की यह आज्ञा पाकर, अपने पौरुष का अभिमान रखनेवाले, वे सब योद्धा ठीक मध्याह्न के समय भीमसेन और धृष्टद्युम्न के पास चले। अभिमन्यु को आगे करके, बहुत सी सेना

तान्प्रयातान्महेष्वासानभिमन्युपुरोगमान् ।
भीमसेनभयाविष्टा धृष्टद्युम्नविमोहिता ॥ ६० ॥
न संवारयितुं शक्ता तव सेना जनाधिप ।
मदमूर्छान्वितात्मा वै प्रमदेवाऽध्वनि स्थिता ॥ ६१ ॥
तेऽभिजाता महेष्वासाः सुवर्णविकृतध्वजाः ।
परीप्सन्तोऽभ्यधावन्त धृष्टद्युम्नवृकोदरौ ॥ ६२ ॥
तौ च दृष्ट्वा महेष्वासावभिमन्युपुरोगमान् ।
बभूवतुर्मुदा युक्तौ निघ्नन्तौ तव वाहिनीम् ॥ ६३ ॥
दृष्ट्वा तु सहसा यान्तं पाञ्चाल्यो गुरुमात्मनः ।
नाऽशंसत वधं वीरः पुत्राणां तव भारत ॥ ६४ ॥
ततो रथं समारोप्य कैकेयस्य वृकोदरम् ।
अभ्यधावत्सुसंक्रुद्धो द्रोणमिष्वस्त्रपारगम् ॥ ६५ ॥
तस्याऽभिपततस्तूर्णं भारद्वाजः प्रतापवान् ।
क्रुद्धश्चिच्छेद बाणेन धनुः शत्रुनिबर्हणः ॥ ६६ ॥
अन्यांश्च शतशो बाणान्प्रेषयामास पार्षते ।
दुर्योधनहितार्थाय भर्तृपिण्डमनुस्मरन् ॥ ६७ ॥
अथाऽन्यद्धनुरादाय पार्षतः परवीरहा ।
द्रोणं विव्याध विंशत्या रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः ॥ ६८ ॥

साथ लेकर, केकयराज, धृष्टकेतु और द्रौपदी के पाँचों पुत्र शत्रुसेना की ओर चले ॥५६।५८॥ सूचीव्यूह के आकार से सेना ले चलकर उन वीरों ने कौरवों की रथ-सेना को छिन्न-भिन्न करना आरम्भ किया। भीमसेन के भय से व्याकुल और धृष्टद्युम्न के बाणों से पीड़ित आपकी सेना अभिमन्यु आदि महारथियों की राह को नहीं रोक सकी। नशा पिये हुए अचेत स्त्री की तरह कुरुपक्ष के सैनिक राह में खड़े थे ॥५९।६१॥ सुवर्णमण्डित ध्वजाओं से शोभायमान रथों पर सवार महाधनुर्द्धर अभिमन्यु आदि वीरगण, शत्रुसेना को नष्ट करते हुए, भीमसेन और धृष्टद्युम्न की ओर शीघ्रता से बढ़ने लगे। अभिमन्यु आदि वीरों को आते देखकर भीमसेन और धृष्टद्युम्न भी बहुत प्रसन्न हुए ॥६२।६३॥ धृष्टद्युम्न ने जब द्रोणाचार्य को आते देखा तब आपके पुत्रों को मारने की इच्छा छोड़ दी। इसके अनन्तर भीमसेन को शीघ्र केकय-राज के रथ पर बिठाकर वे अपने गुरु, धनुर्विद्या-विशारद, द्रोणाचार्य से युद्ध करने चले ॥६४।६५॥ प्रतापी द्रोणाचार्य ने धृष्टद्युम्न को क्रोध से व्याकुल होकर अपनी ओर आते देख एक बाण से उनका धनुष काट डाला। दुर्योधन के हित के लिए, प्रभु के ऋण से छुटकारा पाने के लिए, द्रोणाचार्य जी धृष्टद्युम्न के ऊपर सैकड़ों बाण बरसाने लगे ॥६६।६७॥ शत्रुविनाशन धृष्टद्युम्न ने दूसरा धनुष लेकर

तस्य द्रोणः पुनश्चापं चिच्छेदाऽमित्रकर्शनः ।
हयांश्च चतुरस्तूर्णं चतुर्भिः सायकोत्तमैः ॥ ६९ ॥
वैवस्वतक्षयं घोरं प्रेषयामास भारत ।
सारथिं चाऽस्य भल्लेन प्रेषयामास मृत्यवे ॥ ७० ॥
हताश्वात्स रथात्तूर्णमवप्लुत्य महारथः ।
आरुरोह महाबाहुरभिमन्योर्महारथम् ॥ ७१ ॥
ततः सरथनागाश्वा समकम्पत वाहिनी ।
पश्यतो भीमसेनस्य पार्षतस्य च पश्यतः ॥ ७२ ॥
तत्प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा द्रोणेनाऽमिततेजसा ।
नाऽशक्नुवन्वारयितुं समस्तास्ते महारथाः ॥ ७३ ॥
वध्यमानं तु तत्सैन्यं द्रोणेन निशितैः शरैः ।
व्यभ्रमत्तत्र तत्रैव क्षोभ्यमाण इवाऽर्णवः ॥ ७४ ॥
तथा दृष्ट्वा च तत्सैन्यं जहृषे तावकं बलम् ।
दृष्ट्वाऽऽचार्यं सुसंक्रुद्धं पतन्तं रिपुवाहिनीम् ।
चुक्रुशुः सर्वतो योधाः साधु साध्विति भारत ॥ ७५ ॥[१]

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि सकुलयुद्धे द्रोणपराक्रमे सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

बीस तीक्ष्ण सुवर्णपुङ्ख बाण द्रोणाचार्य को मारे। द्रोणाचार्य ने फिर सेनापति धृष्टद्युम्न का धनुष काट डाला। इसके पश्चात् चार बाण मारकर उन्होंने धृष्टद्युम्न के रथ के चारों घोड़ों को मार डाला। साथ ही एक भल्ल बाण से धृष्टद्युम्न के सारथी को मार गिराया ॥६८।७०॥ अब महावीर धृष्टद्युम्न स्फूर्ति के साथ उस रथ से उतरकर अभिमन्यु के उत्तम रथ पर सवार हो गये। हे कौरव! उस समय द्रोणाचार्य के निकट बाणों के प्रहार से पाण्डव-सेना भाग खड़ी हुई। भीमसेन, धृष्टद्युम्न आदि देखते रहे; किन्तु सैनिकों को रोक नहीं सके ॥७१।७३॥ महातेजस्वी द्रोणाचार्य के तीक्ष्ण बाणों से मरती हुई वह सारी सेना, क्षोभ को प्राप्त समुद्र के समान, विचलित और भ्रान्त हो उठी। शत्रुसेना की यह दशा देखकर आपके पक्ष के लोग बहुत प्रसन्न हुए। आचार्य द्रोण को क्रुद्ध होकर शत्रुसेना का संहार करते देख कौरव-पक्ष के योद्धा लोग उन्हें साधुवाद देते हुए उनकी प्रशंसा करने लगे ॥७४।७५॥

भीष्मपर्व का सतहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७७ ॥

अथ अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

सञ्जय उवाच— ततो दुर्योधनो राजा मोहात्प्रत्यागतस्तदा ।
शरवर्षैः पुनर्भीमं प्रत्यवारयदच्युतम् ॥ १ ॥

एकीभूतास्ततश्चैव तव पुत्रा महारथाः ।
समेत्य समरे भीमं योधयामासुरुद्यताः ॥ २ ॥
भीमसेनोऽपि समरे सम्प्राप्य स्वरथं पुनः ।
समारुह्य महाबाहुर्ययौ येन तवाऽऽत्मजः ॥ ३ ॥
प्रगृह्य च महावेगं परासुकरणं दृढम् ।
सज्जं शरासनं सङ्ख्ये शरैर्विव्याध ते सुतम् ॥ ४ ॥
ततो दुर्योधनो राजा भीमसेनं महाबलम् ।
नाराचेन सुतीक्ष्णेन भृशं मर्मण्यताडयत् ॥ ५ ॥
सोऽतिविद्धो महेष्वासस्तव पुत्रेण धन्विना ।
क्रोधसंरक्तनयनो वेगेनाऽऽक्षिप्य कार्मुकम् ॥ ६ ॥
दुर्योधनं त्रिभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चाऽर्पयत् ।
स तत्र शुशुभे राजा शिखरैर्गिरिराडिव ॥ ७ ॥
तौ दृष्ट्वा समरे क्रुद्धौ विनिघ्नन्तौ परस्परम् ।
दुर्योधनानुजाः सर्वे शूराः सन्त्यक्तजीविताः ॥ ८ ॥
संस्मृत्य मन्त्रितं पूर्वं निग्रहे भीमकर्मणः ।
निश्चयं परमं कृत्वा निग्रहीतुं प्रचक्रमुः ॥ ९ ॥
तानापतत एवाऽऽजौ भीमसेनो महाबलः ।
प्रत्युद्ययौ महाराज गजः प्रतिगजानिव ॥ १० ॥

सञ्जय कहते हैं — हे महाराज ! मोह दूर होने पर राजा दुर्योधन सचेत होकर फिर भीमसेन पर बाण बरसाने लगे। आपके सब पुत्र मिलकर भीमसेन से युद्ध करने लगे ॥१।२॥ महाबली भीमसेन फिर अपने रथ पर बैठकर दुर्योधन के पास आये। शत्रुओं को मारनेवाला विचित्र दृढ धनुष लेकर, उस पर डोरी चढ़ाकर, भीमसेन बड़े वेग के साथ दुर्योधन के अङ्गों में तीक्ष्ण बाण मारने लगे ॥३।४॥ वीर दुर्योधन ने भी भीमसेन के मर्मस्थल में नाराच बाण मारा। दुर्योधन के प्रहार से अत्यन्त पीड़ित होने पर महाबाहु भीमसेन ने क्रोध से नेत्र लाल करके दो बाण दुर्योधन की भुजाओं में और एक बाण वक्षस्थल में मारा। भीम के भयानक बाणों की गहरी चोट खाकर भी दुर्योधन विचलित नहीं हुए, अचल पर्वत की भांति अपने स्थान पर ही स्थित रहे ॥५।७॥ अब भीमसेन और दुर्योधन को इस प्रकार परस्पर प्रहार करते देखकर दुर्योधन के सब छोटे भाई, पहले की सम्मति स्मरण करके, भीमसेन को जीते ही पकड़ने के लिए चारों ओर से घेरने चले। वे लोग प्राणों की अपेक्षा त्यागकर चारों ओर से भीम पर बाण बरसाने लगे। ॥७।९॥ उन वीरों को अपनी ओर आते देख भीमसेन भी, हाथियों के सामने गजराज की तरह, उन सबकी ओर दौड़े। यशस्वी भीमसेन ने कुपित होकर आपके पुत्र चित्रसेन को एक दारुण नाराच बाण मारा। हे

भृशं क्रुद्धश्च तेजस्वी नाराचेन समार्पयत् ।
चित्रसेनं महाराज तव पुत्रं महायशाः ॥ ११ ॥
तथेतरांस्तव सुतांस्ताडयामास भारत ।
शरैर्बहुविधैः सङ्ख्ये रुक्मपुङ्खैः सुतेजनैः ॥ १२ ॥
ततः संस्थाप्य समरे तान्यनीकानि सर्वशः ।
अभिमन्युप्रभृतयस्ते द्वादश महारथाः ॥ १३ ॥
प्रेषिता धर्मराजेन भीमसेनपदानुगाः ।
प्रतिजग्मुर्महाराज तव पुत्रान्महाबलान् ॥ १४ ॥
दृष्ट्वा रथस्थांस्ताञ्शूरान्सूर्याग्निसमतेजसः ।
सर्वानेव महेष्वासान्भ्राजमानाञ्श्रिया वृतान् ॥ १५ ॥
महाहवे दीप्यमानान्सुवर्णमुकुटोज्ज्वलान् ।
तत्यजुः समरे भीमं तव पुत्रा महाबलाः ॥ १६ ॥
तान्नाऽमृष्यत कौन्तेयो जीवमाना गता इति ।
अन्वीय च पुनः सर्वांस्तव पुत्रानपीडयत् ॥ १७ ॥
अथाऽभिमन्युं समरे भीमसेनेन सङ्गतम् ।
पार्षतेन च सम्प्रेक्ष्य तव सैन्ये महारथाः ॥ १८ ॥
दुर्योधनप्रभृतयः प्रगृहीतशरासनाः ।
भृशमश्वैः प्रजवितैः प्रययुर्यत्र ते रथाः ॥ १९ ॥
अपराह्णे महाराज प्रावर्तत महारणः ।
तावकानां च बलिनां परेषां चैव भारत ॥ २० ॥

भारत! इसके अनन्तर आपके अन्यान्य पुत्रों को भी अनेक प्रकार के सुवर्णपुङ्ख तीक्ष्ण बाण मारे ॥१०।१२॥ उस समय राजा युधिष्ठिर के भेजे हुए महारथी अभिमन्यु आदि बारहो महारथी वहाँ पहुँच गये। भीमसेन को इस प्रकार दुर्योधन के भाइयों के मध्य घिरे देखकर वे लोग आपके पुत्रों को रोकने और भीमसेन को सहायता पहुँचाने के लिए दौड़े। हे राजेन्द्र! आपके पुत्रों ने रथों पर स्थित, सूर्य और अग्नि के तुल्य तेजस्वी, शूर, महाधनुर्धर, शो- भासम्पन्न, सुवर्ण के मुकुट धारण किये उन वीरों को देखकर भीमसेन को पकड़ने का विचार छोड़ दिया ॥१३।१६॥ महाबली भीमसेन को छोड़कर आपके पुत्र भाग गये। भीमसेन के लिए यह असह्य हुआ कि आपके पुत्र जान लेकर भाग ना सके। भीमसेन पीछा करके तीक्ष्ण बाणों से उन्हें पीड़ित करने लगे। वीर धृष्टद्युम्न और भीमसेन के साथ महापराक्रमी अभिमन्यु आपके पुत्रों का पीछा करते हुए उन्हें तीक्ष्ण बाणों के प्रहार से पीड़ित करने लगे। दुर्योधन आदि

अभिमन्युर्विकर्णस्य हयान्हत्वा महाहवे ।
अथैनं पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत् ॥ २१ ॥
हताश्वं रथमुत्सृज्य विकर्णस्तु महारथः ।
आरुरोह रथं राजंश्चित्रसेनस्य भारत ॥ २२ ॥
स्थितावेकरथे तौ तु भ्रातरौ कुलवर्धनौ ।
आर्जुनिः शरजालेन च्छादयामास भारत ॥ २३ ॥
चित्रसेनो विकर्णश्च कार्ष्णिं पञ्चभिरायसैः ।
विव्याध तेन चाऽकम्पत्कार्ष्णिर्मेरुरिव स्थितः ॥ २४ ॥
दुःशासनस्तु समरे केकयान्पञ्च मारिष ।
योधयामास राजेन्द्र तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ २५ ॥
द्रौपदेया रणे क्रुद्धा दुर्योधनमवारयन् ।
शरैराशीविषाकारैः पुत्रं तव विशाम्पते ॥ २६ ॥
पुत्रोऽपि तव दुर्धर्षो द्रौपद्यास्तनयान्रणे ।
सायकैर्निशितै राजन्नाजघान पृथक्पृथक् ॥ २७ ॥
तैश्चाऽपि निर्भिन्नः शुशुभे रुधिरेण समुक्षितः ।
गिरिः प्रस्रवणैर्यद्वद्गैरिकादिविमिश्रितैः ॥ २८ ॥
भीष्मोऽपि समरे राजन्पाण्डवानामनीकिनीम् ।
कालयामास बलवान्पालः पशुगणानिव ॥ २९ ॥

वीरगण धनुष लेकर स्फटिकवर्ण घोड़ों से युक्त रथों पर चढ़कर, उन महारथियों के पास पहुंचे। हे राजेन्द्र! जिस समय कौरवों और पाण्डवों में यह महाघोर युद्ध होने लगा, उस समय दिन का तीसरा पहर था ॥१७-२०॥ महावीर अभिमन्यु ने विकर्ण के चारों घोड़े मार डाले और पचीस क्षुद्रक बाणों से उसे घायल किया। विकर्ण पहले रथ को छोड़कर चित्रसेन के विचित्र रथ पर सवार हुए। एक ही रथ पर बैठे दोनों भाइयों को देखकर अभिमन्यु ने असंख्य बाणों से ढक दिया ॥२१-२३॥ तब दुर्जय और विकर्ण ने लोहमय पांच बाण अभिमन्यु की छाती में मारे, किन्तु महावीर अभिमन्यु सुमेरु पर्वत के समान तनिक भी व्यथित नहीं हुए। इधर केकय देश के पांचों राजकुमारों से दुःशासन अद्भुत युद्ध करने लगे। द्रौपदी के पुत्रों ने क्रुद्ध होकर दुर्योधन को भयङ्कर बाण मारे ॥२४-२६॥ दुर्योधन भी तीक्ष्ण बाणों से उनमें से हर एक को भयानक रूप से घायल करने लगे। द्रौपदी के पुत्रों के बाणों से छिन्न भिन्न और रुधिर से सन्नद्ध होकर दुर्योधन गेरू के झरनों से शोभित पर्वत के समान देख पड़ने लगे ॥२७-२८॥ उधर प्रतापी भीष्म पितामह, पशुओं को पशुपाल के तरह पाण्डवसेना को मारने और भगाने लगे। उस समय सेना के दक्षिण भाग में शत्रुमर्दन अर्जुन के गाण्डीव धनुष का शब्द सुन

ततो गाण्डीवनिर्घोषः प्रादुरासीद्विशाम्पते ।
दक्षिणेन वरूथिन्याः पार्थस्याऽरीन्विनिघ्नतः ॥ ३० ॥
उत्तस्थुः समरे तत्र कबन्धानि समन्ततः ।
कुरूणां चैव सैन्येषु पाण्डवानां च भारत ॥ ३१ ॥
शोणितोदं शरावर्तं गजद्वीपं हयोर्मिणम् ।
रथनौभिर्नरव्याघ्राः प्रतेरुः सैन्यसागरम् ॥ ३२ ॥
छिन्नहस्ता विकवचा विदेहाश्च नरोत्तमाः ।
दृश्यन्ते पतितास्तत्र शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३३ ॥
निहतैर्मत्तमातङ्गैः शोणितौघपरिप्लुतैः ।
भूर्भाति भरतश्रेष्ठ पर्वतैराचिता यथा ॥ ३४ ॥
तत्राऽद्भुतमपश्याम तव तेषां च भारत ।
न तत्राऽऽसीत्पुमान्कश्चिद्यो युद्धं नाऽभिकांक्षति ॥ ३५ ॥
एवं युयुधिरे वीराः प्रार्थयाना महद्यशः ।
तावकाः पाण्डवैः सार्धमाकांक्षन्तो जयं युधि ॥ ३६ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि सङ्कुलयुद्धे अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

पड़ने लगा। युद्धभूमि के मध्य कौरवों और पाण्डवों की सेना में हजारों शूरवीर पुरुषों के कबन्ध उठ उठकर युद्ध करने लगे। योद्धा लोग रथरूप नावाओं पर चढकर उस अपार सैन्यसागर के पार जाने की चेष्टा कर रहे थे। संग्राम में मारे गये मनुष्य, हाथी, घोडे आदि का रक्त उसमें जल के समान भरा हुआ था। असंख्य बाण भँवर के समान देख पडते थे। घोडों की गति तरङ्गों की समता कर रही थी। हाथियों के शरीर टापू ऐसे उभरा रहे थे ॥२९।३२॥ युद्धभूमि में हजारों वीरों के कटे हुए सिर, हाथ आदि अङ्ग और कवचशून्य शरीर इधर-उधर पडे हुए थे। रक्त से सनद्ध हजारों मस्त हाथियों के शरीरों के ढेर लगे हुए थे, जिनसे समरभूमि पर्वतमयी सी जान पडती थी। यह अद्भुत दृश्य दिखाई पड रहा था कि दोनों ओर कोई भी सैनिक युद्ध से विमुख होना नहीं चाहता था। हे महाराज! आपके पक्ष के योद्धा लोग जय और यश प्राप्त करने की इच्छा से, जीवन का मोह त्यागकर, पाण्डवों से युद्ध कर रहे थे ॥३३।३६॥

—०—

भीष्मपर्व का अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७८ ॥

अथ ऊनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

सञ्जय उवाच—ततो दुर्योधनो राजा लोहितायति भास्करे ।
संग्रामरभसो भीमं हन्तुकामोऽभ्यधावत ॥ १ ॥

तमायान्तमभिप्रेक्ष्य नृवीरं दृढवैरिणम् ।
भीमसेनः सुसंक्रुद्ध इदं वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥
अयं स कालः सम्प्राप्तो वर्षपूगाभिवाञ्छितः ।
अद्य त्वां निहनिष्यामि यदि नोत्सृजसे रणम् ॥ ३ ॥
अद्य कुन्त्याः परिक्लेशं वनवासं च कृत्स्नशः ।
द्रौपद्याश्च परिक्लेशं प्रणेष्यामि हते त्वयि ॥ ४ ॥
यत्पुरा मत्सरी भूत्वा पाण्डवानवमन्यसे ।
तस्य पापस्य गान्धारे पश्य व्यसनमागतम् ॥ ५ ॥
कर्णस्य मतमास्थाय सौबलस्य च यत्पुरा ।
अचिन्त्य पाण्डवान्कामाद्यथेष्टं कृतवानसि ॥ ६ ॥
याचमानं च यन्मोहाद्दाशार्हमवमन्यसे ।
उलूकस्य समादेशं यद्ददासि च हृष्टवत् ॥ ७ ॥
तेन त्वां निहनिष्यामि सानुबन्धं सबान्धवम् ।
समीकरिष्ये तत्पापं यत्पुरा कृतवानसि ॥ ८ ॥
एवमुक्त्वा धनुर्घोरं विकृष्योद्भ्राम्य चाऽसकृत् ।
समाधत्त शरान्घोरान्महाशनिसमप्रभान् ॥ ९ ॥
षड्विंशतिमसंक्रुद्धो मुमोचाऽऽशु सुयोधने ।
ज्वलिताग्निशिखाकारान्वज्रकल्पानजिह्मगान् ॥ १० ॥

उन्नासीवाँ अध्याय ॥ ७०. ॥

सञ्जय ने कहा— हे राजेन्द्र ! सूर्यदेव का जिस अस्ताचल के पास पहुँचकर लाल रङ्ग का हो गया। उसी समय राजा दुर्योधन ने घोर युद्ध करके भीमसेन को मार डालने के लिए भयानक आक्रमण किया। उन्मार्गी दुर्योधन को आते देखकर कुपित भीमसेन ने कहा— हे दुर्योधन ! यदि तुम युद्ध छोड़कर भाग न जाओगे तो आज मैं तुम्हें जीवित न छोड़ूँगा। मैं बहुत दिनों से जिस समय की राह देख रहा था, वही समय आ पहुँचा है। आज तुम को मारकर मैं जननी कुन्ती के क्लेशों को, वनवास के क्लेशों को और द्रौपदी के मन की व्यथा को दूर करूँगा ॥१-४॥ हे गान्धारी के पुत्र ! पहले ईर्ष्या के वश होकर तुमने पाण्डवों का अपमान किया था, उसी पाप का परिणाम यह प्राणसङ्कट उपस्थित है। कर्ण और शकुनि की सम्मति मानकर, पाण्डवों को तुच्छ समझकर, तुम मनमाना अन्याय कर चुके हो। श्रीकृष्ण जब सन्धि के लिए गये तब तुमने मोहवश होकर उनका अपमान किया और फिर अपने दूत उलूक के द्वारा अनेक कटु वचन कहला भेजे। जान बूझकर तुमने जो ये पाप किये हैं उन्हें शान्त करने के लिए मैं यहीं तुमको, तुम्हारे बन्धु-बान्धवों को और अनुचरों को भी मारूँगा ॥५-८॥ हे महाराज !

ततोऽस्य कार्मुकं द्वाभ्यां सूतं द्वाभ्यां च विव्यधे ।
चतुर्भिरश्वाञ्जवनाननयद्यमसादनम् ॥ ११ ॥
द्वाभ्यां च सुविकृष्टाभ्यां शराभ्यामरिमर्दनः ।
छत्रं चिच्छेद समरे राजस्तस्य नरोत्तम ॥ १२ ॥
षड्भिश्च तस्य चिच्छेद ज्वलन्तं ध्वजमुत्तमम् ।
छित्वा तं च ननादोच्चैस्तव पुत्रस्य पश्यतः ॥ १३ ॥
रथाच्च स ध्वजः श्रीमान्नानारत्नविभूषितात् ।
पपात सहसा भूमौ विद्युज्जलधरादिव ॥ १४ ॥
ज्वलन्तं सूर्यसङ्काशं नागं मणिमयं शुभम् ।
ध्वजं कुरुपतेश्छिन्नं ददृशुः सर्वपार्थिवाः ॥ १५ ॥
अथैनं दशभिर्बाणैस्तोत्रैरिव महाद्विपम् ।
आजघान रणे वीरं स्मयन्निव महारथः ॥ १६ ॥
ततः स राजा सिन्धूनां रथश्रेष्ठो महारथः ।
दुर्योधनस्य जग्राह पार्ष्णिं सत्पुरुषैर्वृतः ॥ १७ ॥
कृपश्च रथिनां श्रेष्ठः कौरव्यममितौजसम् ।
आरोपयद्रथं राजन्दुर्योधनममर्षणम् ॥ १८ ॥
स गाढविद्धो व्यथितो भीमसेनेन संयुगे ।
निषसाद रथोपस्थे राजन्दुर्योधनस्तदा ॥ १९ ॥
परिवार्य ततो भीमं जेतुकामो जयद्रथः ।
रथैरनेकसाहस्रैर्भीमस्याऽवारयद्दिशः ॥ २० ॥

अब भीमसेन ने प्रचण्ड धनुष चढ़ाया। उस धनुष को बारम्बार घुमाते हुए भीमसेन ने वज्रतुल्य, चमकीले, अग्निशिखा के समान दश बाण दुर्योधन को मारे ॥९।१०॥ फिर दो बाणों से दुर्योधन का धनुष काटकर दो बाण उनके सारथी को मारे। चार बाणों से बढ़िया घोड़ों को मार डाला, दो बाणों से ऊपर का छत्र काट डाला और छः बाणों से ऊँची ध्वजा काट गिराई। अद्भुत स्फूर्ति के साथ ये कार्य करके भीमसेन ऊँचे स्वर से गरजने लगे। जैसे मेघ में बिजली चमकती है, वैसे ही दुर्योधन के विविध रत्न-भूषित रथ से सुन्दर ध्वजा गिर पड़ा। सब राजाओं ने आश्चर्य के साथ देखा कि कुरुराज की वह सूर्य के समान प्रभा-पूर्ण, मणिमय, समुज्ज्वल नागचिह्नयुक्त ध्वजा गिर पड़ी ॥११।१५॥ अब भीमसेन ने हँसकर, गजराज के मस्तक पर अङ्कुशप्रहार की तरह, कुरुराज को दस बाण मारे। तब महारथी सिन्धुराज जयद्रथ, प्रधान प्रधान वीरों के साथ, आकर दुर्योधन के पार्श्वदेश की रक्षा करने लगे। इसी समय महारथी

धृष्टकेतुस्ततो राजन्नभिमन्युश्च वीर्यवान् ।
केकया द्रौपदेयाश्च तव पुत्रानयोधयन् ॥ २१ ॥
चित्रसेनः सुचित्रश्च चित्राङ्गश्चित्रदर्शनः ।
चारुचित्रः सुचारुश्च तथा नन्दोपनन्दकौ ॥ २२ ॥
अष्टावेते महेष्वासाः सुकुमारा यशस्विनः ।
अभिमन्युरथं राजन्समन्तात्पर्यवारयन् ॥ २३ ॥
आजघान ततस्तूर्णमभिमन्युर्महामनाः ।
एकैकं पञ्चभिर्बाणैः शितैः सन्नतपर्वभिः ॥ २४ ॥
वज्रमृत्युप्रतीकाशैर्विचित्रायुधनिःसृतैः ।
अमृष्यमाणास्ते सर्वे सौभद्रं रथसत्तमम् ॥ २५ ॥
ववृषुर्मार्गणैस्तीक्ष्णैर्गिरिं मेरुमिवाऽम्बुदाः ।
स पीड्यमानः समरे कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः ॥ २६ ॥
अभिमन्युर्महाराज तावकान्समकम्पयत् ।
यथा देवासुरे युद्धे वज्रपाणिर्महासुरान् ॥ २७ ॥
विकर्णस्य ततो भल्लान्प्रेषयामास भारत ।
चतुर्दश रथश्रेष्ठो घोरानाशीविषोपमान् ॥ २८ ॥
स तैर्विकर्णस्य रथात्पातयामास वीर्यवान् ।
ध्वजं सूतं हयांश्चैव नृत्यमान इवाऽऽहवे ॥ २९ ॥

कृपाचार्य ने क्रोधी राजा दुर्योधन को, भीमसेन के बाणों से अत्यन्त आहत और पीडित देखकर, अपने रथ पर बिठा लिया ॥१६।१८॥ राजा दुर्योधन रथ के ऊपर अचेत-से होकर बैठ गये। सिन्धुराज जयद्रथ ने भीमसेन को जीतने के लिए हजारों रथों के मध्य मे घेर लिया। उधर धृष्टकेतु, पराक्रमी अभिमन्यु, केकयगण और द्रौपदी के पाँचों पुत्रों ने आपके पुत्रों से युद्ध आरम्भ किया ॥१९।२१॥ तब चित्रसेन, सुचित्र, चित्राङ्ग, चित्रदर्शन, चारुचित्र, सुचारु, नन्द और उपनन्द, ये आपके आठों यशस्वी पुत्र अभिमन्यु से युद्ध करने लगे। वीर अभिमन्यु ने विचित्र धनुष से निकले हुए वज्र या मृत्यु के समान सन्नतपर्व तीक्ष्ण पाँच-पाँच बाण हर एक योद्धा को मारे। ॥२२।२५॥ वे लोग अभिमन्यु के इस पराक्रम को न सह सकने के कारण, पर्वत पर जैसे मेघ जल बरसाते हैं वैसे ही, अभिमन्यु के ऊपर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे। युद्धनिपुण अभिमन्यु उनके बाणप्रहार से अत्यन्त पीडित होकर बहुत क्रुद्ध हो उठे। देवासुर-संग्राम में इन्द्र ने जैसे असुरों को पीडित किया था वैसे ही वे उन लोगों को पीडित करने लगे ॥२५।२७॥ प्रधान रथी अभिमन्यु ने स्फूर्ति के साथ विकर्ण के ऊपर सर्प-सदृश चौदह भल्ल बाण चलाकर उनके रथ की ध्वजा काट डाली और सारथी तथा घोड़ों को भी मार गिराया। इसके अनन्तर वे फिर विकर्ण पर

पुनश्चाऽन्याञ्शरान्पीतानकुण्ठाग्राञ्शिलाशितान् ।
प्रेषयामास संक्रुद्धो विकर्णाय महाबलः ॥ ३० ॥
ते विकर्णं समासाद्य कङ्कबर्हिणवाससः ।
भित्त्वा देहं गता भूमिं ज्वलन्त इव पन्नगाः ॥ ३१ ॥
ते शरा हेमपुङ्खाग्रा व्यदृश्यन्त महीतले ।
विकर्णरुधिरक्लिन्ना वमन्त इव शोणितम् ॥ ३२ ॥
विकर्णं वीक्ष्य निर्भिन्नं तस्यैवाऽन्ये सहोदराः ।
अभ्यद्रवन्त समरे सौभद्रप्रमुखान्रथान् ॥ ३३ ॥
अभियात्वा तथैवाऽन्यान्रथांस्तान्सूर्यवर्चसः ।
अविध्यन्समरेऽन्योन्यं संरम्भाद्युद्धदुर्मदाः ॥ ३४ ॥
दुर्मुखः श्रुतकर्माणं विध्वा सप्तभिराशुगैः ।
ध्वजमेकेन चिच्छेद सारथिं चाऽस्य सप्तभिः ॥ ३५ ॥
अश्वाञ्जाम्बूनदैर्जालैः प्रच्छन्नान्वातरंहसः ।
जघान षड्भिरासाद्य सारथिं चाऽभ्यपातयत् ॥ ३६ ॥
स हताश्वे रथे तिष्ठञ्श्रुतकर्मा महारथः ।
शक्तिं चिक्षेप संक्रुद्धो महोल्कां ज्वलितामिव ॥ ३७ ॥
सा दुर्मुखस्य विमलं वर्म भित्त्वा यशस्विनः ।
विदार्य प्राविशद्भूमिं दीप्यमाना स्वतेजसा ॥ ३८ ॥
तं दृष्ट्वा विरथं तत्र सुतसोमो महारथः ।
पश्यतां सर्वसैन्यानां रथमारोपयत्स्वकम् ॥ ३९ ॥

तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करने लगे। वे कङ्कपत्र-युक्त बाण क्रुद्ध हुए नाग की भाँति विकर्ण के शरीर को फोड़कर पृथ्वी में प्रवेश हो गये ॥२८।३१॥ वे सुवर्णपुङ्ख बाण विकर्ण के रक्त में सनकर रक्त वमन करते हुए-से जान पड़ने लगे। विकर्ण के अन्य भाई उन्हें सांघातिक रूप से घायल देखकर, उनकी रक्षा करने के लिए, अभिमन्यु आदि बारहों महारथियों की ओर दौड़े। इस प्रकार उन लोगों का परस्पर घोर समर होने लगा। युद्धपरायण दोनों ओर के वीर एक दूसरे पर प्रहार करने लगे ॥३२।३४॥ दुर्मुख ने श्रुतकर्मा को सात बाण मारे। फिर एक बाण से रथ की ध्वजा काटकर सात बाणों से सारथी को मार डाला। इसके अनन्तर सुवर्ण की जाली में ढके हुए, वायु के समान वेग से जानेवाले, घोड़ों को भी छः बाणों से मार डाला। महारथी श्रुतकर्मा ने बिना सारथी और बिना घोड़ों के रथ पर से उल्का के समान प्रज्वलित एक भयानक शक्ति दुर्मुख के ऊपर फेंकी ॥३५।३७॥ वह विकट शक्ति दुर्मुख का कवच

श्रुतकीर्तिस्तथा वीरो जयत्सेनं सुतं तव ।
अभ्ययात्समरे राजन्हन्तुकामो यशस्विनम् ॥ ४० ॥
तस्य विक्षिपतश्चापं श्रुतकीर्तेर्महास्वनम् ।
चिच्छेद समरे तूर्णं जयत्सेनः सुतस्तव ॥ ४१ ॥
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन प्रहसन्निव भारत ।
तं दृष्ट्वा छिन्नधन्वानं शतानीकः सहोदरम् ॥ ४२ ॥
अभ्यपद्यत तेजस्वी सिंहवन्निनदन्मुहुः ।
शतानीकस्तु समरे दृढं विस्फार्य कार्मुकम् ॥ ४३ ॥
विव्याध दशभिस्तूर्णं जयत्सेनं शिलीमुखैः ।
ननाद सुमहानादं प्रभिन्न इव वारणः ॥ ४४ ॥
अथाऽन्येन सुतीक्ष्णेन सर्वावरणभेदिना ।
शतानीको जयत्सेनं विव्याध हृदये भृशम् ॥ ४५ ॥
तथा तस्मिन्वर्तमाने दुष्कर्णो भ्रातुरन्तिके ।
चिच्छेद समरे चापं नाकुलेः क्रोधमूर्च्छितः ॥ ४६ ॥
अथाऽन्यद्धनुरादाय भारसाहमनुत्तमम् ।
समादत्त शरान्घोराञ्शतानीको महाबलः ॥ ४७ ॥
तिष्ठ तिष्ठेति चाऽऽमन्त्र्य दुष्कर्णं भ्रातुरग्रतः ।
मुमोचाऽस्मै शितान्बाणाञ्ज्वलितान्पन्नगानिव ॥ ४८ ॥

को तोडकर पृथ्वी मे प्रवेश हो गई। श्रुतकर्मा को रथ-हीन देखकर महाबली सुतसोम ने सब सेना के सामने अपने रथ पर बिठा लिया। अब महावीर श्रुतकीर्ति आपके पुत्र यशस्वी जयसेन को मारने के लिए उनकी ओर चले ॥३८।४०॥ महावीर श्रुतकीर्ति धनुष चढाकर उन पर बाण बरसाने लगे। इसी समय आपके पुत्र जयसेन ने तीक्ष्ण क्षुरप्र बाण से उनका धनुष काट डाला। शतानीक ने अपने भाई का धनुष कटे देखकर जयसेन पर आक्रमण किया। शतानीक ने दृढ धनुष चढाकर जयसेन को दस बाण मारे। फिर महावीर शतानीक ने गजराज की भांति गर्जकर सब प्रकार के आवरणों को तोडनेवाले तीक्ष्ण बाण जयसेन की छाती मे मारे ॥४१।४५॥ इस प्रकार नकुल के पुत्र शतानीक ने जब जयसेन को पीडित किया तब दुष्कर्ण ने क्रोध करके जयसेन के सामने ही शतानीक का बाणसहित धनुष काट डाला। अब महाबली शतानीक ने बोझ को सम्भालनेवाला अन्य श्रेष्ठ धनुष लेकर दुष्कर्ण से "ठहरो, ठहरो" कहकर क्रुद्ध सर्प के समान भयङ्कर बाण बरसाना आरम्भ किया। उन्होने एक बाण से दुष्कर्ण का धनुष काटकर दो बाणो से सारथी को मार डाला। इसके पश्चात् स्फूर्ति के साथ सात बाण दुष्कर्ण को मारे। इसी मध्य मे बारह तीक्ष्ण बाणों से उनके वायुगामी घोडों को मार डाला।

ततोऽस्य धनुरेकेन द्वाभ्यां सूतं च मारिष ।
चिच्छेद समरे तूर्णं तं च विव्याध सप्तभिः ॥ ४९ ॥
अश्वान्मनोजवांस्तस्य कर्बुरान्वातरंहसः ।
जघान निशितैस्तूर्णं सर्वान्द्वादशभिः शरैः ॥ ५० ॥
अथाऽपरेण भल्लेन सुयुक्तेनाऽऽशुपातिना ।
दुष्कर्णं सुदृढं क्रुद्धो विव्याध हृदये भृशम् ॥ ५१ ॥
स पपात ततो भूमौ वज्राहत इव द्रुमः ।
दुष्कर्णं व्यथितं दृष्ट्वा पञ्च राजन्महारथाः ॥ ५२ ॥
जिघांसन्तः शतानीकं सर्वतः पर्यवारयन् ।
छाद्यमानं शरव्रातैः शतानीकं यशस्विनम् ॥ ५३ ॥
अभ्यधावन्त संक्रुद्धाः केकयाः पञ्च सोदराः ।
तानभ्यापततः प्रेक्ष्य तव पुत्रा महारथाः ॥ ५४ ॥
प्रत्युद्ययुर्महाराज गजानिव महागजाः ।
दुर्मुखो दुर्जयश्चैव तथा दुर्मर्षणो युवा ॥ ५५ ॥
शत्रुञ्जयः शत्रुसहः सर्वे क्रुद्धा यशस्विनः ।
प्रत्युद्याता महाराज केकयान्भ्रातरः समम् ॥ ५६ ॥
रथैर्नगरसङ्काशैर्हयैर्युक्तैर्मनोजवैः ।
नानावर्णविचित्राभिः पताकाभिरलंकृतैः ॥ ५७ ॥
वरचापधरा वीरा विचित्रकवचध्वजाः ।
विविशुस्ते परं सैन्यं सिंहा इव वनाद्वनम् ॥ ५८ ॥

शतानीक ने एक भल्ल बाण ऐसा मारा कि जिससे दुष्कर्ण का हृदय फट गया। उस प्रहार से वज्राहत वृक्ष की तरह मरकर दुष्कर्ण पृथ्वी पर गिर पड़े। ॥४९।५२॥ हे राजेन्द्र! दुष्कर्ण की मृत्यु को देखकर दुर्मुख, दुर्जय, दुर्मर्षण, शत्रुञ्जय और शत्रुसह, ये आपके पाँचों पुत्र शतानीक को मारने के लिए बाणों की वर्षा करते हुए उनकी ओर दौड़े। उधर केकय देश के राजकुमार पाँचों भाई उन पाँचों महारथों से युद्ध करने दौड़े ॥५२।५६॥ यह देखकर अत्यन्त क्रुद्ध आपके पाँचों पुत्र विचित्र कवच धारणकर, धनुष हाथ में लेकर, विचित्र भूषणों से भूषित घोड़ों से युक्त और पताकाओं से अलङ्कृत रथों पर बैठकर, केकय देश के राजकुमारों पर आक्रमण करने चले। महागज जैसे महागजों पर आक्रमण करने के लिए दौड़ते हैं, वैसे ही आपके पाँचों राजकुमार चले। सिंह जैसे वन में प्रवेश करते हैं वैसे ही ये लोग शत्रुसेना के भीतर प्रवेश करने लगे। दोनों ओर के सैनिक यमराज की नगरी को मृतकों से परिपूर्ण करनेवाला घोर

तेषां सुतुमुलं युद्धं व्यतिषक्तरथद्विपम् ।
अवर्तत महारौद्रं निघ्नतामितरेतरम् ॥ ५९ ॥
अन्योन्यागस्कृतां राजन्यमराष्ट्रविवर्धनम् ।
मुहूर्तास्तमिते सूर्ये चक्रुर्युद्धं सुदारुणम् ॥ ६० ॥
रथिनः सादिनश्चाऽथ व्यकीर्यन्त सहस्रशः ।
ततः शान्तनवः क्रुद्धः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ६१ ॥
नाशयामास सेनां तां भीष्मस्तेषां महात्मनाम् ।
पञ्चालानां च सैन्यानि शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ ६२ ॥
एवं भित्वा महेष्वासः पाण्डवानामनीकिनी ।
कृत्वाऽवहारं सैन्यानां ययौ स्वशिविरं नृप ॥ ६३ ॥
धर्मराजोऽपि सम्प्रेक्ष्य धृष्टद्युम्नवृकोदरौ ।
मूर्ध्नि चैतावुपाघ्राय प्रहृष्टः शिविरं ययौ ॥ ६४ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि षष्ठदिवसावहारे ऊनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

युद्ध करने लगे। वीर योद्धा एक दूसरे को मारने और प्रहार करने लगे। रथो से रथो की, हाथियो से हाथियो की और घोडो से घोडो की मुठभेड होने लगी ॥५७।५९॥ उसी समय सूर्यनारायण अस्ताचल पर पहुँच गये। रथी और घुडसवार लोग कट कटकर गिर रहे थे। तब पितामह भीष्म ने क्रोध से अधीर होकर तीक्ष्ण बाणो से कैकेय और पाञ्चाल देश की सेना को मारकर अपनी सेना को लौटा लिया। सब लोग अपने शिविरो को लौट चले। इधर धृष्टद्युम्न और भीमसेन भी कौरवो की सेना को नष्ट करके युधिष्ठिर के पास पहुंचे। धर्मराज युधिष्ठिर भी धृष्टद्युम्न और भीमसेन से मिलकर, प्रेमपूर्वक उनका मस्तक सूँघकर, अपने शिविर को लौट चले ॥६०।६४॥

—०—

भीष्मपर्व का उनासीवॉं अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७९ ॥

अथ अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

सञ्जय उवाच—अथ शूरा महाराज परस्परकृतागसः ।
जग्मुः स्वशिविराण्येव रुधिरेण समुक्षिताः ॥ १ ॥
विश्रम्य च यथान्यायं पूजयित्वा परस्परम् ।
सन्नद्धाः समदृश्यन्त भूयो युद्धचिकीर्षया ॥ २ ॥

अस्सीवॉं अध्याय ॥ ८० ॥

सञ्जय ने कहा— हे राजेन्द्र ! रक्त से भीगे हुए क्षत्रियगण अपने शिविरो को गये। परस्पर द्रोह रखनेवाले कौरवो और पाण्डवो ने रात्रि को विश्राम किया। प्रातःकाल होने पर परस्पर यथोचित पूजा

ततस्तत्र सुतो राजंश्चिन्तयाऽभिपरिप्लुतः ।
विस्रवच्छोणिताक्ताङ्गः पप्रच्छेदं पितामहम् ॥ ३ ॥
सैन्यानि रौद्राणि भयानकानि व्यूढानि सम्यग्बहुलध्वजानि ।
विदार्य हत्वा च निपीड्य शूरास्ते पाण्डवानां त्वरिता महारथाः ॥ ४ ॥
सम्मोह्य सर्वान्युधि कीर्तिमन्तो व्यूहं च तं मकरं वज्रकल्पम् ।
प्रविश्य भीमेन रणे हतोऽस्मि घोरैः शरैर्मृत्युदण्डप्रकाशैः ॥ ५ ॥
क्रुद्धं तमुद्वीक्ष्य भयेन राजन्सम्मूर्च्छितो न लभे शान्तिमद्य ।
इच्छे प्रसादात्तव सत्यसन्ध प्राप्तुं जयं पाण्डवेयांश्च हन्तुम् ॥ ६ ॥
तेनैवमुक्तः प्रहसन्महात्मा दुर्योधनं मन्युगतं विदित्वा ।
तं प्रत्युवाचाऽविमना मनस्वी गङ्गासुतः शस्त्रभृतां वरिष्ठः ॥ ७ ॥
परेण यत्नेन विगाह्य सेनां सर्वात्मनाऽहं तव राजपुत्र ।
इच्छामि दातुं विजयं सुखं च न चाऽऽत्मानं छादयेऽहं त्वदर्थे ॥ ८ ॥
एते तु रौद्रा बहवो महारथा यशस्विनः शूरतमाः कृतास्त्राः ।
ये पाण्डवानां समरे सहाया जितक्लमा रोषविषं वमन्ति ॥ ९ ॥
ते नैव शक्याः सहसा विजेतुं वीर्योद्धताः कृतवैरास्त्वया च ।
अहं सेनां प्रतियोत्स्यामि राजन्सर्वात्मना जीवितं त्यज्य वीर ॥ १० ॥

और स्नान करके भोजन फिर कवच आदि पहनकर युद्ध को तैयार था ॥१।२॥ हे महाराज! आपके पुत्र दुर्योधन के शरीर में अनेक घाव थे और उनसे निकला हुआ रक्त शरीर में लाल चन्दन सा शोभित हो रहा था। चिन्ता से व्याकुल दुर्योधन ने भीष्म पितामह के समीप आकर कहा—पाण्डव पक्ष के योद्धा लोगों ने और पाण्डवों ने हमारी भयानक, रौद्र, व्यूह-रचना से सुरक्षित, अनेक ध्वजाओं से शोभित सेना को छिन्न भिन्न, पीडित, निहत और मोहित करके भारी यश प्राप्त किया है। हमारे दुर्भेद्य, मृत्युद्वारतुल्य मकरव्यूह में प्रवेश होकर भीमसेन ने यमदण्ड सदृश घोर बाणों से मुझे जर्जरित कर दिया है। भीमसेन को कुपित हुआ देखकर भय के मारे मैं मूर्च्छित सा हो रहा हूं। मुझे शान्ति प्राप्त नहीं होती। हे सत्यसन्ध! मैं आपके ही प्रसाद से पाण्डवों को मारकर विजय प्राप्त करना चाहता हूं ॥३।६॥ शस्त्र धारियों में श्रेष्ठ, अविचलित, मनस्वी भीष्म पितामह दुर्योधन को अत्यन्त कुपित और दीन देखकर मुसकराते हुए कहने लगे—॥७॥ हे राजेन्द्र! मैं शत्रुसेना में प्रवेश करके बड़े यत्न के साथ, यथाशक्ति पराक्रम करके, तुमको विजय और सुख का भागी बनाना चाहता हूं। मैं तुम्हारे लिए पराक्रम करने में तनिक भी कमी नहीं रखता, किन्तु ये रौद्ररूप, यशस्वी, अस्त्र निपुण, महाशूर अनेक महारथी गण समर में पाण्डवों की सहायता कर रहे हैं। वे युद्ध में न विश्रान्त होनेवाले वीर तुम्हारी सेना के ऊपर क्रोध का विष उगलते हैं। तुमने उनसे वैर बढ़ा रक्खा है ॥८।९॥ उन वीर्यशाली

रणे तवाऽर्थाय महानुभाव न जीवितं रक्ष्यतमं ममाऽद्य ।
सर्वांस्तवाऽर्थाय सदेव दैत्यान्घोरान्दहेयं किमु शत्रुसेनाम् ॥ ११ ॥
तान्पाण्डवान्योधयिष्यामि राजन्प्रियं च ते सर्वमहं करिष्ये ।
श्रुत्वैव चैतद्वचनं तदानीं दुर्योधनः प्रीतमना बभूव ॥ १२ ॥
सर्वाणि सैन्यानि ततः प्रहृष्टो निर्गच्छतेत्याह नृपांश्च सर्वान् ।
तदाज्ञया तानि विनिर्ययुर्द्रुतं गजाश्वपादातरथायुतानि ॥ १३ ॥
प्रहर्षयुक्तानि तु तानि राजन्महान्ति नानाविधशस्त्रवन्ति ।
स्थितानि नागाश्वपदातिमन्ति विरेजुराजौ तव राजन्बलानि ॥ १४ ॥
शस्त्रास्त्रविद्भिर्नरवीरयोधैरधिष्ठिताः सैन्यगणास्त्वदीयाः ।
रथौघपादातगजाश्वसङ्घैः प्रयाद्भिराजौ विधिवत्प्रणुन्नैः ॥ १५ ॥
समुद्धतं वै तरुणार्कवर्णं रजो बभौ च्छादयत्सूर्यरश्मीन् ।
रेजुः पताका रथदन्तिसंस्था वातेरिता भ्राम्यमाणाः समन्तात् ॥ १६ ॥
नानारङ्गाः समरे तत्र राजन्मेघैर्युता विद्युतः खे यथैव ।
वृन्दैःस्थिताश्चाऽपि सुसम्प्रयुक्ताश्चकाशिरे दन्तिगणाः समन्तात् ॥ १७ ॥
धनूंषि विस्फारयतां नृपाणां बभूव शब्दस्तुमुलोऽतिघोरः ।
विमथ्यतो देवमहासुरौघैर्यथाऽर्णवस्यादियुगे तदानीम् ॥ १८ ॥

वीरों को समर में इस समय कौन एकाएक जीत सकता है? परन्तु हे वीर! मैं जीवन का मोह छोड़कर तुम्हारे हित के लिए पूर्ण चेष्टा के साथ युद्ध करूँगा। मैं अपने जीवन की रक्षा न करके तुम्हारे शत्रुओं से युद्ध करूँगा। तुम्हारे लिए मैं शत्रुसेना का कौन कहे, सम्पूर्ण देवताओं और दैत्यों को भी भस्म कर सकता हूँ। मैं पाण्डवों से घोर युद्ध करके तुम्हारा प्रिय कार्य करूँगा ॥१०।११॥ यह सुनकर दुर्योधन बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्हें प्रतीति हो गई कि पितामह ने जो कुछ कहा है, वही करेंगे। अब उन्होंने सब राजाओं को और सारी सेना को युद्ध के निमित्त युद्धभूमि में चलने की आज्ञा दी। दुर्योधन की आज्ञा पाकर हजारों हाथी घोड़े, रथ, पैदल और प्रसन्नचित्त सब राजा लोग शीघ्रतापूर्वक शिविरों से निकले। अनेक शस्त्रों से शोभित आपकी अपार चतुरङ्गिणी सेना युद्धभूमि में पहुँचकर बहुत ही शोभायमान हुई ॥१२।१४॥ शस्त्र अस्त्र चलाने में चतुर वीर क्षत्रियों के द्वारा सञ्चालित आपकी सेना रथ, हाथी, घोड़े आदि के झुण्डों से शोभित हो रही थी। सेना के चलने से इतनी धूल उड़ी कि उससे सूर्य का प्रकाश तक छिप गया। रथों और हाथियों के ऊपर बड़े-बड़े झण्डे वायु से फहरा रहे थे। उस युद्धभूमि में, अनेक चिह्नों से युक्त, श्रेणीबद्ध हाथियों के झुण्ड चारों ओर आकाश में बिजलीसहित मेघों के समान शोभायमान हो रहे थे ॥१५।१७॥ सत्ययुग में देवता और दैत्य जब समुद्र को मथ रहे थे तब समुद्र से जैसा घोर गम्भीर शब्द हुआ था, वैसा ही शब्द वीरों के धनुष चढ़ाने

तदुग्रनागं बहुरूपवर्णं तवाऽऽत्मजानां समुदीर्णमेवम् ।
बभूव सैन्यं रिपुसैन्यहन्तृ युगान्तमेघौघनिभं तदानीम् ॥ १९ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मदुर्योधनसंवादे अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

पर सुनाई पड रहा था। उग्र हाथियों से युक्त, विविध रूपों और वर्णों से शोभित, क्रुद्ध शत्रुसेना को मारनेवाली वह आपकी सेना उस समय प्रलयकाल के मेघों के समान जान पडने लगी ॥१८।१९॥

भीष्मपर्व का अस्सीवां अध्याय समाप्त हुआ ॥ ८० ॥

अथ एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

सञ्जय उवाच — अथाऽऽत्मजं तव पुनर्गाङ्गेयो ध्यानमास्थितम् ।
अब्रवीद्भरतश्रेष्ठः सम्प्रहर्षकरं वचः ॥ १ ॥

भीष्म उवाच — अहं द्रोणश्च शल्यश्च कृतवर्मा च सात्वतः ।
अश्वत्थामा विकर्णश्च भगदत्तोऽथ सौवलः ॥ २ ॥
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ वाह्लीकः सह वाह्लिकैः ।
त्रिगर्तराजो वलवान्मागधश्च सुदुर्जयः ॥ ३ ॥
वृहद्वलश्च कौसल्यश्चित्रसेनो विविंशतिः ।
रथाश्च वहुसाहस्राः शोभनाश्च महाध्वजाः ॥ ४ ॥
देशजाश्च हया राजन्स्वारुढा हयसादिभि ।
गजेन्द्राश्च मदोद्वृत्ताः प्रभिन्नकरटामुखाः ॥ ५ ॥
पादाताश्च तथा शूरा नानाप्रहरणध्वजाः ।
नानादेशसमुत्पन्नास्त्वदर्थे योद्धुमुद्यताः ॥ ६ ॥
एते चाऽन्ये च वहवस्त्वदर्थे त्यक्तजीविताः ।
देवानपि रणे जेतुं समर्था इति मे मतिः ॥ ७ ॥

इक्यासीवाँ अध्याय ॥ ८१ ॥

सञ्जय ने कहा कि हे महाराज ! उस दिन चिंता में मग्न आपके पुत्र दुर्योधन से भीष्म ने ये उत्साह बढानेवाले वचन कहे—हे राजेंद्र ! मेरी बुद्धि में यह आता है कि मैं द्रोण शल्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, विकर्ण, भगदत्त, शकुनि, विन्द, अनुविन्द, वाह्लीक देश के वीरों सहित वाह्लीक, सोमदत्त, जयद्रथ, त्रिगर्तराज, बलवान् और दुर्जय मगध नरेश, कोसलनरेश बृहद्बल, चित्रसेन, विविंशति, कृपाचार्य, अनेक देशों की सशस्त्र पदल सेना, महाध्वजाओं से शोभित रथों के हजारों योद्धा, घोडों के सवार हाथियों के सवार और तुम्हारे लिए युद्ध करने को आये अनेक देशों के असंख्य योद्धा यदि जीवन का मोह छोडकर युद्ध करें तो वे देवताओं को भी पराजित कर सकते हैं।

अवश्यं हि मया राजंस्तव वाच्यं हितं सदा ।
अशक्याः पाण्डवा जेतुं देवैरपि सवासवैः ॥ ८ ॥
वासुदेवसहायाश्च महेन्द्रसमविक्रमाः ।
सर्वथाऽहं तु राजेन्द्र करिष्ये वचनं तव ॥ ९ ॥
पाण्डवांश्च रणे जेष्ये मां वा जेष्यन्ति पाण्डवाः ।
एवमुक्त्वा ददावस्मै विशल्यकरणीं शुभाम् ॥ १० ॥
ओषधीं वीर्यसम्पन्नां विशल्यश्चाऽभवत्तदा ।
ततः प्रभाते विमले स्वेन सैन्येन वीर्यवान् ॥ ११ ॥
अव्यूहत स्वयं व्यूहं भीष्मो व्यूहविशारदः ।
मण्डलं मनुजश्रेष्ठो नानाशस्त्रसमाकुलम् ॥ १२ ॥
सम्पूर्णं योधमुख्यैश्च तथा दन्तिपदातिभिः ।
रथैरनेकसाहस्रैः समन्तात्परिवारितम् ॥ १३ ॥
अश्ववृन्दैर्महद्भिश्च ऋष्टितोमरधारिभिः ।
नागे नागे रथाः सप्त सप्त चाऽश्वा रथे रथे ॥ १४ ॥
अन्वश्वं दश धानुष्का धानुष्के दश चर्मिणः ।
एवं व्यूढं महाराज तव सैन्यं महारथैः ॥ १५ ॥
स्थितं रणाय महते भीष्मेण युधि पालितम् ।
दशाऽश्वानां सहस्राणि दन्तिनां च तथैव च ॥ १६ ॥

रथानामयुतं चाऽपि पुत्राश्च तव दंशिताः ।
चित्रसेनादयः शूरा अभ्यरक्षन्पितामहम् ॥ १७ ॥
रक्ष्यमाणः स तैः शूरैर्गोप्यमानाश्च तेन ते ।
सन्नद्धाः समदृश्यन्त राजानश्च महाबलाः ॥ १८ ॥
दुर्योधनस्तु समरे दंशितो रथमास्थितः ।
व्यराजत श्रिया जुष्टो यथा शक्रस्त्रिविष्टपे ॥ १९ ॥
ततः शब्दो महानासीत्पुत्राणां तव भारत ।
रथघोषश्च विपुलो वादित्राणां च निःस्वनः ॥ २० ॥
भीष्मेण धार्तराष्ट्राणां व्यूहः प्रत्यङ्मुखो युधि ।
मण्डलः स महाव्यूहो दुर्भेद्योऽमित्रघातनः ॥ २१ ॥
सर्वतः शुशुभे राजन्रणेऽरीणां दुरासदः ।
मण्डलं तु समालोक्य व्यूहं परमदुर्जयम् ॥ २२ ॥
स्वयं युधिष्ठिरो राजा वज्रं व्यूहमथाऽकरोत् ।
तथा व्यूढेष्वनीकेषु यथास्थानमवस्थिताः ॥ २३ ॥
रथिनः सादिनः सर्वे सिंहनादमथाऽनदन् ।
बिभित्सवस्ततो व्यूहं निर्ययुर्युद्धकांक्षिणः ॥ २४ ॥
इतरेतरतः शूराः सहसैन्याः प्रहारिणः ।
भारद्वाजो ययौ मत्स्यं द्रौणिश्चापि शिखण्डिनम् ॥ २५ ॥
स्वयं दुर्योधनो राजा पार्षतं समुपाद्रवत् ।
नकुलः सहदेवश्च मद्रराजानमीयतुः ॥ २६ ॥

॥१४।१७॥ सभी महाबली राजा जब कवच आदि पहनकर प्रस्तुत हो गये तब राजा दुर्योधन कवच पहनकर रथ पर सवार हुए। उस समय वे स्वर्ग में स्थित इन्द्र के समान शोभायमान हुए। आपके पुत्र घोर सिंहनाद करने लगे। निरन्तर रथों की घरघराहट और बाजों का शब्द बढ़ने लगा। शत्रुओं के लिए अभेद्य, महावीर भीष्मरचित, कौरवों की सेना का मण्डलाकार व्यूह बहुत ही शोभित हुआ। उस का मुख पश्चिम की ओर था ॥१८।२२॥ धर्मराज युधिष्ठिर ने मण्डल-व्यूह देखकर वज्र-व्यूह की रचना की। उनकी ओर के रथ, हाथी और घोड़े यथास्थान स्थित हो गये। योद्धा लोग सिंहनाद करने लगे। दोनों ओर के वीर पुरुष तरह-तरह के अस्त्र-शस्त्र लेकर युद्ध करने और व्यूह तोड़ने के सङ्कल्प से आगे बढ़े ॥२३।२५॥ महावीर द्रोण मत्स्यराज से, अश्वत्थामा शिखण्डी से, महाराज दुर्योधन द्रुपद से, नकुल और सहदेव मद्रराज शल्य से तथा अवन्ति देश के विन्द और अनुविन्द इरावान् से द्वन्द्वयुद्ध करने लगे।

विन्दानुविन्दावावन्त्याविरावन्तमभिद्रुतौ ।
सर्वे नृपास्तु समरे धनञ्जयमयोधयन् ॥ २७ ॥
भीमसेनो रणे यान्तं हार्दिक्यं समवारयत् ।
चित्रसेनं विकर्णं च तथा दुर्मर्षणं विभुः ॥ २८ ॥
आर्जुनिः समरे राजंस्तव पुत्रानयोधयत् ।
प्राग्ज्योतिषो महेष्वासो हैडिम्बं राक्षसोत्तमम् ॥ २९ ॥
अभिदुद्राव वेगेन मत्तो मत्तमिव द्विपम् ।
अलम्बुषस्तदा राजन्सात्यकिं युद्धदुर्मदम् ॥ ३० ॥
ससैन्यं समरे क्रुद्धो राक्षसः समुपाद्रवत् ।
भूरिश्रवा रणे यत्तो धृष्टकेतुमयोधयत् ॥ ३१ ॥
श्रुतायुषं च राजानं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
चेकितानश्च समरे कृपमेवाऽन्वयोधयत् ॥ ३२ ॥
शेषाः प्रतिययुर्यत्ता भीष्ममेव महारथम् ।
ततो राजसमूहास्ते परिवव्रुर्धनञ्जयम् ॥ ३३ ॥
शक्तितोमरनाराचगदापरिघपाणयः ।
अर्जुनोऽथ भृशं क्रुद्धो वार्ष्णेयमिदमब्रवीत् ॥ ३४ ॥
पश्य माधव सैन्यानि धार्तराष्ट्रस्य संयुगे ।
व्यूढानि व्यूहविदुषा गाङ्गेयेन महात्मना ॥ ३५ ॥
युद्धाभिकामाञ्शूरांश्च पश्य माधव दंशितान् ।
त्रिगर्त्तराजं सहितं भ्रातृभिः पश्य केशव ॥ ३६ ॥

अन्य राजा लोग मिलकर महावीर अर्जुन से भिड़ गये। महारथी भीमसेन ने बड़े यत्न के साथ वेग से हार्दिक्य पर आक्रमण किया। अभिमन्यु ने चित्रसेन, विकर्ण और दुर्मर्षण पर आक्रमण किया ॥२८।२९॥ और मदोन्मत्त हाथी परस्पर भिड़ते हैं वैसे ही राक्षस घटोत्कच राजा भगदत्त से युद्ध करने लगा। उधर राक्षस अलम्बुष क्रोध से अधीर होकर सेना सहित सात्यकि के सम्मुख आया। भूरिश्रवा का धृष्टकेतु से, धर्मराज युधिष्ठिर का श्रुतायुष से और चेकितान का कृपाचार्य से घोर युद्ध छिड़ गया ॥३०।३२॥ अन्यान्य वीरगण तत्परता के साथ भीमसेन के सम्मुख उपस्थित हुए। उस समय सहस्रों क्षत्रिय राजा शक्ति, तोमर, नाराच, गदा, परिघ आदि शस्त्र लेकर चारों ओर से अर्जुन पर आक्रमण करने लगे। उनके मध्य में घिर जाने पर, अत्यन्त क्रुद्ध होकर, महावीर अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा — हे श्रीकृष्ण! देखो, महानुभाव भीष्म ने दुर्योधन के लिए व्यूह-रचना की है, युद्ध में वीर समर के लिए सम्मुख

अथैतान्नाशयिष्यामि पश्यतस्ते जनार्दन ।
य इमे मां यदुश्रेष्ठ योद्धुकामा रणाजिरे ॥ ३७ ॥
एतदुक्त्वा तु कौन्तेयो धनुर्ज्यामवमृज्य च ।
ववर्ष शरवर्षाणि नराधिपगणान्प्रति ॥ ३८ ॥
तेऽपि तं परमेष्वासाः शरवर्षैरपूरयन् ।
तडागं वारिधाराभिर्यथा प्रावृषि तोयदाः ॥ ३९ ॥
हाहाकारो महानासीत्तव सैन्ये विशाम्पते ।
छाद्यमानौ रणे कृष्णौ शरैर्दृष्ट्वा महारणे ॥ ४० ॥
देवा देवर्षयश्चैव गन्धर्वाश्च सहोरगैः ।
विस्मयं परमं जग्मुर्दृष्ट्वा कृष्णौ तथा गतौ ॥ ४१ ॥
ततः क्रुद्धोऽर्जुनो राजन्नैन्द्रमस्त्रमुदैरयत् ।
तत्राऽद्भुतमपश्याम विजयस्य पराक्रमम् ॥ ४२ ॥
शस्त्रवृष्टिं परैर्मुक्तां शरौघैर्यदवारयत् ।
न च तत्राऽप्यनिर्भिन्नः कश्चिदासीद्विशाम्पते ॥ ४३ ॥
तेषां राजसहस्राणां हयानां दन्तिनां तथा ।
द्वाभ्यां त्रिभिः शरैश्चाऽन्यान्पार्थो विव्याध मारिष ॥ ४४ ॥
ते हन्यमानाः पार्थेन भीष्मं शान्तनवं ययुः ।
अगाधे मज्जमानानां भीष्मः पोतोऽभवत्तदा ॥ ४५ ॥
आपतद्भिस्तु तैस्तत्र प्रभग्नं तावकं बलम् ।
संचुक्षुभे महाराज वातैरिव महार्णवः ॥ ४६ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि सप्तमयुद्धदिवसे एकाशीतितमोऽध्याय ॥ ८१ ॥

खड़े हैं। भाइयों सहित त्रिगर्त देश के राजा भी युद्ध करने आये हैं। इस समय युद्ध की इच्छा से जो लोग मेरे सन्मुख आये हैं, उनको मैं तुम्हारे सन्मुख ही मार डालूंगा ॥३३।३७॥ अब धनुष की डोरी बजाकर वीर अर्जुन सब राजाओं पर बाण-वर्षा करने लगे। वर्षाकाल में जैसे बादलों की जलधारा से तालाब भर जाते हैं, वैसे ही राजाओं के बाणजाल में श्रीकृष्ण और अर्जुन ढँक गये। यह देखकर आपकी सेना अत्यन्त आनन्द कोलाहल करने लगी ॥३८।४०॥ देवता, ऋषि, गन्धर्व और नागगण अत्यन्त विस्मित हुए। तब अर्जुन ने क्रोध से अधीर होकर शत्रुसेना पर ऐन्द्र अस्त्र छोड़ा। हम लोग अर्जुन का अद्भुत पराक्रम देखने लगे। वे अपने अस्त्रों से शत्रुओं के अस्त्रों को रोककर सबको घायल करने लगे। कौरवों की सेना के सहस्रों राजाओं में ऐसा कोई न था जिसे दो, तीन या एक बाण से अर्जुन ने घायल न किया हो

विन्दानुविन्दावावन्त्याविरावन्तमभिद्रुतौ ।
सर्वे नृपास्तु समरे धनञ्जयमयोधयन् ॥ २७ ॥
भीमसेनो रणे यान्तं हार्दिक्यं समवारयत् ।
चित्रसेनं विकर्णं च तथा दुर्मर्षणं विभुः ॥ २८ ॥
आर्जुनिः समरे राजंस्तव पुत्रानयोधयत् ।
प्राग्ज्योतिषो महेष्वासो हैडिम्बं राक्षसोत्तमम् ॥ २९ ॥
अभिदुद्राव वेगेन मत्तो मत्तमिव द्विपम् ।
अलम्बुषस्तदा राजन्सात्यकिं युद्धदुर्मदम् ॥ ३० ॥
ससैन्यं समरे क्रुद्धो राक्षसः समुपाद्रवत् ।
भूरिश्रवा रणे यत्तो धृष्टकेतुमयोधयत् ॥ ३१ ॥
श्रुतायुषं च राजानं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
चेकितानश्च समरे कृपमेवाऽन्वयोधयत् ॥ ३२ ॥
शेषाः प्रतिययुर्यत्ता भीष्ममेव महारथम् ।
ततो राजसमूहास्ते परिवव्रुर्धनञ्जयम् ॥ ३३ ॥
शक्तितोमरनाराचगदापरिघपाणयः ।
अर्जुनोऽथ भृशं क्रुद्धो वार्ष्णेयमिदमब्रवीत् ॥ ३४ ॥
पश्य माधव सैन्यानि धार्तराष्ट्रस्य संयुगे ।
व्यूढानि व्यूहविदुषा गाङ्गेयेन महात्मना ॥ ३५ ॥
युद्धाभिकामाञ्शूरांश्च पश्य माधव दंशितान् ।
त्रिगर्तराजं सहितं भ्रातृभिः पश्य केशव ॥ ३६ ॥

अन्य राजा लोग मिलकर महावीर अर्जुन से भिड़ गये। महावीर भीमसेन ने बड़े यत्न के साथ वेग से हार्दिक्य पर आक्रमण किया। अभिमन्यु ने चित्रसेन, विकर्ण और दुर्मर्षण पर आक्रमण किया ॥२७-२९॥ जैसे मदोन्मत्त हाथी परस्पर भिड़ते हैं वैसे ही राक्षस घटोत्कच राजा भगदत्त से युद्ध करने लगा। उधर राक्षस अलम्बुष क्रोध से अधीर होकर सेना के साथ रणदुर्मद सात्यकि के सम्मुख आया। भूरिश्रवा धृष्टकेतु से, धर्मराज युधिष्ठिर श्रुतायु से और चेकितान का कृपाचार्य से घोर युद्ध छिड़ गया ॥२९-३२॥ अन्यान्य वीरगण तत्परता के साथ भीमसेन के सम्मुख उपस्थित हुए। उस समय सहस्रों क्षत्रिय राजा शक्ति, तोमर, नाराच, गदा, परिघ आदि शस्त्र लेकर चारों ओर से अर्जुन पर आक्रमण करने लगे। उनके मध्य में घिर जाने पर, अत्यन्त क्रुद्ध होकर, महावीर अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा - हे श्रीकृष्ण ! देखो, व्यूहानुसार भीष्म ने दुर्योधन के लिए व्यूह-रचना की है, यहाँ से वीर समर के लिए सम्मुख

अथैतान्नाशयिष्यामि पश्यतस्ते जनार्दन ।
य इमे मां यदुश्रेष्ठ योद्धुकामा रणाजिरे ॥ ३७ ॥
एतदुक्त्वा तु कौन्तेयो धनुर्ज्यामवमृज्य च ।
ववर्ष शरवर्षाणि नराधिपगणान्प्रति ॥ ३८ ॥
तेऽपि तं परमेष्वासा शरवर्षैरपूरयन् ।
तडागं वारिधाराभिर्यथा प्रावृषि तोयदाः ॥ ३९ ॥
हाहाकारो महानासीत्तत्र सैन्ये विशाम्पते ।
छाद्यमानौ रणे कृष्णौ शरैर्दृष्ट्वा महारणे ॥ ४० ॥
देवा देवर्षयश्चैव गन्धर्वाश्च सहोरगैः ।
विस्मयं परमं जग्मुर्दृष्ट्वा कृष्णौ तथा गतौ ॥ ४१ ॥
ततः क्रुद्धोऽर्जुनो राजन्नैन्द्रमस्त्रमुदैरयत् ।
तत्राऽद्भुतमपश्याम विजयस्य पराक्रमम् ॥ ४२ ॥
शस्त्रवृष्टिं परैर्मुक्तां शरौघैर्यदवारयत् ।
न च तत्राऽप्यनिर्भिन्नः कश्चिदासीद्विशाम्पते ॥ ४३ ॥
तेषां राजसहस्राणां हयानां दन्तिनां तथा ।
द्वाभ्यां त्रिभिः शरैश्चाऽन्यान्पार्थो विव्याध मारिष॥ ४४ ॥
ते हन्यमानाः पार्थेन भीष्मं शान्तनवं ययुः ।
अगाधे मज्जमानानां भीष्मः पोतोऽभवत्तदा ॥ ४५ ॥
आपतद्भिस्तु तैस्तत्र प्रभग्नं तावकं बलम् ।
संचुक्षुभे महाराज वातैरिव महार्णवः ॥ ४६ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि सप्तमयुद्धदिवसे एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

खड़े हैं। भाइयों सहित त्रिगर्त देश के राजा भी युद्ध करने आये हैं। इस समय युद्ध की इच्छा से जो लोग मेरे सन्मुख आये हैं, उनको मैं तुम्हारे सम्मुख ही मार डालूँगा ॥३३।३७॥ अब धनुष की डोरी चढ़ाकर और अर्जुन सब ओरों पर बाण-वर्षा करने लगे। वर्षाकाल में जैसे बादलों की जलधारा से तालाब भर जाते हैं, वैसे ही राजाओं के बाणजाल से श्रीकृष्ण और अर्जुन ढँक गये। यह देखकर आपकी सेना अत्यन्त आनन्द कोलाहल करने लगी ॥३८।४०॥ देवता, ऋषि, गन्धर्व और नागगण अत्यन्त विस्मित हुए। तब अर्जुन ने क्रोध से अधीर होकर शत्रुसेना पर ऐन्द्र अस्त्र छोड़ा। हम लोग अर्जुन का अद्भुत पराक्रम देखने लगे। वे अपने अस्त्रों से शत्रुओं के अस्त्रों को रोककर सबको घायल करने लगे। राजाओं की सेना के सहस्रों राजाओं में ऐसा कोई न था जिसे दो, तीन या एक बाण से अर्जुन ने घायल न किया हो

॥४१।४३॥ उन्होंने अस्त्र के प्रभाव से सेनाभर के हाथियों, घोड़ों, रथों के सवारों और पदलों को दो-दो तीन-तीन बाणों से घायल कर दिया। अर्जुन के बाणों से पीड़ित सब लोग रक्षा के लिए पितामह भीष्म के पास पहुंचे। अथाह सङ्कट-सागर में पड़े सैनिकों के लिए भीष्म पितामह उबारनेवाली नाव हुए। तूफान उठने से महासागर की तरह, अर्जुन के प्रहारों से आपकी सारी सेना क्षोभ को प्राप्त हो गई ॥४४।४६॥

भीष्मपर्व का इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ८१ ॥

अथ द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

सञ्जय उवाच

तथा प्रवृत्ते संग्रामे निवृत्ते च सुशर्मणि ।
भग्नेषु चापि वीरेषु पाण्डवेन महात्मना ॥ १ ॥
क्षुभ्यमाणे बले तूर्णं सागरप्रतिमे तव ।
प्रत्युद्याते च गाङ्गेय त्वरितं विजयं प्रति ॥ २ ॥
दृष्ट्वा दुर्योधनो राजा रणे पार्थस्य विक्रमम् ।
त्वरमाणः समभ्येत्य सर्वांस्तानब्रवीन्नृपान् ॥ ३ ॥
तेषां तु प्रमुखे शूरं सुशर्माणं महाबलम् ।
मध्ये सर्वस्य सैन्यस्य भृशं संहर्षयन्निव ॥ ४ ॥
एष भीष्मः शान्तनवो योद्धुकामो धनञ्जयम् ।
सर्वात्मना कुरुश्रेष्ठस्त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ॥ ५ ॥
तं प्रयान्तं रणे वीरं सर्वसैन्येन भारतम् ।
संयत्ताः समरे सर्वे पालयध्वं पितामहम् ॥ ६ ॥
बाढमित्येवमुक्त्वा तु तान्यनीकानि सर्वशः ।
नरेन्द्राणां महाराज समाजग्मुः पितामहम् ॥ ७ ॥

ततः प्रयातः सहसा भीष्मः शान्तनवोऽर्जुनम् ।
रणे भारतमायान्तमाससाद महाबलः ॥ ८ ॥
महाश्वेताश्वयुक्तेन भीमवानरकेतुना ।
महता मेघनादेन रथेनाऽतिविराजता ॥ ९ ॥
समरे सर्वसैन्यानामुपयान्तं धनञ्जयम् ।
अभवत्तुमुलो नादो भयाद् दृष्ट्वा किरीटिनम् ॥ १० ॥
अभीषुहस्तं कृष्णं च दृष्ट्वाऽऽदित्यमिवाऽपरम् ।
मध्यन्दिनगतं संख्ये न शेकुः प्रतिवीक्षितुम् ॥ ११ ॥
तथा शान्तनवं भीष्मं श्वेताश्वं श्वेतकार्मुकम् ।
न शेकुः पाण्डवा द्रष्टुं श्वेतं ग्रहमिवोदितम् ॥ १२ ॥
स सर्वतः परिवृतस्त्रिगर्तैः सुमहात्मभिः ।
भ्रातृभिः सह पुत्रैश्च तथाऽन्यैश्च महारथः ॥ १३ ॥
भारद्वाजस्तु समरे मत्स्यं विव्याध पत्रिणा ।
ध्वजं चाऽस्य शरेणाऽऽजौ धनुश्चैकेन चिच्छिदे ॥ १४ ॥
तदपास्य धनुश्छिन्नं विराटो वाहिनीपतिः ।
अन्यदादत्त वेगेन धनुर्भारसहं दृढम् ॥ १५ ॥
शरांश्चाऽऽशीविषाकाराञ्ज्वलितान्पन्नगानिव ।
द्रोणं त्रिभिश्च विव्याध चतुर्भिश्चाऽस्य वाजिनः ॥ १६ ॥
ध्वजमेकेन विव्याध सारथिं चाऽस्य पञ्चभिः ।
धनुरेकेषुणाऽविध्यत्तत्राऽक्रुध्यद् द्विजर्षभः ॥ १७ ॥

देखकर आपके पक्ष के सैनिकगण भय के मारे आर्त नाद करने लगे। मध्याह्न के सूर्य के समान तेजस्वी श्रीकृष्ण, घोड़ों की रास हाथ में लिये, रथ पर विराजमान थे। उनकी ओर कोई नेत्र उठाकर भी देख नहीं सकता था ॥७।११॥ ऐसे ही श्वेत घोड़ोंवाले रथ पर, श्वेत धनुष धारण किये, आकाश में स्थित श्वेत शुक्र ग्रह के समान भीष्म पितामह की ओर पाण्डव लोग भी अच्छी प्रकार देख नहीं सकते थे। त्रिगर्तदेश के राजा, राजपुत्र, राजा के भाई और अन्य महारथी लोग भीष्म के चारों ओर रहकर उनकी रक्षा कर रहे थे ॥१२।१३॥ द्रोणाचार्य ने एक विकट बाण विराट के हृदय में मारकर कई बाणों से उनका धनुष और ध्वजा काट डाला। विराट ने उसी क्षण वह कटा हुआ धनुष फेंककर और एक बहुत ही दृढ़ धनुष हाथ में लिया। उस पर ज्वलित मुख सर्प के समान बहुत से बाण चढ़ा कर उन्होंने तीन बाण द्रोण को मारे, चार बाणों से उनके घोड़े मार डाले, एक बाण से उनका ध्वजा

तस्य द्रोणोऽवधीदश्वाञ्शरैः सन्नतपर्वभिः ।
अष्टाभिर्भरतश्रेष्ठ सूतमेकेन पत्रिणा ॥ १८ ॥
स हताश्वादवप्लुत्य स्यन्दनाद्धतसारथिः ।
आरुरोह रथं तूर्णं पुत्रस्य रथिनां वरः ॥ १९ ॥
ततस्तु तौ पितापुत्रौ भारद्वाजं रथे स्थितौ ।
महता शरवर्षेण वारयामासतुर्बलात् ॥ २० ॥
भारद्वाजस्ततः क्रुद्धः शरमाशीविषोपमम् ।
चिक्षेप समरे तूर्णं शङ्खं प्रति जनेश्वर ॥ २१ ॥
स तस्य हृदयं भित्त्वा पीत्वा शोणितमाहवे ।
जगाम धरणीं बाणो लोहितार्द्रवरच्छदः ॥ २२ ॥
स पपात रणे तूर्णं भारद्वाजशराहतः ।
धनुस्त्यक्त्वा शरांश्चैव पितुरेव समीपतः ॥ २३ ॥
हतं तमात्मजं दृष्ट्वा विराटः प्राद्रवद्भयात् ।
उत्सृज्य समरे द्रोणं व्यात्ताननमिवाऽन्तकम् ॥ २४ ॥
भारद्वाजस्ततस्तूर्णं पाण्डवानां महाचमूम् ।
दारयामास समरे शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २५ ॥
शिखण्डी तु महाराज द्रौणिमासाद्य संयुगे ।
आजघान भ्रुवोर्मध्ये नाराचैस्त्रिभिराशुगैः ॥ २६ ॥
स बभौ रथशार्दूलो ललाटे संस्थितैस्त्रिभिः ।
शिखरैः काञ्चनमयैर्मेरुस्त्रिभिरिवोच्छ्रितैः ॥ २७ ॥

काट डाला, एक बाण से उनका धनुष काट डाला और पाँच बाणों से उनके सारथि को मार गिराया। द्रोणाचार्य ने भी क्रोध में अधीर होकर आठ बाणों से उनके घोड़े और सारथि को मार गिराया ॥१७। १८॥ तब विराट अपने रथ से उतरकर कुँअर शङ्ख के रथ पर चढ़ गये और अपने कुमार के साथ उन्होंने द्रोणाचार्य के ऊपर इतने बाण बरसाये कि वे प्रहार नहीं कर सके। द्रोणाचार्य ने क्रोध करके शङ्ख को एक विषैला बाण मारा। वह बाण शङ्ख का हृदय विदीर्ण कर, रक्त पीकर रुधिररञ्जित हो पृथ्वी में प्रवेश हो गया। द्रोण के बाण से पीड़ित राजकुमार शङ्ख पिता के सम्मुख पृथ्वी पर गिर पड़े। उनके हाथ से धनुष-बाण छूटकर गिर गया ॥१९।२३॥ विराट ने जब अपने पुत्र की मृत्यु देखी तब वे मुख फैलाये हुए काल के समान द्रोणाचार्य को छोड़कर भयभीत हो युद्ध से हट गये। अब महारथी द्रोणाचार्य पाण्डवपक्ष की सेना को, सैकड़ों हजारों की संख्या में संहार करने लगे। शिखण्डी ने अश्वत्थामा

अश्वत्थामा ततः क्रुद्धो निमेषार्धाच्छिखण्डिनः ।
ध्वजं सूतमथो राजंस्तुरगानायुधानि च ॥ २८ ॥
शरैर्बहुभिराच्छिद्य पातयामास संयुगे ।
स हताश्वादवप्लुत्य रथाद्वै रथिनां वरः ॥ २९ ॥
खड्गमादाय सुशितं विमलं च शरावरम् ।
श्येनवद्व्यचरत्क्रुद्धः शिखण्डी शत्रुतापनः ॥ ३० ॥
सखड्गस्य महाराज चरतस्तस्य संयुगे ।
नाऽन्तरं ददृशे द्रौणिस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ३१ ॥
ततः शरसहस्राणि बहूनि भरतर्षभ ।
प्रेषयामास समरे द्रौणिः परमकोपनः ॥ ३२ ॥
तामापतन्तीं समरे शरवृष्टिं सुदारुणाम् ।
असिना तीक्ष्णधारेण चिच्छेद बलिनां वरः ॥ ३३ ॥
ततोऽस्य विमलं द्रौणिः शतचन्द्रं मनोरमम् ।
चर्माऽच्छिनदसिं चाऽस्य खण्डयामास संयुगे ॥ ३४ ॥
शितैस्तु बहुशो राजन्तं च विव्याध पत्रिभिः ।
शिखण्डी तु ततः खड्गं खण्डितं तेन सायकैः ॥ ३५ ॥
आविध्य व्यसृजत्तूर्णं ज्वलन्तमिव पन्नगम् ।
तमापतन्तं सहसा कालानलसमप्रभम् ॥ ३६ ॥
चिच्छेद समरे द्रौणिर्दर्शयन्पाणिलाघवम् ।
शिखण्डिनं च विव्याध शरैर्बहुभिरायसैः ॥ ३७ ॥

के पास जाकर उनकी भौंहों के मध्य में तीन बाण मारे। मस्तक में लगे हुए तीन बाणों से अश्वत्थामा तीन उन्नत शिखरों से शोभित सुवर्णमय सुमेरु पर्वत के समान जान पड़ने लगे ॥२४-२७॥ उन्होंने क्रुद्ध होकर शिखण्डी के सारथी, ध्वजा और घोड़े आदि को कई बाणों से नष्ट कर दिया। अब शिखण्डी रथ से उतरकर तीक्ष्ण तलवार और ढाल लेकर क्रोधपूर्वक श्येन पक्षी की भाँति झपटते हुए शत्रुओं को नष्ट करने लगे। अश्वत्थामा को उन पर प्रहार करने का अवकाश ही न मिला। यह सबको बड़े आश्चर्य की बात जान पड़ी ॥२८-३१॥ इसके अनन्तर वे क्रोध से अधीर होकर शिखण्डी के ऊपर हजारों बाण बरसाने लगे। परन्तु शिखण्डी ने तीक्ष्ण तलवार से उन दारुण बाणों के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। तब अश्वत्थामा ने पहले तिल-तिल कर कई बाणों से शतचन्द्रचिह्नित ढाल-तलवार और ध्वज काटकर शिखण्डी के शरीर को छिन्न-भिन्न करना आरम्भ किया। शिखण्डी ने उन

शिखण्डी तु भृशं राजंस्ताड्यमानः शितैः शरैः ।
आरुरोह रथं तूर्णं माधवस्य महात्मनः ॥ ३८ ॥
सात्यकिश्चाऽपि संक्रुद्धो राक्षसं क्रूरमाहवे ।
अलम्बुषं शरैस्तीक्ष्णैर्विव्याध बलिनां वरः ॥ ३९ ॥
राक्षसेन्द्रस्ततस्तस्य धनुश्छिच्छेद भारत ।
अर्धचन्द्रेण समरे तं च विव्याध सायकैः ॥ ४० ॥
मायां च राक्षसीं कृत्वा शरवर्षैरवाकिरत् ।
तत्राऽद्भुतमपश्याम शैनेयस्य पराक्रमम् ॥ ४१ ॥
असम्भ्रमस्तु समरे वध्यमानः शितैः शरैः ।
ऐन्द्रमस्त्रं च वार्ष्णेयो योजयामास भारत ॥ ४२ ॥
विजयाद्यदनुप्राप्तं माधवेन यशस्विना ।
तदस्त्रं भस्मसात्कृत्वा मायां तां राक्षसीं तदा ॥ ४३ ॥
अलम्बुषं शरैरन्यैरभ्याकिरत सर्वतः ।
पर्वतं वारिधाराभिः प्रावृषीव बलाहकः ॥ ४४ ॥
तत्तथा पीडितं तेन माधवेन यशस्विना ।
प्रदुद्राव भयाद्रक्षस्त्यक्त्वा सात्यकिमाहवे ॥ ४५ ॥
तमजेयं राक्षसेन्द्रं संख्ये मघवता अपि ।
शैनेयः प्राणदज्जित्वा योधानां तत्र पश्यताम् ॥ ४६ ॥

न्यहनत्तावकांश्चाऽपि सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
निशितैर्बहुभिर्बाणैस्तेऽद्रवन्त भयार्दिताः ॥ ४७ ॥
एतस्मिन्नेव काले तु द्रुपदस्याऽऽत्मजो बली ।
धृष्टद्युम्नो महाराज पुत्रं तव जनेश्वरम् ॥ ४८ ॥
छादयामास समरे शरैः सन्नतपर्वभिः ।
स च्छाद्यमानो विशिखैर्धृष्टद्युम्नेन भारत ॥ ४९ ॥
विव्यथे न च राजेन्द्र तव पुत्रो जनेश्वर ।
धृष्टद्युम्नं च समरे तूर्णं विव्याध पत्रिभिः ॥ ५० ॥
षष्ट्या च त्रिंशता चैव तदद्भुतमिवाऽभवत् ।
तस्य सेनापतिः क्रुद्धो धनुश्चिच्छेद मारिष ॥ ५१ ॥
हयांश्च चतुरः शीघ्रं निजघान महाबलः ।
शरैश्चैनं सुनिशितैः क्षिप्रं विव्याध सप्तभिः ॥ ५२ ॥
स हताश्वान्महाबाहुरवप्लुत्य रथाद्बली ।
पदातिरसिमुद्यम्य प्राद्रवत्पार्षतं प्रति ॥ ५३ ॥
शकुनिस्तं समभ्येत्य राजगृद्धी महाबलः ।
राजानं सर्वलोकस्य रथमारोपयत्स्वकम् ॥ ५४ ॥
ततो नृपं पराजित्य पार्षतः परवीरहा ।
न्यहनत्तावकं सैन्यं वज्रपाणिरिवाऽसुरान् ॥ ५५ ॥
कृतवर्मा रणे भीमं शरैरार्च्छन्महारथः ।
प्रच्छादयामास च तं महामेघो रविं यथा ॥ ५६ ॥
ततः प्रहस्य समरे भीमसेनः परन्तपः ।
प्रेषयामास संक्रुद्धः सायकान्कृतवर्मणे ॥ ५७ ॥

हुए ॥४३।४७॥ इसी समय महाबली धृष्टद्युम्न ने राजा दुर्योधन को विकट बाणों से विकल कर दिया; किन्तु दुर्योधन ने भी बड़ी स्फूर्ति के साथ धृष्टद्युम्न के मर्मस्थलों में नब्बे बाण मारे। तब सेनापति धृष्टद्युम्न ने क्रुद्ध होकर दुर्योधन का धनुष काट डाला, चारों घोड़ों को मार गिराया और उन्हें तीक्ष्ण सात बाणों से पीड़ित किया ॥४८।५२॥ राजा दुर्योधन रथ से उतरकर, खड्ग लेकर, पैदल ही धृष्टद्युम्न की ओर दौड़े। महाबली शकुनि ने शीघ्रता से आकर दुर्योधन को अपने रथ पर चढ़ा लिया। शत्रुदमन धृष्टद्युम्न राजा दुर्योधन को पराजित करके उनकी सेना को नष्ट करने लगे ॥५३।५५॥ मेघ जैसे सूर्य पर आक्रमण करें वैसे ही कृतवर्मा ने भी भीमकर्मा भीम पर आक्रमण करके उन्हें बाणों से ढक दिया। भीमसेन

तैरर्द्यमानोऽतिरथः सात्वतः सत्यकोविदः ।
नाऽकम्पत महाराज भीमं चाऽऽर्छच्छितैः शरैः ॥ ५८ ॥
तस्याऽश्वांश्चतुरो हत्वा भीमसेनो महारथः ।
सारथिं पातयामास सध्वजं सुपरिष्कृतम् ॥ ५९ ॥
शरैर्बहुविधैश्चैनमाचिनोत्परवीरहा ।
शकलीकृतसर्वाङ्गो हताश्वः प्रत्यदृश्यत ॥ ६० ॥
हताश्वश्च ततस्तूर्णं वृषकस्य रथं ययौ ।
स्यालस्य ते महाराज तव पुत्रस्य पश्यतः ॥ ६१ ॥
भीमसेनोऽपि संक्रुद्धस्तव सैन्यमुपाद्रवत् ।
निजघान च संक्रुद्धो दण्डपाणिरिवाऽन्तकः ॥ ६२ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि द्वैरथे द्व्यशीतितमोऽध्याय. ॥ ८२ ॥

भी क्रोधपूर्वक हँसते हुए कृतवर्मा पर बाण बरसाने लगे; किन्तु वे उससे विचलित नहीं हुए। वे तीक्ष्ण बाणों से भीमसेन को व्यथित करने लगे ॥५६।५८॥ भीमसेन ने उनके चारों घोड़े मारकर ध्वजा काट डाली, सारथी को भी मार डाला और उन्हें भी अनेक बाणों से घायल किया। इस प्रकार व्यथित और घायल कृतवर्मा दुर्योधन के सन्मुख ही, बिना घोड़ों के रथ से उतरकर, अपने साले वृषक के रथ पर चले गये। भीमसेन क्रोध करके कौरव-सेना के पीछे दौड़कर दण्ड-पाणि यमराज की तरह उसे नष्ट करने लगे ॥५९।६२॥

भीष्मपर्व का बयासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ८२ ॥

अथ त्र्यशीतितमोऽध्याय ॥ ८३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच — बहूनि हि विचित्राणि द्वैरथानि स्म सञ्जय ।
पाण्डूनां मामकैः सार्धमश्रौषं तव जल्पतः ॥ १ ॥
न चैव मामकं किञ्चिद्धृष्टं शंससि सञ्जय ।
नित्यं पाण्डुसुतान्हृष्टानभग्नान्सम्प्रशंससि ॥ २ ॥
जीयमानान्विमनसो मामकान्विगतौजसः ।
वदसे संयुगे सूत दिष्टमेतन्न संशयः ॥ ३ ॥
सञ्जय उवाच — यथाशक्ति यथोत्साहं युद्धे चेष्टन्ति तावकाः ।
दर्शयानाः परं शक्त्या पौरुषं पुरुषर्षभ ॥ ४ ॥

तिरासीवाँ अध्याय ॥ ८३ ॥

राजा धृतराष्ट्र ने कहा — हे सञ्जय! मैंने तुम्हारे मुख से अपने पक्ष के बहुत से वीरों के साथ पाण्डवपक्ष के वीरों के द्वन्द्वयुद्ध का समाचार सुना। तुम तो नित्य पाण्डवों को ही प्रसन्न और विजयी बतलाते हो; मेरे

गङ्गायाः सुरनद्या वै स्वादु भूत्वा यथोदकम् ।
महोदधेर्गुणाभ्यासाल्लवणत्वं निगच्छति ॥ ५ ॥
तथा तत्पौरुषं राजंस्तावकानां परन्तप ।
प्राप्य पाण्डुसुतान्वीरान्व्यर्थं भवति संयुगे ॥ ६ ॥
घटमानान्यथाशक्ति कुर्वाणान्कर्म दुष्करम् ।
न दोषेण कुरुश्रेष्ठ कौरवान्गन्तुमर्हसि ॥ ७ ॥
तवाऽपराधात्सुमहान्सपुत्रस्य विशाम्पते ।
पृथिव्याः प्रक्षयो घोरो यमराष्ट्रविवर्धनः ॥ ८ ॥
आत्मदोषात्समुत्पन्नं शोचितुं नाऽर्हसे नृप ।
नहि रक्षन्ति राजानः सर्वथाऽत्राऽपि जीवितम् ॥ ९ ॥
युद्धे सुकृतिनां लोकानिच्छन्तो वसुधाधिपाः ।
चमूं विगाह्य युद्ध्यन्ते नित्यं स्वर्गपरायणाः ॥ १० ॥
पूर्वाह्णे तु महाराज प्रावर्तत जनक्षयः ।
तं त्वमेकमना भूत्वा शृणु देवासुरोपमम् ॥ ११ ॥
आवन्त्यौ तु महेष्वासौ महासेनौ महाबलौ ।
इरावन्तमभिप्रेक्ष्य समेयातां रणोत्कटौ ॥ १२ ॥
तेषां प्रववृते युद्धं सुमहल्लोमहर्षणम् ।
इरावांस्तु सुसंक्रुद्धो भ्रातरौ देवरूपिणौ ॥ १३ ॥

ओर के किसी वीर की विजय वार्ता, प्रसन्नता या प्रशंसा नहीं सुनाते । तुम जो युद्ध मे मेरे पुत्रो और वीरो को सदा परास्त, व्याकुल और पराक्रम हीन बताते हो, सो इसका कारण दैव ही है, इसमें सन्देह नहीं ॥१।२॥ सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र ! हमारे सभी योद्धा श्रेष्ठ हैं । वे यथाशक्ति समय-समय पर पौरुष दिखाने में कुछ कमी नहीं रखते । किन्तु जैसे खारी समुद्र से मिलने पर गङ्गा आदि महानदियों का मीठा जल खारी हो जाता है, वैसे ही हमारे पक्ष के वीरो का पराक्रम पाण्डवो के सामने निष्फल हो जाता है ॥४।६॥ आपके पक्ष के वीर भरसक दुष्कर कर्म करके जय की चेष्टा करते है, इसलिए आप उनको दोष न दीजिए । हे महाराज ! आपके ही दोष से यह लोकनाशक संग्राम आरम्भ हुआ है । आप अपने ही दोष पर इस प्रकार वृथा शोक न करे । पुण्यात्माओं के लोको को प्राप्त करने की इच्छा से क्षत्रियगण युद्ध मे जीवन का मोह छोडकर युद्ध करते हैं, नित्य स्वर्ग की इच्छा से शत्रुसेना में प्रवेश करके वे आगे ही बढकर आक्रमण करते हैं ॥७।१०॥ दिन के पूर्व भाग मे देवासुर-संग्राम के समान जो भयानक युद्ध हुआ उसका समाचार आप मन लगाकर सुनिए । उस युद्ध मे असंख्य योद्धा वीरगति को प्राप्त हुए । हे राजेन्द्र ! अवन्ती देश के राजा रणदुर्मद महाधनुर्धर विन्द और अनुविन्द दोनों इरावान् को देखकर उनके

तैरर्द्यमानोऽतिरथः सात्वतः सत्यकोविदः ।
नाऽकम्पत महाराज भीमं चाऽऽर्छच्छितैः शरैः ॥ ५८ ॥
तस्याऽश्वांश्चतुरो हत्वा भीमसेनो महारथः ।
सारथिं पातयामास सध्वजं सुपरिष्कृतम् ॥ ५९ ॥
शरैर्बहुविधैश्चैनमाचिनोत्परवीरहा ।
शकलीकृतसर्वाङ्गो हताश्वः प्रत्यदृश्यत ॥ ६० ॥
हताश्वश्च ततस्तूर्णं वृषकस्य रथं ययौ ।
स्यालस्य ते महाराज तव पुत्रस्य पश्यतः ॥ ६१ ॥
भीमसेनोऽपि संक्रुद्धस्तव सैन्यमुपाद्रवत् ।
निजघान च संक्रुद्धो दण्डपाणिरिवाऽन्तकः ॥ ६२ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि द्वैरथे द्व्यशीतितमोऽध्याय ॥ ८२ ॥

भी क्रोधपूर्वक हँसते हुए कृतवर्मा पर बाण बरसाने लगे, किन्तु वे उससे विचलित नहीं हुए। वे तीक्ष्ण बाणों से भीमसेन को व्यथित करने लगे ॥५६।५८॥ भीमसेन ने उनके चारों घोड़े मारकर ध्वजा काट डाली, सारथी को भी मार डाला और उन्हें भी अनेक बाणों से घायल किया। इस प्रकार व्यथित और घायल कृतवर्मा दुर्योधन के सम्मुख ही, बिना घोड़ों के रथ से उतरकर, अपने साले वृषक के रथ पर चले गये। भीमसेन क्रोध करके कौरव-सेना के पीछे दौड़कर दण्ड-पाणि यमराज की तरह उसे नष्ट करने लगे ॥५९।६२॥

भीष्मपर्व का बयासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ८२ ॥

अथ त्र्यशीतितमोऽध्याय ॥ ८३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच बहूनि हि विचित्राणि द्वैरथानि स्म सञ्जय ।
पाण्डूनां मामकैः सार्धमश्रौषं तव जल्पतः ॥ १ ॥
न चैव मामकं किञ्चिद्धृष्टं शंससि सञ्जय ।
नित्यं पाण्डुसुतान्हृष्टानभग्नान्सम्प्रशंससि ॥ २ ॥
जीयमानान्विमनसो मामकान्विगतौजसः ।
वदसे संयुगे सूत दिष्टमेतन्न संशयः ॥ ३ ॥
सञ्जय उवाच—यथाशक्ति यथोत्साहं युद्धे चेष्टन्ति तावकाः ।
दर्शयानाः परं शक्त्या पौरुषं पुरुषर्षभ ॥ ४ ॥

तिरासीवाँ अध्याय ॥ ८३ ॥

राजा धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय! मैंने तुम्हारे मुख से अपने पक्ष के वीरों के साथ पाण्डवपक्ष के वीरों के द्वन्द्वयुद्ध का समाचार सुना। तुम तो नित्य पाण्डवों को ही प्रसन्न और विजयी बतलाते हो; मेरे

गङ्गायाः सुरनद्या वै स्वादु भूत्वा यथोदकम् ।
महोदधेर्गुणाभ्यासाल्लवणत्वं निगच्छति ॥ ५ ॥
तथा तत्पौरुषं राजंस्तावकानां परन्तप ।
प्राप्य पाण्डुसुतान्वीरान्व्यर्थं भवति संयुगे ॥ ६ ॥
घटमानान्यथाशक्ति कुर्वाणान्कर्म दुष्करम् ।
न दोषेण कुरुश्रेष्ठ कौरवान्गन्तुमर्हसि ॥ ७ ॥
तवाऽपराधात्सुमहान्सपुत्रस्य विशाम्पते ।
पृथिव्याः प्रक्षयो घोरो यमराष्ट्रविवर्धनः ॥ ८ ॥
आत्मदोषात्समुत्पन्नं शोचितुं नाऽर्हसे नृप ।
नहि रक्षन्ति राजानः सर्वथाऽत्राऽपि जीवितम् ॥ ९ ॥
युद्धे सुकृतिनां लोकानिच्छन्तो वसुधाधिपाः ।
चमूं विगाह्य युद्धयन्ते नित्यं स्वर्गपरायणाः ॥ १० ॥
पूर्वाह्णे तु महाराज प्रावर्तत जनक्षयः ।
तं त्वमेकमना भूत्वा श्रृणु देवासुरोपमम् ॥ ११ ॥
आवन्त्यौ तु महेष्वासौ महासेनौ महाबलौ ।
इरावन्तमभिप्रेक्ष्य समेयातां रणोत्कटौ ॥ १२ ॥
तेषां प्रववृते युद्धं सुमहल्लोमहर्षणम् ।
इरावांस्तु सुसंक्रुद्धो भ्रातरौ देवरूपिणौ ॥ १३ ॥

ओर के किसी वीर की विजय-वार्ता, प्रसन्नता या प्रशंसा नहीं सुनाते। तुम जो युद्ध में मेरे पुत्रों और वीरों को सदा परास्त, व्याकुल और पराक्रम हीन बताते हो, सो इसका कारण दैव ही है, इसमें सन्देह नहीं। ॥१।३॥ सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र! हमारे सभी योद्धा श्रेष्ठ हैं। वे यथाशक्ति समय-समय पर पौरुष दिखाने में कुछ कमी नहीं रखते। किन्तु जैसे खारी समुद्र से मिलने पर गङ्गा आदि महानदियों का मीठा जल खारी हो जाता है, वैसे ही हमारे पक्ष के वीरों का पराक्रम पाण्डवों के सामने निष्फल हो जाता है ॥४।६॥ आपके पक्ष के वीर भरसक दुष्कर कर्म करके जय की चेष्टा करते हैं, इसलिए आप उनको दोष न दीजिए। हे महाराज! आपके ही दोष से यह लोकनाशक संग्राम आरम्भ हुआ है। आप अपने ही दोष पर इस प्रकार वृथा शोक न करें। पुण्यात्माओं के लोकों को प्राप्त करने की इच्छा से क्षत्रियगण युद्ध में जीवन का मोह छोड़कर युद्ध करते हैं, नित्य स्वर्ग की इच्छा से शत्रुसेना में प्रवेश करके वे आगे ही बढ़कर आक्रमण करते हैं ॥७।१०॥ दिन के पूर्व भाग में देवासुर-संग्राम के समान जो भयानक युद्ध हुआ उसका समाचार आप मन लगाकर सुनिए। उस युद्ध में असंख्य योद्धा वीरगति को प्राप्त हुए। हे राजेन्द्र! अवन्ती देश के राजा रणदुर्मद महाधनुर्धर विन्द और अनुविन्द दोनों इरावान् को देखकर उनके

विव्याध निशितैस्तूर्णं शरैः सन्नतपर्वभिः ।
तावेनं प्रत्यविध्येतां समरे चित्रयोधिनौ ॥ १४ ॥
युध्यतां हि तथा राजन्विशेषो न व्यदृश्यत ।
यततां शत्रुनाशाय कृतप्रतिकृतैषिणाम् ॥ १५ ॥
इरावांस्तु ततो राजन्ननुविन्दस्य सायकैः ।
चतुर्भिश्चतुरो वाहाननयद्यमसादनम् ॥ १६ ॥
भल्लाभ्यां च सुतीक्ष्णाभ्यां धनुः केतुं च मारिष ।
चिच्छेद समरे राजंस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ १७ ॥
त्यक्त्वाऽनुविन्दोऽथ रथं विन्दस्य रथमास्थितः ।
धनुर्गृहीत्वा परमं भारसाधनमुत्तमम् ॥ १८ ॥
तावेकस्थौ रणे वीरावावन्त्यौ रथिनां वरौ ।
शरान्मुमुचतुस्तूर्णमिरावति महात्मनि ॥ १९ ॥
ताभ्यां मुक्ता महावेगाः शराः काञ्चनभूषणाः ।
दिवाकरपथं प्राप्य च्छादयामासुरम्बरम् ॥ २० ॥
इरावांस्तु रणे क्रुद्धो भ्रातरौ तौ महारथौ ।
ववर्ष शरवर्षेण सारथिं चाऽप्यपातयत् ॥ २१ ॥
तस्मिंस्तु पतिते भूमौ गतसत्त्वे तु सारथौ ।
रथः प्रदुद्राव दिशः समुद्भ्रान्तहयस्ततः ॥ २२ ॥
तौ स जित्वा महाराज नागराजसुतासुतः ।
पौरुषं ख्यापयंस्तूर्णं व्यधमत्तव वाहिनीम् ॥ २३ ॥

सन्मुख आये। वे वीर घोर युद्ध करने लगे। इरावान् ने कुपित होकर उन देवरूपी दोनों भाइयों को तीक्ष्ण बाणों से घायल किया। चित्र-युद्ध में निपुण उन दोनों भाइयों ने भी इरावान् को अनेक बाण मारकर घायल कर डाला ॥११।१५॥ शत्रुवध की कामना से यत्नपूर्वक उन लोगों ने ऐसा युद्ध किया कि देखने-वाले चकित रह गये। जो कार्य एक वीर करता था वही, उसके उत्तर में, दूसरा भी करता था। किसी के पराक्रम में कुछ भी विशेषता नहीं देख पड़ती थी। युधामन्यु ने चार बाणों से अनुविन्द के चारों घोड़े मारकर दो भल्ल बाणों से उनका ध्वज और धनुष काट डाला। यह अद्भुत कर्म जान पड़ा। तब अनु-विन्द अपना रथ छोड़कर विन्द के रथ पर चले गये। उन्होंने दूसरा दृढ धनुष हाथ में लिया एक ही रथ पर स्थित दोनों भाई वीर इरावान् के ऊपर शीघ्रगामी और तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे ॥१५।१९॥ उनके चलाये हुए सुवर्णभूषित बाणों ने आकाश में जाकर सूर्यमण्डल को छिपा लिया। इरावान् ने भी कुपित

सा वध्यमाना समरे धार्तराष्ट्री महाचमूः ।
वेगान्बहुविधांश्चक्रे विषं पीत्वेव मानवः ॥ २४ ॥
हैडिम्बो राक्षसेन्द्रस्तु भगदत्तं समाद्रवत् ।
रथेनाऽऽदित्यवर्णेन सध्वजेन महाबलः ॥ २५ ॥
ततः प्राग्ज्योतिषो राजा नागराजं समास्थितः ।
यथा वज्रधरः पूर्वं संग्रामे तारकामये ॥ २६ ॥
तत्र देवाः सगन्धर्वा ऋषयश्च समागताः ।
विशेषं न स्म विविदुर्हैडिम्बभगदत्तयोः ॥ २७ ॥
यथा सुरपतिः शक्रस्त्रासयामास दानवान् ।
तथैव समरे राजा द्रावयामास पाण्डवान् ॥ २८ ॥
तेन विद्राव्यमाणास्ते पाण्डवाः सर्वतोदिशम् ।
त्रातारं नाऽभ्यगच्छन्तः स्वेष्वनीकेषु भारत ॥ २९ ॥
भैमसेनिं रथस्थं तु तत्राऽपश्याम भारत ।
शेषा विमनसो भूत्वा प्राद्रवन्त महारथाः ॥ ३० ॥
निवृत्तेषु तु पाण्डूनां पुनः सैन्येषु भारत ।
आसीन्निष्टानको घोरस्तव सैन्यस्य संयुगे ॥ ३१ ॥
घटोत्कचस्ततो राजन्भगदत्तं महारणे ।
शरैः प्रच्छादयामास मेरुं गिरिमिवाऽम्बुदः ॥ ३२ ॥

होकर उन दोनों भाइयों पर बाण बरसाये और उनके सारथी को मार डाला। जब सारथी मर गया तब घोड़े रथ को लेकर इधर उधर भागने लगे। उन दोनों भाइयों को विमुख करके इरावान् अपना पौरुष दिखाते हुए आपकी सेना को नष्ट करने लगे ॥२०।२३॥ युधामन्यु के प्रहारों से पीड़ित होकर दुर्योधन की महासेना, विष पिये हुए मनुष्य की भान्ति, उद्भ्रान्त होकर इधर-उधर फिरने लगी। इधर महापराक्रमी घटोत्कच सूर्यवर्ण ध्वजा से शोभित रथ पर बैठकर भगदत्त से युद्ध करने के लिए दौड़ा। जैसे पहले तारकामय-युद्ध में वज्रपाणि इन्द्र ऐरावत पर चढ़कर शोभित हुए थे, वैसे ही भगदत्त गजराज पर चढ़कर घटोत्कच के सम्मुख आये ॥२४।२६॥ समर देखने आये हुए देवताओं, गन्धर्वों और ऋषियों ने देखा कि घटोत्कच और भगदत्त में कोई किसी से कम पराक्रम नहीं प्रकट कर रहा था। जैसे इन्द्र ने दानवों को भयभीत कर दिया था वैसे ही राजा भगदत्त ने पाण्डवसेना को भयभीत करके भगा दिया। पाण्डवों की सेना इस प्रकार भयभीत होकर अपनी रक्षा करने वाला कोई न देख, भागने लगी ॥२७।२९॥ हे राजेन्द्र! उस समय हमने भगदत्त के सम्मुख केवल घटोत्कच को ही देख पाया। शेष महारथी उत्साहहीन होकर भाग खड़े हुए थे। पाण्डवों की सेना घटोत्कच को देखकर फिर लौट पड़ी। आपकी सेना में घोर कोला-

निहत्य ताञ्शरान्राजा राक्षसस्य धनुश्च्युतान् ।
भैमसेनिं रणे तूर्णं सर्वमर्मस्वताडयत् ॥ ३३ ॥
स ताड्यमानो बहुभिः शरैः सन्नतपर्वभिः ।
न विव्यथे राक्षसेन्द्रो भिद्यमान इवाऽचलः ॥ ३४ ॥
तस्य प्राग्ज्योतिषः क्रुद्धस्तोमरांश्च चतुर्दश ।
प्रेषयामास समरे तांश्चिच्छेद स राक्षसः ॥ ३५ ॥
स तांश्छित्वा महाबाहुस्तोमरान्निशितैः शरैः ।
भगदत्तं च विव्याध सप्तत्या कङ्कपत्रिभिः ॥ ३६ ॥
ततः प्राग्ज्योतिषो राजा प्रहसन्निव भारत ।
तस्याऽश्वांश्चतुरः संख्ये पातयामास सायकैः ॥ ३७ ॥
स हताश्वे रथे तिष्ठन्राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ।
शक्तिं चिक्षेप वेगेन प्राग्ज्योतिषगजं प्रति ॥ ३८ ॥
तामापतन्तीं सहसा हेमदण्डां सुवेगिनीम् ।
त्रिधा चिच्छेद नृपतिः सा व्यकीर्यत मेदिनीम् ॥ ३९ ॥
शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा हैडिम्बः प्राद्रवद्भयात् ।
यथेन्द्रस्य रणात्पूर्वं नमुचिर्दैत्यसत्तमः ॥ ४० ॥
तं विजित्य रणे शूरं विक्रान्तं ख्यातपौरुषम् ।
अजेयं समरे वीरं यमेन वरुणेन च ॥ ४१ ॥
पाण्डवीं समरे सेनां सम्ममर्द स कुञ्जरः ।
यथा वनगजो राजन्मृद्नंश्चरति पद्मिनीम् ॥ ४२ ॥

हल मच गया। पर्वत के ऊपर बरस रहे मेघ की भान्ति घटोत्कच भगदत्त के ऊपर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगा ॥३०।३२॥ राजा भगदत्त ने घटोत्कच के बाणों को काटकर उसके मर्मस्थल में कई बाण मारे। जैसे तोड़े जाने पर भी पर्वत विचलित नहीं होता वैसे ही घटोत्कच अनेक बाणों की चोट खाकर भी विचलित नहीं हुआ। भगदत्त ने क्रुद्ध होकर घटोत्कच को चौदह तोमर मारे ॥३३।३५॥ उसने बात की बात में उन तोमरों को काट डाला और कङ्कपत्रयुक्त सत्तर बाण भगदत्त को मारे। उन्होंने हँसते हँसते बाणों से घटोत्कच के चारों घोड़ों को मार डाला। बिना घोड़ों के रथ पर से घटोत्कच ने भगदत्त के हाथी को एक दारुण शक्ति मारी। भगदत्त ने उस सुवर्ण-दण्ड शोभित शक्ति को आते देखकर उसके तीन टुकड़े कर डाले। वह शक्ति कट कुटकर पृथ्वी पर गिर पड़ी ॥३६।३९॥ पहले दानवराज नमुचि जैसे युद्ध से भाग खड़ा हुआ था वैसे ही शक्ति को व्यर्थ देखकर घटोत्कच भय के मारे भाग खड़ा हुआ।

मद्रेश्वरस्तु समरे यमाभ्यां समसज्जत ।
स्वस्रीयौ छादयाञ्चक्रे शरौघैः पाण्डुनन्दनौ ॥ ४३ ॥
सहदेवस्तु समरे मातुलं दृश्य सङ्गतम् ।
अवारयच्छरौघेण मेघो यद्वद्दिवाकरम् ॥ ४४ ॥
छाद्यमानः शरौघेण हृष्टरूपतरोऽभवत् ।
तयोश्चाऽप्यभवत्प्रीतिरतुला मातृकारणात् ॥ ४५ ॥
ततः प्रहस्य समरे नकुलस्य महारथः ।
अश्वांश्च चतुरो राजंश्चतुर्भिः सायकोत्तमैः ॥ ४६ ॥
प्रेषयामास समरे यमस्य सदनं प्रति ।
हताश्वात्तु रथात्तूर्णमवप्लुत्य महारथः ॥ ४७ ॥
आरुरोह ततो यानं भ्रातुरेव यशस्विनः ।
एकस्थौ तु रणे शूरौ दृढे विक्षिप्य कार्मुके ॥ ४८ ॥
मद्रराजरथं तूर्णं छादयामासतुः क्षणात् ।
स च्छाद्यमानो वहुभिः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ४९ ॥
स्वस्त्रीयाभ्यां नरव्याघ्रो नाऽकम्पत यथाऽचलः ।
प्रहसन्निव तां चाऽपि शस्त्रवृष्टिं जघान ह ॥ ५० ॥
सहदेवस्ततः क्रुद्धः शरमुद्गृह्य वीर्यवान् ।
मद्रराजमभिप्रेक्ष्य प्रेषयामास भारत ॥ ५१ ॥
स शरः प्रेषितस्तेन गरुडानिलवेगवान् ।
मद्रराजं विनिर्भिद्य निपपात महीतले ॥ ५२ ॥

दुर्जेय महावली घटोत्कच को पराजित कर, जङ्गली हाथी जैसे कमलवन को रौंदता फिरे वैसे ही, भगदत्त हाथी से और बाण के प्रहार से पाण्डवसेना को नष्ट करते हुए विचरने लगे ॥४०।४२॥ हे महाराज ! इधर मद्रराज शल्य अपने भानजे नकुल-सहदेव से युद्ध करने लगे। उन्होंने बाणवर्षा करके उनको आच्छादित कर दिया। मातुल शल्य को युद्ध करते देखकर सहदेव ने अपने बाणों से वैसे ही उन्हें छा लिया जैसे मेघ सूर्य को छिपा लेते हैं। बाणजाल में छिपे हुए शल्य अपने भानजों का पराक्रम देखकर बहुत प्रसन्न हुए, और माता के सम्बन्ध का विचार करके नकुल-सहदेव को भी हर्ष हुआ ॥४३।४५॥ फिर महारथी शल्य ने हँसकर नकुल के रथ के चारों घोड़ों को मार डाला। महारथी नकुल उस बिना घोड़ों के रथ से कूदकर सहदेव के रथ पर चले गये। तब वे दोनों भाई एक ही रथ पर सवार होकर, क्रोधपूर्वक शल्य के रथ पर असंख्य बाण बरसाने लगे ॥४६।४९॥ भानजों के बाणों से आच्छन्न होकर भी पुरुषसिंह

स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थे महारथः ।
निषसाद महाराज कश्मलं च जगाम ह ॥ ५३ ॥
तं विसंज्ञं निपतितं सूतः सम्प्रेक्ष्य संयुगे ।
अपोवाह रथेनाऽऽजौ यमाभ्यामभिपीडितम् ॥ ५४ ॥
दृष्ट्वा मद्रेश्वररथं धार्तराष्ट्राः पराङ्मुखम् ।
सर्वे विमनसो भूत्वा नेदमस्तीत्यचिन्तयन् ॥ ५५ ॥
निर्जित्य मातुलं संख्ये माद्रीपुत्रौ महारथौ ।
दध्मतुर्मुदितौ शङ्खौ सिंहनादं च नेदतुः ॥ ५६ ॥
अभिदुद्रुवतुर्हृष्टौ तव सैन्यं विशाम्पते ।
यथा दैत्यचमूं राजन्निन्द्रोपेन्द्राविवाऽमरौ ॥ ५७ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि द्वन्द्वयुद्धे त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

शल्य पर्वत के समान अटल खड़े रहे और हँस-हँस कर उन बाणों को काटने लगे। सहदेव ने क्रुद्ध होकर एक चमकीला उग्र बाण निकालकर शल्य के वक्षःस्थल में मारा। वह तीक्ष्ण बाण शल्य के हृदय को विदारण करके पृथ्वीतल में प्रवेश हो गया ॥४९।५२॥ उस प्रहार से बहुत घायल और व्यथित होने के कारण शल्य मूर्छित होकर गिर पड़े। उनका सारथी उनके रथ को समरभूमि से ले भागा। हे भारत! आपके पक्ष की सेना इस प्रकार शल्य को समर से हटते देखकर समझी कि अब शल्य जीवित नहीं हैं। महारथी नकुल-सहदेव इस प्रकार मातुल को युद्ध में पराजित कर प्रसन्नतापूर्वक शङ्खध्वनि और सिंहनाद करने लगे। हे राजेन्द्र! जैसे इन्द्र और उपेन्द्र ने दैत्य-सेना को भगा दिया था वैसेही नकुल-सहदेव आपकी सेनाको नष्ट करनेलगे ॥५३।५७॥

—०—

भीष्मपर्व का तिरासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ८३ ॥

अथ चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

सञ्जय उवाच—ततो युधिष्ठिरो राजा मध्यं प्राप्ते दिवाकरे ।
श्रुतायुषमभिप्रेक्ष्य प्रेषयामास वाजिनः ॥ १ ॥
अभ्यधावत्ततो राजा श्रुतायुषमरिन्दमम् ।
विनिघ्नन्सायकैस्तीक्ष्णैर्नवभिर्नतपर्वभिः ॥ २ ॥
स संवार्य रणे राजा प्रेषितान्धर्मसूनुना ।
शरान्सप्त महेष्वासः कौन्तेयाय समार्पयत् ॥ ३ ॥

चौरासीवाँ अध्याय ॥ ८४ ॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज! सूर्यदेव जब आकाश के मध्य में आये, मध्याह्न होगया, तब धर्मराज युधिष्ठिर श्रुतायुष के समीप अपना रथ ले गये। युधिष्ठिर ने श्रुतायुष को नव बाण मारे। उन बाणों से

ते तस्य कवचं भित्वा पपुः शोणितमाहवे ।
असूनिव विचिन्वन्तो देहे तस्य महात्मनः ॥ ४ ॥
पाण्डवस्तु भृशं क्रुद्धो विद्धस्तेन महात्मना ।
रणे वराहकर्णेन राजानं हृद्यविध्यत ॥ ५ ॥
अथाऽपरेण भल्लेन केतुं तस्य महात्मनः ।
रथश्रेष्ठो रथात्तूर्णं भूमौ पार्थो न्यपातयत् ॥ ६ ॥
केतुं निपतितं दृष्ट्वा श्रुतायुः स तु पार्थिवः ।
पाण्डवं विशिखैस्तीक्ष्णै राजन्विव्याध सप्तभिः ॥ ७ ॥
ततः क्रोधात्प्रजज्वाल धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
यथा युगान्ते भूतानि दिधक्षुरिव पावकः ॥ ८ ॥
क्रुद्धं तु पाण्डवं दृष्ट्वा देवगन्धर्वराक्षसाः ।
प्रविव्यथुर्महाराज व्याकुलं चाऽप्यभूज्जगत् ॥ ९ ॥
सर्वेषां चैव भूतानामिदमासीन्मनोगतम् ।
त्रींल्लोकानद्य संक्रुद्धो नृपोऽयं धक्ष्यतीति वै ॥ १० ॥
ऋषयश्चैव देवाश्च चक्रुः स्वस्त्ययनं महत् ।
लोकानां नृप शान्त्यर्थं क्रोधिते पाण्डवे तदा ॥ ११ ॥
स च क्रोधसमाविष्टः सृक्किणी परिसंलिहन् ।
दधाराऽऽत्मवपुर्घोरं युगान्तादित्यसन्निभम् ॥ १२ ॥
ततः सैन्यानि सर्वाणि तावकानि विशाम्पते ।
निराशान्यभवंस्तत्र जीवितं प्रति भारत ॥ १३ ॥

अपनी रक्षा करके श्रुतायुध ने सात बाण युधिष्ठिर को मारे। वे बाण कवच तोड़कर उनके शरीर में प्रवेश होकर उनका रक्त पीने लगे ॥१-४॥ ऐसा जान पड़ा, मानो वे उनके प्राणों को खोज रहे हैं। धर्मराज ने श्रुतायुध के प्रहार से व्यथित होकर एक वराहकर्ण बाण उनके हृदय में मारा, और एक भल्ल बाण से उनका ध्वजा काटकर गिरा दी। श्रुतायुध ने फिर युधिष्ठिर को बहुत तीक्ष्ण सात बाण मारे। युगान्तकाल में अग्नि जैसे प्राणियों को जलाने के लिए प्रज्वलित होता है, वैसे ही राजा युधिष्ठिर क्रोध से जल उठे। उनको कुपित देखकर प्रलय की आशङ्का से देवता, गन्धर्व, राक्षस आदि उद्विग्न हो उठे, सारा जगत व्याकुल हो गया। उन सबने यह समझा कि आज राजा युधिष्ठिर कुपित होकर तीनों लोकों को भस्म कर डालेंगे। सब लोकों की स्वस्ति-कामना और युधिष्ठिर के क्रोध की शान्ति के लिए देवता और ऋषि-मुनि स्वस्त्ययन-पाठ करने लगे ॥५-१२॥ क्रोधाविष्ट युधिष्ठिर प्रलयकाल के सूर्य का सा भयङ्कर मूर्ति

स तु धैर्येण तं कोपं सन्निवार्य महायशाः ।
श्रुतायुषः प्रचिच्छेद मुष्टिदेशे महाधनुः ॥ १४ ॥
अथैनं छिन्नधन्वानं नाराचेन स्तनान्तरे ।
निर्बिभेद रणे राजा सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ १५ ॥
सत्वरं च रणे राजंस्तस्य वाहान्महात्मनः ।
निजघान शरैः क्षिप्रं सूतं च सुमहाबलः ॥ १६ ॥
हताश्वं तु रथं त्यक्त्वा दृष्ट्वा राज्ञोऽस्य पौरुषम् ।
विप्रदुद्राव वेगेन श्रुतायुः समरे तदा ॥ १७ ॥
तस्मिञ्जिते महेष्वासे धर्मपुत्रेण संयुगे ।
दुर्योधनबलं राजन्सर्वमासीत्पराङ्मुखम् ॥ १८ ॥
एतत्कृत्वा महाराज धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
व्यात्ताननो यथा कालस्तव सैन्यं जघान ह ॥ १९ ॥
चेकितानस्तु वार्ष्णेयो गौतमं रथिनां वरम् ।
प्रेक्षतां सर्वसैन्यानां छादयामास सायकैः ॥ २० ॥
सन्निवार्य शरांस्तांस्तु कृपः शारद्वतो युधि ।
चेकितानं रणे यत्तं राजन्विव्याध पत्रिभिः ॥ २१ ॥
अथाऽपरेण भल्लेन धनुश्चिच्छेद मारिष ।
सारथिं चाऽस्य समरे क्षिप्रहस्तो न्यपातयत् ॥ २२ ॥
अश्वांश्चाऽस्याऽवधीद्राजन्नुभौ तौ पार्ष्णिसारथी ।
सोऽवप्लुत्य रथात्तूर्णं गदां जग्राह सात्वतः ॥ २३ ॥

धारण करके, क्रोध से नेत्रों को लाल करके, होंठ चबाने लगे। यह देखकर कौरवपक्षवालों ने जीवन की आशा छोड़ दी। किन्तु इसके उपरान्त धर्मराज युधिष्ठिर ने धैर्य का आश्रय लेकर क्रोध को शान्त किया। उन्होंने श्रुतायुष का धनुष काट डाला, सारथी और घोड़ों को मार डाला और सब सेना के सन्मुख वक्षःस्थल में एक नाराच बाण मारा। युधिष्ठिर का ऐसा पौरुष देखकर रथ से उतरकर श्रुतायुष भाग खड़े हुए। उनकी यह दशा देखकर राजा दुर्योधन की सेना शीघ्रता के साथ इधर उधर भागने लगी। मुख फैलाये हुए काल के समान युधिष्ठिर को आते देखकर सेना भागी और वे चुन चुनकर प्रधान वीरों को मारने लगे ॥१३।१०॥ इधर महारथी चेकितान अपनी सेना सहित कृपाचार्य से युद्ध करने लगे। उन्होंने कृपाचार्य के ऊपर असंख्य बाण बरसाये। कृपाचार्य ने भी उन बाणों को काटकर अपने बाणों से चेकितान को घायल कर दिया। और कृपाचार्य ने एक भल्ल बाण से चेकितान का धनुष काट

स तया वीरघातिन्या गदया गदिनां वरः ।
गौतमस्य हयान्हत्वा सारथिं च न्यपातयत् ॥ २४ ॥
भूमिष्ठो गौतमस्तस्य शरांश्चिक्षेप षोडश ।
शरास्ते सात्वतं भित्त्वा प्राविशन्धरणीतलम् ॥ २५ ॥
चेकितानस्ततः क्रुद्धः पुनश्चिक्षेप तां गदाम् ।
गौतमस्य वधाकांक्षी वृत्रस्येव पुरन्दरः ॥ २६ ॥
तामापतन्तीं विमलामश्मगर्भां महागदाम् ।
शरैरनेकसाहस्रैर्वारयामास गौतमः ॥ २७ ॥
चेकितानस्ततः खड्गं क्रोधादुद्धृत्य भारत ।
लाघवं परमास्थाय गौतमं समुपाद्रवत् ॥ २८ ॥
गौतमोऽपि धनुस्त्यक्त्वा प्रगृह्याऽसिं सुसंयतः ।
वेगेन महता राजंश्चेकितानमुपाद्रवत् ॥ २९ ॥
तावुभौ बलसम्पन्नौ निस्त्रिंशवरधारिणौ ।
निस्त्रिंशाभ्यां सुतीक्ष्णाभ्यामन्योन्यं सन्ततक्षतुः ॥ ३० ॥
निस्त्रिंशवेगाभिहतौ ततस्तौ पुरुषर्षभौ ।
धरणीं समनुप्राप्तौ सर्वभूतनिषेविताम् ॥ ३१ ॥
मूर्छयाऽभिपरीताङ्गौ व्यायामेन तु मोहितौ ।
ततोऽभ्ययाद्वेगेन करकर्षः सुहृत्तया ॥ ३२ ॥
चेकितानं तथा भूतं दृष्ट्वा समरदुर्मदः ।
रथमारोपयच्चैनं सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ ३३ ॥

डाला, दूसरे से सारथी को मार डाला और अन्य बाणों से उनके घोड़ों को और पार्श्वरक्षक तथा सारथी को मार डाला ॥२०।२४॥ तब चेकितान ने बड़ी स्फूर्ति के साथ रथ पर से उतरकर, वीर-घातिनी गदा लेकर, कृपाचार्य के घोड़े सहित रथ और सारथी को छिन्न-भिन्न कर दिया। अब कृपाचार्य ने पृथ्वी पर खड़े-खड़े सोलह बाण चेकितान को मारे। वे बाण चेकितान के शरीर को भेदते हुए पृथ्वी में प्रवेश हो गये। इन्द्र जैसे वृत्रासुर को मारने के लिए उद्यत हुए थे वैसे ही चेकितान ने क्रोधपूर्वक कृपाचार्य को मारने के लिए गदा चलाई। कृपाचार्य ने कई सहस्र बाण मारकर उस भारी गदा को निष्फल कर दिया ॥२५।२७॥ तब क्रोध करके चेकितान ने तलवार निकाली, और वे कृपाचार्य की ओर वेग से दौड़े। कृपाचार्य भी धनुष छोड़कर गदा हाथ में लेकर यत्नपूर्वक बड़े वेग से चेकितान की ओर दौड़े। दोनों वीर परस्पर पैंतरे बदलकर खड्गयुद्ध करने लगे ॥२८।३०॥ अन्त में युद्ध करते करते शिथिल होकर प्रहारों से

तथैव शकुनिः शूरः स्यालस्तव विशाम्पते ।
आरोपयद्रथं तूर्णं गौतमं रथिनां वरम् ॥ ३४ ॥
सौमदत्तिं तथा क्रुद्धो धृष्टकेतुर्महाबलः ।
नवत्या सायकैः क्षिप्रं राजन्विव्याध वक्षसि ॥ ३५ ॥
सौमदत्तिरुरःस्थैस्तैर्भृशं बाणैरशोभत ।
मध्यन्दिने महाराज रश्मिभिस्तपनो यथा ॥ ३६ ॥
भूरिश्रवास्तु समरे धृष्टकेतुं महारथम् ।
हतसूतहयं चक्रे विरथं सायकोत्तमैः ॥ ३७ ॥
विरथं तं समालोक्य हताश्वं हतसारथिम् ।
महता शरवर्षेण च्छादयामास संयुगे ॥ ३८ ॥
स तु तं रथमुत्सृज्य धृष्टकेतुर्महामनाः ।
आरुरोह ततो यानं शतानीकस्य मारिष ॥ ३९ ॥
चित्रसेनो विकर्णश्च राजन्दुर्मर्षणस्तथा ।
रथिनो हेमसन्नाहाः सौभद्रमभिदुद्रुवुः ॥ ४० ॥
अभिमन्योस्ततस्तैस्तु घोरं युद्धमवर्तत ।
शरीरस्य यथा राजन्वातपित्तकफैस्त्रिभिः ॥ ४१ ॥
विरथांस्तव पुत्रांस्तु कृत्वा राजन्महाहवे ।
न जघान नरव्याघ्रः स्मरन्भीमवचस्तदा ॥ ४२ ॥
ततो राज्ञां बहुशतैर्गजाश्वरथयायिभिः ।
संवृतं समरे भीष्मं देवैरपि दुरासदम् ॥ ४३ ॥

घायल और अचेत होकर, दोनो ही पृथ्वी पर गिर पडे । युद्धप्रिय भीमसेन अपने मित्र चेकितान की यह दशा देखकर सब सेना के आगे ही उन्हें अपने रथ पर उठा ले गये । उधर आपके साले शूर शकुनि ने भी श्रेष्ठ रथी कृपाचार्य को अपने रथ पर बिठा लिया ॥३१।३४॥ अब महावीर धृष्टकेतु ने क्रुद्ध होकर भूरिश्रवा के हृदय मे नव्वे उग्र बाण मारे । जैसे मध्याह्न के समय सूर्य का मण्डल अपनी प्रचण्ड किरणो से शोभा को प्राप्त होता है वैसे ही भूरिश्रवा की, धृष्टकेतु के बाण लगने से, अपूर्व शोभा हुई । इसके पश्चात् बहुत से बाण बरसाकर उन्होंने धृष्टकेतु के सारथी और घोडो को मार डाला तथा रथ को तोड डाला । फिर असख्य बाणो से उन्हे भी छिपा दिया । ॥३५।३८॥ धृष्टकेतु वह रथ छोडकर शतानीक के रथ पर सवार हुए । सोने का कवच पहने हुए रथी चित्रसेन, विकर्ण और दुर्मर्षण, अभिमन्यु से युद्ध करने लगे । जैसे शरीर में वात, पित्त और कफ का परस्पर युद्ध हो वैसे ही ये तीनो वीर अभिमन्यु से

प्रयान्तं शीघ्रमुद्वीक्ष्य परित्रातुं सुतांस्तव ।
अभिमन्युं समुद्दिश्य बालमेकं महारथम् ॥ ४४ ॥
वासुदेवमुवाचेदं कौन्तेयः श्वेतवाहनः ।
चोदयाऽश्वान्हृषीकेश यत्रैते बहुला रथाः ॥ ४५ ॥
एते हि बहवः शूराः कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः ।
यथा हन्युर्न नः सेनां तथा माधव चोदय ॥ ४६ ॥
एवमुक्तः स वार्ष्णेयः कौन्तेयेनाऽमितौजसा ।
रथं श्वेतहयैर्युक्तं प्रेषयामास संयुगे ॥ ४७ ॥
निष्ठानको महानासीत्तव सैन्यस्य मारिष ।
यदर्जुनो रणे क्रुद्धः संयातस्तावकान्प्रति ॥ ४८ ॥
समासाद्य तु कौन्तेयो राज्ञस्तान्भीष्मरक्षिणः ।
सुशर्माणमथो राजन्निदं वचनमब्रवीत् ॥ ४९ ॥
जानामि त्वां युधां श्रेष्ठमत्यन्तं पूर्ववैरिणम् ।
अनयस्याऽद्य सम्प्राप्तं फलं पश्य सुदारुणम् ॥ ५० ॥
अद्य ते दर्शयिष्यामि पूर्वप्रेतान्पितामहान् ।
एवं सञ्जल्पतस्तस्य बीभत्सोः शत्रुघातिनः ॥ ५१ ॥
श्रुत्वाऽपि परुषं वाक्यं सुशर्मा रथयूथपः ।
न चैनमब्रवीत्किञ्चिच्छुभं वा यदि वाऽशुभम् ॥ ५२ ॥
अभिगम्याऽर्जुनं वीरं राजभिर्बहुभिर्वृतः ।
पुरस्तात्पृष्ठतश्चैव पार्श्वतश्चैव सर्वतः ॥ ५३ ॥

युद्ध करने लगे। अभिमन्यु ने उनके रथ तो नष्ट कर दिये, किन्तु भीमसेन की प्रतिज्ञा का स्मरण करके उन्हें जीवित से रहित नहीं किया। इसी समय अलौकिक तेजस्वी भीष्म पितामह, राजा दुर्योधन आदि सब वीरों की रक्षा के लिए, बालक अभिमन्यु से युद्ध करने चले। यह देखकर अर्जुन ने कहा हे श्रीकृष्ण! जहाँ पर ये बहुत से रथ हैं वहीं पर शीघ्र मेरा रथ ले चलो। वह देखो, युद्धचतुर सब वीर पुरुष मेरी सेना को मार रहे हैं ॥४४।४६॥ तब कृष्ण भगवान् श्वेत घोड़ों से शोभित रथ को उधर ही ले चले। क्रुद्ध होकर महावीर अर्जुन कौरवों का सामना करने पहुँच गये। उन्हें आते देखकर कौरव पक्ष के वीरगण घोर भयसूचक शब्द से चीत्कार करने लगे ॥४७।४८॥ भीष्म पितामह के बाहुबल से सुरक्षित राजाओं के पास पहुँचकर अर्जुन ने सुशर्मा से कहा— हे सुशर्मा! तुम मेरे पहले के शत्रु और इस संग्राम में एक प्रधान योद्धा हो। आज तुम अपनी दुर्नीति का फल भोगोगे। मैं तुमको मृत पितरों

परिवार्याऽर्जुनं संख्ये तव पुत्रैर्महारथः ।
शरैःसञ्छादयामास मेघैरिव दिवाकरम् ॥ ५४ ॥
ततः प्रवृत्तः सुमहान्संग्रामः शोणितोदकः ।
तावकानां च समरे पाण्डवानां च भारत ॥ ५५ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि सप्तमयुद्धदिवसे सुशर्मार्जुनसमागमे चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥८४॥

से मिलने के लिए यमराज के यहाँ भेज दूँगा ॥४९। ५१॥ ये कठोर वचन सुनकर सुशर्मा ने कुछ उत्तर नहीं दिया। उन्होंने आगे-पीछे और आसपास स्थित राजमण्डली के साथ सम्मुख जाकर, धनुष चढाकर, तीक्ष्ण बाणों से—मेघ से सूर्य के समान—अर्जुन को आच्छन्न कर दिया। इसी प्रकार कौरवों और पाण्डवों का परस्पर युद्ध होने लगा ॥५१।५५॥

— ० —

भीष्मपर्व का चौरासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ८४ ॥

अथ पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

सञ्जय उवाच—सताड्यमानस्तु शरैर्धनञ्जयः पदाहतो नाग इव श्वसन्बली ।
बाणेन बाणेन महारथानां चिच्छेद चापानि रणे प्रसह्य ॥ १ ॥
सञ्छिद्य चापानि च तानि राज्ञां तेषां रणे वीर्यवतां क्षणेन ।
विव्याध बाणैर्युगपन्महात्मा निःशेषतां तेष्वथ मन्यमानः ॥ २ ॥
निपेतुराजौ रुधिरप्रदिग्धास्ते ताडिताः शक्रसुतेन राजन् ।
विभिन्नगात्राः पतितोत्तमाङ्गा गतासवश्छिन्नतनुत्रकायाः ॥ ३ ॥
महीङ्गताः पार्थबलाभिभूता विचित्ररूपा युगपद्विनेशुः ।
दृष्ट्वा हतांस्तान्युधि राजपुत्रांस्त्रिगर्तराजः प्रययौ रथेन ॥ ४ ॥
तेषां रथानामथ पृष्ठगोपा द्वात्रिंशदन्येऽभ्यपतन्त पार्थम् ।
तथैव ते तं परिवार्य पार्थं विकृष्य चापानि महारवाणि ॥ ५ ॥
अवीवृषन्बाणमहौघवृष्ट्या यथा गिरिं तोयधरा जलौघैः ।
संपीड्यमानस्तु शरौघवृष्ट्या धनञ्जयस्तान्युधि जातरोषः ॥ ६ ॥

पचासीवाँ अध्याय ॥ ८५ ॥

सञ्जय कहते हैं हे राजेन्द्र ! राजाओं के बाणों से अत्यन्त पीड़ित अर्जुन छेड़े हुए सर्प के समान लम्बे श्वास लेते हुए अद्भुत कर्म करने लगे। उन्होंने सभी महारथियों के बाण काटने के पश्चात् बलपूर्वक सबके धनुष काट डाले। उन सबको एकदम नष्ट कर डालने के लिए एक साथ अर्जुन ने सबको बाण मारे। इससे उन सबके कवच कट गये, वे घायल हो गये और उन गात्रों से रक्त बहने लगा। अनेकों के सिर कट गये। उनकी लाशें पृथ्वी पर गिरने लगीं ॥१।४॥ राजकुमारों की मृत्यु देखकर

पद्मया शरैः संयति तैलधौतैर्जघान तानप्यथ पृष्ठगोपान् ।
रथांश्च तांस्तानवजित्य संख्ये धनञ्जयः प्रीतमना यशस्वी॥ ७ ॥
अथाऽस्यरक्षीष्मवधाय जिष्णुर्बलानि राजन्समरे निहत्य ।
त्रिगर्तराजो निहतान्समीक्ष्य महात्मना तानथ बन्धुवर्गान्॥ ८ ॥
रणे पुरस्कृत्य नराधिपांस्ताञ्जगाम पार्थं त्वरितो वधाय ।
अभिद्रुतं चाऽस्त्रभृतां वरिष्ठं धनञ्जयं वीक्ष्य शिखण्डिमुख्याः॥ ९ ॥
अभ्युद्ययुस्ते शितशस्त्रहस्ता रिरक्षिषन्तो रथमर्जुनस्य ।
पार्थोऽपि तानापततः समीक्ष्य त्रिगर्तराज्ञा सहितान्नृवीरान्॥ १० ॥
विध्वंसयित्वा समरे धनुष्मान्गाण्डीवमुक्तैर्निशितैः पृषत्कैः ।
भीष्मं यियासुर्युधि सन्ददर्श दुर्योधनं सैन्धवादींश्च राज्ञः ॥ ११ ॥
संवारयिष्णूनभिवारयित्वा मुहूर्तमायोध्य बलेन वीरः ।
उत्सृज्य राजानमनन्तवीर्यो जयद्रथादींश्च नृपान्महौजाः॥ १२ ॥
ययौ ततो भीमबलो मनस्वी गाङ्गेयमाजौ शरचापपाणिः ।
युधिष्ठिरश्च प्रबलो महात्मा समाययौ त्वरितो जातकोपः॥ १३ ॥
मद्राधिपं समभित्यज्य संख्ये स्वभागमाप्तं तमनन्तकीर्तिः।
सार्धं समाद्रीसुतभीमसेनैर्भीष्मं ययौ शान्तनवं रणाय ॥ १४ ॥
तैः सम्प्रयुक्तैः स महारथाग्र्यैर्गङ्गासुतः समरे चित्रयोधी ।
न विव्यथे शान्तनवो महात्मा समागतैः पाण्डुसुतैः समस्तैः॥ १५ ॥

अथैत्य राजा युधि सत्यसन्धो जयद्रथोऽत्युग्रबलो मनस्वी।
चिच्छेद चापानि महारथानां प्रसह्य तेषां धनुषा वरेण ॥ १६ ॥
युधिष्ठिरं भीमसेनं यमौ च पार्थं कृष्णं युधि सञ्जातकोपः।
दुर्योधनः क्रोधविषो महात्मा जघान बाणैरनलप्रकाशैः ॥ १७ ॥
कृपेण शल्येन शलेन चैव तथा विभो चित्रसेनेन चाऽऽजौ।
विद्धाः शरैस्तेऽतिविवृद्धकोपैर्देवा यथा दैत्यगणैः समेतैः ॥ १८ ॥
छिन्नायुधं शान्तनवेन राजा शिखण्डिनं प्रेक्ष्य च जातकोपः।
अजातशत्रुः समरे महात्मा शिखण्डिनं क्रुद्ध उवाच वाक्यम्॥ १९ ॥
उक्त्वा तथा त्वं पितुरग्रतो मामहं हनिष्यामि महाव्रतं तम्।
भीष्मं शरौघैर्विमलार्कवर्णैः सत्यं वदामीति कृता प्रतिज्ञा ॥ २० ॥
त्वया च नैनां सफलां करोषि देवव्रतं यन्न निहंसि युद्धे।
मिथ्याप्रतिज्ञो भव माऽत्र वीर रक्षस्व धर्मं स्वकुलं यशश्च ॥ २१ ॥
प्रेक्षस्व भीष्मं युधि भीमवेगं सर्वांस्तपन्तं मम सैन्यसङ्घान्।
शरौघजालैरतितिग्मवेगैः कालं यथा कालकृतं क्षणेन ॥ २२ ॥
निकृत्तचापः समरेऽनपेक्षः पराजितः शान्तनवेन चाऽऽजौ।
विहाय बन्धूनथ सोदरांश्च क यास्यसे नाऽनुरूपं तवेदम् ॥ २३ ॥
दृष्ट्वा हि भीष्मं तमनन्तवीर्यं भग्नं च सैन्यं द्रवमाणमेवम्।
भीतोऽसि नूनं द्रुपदस्य पुत्र तथा हि ते मुखवर्णोऽप्रहृष्टः ॥ २४ ॥

गये । शल्य को मारना युधिष्ठिर का ही कार्य था, परन्तु उस समय शल्य को छोड़कर वे अर्जुन की सहायता के लिए भीष्म के सम्मुख आ गये ॥१२।१३॥ श्रेष्ठ महारथी पाँचों पाण्डव मिलकर एक साथ भीष्म से युद्ध करने आये, किन्तु चित्रयुद्ध में निपुण भीष्म तनिक भी विचलित नहीं हुए ॥१४।१५॥ इतने में महाबलवान् पराक्रमी राजा जयद्रथ ने वहाँ आकर, श्रेष्ठ धनुष से बड़े बल से, सब पाण्डवों के धनुष काट डाले । क्रोध से जलते हुए दुर्योधन ने अग्नि के समान चमकते हुए बाणों से युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव और श्रीकृष्ण को मारा । इस [illegible] कृपा, शल्य, शल और चित्रसेन आदि ने भी श्रीकृष्ण और पाण्डवों को चारों ओर से तीक्ष्ण बाण मारे ॥१६।१८॥ पाण्डव और श्रीकृष्ण क्रोध से अधीर हो उठे । भीष्म ने शिखण्डी का धनुष काट डाला, इससे भयभीत होकर वे रणभूमि से हटने लगे । उस समय कुपित होकर युधिष्ठिर ने शिखण्डी से कहा— हे वीर ! तुम अपने पिता के आगे मुझसे यह प्रतिज्ञा कर चुके हो कि "मैं सूर्य समान तीक्ष्ण बाणों से भीष्म पितामह को मारूँगा। यह मैं सत्य कहता हूँ ।" फिर इस समय युद्ध में अपनी प्रतिज्ञा क्यों नहीं पूर्ण करते? देवव्रत को [illegible] मारो । अपनी प्रतिज्ञा, धर्म, कुलकीर्ति और अपने यश की रक्षा करो ॥२०।२१॥ देखो !

अज्ञायमाने च धनञ्जयेऽपि महाहवे सम्प्रसक्ते नृवीरे ।
कथं हि भीष्मात्प्रथितः पृथिव्यां भयंत्वमद्य प्रकरोषि वीर ॥ २५ ॥
स धर्मराजस्य वचो निशम्य रूक्षाक्षरं विप्रलापानुवद्धम् ।
प्रत्यादेशं मन्यमानो महात्मा प्रतत्वरे भीष्मवधाय राजन् ॥ २६ ॥
तमापतन्तं महता जवेन शिखण्डिनं भीष्ममभिद्रवन्तम् ।
निवारयामास हि शल्य एनमस्त्रेण घोरेण सुदुर्जयेन ॥ २७ ॥
स चाऽपि दृष्ट्वा समुदीर्यमाणमस्त्रं युगान्ताग्निसमप्रकाशम् ।
न सम्मुमोह द्रुपदस्य पुत्रो राजन्महेन्द्रप्रतिमप्रभावः ॥ २८ ॥
तस्थौ च तत्रैव महाधनुष्मान्शरैस्तदस्त्रं प्रतिबाधमानः ।
अथाऽऽददे वारुणमन्यदस्त्रं शिखण्ड्यथोग्रं प्रतिघातमस्य ॥ २९ ॥
तदस्त्रमस्त्रेण विदार्यमाणं खस्थाः सुरा ददृशुः पार्थिवाश्च ।
भीष्मस्तु राजन्समरे महात्मा धनुश्च चित्रं ध्वजमेव चाऽपि ॥ ३० ॥
छित्वाऽनदत्पाण्डुसुतस्य वीरो युधिष्ठिरस्याऽजमीढस्य राज्ञः ।
ततः समुत्सृज्य धनुःसबाणं युधिष्ठिरं वीक्ष्य भयाभिभूतम् ॥ ३१ ॥
गदां प्रगृह्याऽभिपपात संख्ये जयद्रथं भीमसेनः पदातिः ।
तमापतन्तं सहसा जवेन जयद्रथः सगदं भीमसेनम् ॥ ३२ ॥

काल जैसे क्षण भर में जगत् का संहार करता है वैसे ही भयानक वेग से तीक्ष्ण बाण बरसाकर पितामह मेरी सेना का संहार कर रहे हैं। इस समय धनुष कट जाने पर समर में हटकर, भीष्म से पराजित होकर, बन्धुओं और भाइयों को छोड़कर तुम कहाँ जा रहे हो? यह कार्य तुम्हारे योग्य नहीं है। हे द्रुपदपुत्र! तुम अनन्तपराक्रमी भीष्म का पराक्रम और अपनी सेना का भागना देखकर भयभीत हो गये हो। तुम्हारा मुख मन्द देख पड़ता है। घोर युद्ध छिड़ा हुआ है, अर्जुन कहीं पीछे हैं। ऐसे समय प्रसिद्ध वीर होकर तुम भीष्म से क्यों भयभीत हो रहे हो? ॥२२।२५॥ धर्मराज के ऐसे रूखे और तिरस्कार-पूर्ण वचन सुनकर वीर शिखण्डी भीष्म-वध के लिए, पूर्ण शक्ति लगाकर, चेष्टा करने लगे। शिखण्डी बड़े वेग के साथ भीष्म पर आक्रमण करने के लिए आगे बढ़े। उधर शल्य ने दुर्जय अमोघ अस्त्र का प्रयोग करके उन्हें मध्य में ही रोक लिया। प्रलयकाल की अग्नि के समान प्रकाशपूर्ण अस्त्र को देखकर इन्द्रतुल्य पराक्रमी शिखण्डी तनिक भी विचलित नहीं हुए। शिखण्डी ने वहीं खड़े रहकर अनेक बाणों से उस अस्त्र को व्यर्थ कर दिया। उन्होंने शल्य के अस्त्र को व्यर्थ करने के लिए वारुण-अस्त्र का प्रयोग किया। आकाश में स्थित देवगण और पृथ्वी पर राजा लोग वह अस्त्र के द्वारा अस्त्र का रोका जाना देखने लगे ॥२६।३०॥ उधर पितामह भीष्म ने राजा युधिष्ठिर का धनुष और विचित्र ध्वजा काटकर सिंहनाद किया। भीमसेन ने जब युधिष्ठिर को भयपीड़ित देखा तब वे धनुष-बाण छोड़कर, गदा हाथ में लेकर, पैदल ही जयद्रथ के ऊपर झपटे। गदा लिये भीमसेन को झपटकर आते देखकर जयद्रथ

विव्याध घोरैर्यमदण्डकल्पैः शितैः शरैः पञ्चशतैः समन्तात्।
अचिन्तयित्वा स शरांस्तरस्वी वृकोदरः क्रोधपरीतचेताः ॥ ३३ ॥
जघान वाहान्समरे समन्तात्पारावतान्सिंधुराजस्य संख्ये ।
ततोऽभिवीक्ष्याऽप्रतिमप्रभावस्तवाऽऽत्मजस्त्वरमाणो रथेन॥ ३४ ॥
अभ्याययौ भीमसेनं निहन्तुं समुद्यतास्त्रो सुरराजकल्पः।
भीमोऽप्यथैनं सहसा विनद्य प्रत्युद्ययौ गदया तर्जयानः ॥ ३५ ॥
समुद्यतां तां यमदण्डकल्पां दृष्ट्वा गदां ते कुरवः समन्तात्।
विहाय सर्वे तव पुत्रमुग्रं पातं गदायाः परिहर्तुकामाः ॥ ३६ ॥
अपक्रान्तास्तुमुले सम्प्रमर्दे सुदारुणे भारत मोहनीये ।
अमूढचेतास्त्वथ चित्रसेनो महागदामापतन्तीं निरीक्ष्य ॥ ३७ ॥
रथं स्वमुत्सृज्य पदातिराजौ प्रगृह्य खड्गं विपुलं च चर्म ।
अवप्लुतः सिंह इवाऽचलाग्राज्जगामाऽन्यं भूमिप भूमिदेशम्॥ ३८ ॥
गदाऽपि सा प्राप्य रथं सुचित्रं साश्वं ससूतं विनिहत्य संख्ये।
जगाम भूमिं ज्वलिता महोल्का भ्रष्टाऽम्बराद्गामिव सम्पतन्ती॥३९॥
आश्चर्यभूतं सुमहत्त्वदीया दृष्ट्वैव तद्भारत सम्प्रहृष्टाः ।
सर्वे विनेदुः सहिताः समन्तात्पुपूजिरे तव पुत्रस्य शौर्यम् ॥ ४० ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि सप्तमयुद्धदिवसे पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

ने यमदण्ड-तुल्य तीक्ष्ण पाँच सौ बाण मारे। उन बाणों का कुछ विचार न करके कुपित भीमसेन ने जयद्रथ के बढ़िया घोड़ों को गदा से मार डाला ॥३०।३४॥ तब इन्द्रतुल्य राजकुमार चित्रसेन भीमसेन को मारने के लिए शस्त्र उठाकर वेग से दौड़े। भीमसेन भी एकाएक सिंहनाद करके गदा घुमाते हुए चित्रसेन पर झपटे। कौरवपक्ष के वीर उस यमदण्डतुल्य गदा को देखकर उसके उग्र प्रहार से बचने के लिए, आपके पुत्र चित्रसेन को छोड़कर, भाग खड़े हुए। वह गदा गिरने के पहले ही चित्रसेन ढाल-तलवार लेकर, पर्वत-शिखर से कूदते हुए सिंह की तरह, निर्भय भाव से रथ से कूद पड़े। हे महाराज! दुर्योधन आदि वीरगण चित्रसेन की इस विचित्र चातुरी को देखकर बहुत प्रसन्न हुए। वे सिंहनाद करने और आपके पुत्र की शूरता की सराहने लगे। वह गदा उस विचित्र रथ पर गिरकर घोड़े, सारथी और रथ को चूर चूर करके, आकाश से गिरी हुई भारी उल्का की तरह, वेग से पृथ्वी में धँस गई ॥३५।४०॥

भीष्मपर्व का पचासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ८५ ॥

अथ षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

सञ्जय उवाच—विरथं तं समासाद्य चित्रसेनं यशस्विनम् ।
रथमारोपयामास विकर्णस्तनयस्तव ॥ १ ॥

तस्मिंस्तथा वर्तमाने तुमुले संकुले भृशम् ।
भीष्मः शान्तनवस्तूर्णं युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ २ ॥
ततः सरथनागाश्वा समकम्पन्त सृञ्जयाः ।
मृत्योरास्यमनुप्राप्तं मेनिरे च युधिष्ठिरम् ॥ ३ ॥
युधिष्ठिरोऽपि कौरव्यो यमाभ्यां सहितः प्रभुः ।
महेष्वासं नरव्याघ्रं भीष्मं शान्तनवं ययौ ॥ ४ ॥
ततः शरसहस्राणि प्रमुञ्चन्पाण्डवो युधि ।
भीष्मं सञ्छादयामास यथा मेघो दिवाकरम् ॥ ५ ॥
तेन सम्यक्प्रणीतानि शरजालानि मारिष ।
प्रतिजग्राह गाङ्गेयः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ६ ॥
तथैव शरजालानि भीष्मेणाऽस्तानि मारिष ।
आकाशे समदृश्यन्त खगमानां व्रजा इव ॥ ७ ॥
निमेषार्धेन कौन्तेयं भीष्मः शान्तनवो युधि ।
अदृश्यं समरे चक्रे शरजालेन भागशः ॥ ८ ॥
ततो युधिष्ठिरो राजा कौरव्यस्य महात्मनः ।
नाराचं प्रेषयामास क्रुद्ध आशीविषोपमम् ॥ ९ ॥
असम्प्राप्तं ततस्तं तु क्षुरप्रेण महारथः ।
चिच्छेद समरे राजन्भीष्मस्तस्य धनुश्च्युतम् ॥ १० ॥

छियासीवाँ अध्याय ॥ ८६ ॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! आपके पुत्र विकर्ण ने मनस्वी चित्रसेन का टूटा हुआ रथ देखकर, शीघ्र वहाँ जाकर, उन्हें अपने रथ पर बिठा लिया। उस भयानक संग्राम में भीष्म शीघ्रतापूर्वक युधिष्ठिर की ओर बढ़े। यह देखकर सृञ्जयगण और उनके वाहन हाथी, घोड़े आदि भय के मारे काँप उठे। उन्होंने समझ लिया कि युधिष्ठिर मृत्यु के मुख में पड़ गये हैं ॥१।३॥ तब नकुल और सहदेव के साथ स्वयं धर्मराज युधिष्ठिर महाधनुर्धर नरश्रेष्ठ भीष्म के सम्मुख जाकर बाण बरसाने लगे। उनके बाणजाल में भीष्म का रथ वैसे ही छिप गया जैसे घनघटा में सूर्य का बिम्ब छिप जाता है। भीष्म ने युधिष्ठिर आदि के उन असंख्य बाणों पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। वे युधिष्ठिर आदि पर असंख्य बाण बरसाने लगे। वे बाण आकाश में उड़ते हुए पक्षियों के झुण्डों की तरह जान पड़ते थे ॥४।७॥ भीष्म ने पल भर में युधिष्ठिर को बाणों से अदृश्य सा कर दिया। तब राजा युधिष्ठिर ने क्रोध से अधीर होकर भीष्म को विषैले सर्प के समान एक नाराच बाण मारा। महारथी भीष्म ने युधिष्ठिर के उस कालतुल्य बाण को मार्ग में ही काट डाला ॥८।१०॥ और उनके सुवर्ण-भूषणभूषित घोड़ों को भी मार डाला। अब धर्मात्मा

तं तु छित्वा रणे भीष्मो नाराचं कालसम्मितम् ।
निजघ्ने कौरवेन्द्रस्य हयान्काञ्चनभूषणान् ॥ ११ ॥
हताश्वं तु रथं त्यक्त्वा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
आरुरोह रथं तूर्णं नकुलस्य महात्मनः ॥ १२ ॥
यमावपि हि संक्रुद्धः समासाद्य रणे तदा ।
शरैः सञ्छादयामास भीष्मः परपुरञ्जयः ॥ १३ ॥
तौ तु दृष्ट्वा महाराज भीष्मबाणप्रपीडितौ ।
जगाम परमां चिन्तां भीष्मस्य वधकांक्षया ॥ १४ ॥
ततो युधिष्ठिरो वश्यान्राज्ञस्तान्समचोदयत् ।
भीष्मं शान्तनवं सर्वे निहतेति सुहृद्गणान् ॥ १५ ॥
ततस्ते पार्थिवाः सर्वे श्रुत्वा पार्थस्य भाषितम् ।
महता रथवंशेन परिवव्रुः पितामहम् ॥ १६ ॥
स समन्तात्परिवृतः पिता देवव्रतस्तव ।
चिक्रीड धनुषा राजन्पातयानो महारथान् ॥ १७ ॥
तं चरन्तं रणे पार्था ददृशुः कौरवं युधि ।
मृगमध्यं प्रविश्येव यथा सिंहशिशुं वने ॥ १८ ॥
तर्जयानं रणे वीरांस्त्रासयानं च सायकैः ।
दृष्ट्वा त्रेसुर्महाराज सिंहं मृगगणा इव ॥ १९ ॥
रणे भारतसिंहस्य ददृशुः क्षत्रिया गतिम् ।
अग्नेर्वायुसहायस्य यथा कक्षं दिधक्षतः ॥ २० ॥

युधिष्ठिर स्फूर्ति से वह रथ छोड़कर नकुल के रथ पर चढ़ गये। शत्रुनाशन भीष्म क्रोध से विह्वल होकर, नकुल-सहदेव के आगे जाकर, उन पर बाणवर्षा करने लगे ॥११।१३॥ नकुल और सहदेव को भीष्म के बाणों से अत्यन्त पीड़ित देखकर राजा युधिष्ठिर, पितामह के वध के लिए, अत्यन्त चिन्तित हो उठे। उन्होंने अपने पक्ष के मित्र राजाओं को आज्ञा दी कि सब लोग मिलकर पितामह को मार डालें ॥१४।१५॥ यह आज्ञा पाते ही सब राजाओं ने असंख्य रथों के द्वारा चारों ओर से भीष्म को घेर लिया। महावीर भीष्म अत्यन्त क्रुद्ध होकर, मण्डलाकार धनुष घुमाकर, बाण बरसाते और पाण्डवपक्ष के वीरों को मार-मारकर गिराते हुए विचरने लगे ॥१६।१७॥ उस समय पाण्डवसेना के वीर योद्धा लोग भीष्म को मृगों के मध्य सिंह के समान देखकर भय के मारे अचेत से हो गये। मृगों को सिंह के समान पाण्डव-सेना को मारते और भयभीत कराते हुए भीष्म पितामह सिंहनाद करने लगे। उनके तर्जन-गर्जन से शत्रुसेना

शिरांसि रथिनां भीष्मः पातयामास संयुगे ।
तालेभ्यः परिपक्वानि फलानि कुशलो नरः ॥ २१ ॥
पतद्भिश्च महाराज शिरोभिर्धरणीतले ।
बभूव तुमुलः शब्दः पतताम्श्मनामिव ॥ २२ ॥
तस्मिन्सुतुमुले युद्धे वर्तमाने भयानके ।
सर्वेषामेव सैन्यानामासीद्व्यतिकरो महान् ॥ २३ ॥
भिन्नेषु तेषु व्यूहेषु क्षत्रिया इतरेतरम् ।
एकमेकं समाहूय युद्धायैवाऽवतस्थिरे ॥ २४ ॥
शिखण्डी तु समासाद्य भरतानां पितामहम् ।
अभिदुद्राव वेगेन तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥ २५ ॥
अनादृत्य ततो भीष्मस्तं शिखण्डिनमाहवे ।
प्रययौ सृञ्जयान्क्रुद्धः स्त्रीत्वं चिन्त्य शिखण्डिनः ॥ २६ ॥
सृञ्जयास्तु ततो दृष्ट्वा हृष्टं भीष्मं महारणे ।
सिंहनादांश्च विविधांश्चक्रुः शङ्खविमिश्रितान् ॥ २७ ॥
ततः प्रववृते युद्धं व्यतिषक्तरथद्विपम् ।
पश्चिमां दिशमासाद्य स्थिते सवितरि प्रभो ॥ २८ ॥
धृष्टद्युम्नोऽथ पाञ्चाल्यः सात्यकिश्च महारथः ।
पीडयन्तौ भृशं सैन्यं शक्तितोमरवृष्टिभिः ॥ २९ ॥

भागने लगा। क्षत्रियों ने देखा कि सूखी हुई घास के ढेर को या वन को वायु की सहायता से प्रचण्ड अग्नि जैसे जलाता है वैसे ही भीष्म पितामह सेना को नष्ट करते हुए फिर रहे हैं ॥१८।२०॥ सुनिपुण पुरुष जैसे ताड के पके फलों को पेड से तोड तोड कर गिराता है वैसे ही भीष्म रथियों के सिरों को अपने बाणों से काट-काटकर गिरा रहे थे। भीष्म के बाणों से कटे वीरों के सिर पृथ्वी पर, शिलापात के समान, शब्द के साथ गिर रहे थे। हे राजेन्द्र ! इस प्रकार वह युद्ध क्रमशः अत्यन्त घोर हो उठा। सैनिक लोग इधर-उधर हट गये और व्यूह रचना नष्ट हो गई। हरएक वीर दूसरे वीर को बुला बुलाकर उससे युद्ध करने लगा ॥२१।२४॥ द्रुपद के पुत्र शिखण्डी भीष्म से 'ठहरो ठहरो" कहकर उनकी ओर दौडे। महावीर भीष्म शिखण्डी के स्त्रीभाव पर विचार करके उन्हे छोडकर सृञ्जयगण की ओर युद्ध करने चले गये। सृञ्जयगण प्रसन्नतापूर्वक शङ्खनाद और सिंहनाद करने लगे। उस समय सूर्यदेव पश्चिम दिशा में पहुँच चुके थे। प्राणों की ममता छोडकर कौरव और पाण्डव दारुण युद्ध करने लगे ॥२५।२८॥ महावीरी धृष्टद्युम्न और पराक्रमी सात्यकि असंख्य तोमर, शक्ति, बाण आदि शस्त्रों से कौरवपक्ष की सेना को पीडित करने लगे। उनके बाणों से अत्यन्त व्यथित होने पर भी सैनिक लोग चतुराई के साथ

शस्त्रैश्च बहुभी राजञ्जघ्नुस्तावकान्रणे ।
ते हन्यमानाः समरे तावका भरतर्षभ ॥ ३० ॥
आर्या युद्धे मतिं कृत्वा न त्यजन्ति स्म संयुगम् ।
यथोत्साहं तु समरे निजघ्नुस्तावका रणे ॥ ३१ ॥
तत्राऽऽक्रन्दो महनासीत्तावकानां महात्मनाम् ।
वध्यतां समरे राजन्पार्षतेन महात्मना ॥ ३२ ॥
तं श्रुत्वा निनदं घोरं तावकानां महारथौ ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ पार्षतं प्रत्युपस्थितौ ॥ ३३ ॥
तौ तस्य तुरगान्हत्वा त्वरमाणौ महारथौ ।
छादयामासतुरुभौ शरवर्षेण पार्षतम् ॥ ३४ ॥
अवप्लुत्याऽथ पाञ्चाल्यो रथात्तूर्णं महाबलः ।
आरुरोह रथं तूर्णं सात्यकेस्तु महात्मनः ॥ ३५ ॥
ततो युधिष्ठिरो राजा महत्या सेनया वृतः ।
आवन्त्यौ समरे क्रुद्धावभ्ययात्स परन्तपौ ॥ ३६ ॥
तथैव तव पुत्रोऽपि सर्वोद्योगेन मारिष ।
विन्दानुविन्दौ समरे परिवार्याऽवतस्थिवान् ॥ ३७ ॥
अर्जुनश्चापि संक्रुद्धः क्षत्रियान्क्षत्रियर्षभः ।
अयोधयत संग्रामे वज्रपाणिरिवाऽसुरान् ॥ ३८ ॥
द्रोणस्तु समरे क्रुद्धः पुत्रस्य प्रियकृत्तव ।
व्यधमत्सर्वपञ्चालांस्तूलराशिमिवाऽनलः ॥ ३९ ॥

युद्ध करते रहे । वीरगण और भी उत्साह के साथ शत्रुओं की सेना का संहार करने लगे । धृष्टद्युम्न के बाणों से अत्यन्त पीडित होकर बहुत से सैनिक ऊँचे स्वर से चिल्लाने लगे ॥ ३०।३२ ॥ उनका घोर चीत्कार सुनकर अवन्ति देश के राजा विन्द और अनुविन्द धृष्टद्युम्न के पास पहुँचे । उन्होंने धृष्टद्युम्न के घोडे मारकर उनको भी बाणों से छिपा दिया । धृष्टद्युम्न शीघ्रता के साथ बिना घोडों के रथ से उतरकर सात्यकि के रथ पर चढ गये ॥ ३३।३५ ॥ धर्मराज युधिष्ठिर क्रुद्ध होकर, बहुत सी सेना साथ लेकर, विन्द और अनुविन्द के सन्मुख आये । यह देखकर राजा दुर्योधन भी बहुत सी सेना साथ ले विन्द और अनुविन्द की रक्षा के लिए उनके पास पहुँचे । इधर परम भी अर्जुन, क्रुद्ध होकर, दानवों को मारने के लिए उद्यत इन्द्र की तरह कौरवसेना का संहार करने लगे ॥ ३६।३८ ॥ दुर्योधन का हित चाहनेवाले द्रोणाचार्य भी क्रुद्ध होकर, अग्नि जैसे रूई के ढेर को जलाती है वैसे ही पाञ्चालसेना को नष्ट करने लगे । दुर्योधन

दुर्योधनपुरोगास्तु पुत्रास्तत्र विशाम्पते ।
परिवार्य रणे भीष्मं युयुधुः पाण्डवैः सह ॥ ४० ॥
ततो दुर्योधनो राजा लोहितायति भास्करे ।
अब्रवीत्तावकान्सर्वास्त्वरध्वमिति भारत ॥ ४१ ॥
युध्यतां तु तथा तेषां कुर्वतां कर्म दुष्करम् ।
अस्तं गिरिमथाऽऽरूढे अप्रकाशति भास्करे ॥ ४२ ॥
प्रावर्तत नदी घोरा शोणितौघतरङ्गिणी ।
गोमायुगणसङ्कीर्णा क्षणेन क्षणदामुखे ॥ ४३ ॥
शिवाभिरशिवाभिश्च रुवद्भिर्भैरवं रवम् ।
घोरमायोधनं जज्ञे भूतसङ्घैः समाकुलम् ॥ ४४ ॥
राक्षसाश्च पिशाचाश्च तथाऽन्ये पिशिताशिनः ।
समन्ततो व्यदृश्यन्त शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ४५ ॥
अर्जुनोऽथ सुशर्मादीन्राज्ञस्तान्सपदानुगान् ।
विजित्य पृतनामध्ये ययौ स्वशिविरं प्रति ॥ ४६ ॥
युधिष्ठिरोऽपि कौरव्यो भ्रातृभ्यां सहितस्तथा ।
ययौ स्वशिविरं राजा निशायां सेनया वृतः ॥ ४७ ॥
भीमसेनोऽपि राजेन्द्र दुर्योधनमुखान्रथान् ।
अवजित्य ततः संख्ये ययौ स्वशिविरं प्रति ॥ ४८ ॥
दुर्योधनोऽपि नृपतिः परिवार्य महारणे ।
भीष्मं शान्तनवं तूर्णं प्रयातः शिविरं प्रति ॥ ४९ ॥

आदि आपके पुत्र, भीष्म के आसपास रहकर, पाण्डवों से युद्ध करने लगे। सूर्य भगवान् क्रमशः रक्तवर्ण के होकर जब अस्ताचल पर पहुँच गये तब दुर्योधन ने अपने पक्ष की सेना से कहा—तुम लोग शीघ्रता के साथ जाकर शत्रुसेना का संहार करो ॥४०।४१॥ यह आज्ञा सुनकर सब योद्धा लोग युद्धभूमि में असाधारण पराक्रम दिखाते हुए दुष्कर काम करने लगे। उस समय रणभूमि में भयङ्कर रक्त की नदी बह चली। अत्यन्त भयानक शब्द करते हुए सियारों के झुण्ड उसके किनारे विचरने लगे। राक्षस, पिशाच आदि मांसाहारी जीव चारों ओर दिखाई पड़ने लगे। इस प्रकार वह रणभूमि सैकड़ों हजारों भूतों से परिपूर्ण होकर अत्यन्त भयानक हो उठी ॥४२।४५॥ सन्ध्या होने पर असंख्य सेना सहित सुशर्मा आदि राजाओं को हराकर पराक्रमी अर्जुन अपने शिविर को लौटे। नकुल, सहदेव और असंख्य सेना को साथ लेकर युधिष्ठिर भी शिविर में लौट आये। भीमसेन भी राजा दुर्योधन आदि प्रधान रथियों को हराकर अपने शिविर

द्रोणो द्रौणिः कृपः शल्यः कृतवर्मा च सात्वतः ।
परिवार्य चमूं सर्वां प्रययुः शिबिरं प्रति ॥ ५० ॥
तथैव सात्यकी राजन्धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
परिवार्य रणे योधान्ययतुः शिबिरं प्रति ॥ ५१ ॥
एवमेते महाराज तावकाः पाण्डवैः सह ।
पर्यवर्तन्त सहिता निशाकाले परन्तप ॥ ५२ ॥
ततः स्वशिबिरं गत्वा पाण्डवाः कुरवस्तथा ।
न्यवसन्त महाराज पूजयन्तः परस्परम् ॥ ५३ ॥
रक्षां कृत्वा ततः शूरा न्यस्य गुल्मान्यथाविधि ।
अपनीय च शल्यानि स्नात्वा च विविधैर्जलैः ॥ ५४ ॥
कृतस्वस्त्ययनाः सर्वे संस्तूयन्तश्च वन्दिभिः ।
गीतवादित्रशब्देन व्यक्रीडन्त यशस्विनः ॥ ५५ ॥
मुहूर्तादिव तत्सर्वमभवत्स्वर्गसन्निभम् ।
नहि युद्धकथां काश्चित्तत्राऽकुर्वन्महारथाः ॥ ५६ ॥
ते प्रसुप्ते बले तत्र परिश्रान्तजने नृप ।
हस्त्यश्वबहुले रात्रौ प्रेक्षणीये बभूवतुः ॥ ५७ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि सप्तमदिवसयुद्धावहारे षडशीतितमोऽध्याय. ॥ ८६ ॥

को लौटे ॥४६।४८॥ भीष्म पितामह के साथ महारथी लोग और दुर्योधन आदि अपने शिविर को लौट पड़े । द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, शल्य और कृतवर्मा भी सैनिकों के साथ अपने डेरों को लौटे । सात्यकि और धृष्टद्युम्न भी योद्धाओं के साथ अपने शिविरों में गये ॥४९।५१॥ इस प्रकार कौरव और पाण्डव पक्ष के वीर रात्रि के समय लौट गये । अपने-अपने डेरे में जाकर उन्होंने परस्पर यथोचित सत्कार दिखलाया तथा रक्षा का प्रबन्ध, गुल्म की स्थापना आदि कार्य किये । घायलों के अङ्गों से शल्य आदि निकाले गये, मरहम-पट्टी हो गई । स्नान आदि करके, वस्त्र धारणकर, सब लोग बड़े आनन्द के साथ आमोद-प्रमोद करने लगे ॥५२।५४॥ ब्राह्मण लोग स्वस्त्ययन-पाठ और बन्दीजन प्रशंसा करने लगे । कौरवों और पाण्डवों के डेरे स्वर्ग के विमान-से जान पड़ते थे । उस समय वहाँ युद्ध की चर्चा भी नहीं थी । योद्धा लोग इस प्रकार आमोद-प्रमोद करके सो रहे । हाथी, घोड़े आदि भी विश्राम करने लगे । शान्ति हो जाने से उस स्थान की अपूर्व शोभा हुई ॥५५।५७॥

— ० —

भीष्मपर्व का छियासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ८६ ॥

अथ सप्ताशीतितमोऽध्याय ॥ ८७ ॥

सञ्जय उवाच — परिणाम्य निशां तां तु सुखं प्राप्ता जनेश्वराः ।
कुरवः पाण्डवाश्चैव पुनर्युद्धाय निर्ययुः ॥ १ ॥
ततः शब्दो महानासीत्सैन्ययोरुभयोर्नृप ।
निर्गच्छमानयोः संख्ये सागरप्रतिमो महान् ॥ २ ॥
ततो दुर्योधनो राजा चित्रसेनो विविंशतिः ।
भीष्मश्च रथिनां श्रेष्ठो भारद्वाजश्च वै नृप ॥ ३ ॥
एकीभूताः सुसंयत्ताः कौरवाणां महाचूमम् ।
व्यूहाय विदधू राजन्पाण्डवान्प्रति दंशिताः ॥ ४ ॥
भीष्मः कृत्वा महाव्यूहं पिता तव विशाम्पते ।
सागरप्रतिमं घोरं वाहनोर्मितरङ्गिणम् ॥ ५ ॥
अग्रतः सर्वसैन्यानां भीष्मः शान्तनवो ययौ ।
मालवैर्दाक्षिणात्यैश्च आवन्त्यैश्च समन्वितः ॥ ६ ॥
ततोऽनन्तरमेवाऽऽसीद्भारद्वाजः प्रतापवान् ।
कुलिन्दैः पारदैश्चैव तथा क्षुद्रकमालवैः ॥ ७ ॥
द्रोणादनन्तरं यत्तो भगदत्तः प्रतापवान् ।
मगधैश्च कलिङ्गैश्च पिशाचैश्च विशाम्पते ॥ ८ ॥
प्राग्ज्योतिपादनु नृपः कौसल्योऽथ बृहद्बलः ।
मेकलैः कुरुविन्दैश्च त्रैपुरैश्च समन्वितः ॥ ९ ॥

सत्तासीवाँ अध्याय ॥ ८७ ॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन्द्र ! इस प्रकार कौरव और पाण्डव पक्ष के वीरगण रात्रि भर सुख की निद्रा सोकर प्रातः फिर युद्ध के लिए प्रस्तुत हो अपने शिविरों से निकले। दोनों ओर की सेना में युद्धयात्रा के समय समुद्र के उमड़ पड़ने का सा घोर कोलाहल होने लगा ॥१।२॥ उस समय राजा दुर्योधन, चित्रसेन, विविंशति, महारथी भीष्म और महाबली द्रोणाचार्य आदि वीरों ने एकत्र होकर व्यूह की रचना की ॥३।४॥ भीष्म ने समुद्र-सा अपार गम्भीर महाव्यूह बनाया। मालव, अवन्ती और दक्षिण के देशों की सेना तथा राजा लोग भीष्म के साथ सारी सेना के आगे चले। उनके पीछे पराक्रमी द्रोणाचार्य चले। उनके साथ कुलिन्द, पारद और क्षुद्रक-मालव आदि देशों के राजा अपनी अपनी सेना साथ लेकर चले। ॥५।७॥ द्रोणाचार्य के पीछे मगध, कलिङ्ग और पिशाच आदि देशों की सेना साथ लिये प्राग्ज्योतिषपुर के राजा प्रतापी भगदत्त का दल चला। उनके पीछे मेकल, कुरविन्द और त्रिपुरा आदि देशों की

बृहद्बलतात्ततः शूरस्त्रिगर्तः प्रस्थलाधिपः ।
काम्बोजैर्बहुभिः सार्धं यवनैश्च सहस्रशः ॥ १० ॥
द्रौणिस्तु रभसः शूरस्त्रैगर्तादनु भारत ।
प्रययौ सिंहनादेन नादयानो धरातलम् ॥ ११ ॥
तथा सर्वेण सैन्येन राजा दुर्योधनस्तदा ।
द्रौणेरनन्तरं प्रायात्सोदर्यैःपरिवारितः ॥ १२ ॥
दुर्योधनादनु ततः कृपः शारद्वतो ययौ ।
एवमेष महाव्यूहः प्रययौ सागरोपमः ॥ १३ ॥
रेजुस्तत्र पताकाश्च श्वेतच्छत्राणि वा विभो ।
अङ्गदान्यत्र चित्राणि महार्हाणि धनूंषि च ॥ १४ ॥
तं तु दृष्ट्वा महाव्यूहं तावकानां महारथः ।
युधिष्ठिरोऽब्रवीत्तूर्णं पार्षतं पृतनापतिम् ॥ १५ ॥
पश्य व्यूहं महेष्वास निर्मितं सागरोपमम् ।
प्रतिव्यूहं त्वमपि हि कुरु पार्षत सत्वरम् ॥ १६ ॥
ततः स पार्षतः क्रूरो व्यूहं चक्रे सुदारुणम् ।
श्रृङ्गाटकं महाराज परव्यूहविनाशनम् ॥ १७ ॥
श्रृङ्गाभ्यां भीमसेनश्च सात्यकिश्च महारथः ।
रथैरनेकसाहस्रैस्तथा हयपदातिभिः ॥ १८ ॥

सेना साथ लिये कोसलेश्वर बृहद्बल चले। उनके पीछे त्रिगर्त और प्रस्थल देश के राजा सुशर्मा बहुत सी, काम्बोज और यवन देश की, सेना साथ लेकर चले ॥८।१०॥ उनके पीछे अश्वत्थामा पृथ्वीमण्डल को कँपाते हुए चले। उनके पीछे दुर्योधन सब भाइयों को साथ लिये हुए चले। इस प्रकार वह समुद्र-तुल्य सेना महाव्यूह की रचना करके युद्ध के लिए आगे बढ़ी। पताका, श्वेत छत्र, विचित्र अङ्गद आदि भूषण बहुमूल्य वस्त्र और धनुष आदि अस्त्र शस्त्र उस सेना की अपूर्व शोभा को बढ़ा रहे थे ॥११।१४॥ हे महाराज! उधर महारथी युधिष्ठिर ने कौरवों का महाव्यूह देख कर उसके प्रत्युत्तर में दूसरा व्यूह रचने के लिए अपने प्रधान सेनापति धृष्टद्युम्न से तत्काल कहा कि हे वीरश्रेष्ठ! कौरवों ने समुद्र-तुल्य व्यूह की रचना की है। तुम भी इसके प्रत्युत्तर में कोई दुर्भेद्य श्रेष्ठ व्यूह शीघ्र बनाओ। "जो आज्ञा" कहकर महाबली धृष्टद्युम्न ने उसी क्षण शत्रु के व्यूह को तोड़नेवाला श्रृङ्गाटक (सिंघाड़े के आकार का) व्यूह बनाया ॥१५।१७॥ उस व्यूह के श्रृङ्गद्वारों में कई हजार रथ, हाथी, घोड़े और पैदल सेना साथ लेकर वीर भीमसेन और सात्यकि स्थित हुए। नाभिदेश में कपिध्वज अर्जुन, मध्यदेश में धर्मराज युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव विराजमान हुए। व्यूहरचना की कला में निपुण और और धनुर्द्धर राजा लोग अपनी अपनी

ताभ्यां बभौ नरश्रेष्ठः श्वेताश्वः कृष्णसारथिः ।
मध्ये युधिष्ठिरो राजा माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ १९ ॥
अथोत्तरे महेष्वासाः सहसैन्या नराधिपाः ।
व्यूहं तं पूरयामासुर्व्यूहशास्त्रविशारदाः ॥ २० ॥
अभिमन्युस्ततः पश्चाद्विराटश्च महारथः ।
द्रौपदेयाश्च संहृष्टा राक्षसश्च घटोत्कचः ॥ २१ ॥
एवमेतं महाव्यूहं व्यूह्य भारत पाण्डवाः ।
अतिष्ठन्समरे शूरा योद्धुकामा जयैषिणः ॥ २२ ॥
भेरीशब्दैश्च विमलैर्विमिश्रैः शङ्खनिःस्वनैः ।
क्ष्वेडितास्फोटितोत्क्रुष्टैर्नादिताः सर्वतो दिशः ॥ २३ ॥
ततः शूराः समासाद्य समरे ते परस्परम् ।
नेत्रैरनिमिषै राजन्नवैक्षन्त परस्परम् ॥ २४ ॥
नामभिस्ते मनुष्येन्द्र पूर्वं योधाः परस्परम् ।
युद्धाय समवर्तन्त समाहूयेतरेतरम् ॥ २५ ॥
ततः प्रववृते युद्धं घोररूपं भयावहम् ।
तावकानां परेषां च निघ्नतामितरेतरम् ॥ २६ ॥
नाराचा निशिताः संख्ये सम्पतन्ति स्म भारत ।
व्यात्तानना भयकरा उरगा इव सङ्घशः ॥ २७ ॥
निष्पेतुर्विमलाः शक्त्यस्तैलधौताः सुतेजनाः ।
अम्बुदेभ्यो यथा राजन्भ्राजमानाः शतह्रदाः ॥ २८ ॥

सेना के साथ स्थान स्थान उस व्यूह की रक्षा करने लगे ॥१८।२०॥ उनके पीछे प्रधान रथी अभिमन्यु, राजा विराट, द्रौपदी के पाँचों पुत्र और राक्षस घटोत्कच आदि रक्खे गये। पाण्डवगण इस प्रकार महाव्यूह सुसज्जित करके जय की अभिलाषा से युद्ध में प्रवृत्त हुए। उस समय चारों ओर तुमुल शङ्खध्वनि, भेरी आदि बाजों का शब्द, सिंहनाद, आस्फोटन (ताल ठोकना) और आह्वान आदि का शब्द सेना के कोलाहल में मिलकर आकाश तक गूँज उठा ॥२१।२३॥ तब शूर वीर योद्धा लोग एक दूसरे से भिड़कर परस्पर टकटकी लगाकर देखने लगे। फिर अपने-अपने समकक्ष को ललकारकर, नाम ले लेकर, युद्ध के लिए बुलाने और प्रहार करने लगे। दोनों ओर के योद्धा लोग घोर संग्राम करने लगे। मुख फैलाये हुए विषैले सर्प के समान भयङ्कर नाराच बाण—मेघ में चमकती हुई बिजली के समान—तेल से शुद्ध की हुई शक्तियाँ और स्वच्छ वस्त्रों में आच्छादित की हुई पर्वत के शिखर के तुल्य

गदाश्च विमलैः पट्टैः पिनद्धाः स्वर्णभूषितैः ।
पतन्त्यस्तत्र दृश्यन्ते गिरिश्रृङ्गोपमाः शुभाः ॥ २९ ॥
निस्त्रिंशाश्च व्यदृश्यन्त विमलाम्बरसन्निभाः ।
आर्षभाणि विचित्राणि शतचन्द्राणि भारत ॥ ३० ॥
अशोभन्त रणे राजन्पात्यमानानि सर्वशः ।
तेऽन्योन्यं समरे सेने युद्ध्यमाने नराधिप ॥ ३१ ॥
अशोभेतां यथा देवदैत्यसेने समुद्यते ।
अभ्यद्रवन्त समरे तेऽन्योन्यं वै समन्ततः ॥ ३२ ॥
रथास्तु रथिभिस्तूर्णं प्रेरिताः परमाहवे ।
युगैर्युगानि संश्लिष्य युयुधुः पार्थिवर्षभाः ॥ ३३ ॥
दन्तिनां युध्यमानानां सङ्घर्षात्पावकोऽभवत् ।
दन्तेषु भरतश्रेष्ठ सधूमः सर्वतोदिशम् ॥ ३४ ॥
प्रासैरभिहताः केचिद्गजयोधाः समन्ततः ।
पतमानाः स्म दृश्यन्ते गिरिश्रृङ्गान्नगा इव ॥ ३५ ॥
पादाताश्चाऽप्यदृश्यन्त निघ्नन्तोऽथ परस्परम् ।
चित्ररूपधराः शूरा नखरप्रासयोधिनः ॥ ३६ ॥
अन्योन्यं ते समासाद्य कुरुपाण्डवसैनिकाः ।
अस्त्रैर्नानाविधैर्घोरै रणे निन्युर्यमक्षयम् ॥ ३७ ॥
ततः शान्तनवो भीष्मो रथघोषेण नादयन् ।
अभ्यागमद्रणे पार्थान्धनुःशब्देन मोहयन् ॥ ३८ ॥

स्वर्णमण्डित गदाएँ युद्धभूमि में इधर-उधर वीरों पर गिरने लगीं ॥२९।२७॥ निर्मल आकाश के समान नीली चमकीली तलवारें, खाँडे, कटारी, शतचन्द्र शोभित सुदृढ ढालें चारों ओर युद्धभूमि की शोभा को बढ़ाती हुई चमकती देख पड़ने लगीं ॥२८।३०॥ दोनों ओर के वीर परस्पर घोरतर युद्ध के लिए उद्यत देवताओं और दैत्यों के समान जान पड़ते थे। श्रेष्ठ क्षत्रिय रथी, रथयुग में शत्रुपक्ष के रथयुगों को खींचते हुए, भिड़कर युद्ध करने लगे ॥३१।३३॥ सर्वत्र भिड़कर युद्ध करते हुए हाथियों के दाँत दाँतों से टकराने लगे और उनमें धुएँ सहित अग्नि की चिनगारियाँ निकलने लगीं। कोई-कोई हाथी के सवार प्रास नामक शस्त्र के प्रहार से मरकर पर्वत के शिखर पर से टूटकर गिरे हुए बड़े वृक्ष के समान जान पड़े। पैदल योद्धा लोग नखर और प्रास आदि शस्त्रों से शत्रुपक्ष के पैदलों को मारने और गिराने लगे। इस प्रकार कौरवों और पाण्डवों की सेना के योद्धा परस्पर भिड़कर एक दूसरे को मारने और मरने लगे ॥३४।

पाण्डवानां रथाश्चाऽपि नदन्तो भैरवं स्वनम् ।
अभ्यद्रवन्त संयत्ता धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ॥ ३९ ॥
ततः प्रववृते युद्धं तव तेषां च भारत ।
नराश्वरथनागानां व्यतिषक्तं परस्परम् ॥ ४० ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि अष्टमदिवसयुद्धारम्भे सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

३७॥ उस समय महावीर भीष्म रथ की घरघराहट से युद्धभूमि को कँपाते और धनुष की ध्वनि से पाण्डवों को तथा उनकी सेना को मोहित करते आ पहुचे। धृष्टद्युम्न आदि पाण्डवपक्ष के महारथी भी भयानक शब्द और सिंहनाद करते हुए आगे बढ़े। इस प्रकार दोनो ओर के मनुष्य, रथ, हाथी और घोडे परस्पर भिड़ गये और घोर कोलाहल के साथ दारुण युद्ध होने लगा ॥३८।४०॥

भीष्मपर्व का सत्तासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ८७ ॥

अथ अष्टाशीतितमोऽध्याय ॥ ८८ ॥

सञ्जय उवाच—भीष्मं तु समरे क्रुद्धं प्रतपन्तं समन्ततः ।
न शेकुः पाण्डवा द्रष्टुं तपन्तमिव भास्करम् ॥ १ ॥
ततः सर्वाणि सैन्यानि धर्मपुत्रस्य शासनात् ।
अभ्यद्रवन्त गाङ्गेयं मर्दयन्तं शितैः शरैः ॥ २ ॥
स तु भीष्मो रणश्लाघी सोमकान्सह सृञ्जयान् ।
पञ्चालांश्च महेष्वासान्पातयामास सायकैः ॥ ३ ॥
ते वध्यमाना भीष्मेण पञ्चालाः सोमकैः सह ।
भीष्ममेवाऽभ्ययुस्तूर्णं त्यक्त्वा मृत्युकृतं भयम् ॥ ४ ॥
स तेषां रथिनां वीरो भीष्मः शान्तनवो युधि ।
चिच्छेद सहसा राजन्बाहूनथ शिरांसि च ॥ ५ ॥

सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र ! पाण्डव लोग महापराक्रमी, सूर्य के समान तेजस्वी, महावीर भीष्म की क्रुद्ध भयानक मूर्ति को युद्धभूमि मे अच्छी प्रकार देख नहीं सकते थे। पाण्डवपक्ष के योद्धा लोग राजा युधिष्ठिर की आज्ञा से भीष्म के ऊपर बाण बरसाते हुए युद्ध करने के लिए आगे बढ़े। तब युद्धप्रिय वीर भीष्म पितामह असंख्य तीक्ष्ण बाण चलाकर सोमक, सृञ्जय और पाञ्चाल वीरो को मारने और गिराने लगे ॥१।३॥ युद्ध मे उत्साह रखनेवाले पाञ्चालगण और सोमकगण भीष्म के बाणो से अत्यन्त पीडित होकर भी हटे नहीं। वे जीवन की आशा छोडकर युद्ध करते हुए उनपर आक्रमण करने लगे। पराक्रमी भीष्म ने किसी का हाथ काट डाला, किसी का सिर काट डाला। उन्होने रथी योद्धाओं के रथों के टुकडे-टुकडे कर डाले। युद्धभूमि मे भीष्म के बाणों के प्रभाव से घोड़ो से गिरे—मरे—हुए घुड़सवारो के सिर, सवारों से रिक्त पृथ्वी पर पड़े हुए पर्वतशिखर सदृश गजराज और रथ आदि स्थान-

विरथान्रथिनश्चक्रे पिता देवव्रतस्तव ।
पतितान्युत्तमाङ्गानि हयेभ्यो हयसादिनाम् ॥ ६ ॥
निर्मनुष्यांश्च मातङ्गाञ्शयानान्पर्वतोपमान् ।
अपश्याम महाराज भीष्मास्त्रेण प्रमोहितान् ॥ ७ ॥
न तत्राऽऽसीत्पुमान्कश्चित्पाण्डवानां विशाम्पते ।
अन्यत्र रथिनां श्रेष्ठाद्भीमसेनान्महाबलात् ॥ ८ ॥
स हि भीष्मं समासाद्य ताडयामास संयुगे ।
ततो निष्टानको घोरो भीष्मभीमसमागमे ॥ ९ ॥
बभूव सर्वसैन्यानां घोररूपो भयानकः ।
तथैव पाण्डवा हृष्टाः सिंहनादमथाऽनदन् ॥ १० ॥
ततो दुर्योधनो राजा सोदर्यैः परिवारितः ।
भीष्मं जुगोप समरे वर्तमाने जनक्षये ॥ ११ ॥
भीमस्तु सारथिं हत्वा भीष्मस्य रथिनां वरः ।
प्रद्रुताश्वे रथे तस्मिन्द्रवमाणे समन्ततः ॥ १२ ॥
सुनाभस्य शरेणाऽऽशु शिरश्चिच्छेद भारत ।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन स हतो न्यपतद्भुवि ॥ १३ ॥
हते तस्मिन्महाराज तव पुत्रे महारथे ।
नाऽमृष्यन्त रणे शूराः सोदराः सप्त संयुगे ॥ १४ ॥
आदित्यकेतुर्बह्वाशी कुण्डधारो महोदरः ।
अपराजितः पण्डितको विशालाक्षः सुदुर्जयः ॥ १५ ॥

स्थान पर सहस्रों की संख्या में देख पड़ने लगे ॥४।७॥ हे राजेन्द्र ! उस समय पाण्डवपक्ष से एकमात्र महारथी साहसी भीमसेन बल-पराक्रम प्रकट करते हुए महावीर भीष्म पर आक्रमण करके उन्हें रोकने की चेष्टा करने लगे। भीमसेन और भीष्म में भयानक संग्राम होने लगा। पाण्डव लोग उत्साह और प्रसन्नता प्रकट करते हुए सिंहनाद करने लगे ॥८।१०॥ अपने भाइयों सहित राजा दुर्योधन भीष्म की रक्षा करते देख पड़ते थे। श्रेष्ठ रथी भीमसेन ने भीष्म के सारथी को मार डाला। तब उनके रथ को लेकर घोड़े इधर उधर अस्त-व्यस्त गति से भागने लगे। इसी अवसर में बली भीमसेन ने तीक्ष्ण क्षुरप्र बाण से राजकुमार सुनाभ का सिर काट डाला ॥११।१३॥ हे महाराज ! आपके पुत्र महारथी सुनाभ की मृत्यु होने पर सहोदर भाई की हत्या से अत्यन्त क्रुद्ध होकर अतुल-पराक्रमी आदित्यकेतु, बह्वाशी, कुण्डधार, महोदर, अपराजित, पण्डितक और दुर्जय विशालाक्ष, ये सातों राजकुमार भीमसेन से युद्ध करने के लिए

पाण्डवं चित्रसन्नाहा विचित्रकवचध्वजाः ।
अभ्यद्रवन्त संग्रामे योद्धुकामारिमर्दनाः ॥ १६ ॥
महोदरस्तु समरे भीमं विव्याध पत्रिभिः ।
नवभिर्वज्रसङ्काशैर्नमुचिं वृत्रहा यथा ॥ १७ ॥
आदित्यकेतुः सप्तत्या बह्वाशी चाऽपि पञ्चभिः ।
नवत्या कुण्डधारश्च विशालाक्षश्च पञ्चभिः ॥ १८ ॥
अपराजितो महाराज पराजिष्णुर्महारथम् ।
शरैर्बहुभिरानर्च्छद्भीमसेनं महाबलम् ॥ १९ ॥
रणे पण्डितकश्चैनं त्रिभिर्बाणैः समार्पयत् ।
स तन्न ममृषे भीमः शत्रुभिर्वधमाहवे ॥ २० ॥
धनुः प्रपीड्य वामेन करेणाऽमित्रकर्शनः ।
शिरश्चिच्छेद समरे शरेणाऽऽनतपर्वणा ॥ २१ ॥
अपराजितस्य सुनसं तत्र पुत्रस्य संयुगे ।
पराजितस्य भीमेन निपपात शिरो महीम् ॥ २२ ॥
अथाऽपरेण भल्लेन कुण्डधारं महारथम् ।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ २३ ॥
ततः पुनरमेयात्मा प्रसन्धाय शिलीमुखम् ।
प्रेषयामास समरे पण्डितं प्रति भारत ॥ २४ ॥
स शरः पण्डितं हत्वा विवेश धरणीतलम् ।
यथा नरं निहत्याऽऽशु भुजगः कालचोदितः ॥ २५ ॥

दौड़े। ये सब विचित्र कवच, ध्वजा और अस्त्र-शस्त्रों से शोभित थे ॥१४।१६॥ वज्रपाणि इन्द्र ने जैसे वृत्रासुर को पीड़ित किया था वैसे ही वीर महोदर ने भीमसेन को वज्रतुल्य नव बाण मारे। इसी प्रकार आदित्यकेतु ने सत्तर बाण, बह्वाशी ने पाँच बाण, कुण्डधार ने नब्बे बाण, विशालाक्ष ने पाँच बाण, पण्डितक ने तीन बाण और भीमसेन को परास्त करने की इच्छा रखनेवाले अपराजित ने बहुत से बाण मारे ॥१७।२०॥ पराक्रमी भीमसेन शत्रुओं के बाण प्रहार को न सह सके, क्रोध से अधीर हो उठे। उन्होंने बाँये हाथ से धनुष चढ़ाकर शीघ्रगामी तीक्ष्ण-धार वाले बाण से अपराजित का, सुन्दर नासिका से मनोहर, मुण्ड काट डाला। फिर सब सेना के सामने एक भल्ल बाण से कुण्डधार को मार गिराया ॥२०-२३॥ पण्डितक पर भी एक तीक्ष्ण बाण छोड़ा। कालप्रेरित विषैले सर्प के समान वह बाण पण्डितक के प्राण लेकर पृथ्वी में प्रवेश हो गया। पहले के शत्रुकृत प्रहार का क्लेश स्मरण करके उन्होंने तीन

युद्ध के बारे में उपालम्भ न देना; हम अपनी इच्छा के अनुसार यथाशक्ति युद्ध करेंगे ॥३९।४१॥ मैं तुमसे फिर कहे देता हूँ कि भीमसेन युद्ध में धृतराष्ट्र के जिस पुत्र को पावेंगे उसे नित्य अवश्य मारेंगे। यह सत्य समझो। इसलिए हे राजेन्द्र ! तुम युद्ध के लिए दृढ़ मति करके, स्वर्गलाभ को परम फल समझकर, पाण्डवों से युद्ध करो। इन्द्र सहित देवता और दैत्य मिलकर भी पाण्डवों को नहीं जीत सकते। इसलिए युद्धमें स्थिर मति करके पाण्डवों से युद्ध करो ॥४२।४४॥

—०—

भीष्मपर्व का अट्ठासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ८८ ॥



अथ ऊननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

धृतराष्ट्र उवाच— दृष्ट्वा मे निहतान्पुत्रान्बहूनेकेन सञ्जय ।
भीष्मो द्रोणः कृपश्चैव किमकुर्वत संयुगे ॥ १ ॥
अहन्यहनि मे पुत्राः क्षयं गच्छन्ति सञ्जय ।
मन्येऽहं सर्वथा सूत दैवेनोपहता भृशम् ॥ २ ॥
यत्र मे तनयाः सर्वे जीयन्ते न जयन्त्युत ।
यत्र भीष्मस्य द्रोणस्य कृपस्य च महात्मनः ॥ ३ ॥
सौमदत्तेश्च वीरस्य भगदत्तस्य चोभयोः ।
अश्वत्थाम्नस्तथा तात शूराणामनिवर्तिनाम् ॥ ४ ॥
अन्येषां चैव शूराणां मध्यगास्तनया मम ।
यदहन्यन्त संग्रामे किमन्यद्भागधेयतः ॥ ५ ॥
न हि दुर्योधनो मन्दः पुरा प्रोक्तमबुध्यत ।
वार्यमाणो मया तात भीष्मेण विदुरेण च ॥ ६ ॥
गान्धार्या चैव दुर्मेधाः सततं हितकाम्यया ।
नाऽबुध्यत पुरा मोहात्तस्य प्राप्तमिदं फलम् ॥ ७ ॥

नवासीवाँ अध्याय ॥ ८९ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा— हे सञ्जय ! एक भीमसेन के हाथों मेरे अनेक पुत्रों की मृत्यु देखकर भीष्म, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य ने क्या किया ? दिन पर दिन मेरे पुत्र मारे जा रहे हैं, इससे मुझे यह निश्चय होता है कि मेरे पुत्रों पर दैव का ही कोप है ॥१।२॥ महात्मा द्रोण, भीष्म, महात्मा कृपाचार्य, भूरिश्रवा, भगदत्त, अश्वत्थामा तथा और-और शूर और समर में पीठ न दिखानेवाले क्षत्रियों की सहायता पाकर भी मेरे पुत्र विजयी नहीं होते, बल्कि हारते ही जाते हैं; इसे दुर्भाग्य के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है ! ॥३।५॥ पहले मैं, भीष्म, विदुर, गान्धारी आदि ने हितकामना से दुर्बुद्धि दुर्योधन को बहुत समझाया बुझाया, युद्ध न करने के लिए कहा, किन्तु मोहवश उसने किसी का कहना नहीं सुना। उसी का यह घोर परिणाम मिल रहा है — कुपित भीमसेन नित्य मेरे मन्द पुत्रों को मार रहे हैं, यह विदुर की

यद्भीमसेनः समरे पुत्रान्मम विचेतसः ।
अहन्यहनि संक्रुद्धो नयते यमसादनम् ॥ ८ ॥

सञ्जय उवाच — इदं तत्समनुप्राप्तं क्षत्तुर्वचनमुत्तमम् ।
न बुद्धवानसि विभो प्रोच्यमानं हितं तदा ॥ ९ ॥
निवारय सुतान्द्यूतात्पाण्डवान्मा द्रुहेति च ।
सुहृदां हितकामानां ब्रुवतां तत्तदेव च ॥ १० ॥
न शुश्रूषसि यद्वाक्यं मर्त्यः पथ्यमिवौषधम् ।
तदेव त्वामनुप्राप्तं वचनं साधुभाषितम् ॥ ११ ॥
विदुरद्रोणभीष्माणां तथाऽन्येषां हितैषिणाम् ।
अकृत्वा वचनं पथ्यं क्षयं गच्छन्ति कौरवाः ॥ १२ ॥
तदेतत्समनुप्राप्तं पूर्वमेव विशाम्पते ।
तस्मात्त्वं शृणु तत्त्वेन यथा युद्धमवर्तत ॥ १३ ॥
मध्याह्ने सुमहारौद्रः संग्रामः समपद्यत ।
लोकक्षयकरो राजंस्तन्मे निगदतः शृणु ॥ १४ ॥
ततः सर्वाणि सैन्यानि धर्मपुत्रस्य शासनात् ।
संरब्धान्यभ्यवर्तन्त भीष्ममेव जिघांसया ॥ १५ ॥
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च सात्यकिश्च महारथः ।
युक्तानीका महाराज भीष्ममेव समभ्ययुः ॥ १६ ॥
विराटो द्रुपदश्चैव सहिताः सर्वसोमकैः ।
अभ्यद्रवन्त संग्रामे भीष्ममेव महारथम् ॥ १७ ॥

बात न मानने का ही फल है ॥६।८॥ सञ्जय ने कहा हे स्वामी ! पहले विदुर ने आपसे कहा था कि हे राजेन्द्र ! आप पुत्रों को द्यूत-क्रीडा से रोकिए; पाण्डवों के साथ द्रोह या दुर्व्यवहार न कीजिए। किन्तु हे महाराज ! रोगी जैसे औषधि नहीं पीता, औषधि पीना उसे नहीं रुचता, वैसे ही आपने अपने हितचिन्तक विदुर, भीष्म, द्रोण, गान्धारी और अन्य सुहृदों की बातें नहीं मानीं। इसी कारण से इस समय कौरवों का नाश हो रहा है ॥९।१२॥ अस्तु जो होना था सो तो हो ही गया, अब आप युद्ध का वर्णन सुनिए। उस दिन मध्याह्न के समय ऐसा घोर युद्ध हुआ कि उसमें असंख्य क्षत्रिय मारे गये। धर्मपुत्र युधिष्ठिर की आज्ञा से पाण्डवों की सब सेना भीष्म को मार डालने के लिए सुसज्जित होकर आगे बढ़ी। धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, सेना सहित महारथी सात्यकि, सोमकगण सहित राजा विराट, राजा द्रुपद, केकयदेश की सेना साथ लिए हुए धृष्टकेतु और कुन्तिभोज आदि महारथी चारों ओर से भीष्म पर आक्रमण करने

केकया धृष्टकेतुश्च कुन्तिभोजश्च दंशितः ।
युक्तानीका महाराज भीष्ममेव समभ्ययुः ॥ १८ ॥
अर्जुनो द्रौपदेयाश्च चेकितानश्च वीर्यवान् ।
दुर्योधनसमादिष्टान्राज्ञः सर्वान्समभ्ययुः ॥ १९ ॥
अभिमन्युस्तथा शूरो हैडिम्बश्च महारथः ।
भीमसेनश्च संक्रुद्धस्तेऽभ्यधावन्त कौरवान् ॥ २० ॥
त्रिधाभूतैरवध्यन्त पाण्डवैः कौरवा युधि ।
तथैव कौरवै राजन्नवध्यन्त परे रणे ॥ २१ ॥
द्रोणस्तु रथिनः श्रेष्ठान्सोमकान्सृञ्जयैः सह ।
अभ्यधावत संक्रुद्धः प्रेषयिष्यन्यमक्षयम् ॥ २२ ॥
तत्राऽऽक्रन्दो महानासीत्सृञ्जयानां महात्मनाम्।
वध्यतां समरे राजन्भारद्वाजेन धन्विना ॥ २३ ॥
द्रोणेन निहतास्तत्र क्षत्रिया बहवो रणे ।
विचेष्टन्तो ह्यदृश्यन्त व्याधिक्लिष्टा नरा इव ॥ २४ ॥
कूजतां क्रन्दतां चैव स्तनतां चैव भारत ।
अनिशं शुश्रुवे शब्दः क्षुत्क्लिष्टानां नृणामिव ॥ २५ ॥
तथैव कौरवेयाणां भीमसेनो महाबलः ।
चकार कदनं घोरं क्रुद्धः काल इवाऽपरः ॥ २६ ॥
वध्यतां तत्र सैन्यानामन्योन्येन महारणे ।
प्रावर्तत नदी घोरा रुधिरौघप्रवाहिनी ॥ २७ ॥

के लिए चले ॥१३।१८॥ दुर्योधन की आज्ञा से जो महारथी लोग भीमसेन पर आक्रमण करने आ रहे थे उनसे युद्ध करने के लिए महारथी अर्जुन, द्रौपदी के पाँचों पुत्र और चेकितान चले। क्रोध से अधीर हो रहे भीमसेन, घटोत्कच और अभिमन्यु कौरवों के सम्मुख आये। पाण्डवों और कौरवों के तीन-तीन दल, अलग होकर, परस्पर युद्ध करने और मारने-मरने लगे ॥१९।२१॥ महारथी द्रोण कुपित होकर सोमकों और सृञ्जयों को यमपुर भेजने की इच्छा से उनसे युद्ध करने लगे। महाधनुर्धर द्रोण के बाणों से पीड़ित होकर सृञ्जयगण भी आर्तनाद करने लगे। द्रोण के बाणों से पीड़ित होकर बहुत से क्षत्रिय व्याधि पीड़ित मनुष्यों की तरह युद्धभूमि में गिरकर तड़पने लगे ॥२२-२४॥ युद्धभूमि में कुछ लोग अस्पष्ट शब्द से कराह रहे थे, कुछ ज़ोर से चिल्ला रहे थे, कुछ विलाप कर रहे थे और कुछ लोग वैसे ही हाय हाय कर रहे थे जैसे भूख प्यास से व्याकुल मनुष्य किया करते हैं। वहाँ नानाप्रकार के आर्तनाद सुनाई पड़ते थे

स संग्रामो महाराज घोररूपोऽभवन्महान् ।
कुरूणां पाण्डवानां च यमराष्ट्रविवर्धनः ॥ २८ ॥
ततो भीमो रणे क्रुद्धो रभसश्च विशेषतः ।
गजानीकं समासाद्य प्रेषयामास मृत्यवे ॥ २९ ॥
तत्र भारत भीमेन नाराचाभिहता गजाः ।
पेतुर्नेदुश्च सेदुश्च दिशश्च परिबभ्रमुः ॥ ३० ॥
छिन्नहस्ता महानागाश्छिन्नगात्राश्च मारिष ।
क्रौञ्चवद्व्यनदन्भीताः पृथिवीमधिशेरते ॥ ३१ ॥
नकुलः सहदेवश्च हयानीकमभिद्रुतौ ।
ते हयाः काञ्चनापीडा रुक्मभाण्डपरिच्छदाः ॥ ३२ ॥
वध्यमाना व्यदृश्यन्त शतशोऽथ सहस्रशः ।
पतद्भिस्तुरगै राजन्समास्तीर्यत मेदिनी ॥ ३३ ॥
निर्जिह्वैश्च श्वसद्भिश्च कूजद्भिश्च गतासुभिः ।
हयैर्बभौ नरश्रेष्ठ नानारूपधरैर्धरा ॥ ३४ ॥
अर्जुनेन हतैः संख्ये तथा भारत राजभिः ।
प्रबभौ वसुधा घोरा तत्र तत्र विशाम्पते ॥ ३५ ॥
रथैर्भग्नैर्ध्वजैश्छिन्नैर्निकृत्तैश्च महायुधैः ।
चामरैर्व्यजनैश्चैव छत्रैश्च सुमहाप्रभैः ॥ ३६ ॥

॥२५।२७॥ इधर क्रोधान्ध भीमसेन दूसरे काल की तरह कौरवसेना को नष्ट करने लगे। परस्पर प्रहार करते हुए सैनिकों के रक्त से लहराती हुई नदी बह चली। हे राजेन्द्र ! यह कौरव पाण्डवों का युद्ध ऐसा घोर हुआ कि उसमें मरे हुए मनुष्यों से यमपुरी भर गई होगी। भीमसेन क्रोधपूर्ण स्वर से सिंहनाद करते हुए दुर्योधन के हाथियों की सेना में प्रवेश होकर उसे छिन्न भिन्न करने लगे। भीमसेन के नाराच बाणों की चोट खाकर बड़े बड़े हाथी नष्ट होते थे। अनेकों हाथी गिर रहे थे, अनेकों भयभीत होकर चिल्लाते और आर्तनाद करते भाग रहे थे। बड़े बड़े हाथियों की सूँड कट गईं, शरीर फट गये और वे क्रौञ्च पक्षी की तरह आर्तनाद करते हुए पृथ्वी पर गिरने लगे ॥२८।३१॥ उधर नकुल और सहदेव घोड़ों के दल में प्रवेश हो पड़े और सुवर्ण के गहनों से भूषित सैकड़ों हजारों घोड़ों को काट काटकर गिराने लगे। घोड़ों के कटे फटे अङ्गों और शरीरों से पृथ्वी भर गई ॥३२।३४॥ हे राजेन्द्र ! किसी घोड़े की जिह्वा कट गई, कोई घोड़ा थककर जोर से हाँफने लगा, कोई घोड़ा घायल पक्षी की भाँति आर्तनाद करने लगा और कोई घोड़ा मर गया। इस प्रकार अनेक चेष्टाएँ करते हुए पीड़ित घोड़ों का दल नष्ट भ्रष्ट हो गया। हे भारत ! महावीर अर्जुन सैकड़ों राजाओं को अपने बाणों से मार-मारकर

हारैर्निष्कैः सकेयूरैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः ।
उष्णीषैरपविद्धैश्च पताकाभिश्च सर्वशः ॥ ३७ ॥
अनुकर्षैः शुभै राजन्योक्त्रैश्चैव सरश्मिभिः ।
सङ्कीर्णा वसुधा भाति वसन्ते कुसुमैरिव ॥ ३८ ॥
एवमेष क्षयो वृत्तः पाण्डूनामपि भारत ।
क्रुद्धे शान्तनवे भीष्मे द्रोणे च रथसत्तमे ॥ ३९ ॥
अश्वत्थाम्नि कृपे चैव तथैव कृतवर्मणि ।
तथेतरेषु क्रुद्धेषु तावकानामपि क्षयः ॥ ४० ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि अष्टमदिवसयुद्धे ऊननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

गिराने लगे। उस समय युद्धभूमि बहुत ही भयानक देख पडने लगी। टूटे हुए रथ, कटी हुई ध्वजा, कटे हुए श्रेष्ठ शस्त्र, चामर, व्यजन, चमकीले छत्र, हार, निष्क, केयूर, कुण्डल शोभित सिर, पगडियाँ, पताका, घोडों के जोत, लगामें, रासें और अनेक प्रकार के अन्य सामान सारी युद्धभूमि में जहाँ-तहाँ बिखरे पडे थे ॥३५।३८॥ उनसे वह भूमि वैसे ही शोभित हो रही थी जैसे वसन्त-ऋतु में नानाप्रकार के फूलों से किसी बडे उद्यान की शोभा होती है। हे महाराज ! भीष्म, महारथी द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कृतवर्मा आदि क्रुद्ध होकर पाण्डवसेना को नष्ट कर रहे थे, और पाण्डवपक्ष के भीम, अर्जुन, अभिमन्यु आदि योद्धा क्रुद्ध होकर कौरव-सेना का संहार कर रहे थे ॥३९।४०॥

भीष्मपर्व का नवासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ८९ ॥

अथ नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

सञ्जय उवाच—वर्तमाने तथा रौद्रे राजन्वीरवरक्षये ।
शकुनिः सौबलः श्रीमान्पाण्डवान्समुपाद्रवत् ॥ १ ॥
तथैव सात्वतो राजन्हार्दिक्यः परवीरहा ।
अभ्यद्रवत संग्रामे पाण्डवानां वरूथिनीम् ॥ २ ॥
ततः काम्बोजमुख्यानां नदीजानां च वाजिनाम् ।
आरट्टानां महीजानां सिन्धुजानां च सर्वशः ॥ ३ ॥
वनायुजानां शुभ्राणां तथा पर्वतवासिनाम् ।
वाजिनां बहुभिः संख्ये समन्तात्परिवारयन् ॥ ४ ॥

नब्बेवाँ अध्याय ॥ ९० ॥

सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र ! इस प्रकार लोकनाशक महासंग्राम आरम्भ होने पर सुबल के पुत्र शकुनि पाण्डवों पर आक्रमण करने चले। यदुवंशी शत्रुदमन हार्दिक्य (कृतवर्मा) भी पाण्डवों की सेना में युद्ध करने के लिए आगे बढे ॥१।२॥ काम्बोज देश के, नदी-तट के देश के, आरट्ट देश के, सिन्धु

ये चाऽपरे तित्तिरिजा जवना वातरंहसः ।
सुवर्णालंकृतैरेतैर्वर्मवद्भिः सुकल्पितैः ॥ ५ ॥
हयैर्वातजवैर्मुख्यैः पाण्डवस्य सुतो बली ।
अभ्यवर्तत तत्सैन्यं हृष्टरूपः परन्तपः ॥ ६ ॥
अर्जुनस्य सुतः श्रीमानिरावान्नाम वीर्यवान् ।
स्नुषायां नागराजस्य जातः पार्थेन धीमता ॥ ७ ॥
ऐरावतेन सा दत्ता अनपत्या महात्मना ।
पत्यौ हते सुपर्णेन कृपणा दीनचेतना ॥ ८ ॥
भार्यार्थं तां च जग्राह पार्थः कामवशानुगाम् ।
एवमेष समुत्पन्नः परक्षेत्रेऽर्जुनात्मजः ॥ ९ ॥
स नागलोके संवृद्धो मात्रा च परिरक्षितः ।
पितृव्येण परित्यक्तः पार्थद्वेषाद् दुरात्मना ॥ १० ॥
रूपवान्बलसम्पन्नो गुणवान्सत्यविक्रमः ।
इन्द्रलोकं जगामाऽऽशु श्रुत्वा तत्राऽर्जुनं गतम् ॥ ११ ॥
सोऽभिगम्य महाबाहुः पितरं सत्यविक्रमः ।
अभ्यवादयदव्यग्रो विनयेन कृताञ्जलिः ॥ १२ ॥
न्यवेदयत चाऽऽत्मानमर्जुनस्य महात्मनः ।
इरावानस्मि भद्रं ते पुत्रश्चाऽहं तव प्रभो ॥ १३ ॥

देश के, वनायु देश के, स्थलज और पर्वतीय देश के असंख्य घोडों पर सवार वीरों ने पाण्डवसेना पर आक्रमण किया। तीतर के रङ्ग के, स्फूर्तिशाली, सुवर्ण के साज से अलंकृत और सुवर्ण के जालों से सुरक्षित बढिया घोडों से युक्त रथ पर अर्जुन के पुत्र इरावान् उधर से कौरवसेना का वेग रोकने के लिए आगे बढे ॥३।६॥ पराक्रमी इरावान् नागराज ऐरावत की कन्या के गर्भ में अर्जुन के वीर्य से उत्पन्न हुए थे। गरुड ने उस कन्या के पहले पति को मार डाला था। तब उस दुःखित कन्या को ऐरावत ने सन्तानहीन देखकर अर्जुन के अर्पण कर दिया। काम के वश और अनुगत उस स्त्री को अर्जुन ने, सन्तान उत्पन्न करने के लिए, स्त्री-रूप से स्वीकार कर लिया। इस प्रकार दूसरे के क्षेत्र में अर्जुन के वीर्य से इरावान् का जन्म हुआ ॥७।९॥ इरावान् नागलोक में ही माता के पास रहे और उसी ने उन्हें पाल-पोसकर बडा किया। इरावान् का चाचा अश्वसेन अर्जुन से द्रोह रखता था, उसने इरावान् को उसी विद्वेष के कारण त्याग दिया। सत्यविक्रमी नागराज इरावान् ने उस समय सुना कि अर्जुन इन्द्रलोक को गये हैं। तब वे आकाश मार्ग से इन्द्रलोक में पिता के पास गये। वहाँ पहुँचकर इरावान् ने नम्रतापूर्वक हाथ जोडकर, अपना परिचय देकर, अर्जुन से कहा—हे प्रभो! आपका कल्याण हो, मैं आपका पुत्र हूँ।

मातुः समागमो यश्च तत्सर्वं प्रत्यवेदयत् ।
नच्च सर्वं यथावृत्तमनु सस्मार पाण्डवः ॥ १४ ॥
परिष्वज्य सुतं चाऽपि आत्मनः सदृशं गुणैः ।
प्रीतिमाननयत्पार्थो देवराजनिवेशने ॥ १५ ॥
सोऽर्जुनेन समाज्ञप्तो देवलोके तदा नृप ।
प्रीतिपूर्वं महावाहुः स्वकार्यं प्रति भारत ॥ १६ ॥
युद्धकाले त्वयाऽस्माकं साह्यं देयमिति प्रभो ।
वाढमित्येवमुक्त्वा तु युद्धकाल इहाऽऽगतः ॥ १७ ॥
कामवर्णजवैरश्वैर्वहुभिः संवृतो नृप ।
ते हयाः काञ्चनापीडा नानावर्णा मनोजवाः ॥ १८ ॥
उत्पेतुः सहसा राजन्हंसा इव महोदधौ ।
ते त्वदीयान्समासाद्य हयसङ्घान्मनोजवान् ॥ १९ ॥
क्रोडैः क्रोडानभिघ्नन्तो घोणाभिश्च परस्परम् ।
निपेतुः सहसा राजन्सुवेगाभिहता भुवि ॥ २० ॥
निपतद्भिस्तथा तैश्च हयसङ्घैः परस्परम् ।
शुश्रुवे दारुणः शब्दः सुपर्णपतने यथा ॥ २१ ॥
तथैव तावका राजन्समेत्याऽन्योन्यमाहवे ।
परस्परवधं घोरं चक्रुस्ते हयसादिनः ॥ २२ ॥
तस्मिंस्तथा वर्तमाने संकुले तुमुले भृशम् ।
उभयोरपि संशान्ता हयसङ्घाः समन्ततः ॥ २३ ॥

फिर इरावान् ने अपनी माता के साथ अर्जुन के समागम का समाचार कहा । अर्जुन को भी पहले का सब वृत्तान्त स्मरण हो आया ॥१०।१४॥ उन्होंने अपने ही समान सब गुणों से युक्त पुत्र को गले से लगाकर प्रसन्नतापूर्वक कहा—हे पुत्र ! तुम प्रीति-पूर्वक यहीं इन्द्रलोक में रहो । जब युद्ध होगा तब तुम हमारी सहायता करना । पिता की आज्ञा स्वीकार करके इरावान् यहीं रहने लगे ॥१५।१७॥ इस समय युद्ध उपस्थित होने पर वही इरावान् यथेष्ट वेग और वर्णवाले, सुवर्णभूषित, विचित्र घोड़े लेकर युद्धभूमि में आ गये । वे घोड़े समुद्र के मध्य में उड़ते हुए हंसों के समान शोभा दे रहे थे । वे दिव्य घोड़े आपके घोड़ों के मध्य घुसकर थूथन से थूथन में और छाती से छाती में प्रहार करते हुए आगे बढ़े ॥१७।२०॥ उनके वेग से और चलने से उड़ते हुए गरुड़ के पंखों का सा घोर शब्द होने लगा । हे राजेन्द्र ! आपके पक्ष के घोड़े और घुड़सवार भी भिड़कर प्रहार करने लगे । उस घोर युद्ध में दोनों

प्रक्षीणसायकाः शूरा निहताश्वाः श्रमातुराः ।
विलयं समनुप्राप्तास्तक्षमाणाः परस्परम् ॥ २४ ॥
ततः क्षीणे हयानीके किञ्चिच्छेषे च भारत ।
सौबलस्याऽनुजाः शूरा निर्गता रणमूर्द्धनि ॥ २५ ॥
वायुवेगसमस्पर्शाञ्जवे वायुसमांश्च ते ।
आरुह्य बलसम्पन्नान्वयःस्थांस्तुरगोत्तमान् ॥ २६ ॥
गजो गवाक्षो वृषभश्चर्मवानार्जवः शुकः ।
षडेते बलसम्पन्ना निर्ययुर्महतो बलात् ॥ २७ ॥
वार्यमाणाः शकुनिना तैश्च योधैर्महाबलैः ।
सन्नद्धाः युद्धकुशला रौद्ररूपा महाबलाः ॥ २८ ॥
तदनीकं महाबाहो भित्वा परमदुर्जयम् ।
बलेन महता युक्ताः स्वर्गाय विजयैषिणः ॥ २९ ॥
विविशुस्ते तदा हृष्टा गान्धारा युद्धदुर्मदाः ।
तान्प्रविष्टांस्तदा दृष्ट्वा इरावानपि वीर्यवान् ॥ ३० ॥
अब्रवीत्समरे योधान्विचित्रान्दारुणायुधान् ।
यथैते धार्तराष्ट्रस्य योधाः सानुगवाहनाः ॥ ३१ ॥
हन्यन्ते समरे सर्वे तथा नीतिर्विधीयताम् ।
बाढमित्येव मुक्त्वा ते सर्वे योधा इरावतः ॥ ३२ ॥
जघ्नुस्तेषां बलानीकं दुर्जयं समरे परैः ।
तदनीकमनीकेन समरे वीक्ष्य पातितम् ॥ ३३ ॥

ओर के घोड़े शिथिल हो गये। शूरों के बाण समाप्त हो गये। घोड़े मारे गये और वे स्वयं भी अधिक परिश्रम करने के कारण शिथिल हो गये। वे वीर परस्पर प्रहार करके मरने लगे। वीरगण और घोड़े मर मरकर पृथ्वी पर गिरने लगे ॥२१।२४॥ वह घुडसवार सेना थोड़ी ही रह गई। उसी समय युद्ध-निपुण शकुनि अपने महाबली गज, गवाक्ष, वृषभ, चर्मवान्, आर्जव और शुक नाम के छः भाइयों के साथ युद्ध के लिए उपस्थित हुए। उनके साथ महा-पराक्रमी योद्धाओं की सेना चली। शकुनि और उनके भाई वायुवेगगामी बढ़िया घोड़ों पर सवार होकर सेना के अगले भाग में स्थित हुए ॥२५।२८॥ हे राजेन्द्र! गान्धार देश के राजा और उनके छहों भाई स्वर्ग की गति अथवा विजय की इच्छा से उत्साह पूर्वक अपने युद्धकुशल रौद्ररूप बली सैनिकों के साथ शत्रुओं की सेना में प्रवेश हुए। इरावान् ने उनको अपनी सेना में प्रवेश होते देखकर, विचित्र अलङ्कारों और शस्त्रों से सुशोभित और श्रेष्ठ योद्धों

अमृष्यमाणास्ते सर्वे सुबलस्याऽऽत्मजा रणे ।
इरावन्तमभिद्रुत्य सर्वतः पर्यवारयन् ॥ ३४ ॥
ताडयन्तः शितैः प्रासैश्चोदयन्तः परस्परम् ।
ते शूराः पर्यधावन्त कुर्वन्तो महदाकुलम् ॥ ३५ ॥
इरावानथ निर्भिन्नः प्रासैस्तीक्ष्णैर्महात्मभिः ।
स्रवता रुधिरेणाऽक्तस्तोत्रैर्विद्ध इव द्विपः ॥ ३६ ॥
पुरतोऽपि च पृष्ठे च पार्श्वयोश्च भृशाहतः ।
एको बहुभिरत्यर्थं धैर्याद्राजन्न विव्यथे ॥ ३७ ॥
इरावानपि संक्रुद्धः सर्वांस्तान्निशितैः शरैः ।
मोहयामास समरे विध्वा परपुरञ्जयः ॥ ३८ ॥
प्रासानुत्कृष्य तरसा स्वशरीरादरिन्दमः ।
तैरेव ताडयामास सुबलस्याऽऽत्मजान्रणे ॥ ३९ ॥
विकृष्य च शितं खड्गं गृहीत्वा च शरावरम् ।
पदातिर्द्रुतमागच्छज्जिघांसुः सौबलान्युधि ॥ ४० ॥
ततः प्रत्यागतप्राणाः सर्वे ते सुबलात्मजाः ।
भूयः क्रोधसमाविष्टा इरावन्तमभिद्रुताः ॥ ४१ ॥
इरावानपि खड्गेन दर्शयन्पाणिलाघवम् ।
अभ्यवर्तत तान्सर्वान्सौबलान्बलदर्पितः ॥ ४२ ॥

पर सवार, अपने सैनिक लोगों से कहा—हे वीरो! कोई ऐसा उपाय करो जिससे ये शत्रुपक्ष के योद्धा अनुचरों और वाहनों सहित मारे जायँ ॥२०.३२॥ अब इरावान् के सब योद्धा शत्रुओं की दुर्जय सेना पर आक्रमण करके उसे नष्ट करने की चेष्टा करने लगे। शकुनि और उनके भाई अपनी सेना को शत्रुसेना के हाथों नष्ट होते हुए देख क्रोध से अधीर होकर इरावान् पर आक्रमण करने के लिए दौड़े। उन्होंने इरावान् को चारों ओर से घेर लिया। तब दोनों ओर घोर संग्राम होने लगा। वे वीर परस्पर दारुण प्रहार करने लगे। हे महाराज! शकुनि के भाइयों ने इरावान् को तीक्ष्ण प्रास नाम के शस्त्र मारे। इससे इरावान् के शरीर से रक्त बहने लगा ॥३२।३६॥ वे अंकुश से आहत गजराज के समान क्रोध से विह्वल हो गये। बहुत लोगों के प्रहार करने पर भी वीर इरावान् विचलित नहीं हुए। शत्रुदमन इरावान् ने क्रोधान्ध होकर सबको अत्यन्त तीक्ष्ण बाण मारे। उन तीक्ष्ण बाणों के लगने से शकुनि के भाई अचेत-से हो गये। इरावान् ने उन्हीं प्रासों से, जो उनके शरीर में प्रवेश हो गये थे, शकुनि के भाइयों को घायल किया ॥३६.३०॥ इसके पश्चात् वीर इरावान् शकुनि के भाइयों को मारने के लिए तीक्ष्ण तलवार और सुन्दर ढाल लेकर पैदल ही उनकी ओर दौड़े। उधर शकुनि के भाइयों की मूर्छा दूर

लाघवेनाऽथ चरतः सर्वे ते सुबलात्मजाः ।
अन्तरं नाऽभ्यगच्छन्त चरन्तः शीघ्रगैर्हयैः ॥ ४३ ॥
भूमिष्ठमथ तं संख्ये सम्प्रदृश्य ततः पुनः ।
परिवार्य भृशं सर्वे ग्रहीतुमुपचक्रमुः ॥ ४४ ॥
अथाऽभ्याशगतानां स खड्गेनाऽमित्रकर्शनः ।
असिहस्तापहस्ताभ्यां तेषां गात्राण्यकृन्तत ॥ ४५ ॥
आयुधानि च सर्वेषां बाहूनपि विभूषितान् ।
अपतन्त निकृत्ताङ्गा मृता भूमौ गतासवः ॥ ४६ ॥
वृषभस्तु महाराज बहुधा विपरिक्षतः ।
अमुच्यत महारौद्रात्तस्माद्वीरावकर्तनात् ॥ ४७ ॥
तान्सर्वान्पतितान्दृष्ट्वा भीतो दुर्योधनस्ततः ।
अभ्यधावत संक्रुद्धो राक्षसं घोरदर्शनम् ॥ ४८ ॥
आर्ष्यशृङ्गिं महेष्वासं मायाविनमरिन्दमम् ।
वैरिणं भीमसेनस्य पूर्वं बकवधेन वै ॥ ४९ ॥
पश्य वीर यथा ह्येष फाल्गुनस्य सुतो बली ।
मायावी विप्रियं कर्तुमकार्षीन्मे बलक्षयम् ॥ ५० ॥
त्वं च कामगमस्तात मायास्त्रे च विशारदः ।
कृतवैरश्च पार्थेन तस्मादेनं रणे जहि ॥ ५१ ॥

हुई और वे क्रुद्ध होकर इरावान् पर आक्रमण करने को दौड़े। महाबली इरावान् भी तलवार के हाथ फेरते, स्फूर्ति दिखलाते हुए उनकी ओर बढ़ने लगे ॥४०।४२॥ शकुनि के छहों भाई शीघ्रगामी घोड़ों पर सवार थे, और शीघ्रता के साथ घोड़ों को घुमा रहे थे; किन्तु किसी प्रकार वे इरावान् के ऊपर आक्रमण न कर पाये। इरावान् को पैदल देख चारों ओर से घेरकर शकुनि के भाइयों ने उसे पकड़ लेना चाहा। वे जब निकट पहुँच गये तब इरावान् ने तीक्ष्ण तलवार से उनके शरीरों, अङ्गों और आयुधों तथा अलङ्कारों से युक्त हाथों को काटना आरम्भ किया। एक वृषभ को छोड़कर शेष पाँचों भाई छिन्न भिन्न होकर मर गये। वृषभ भी बहुत घायल हो गये, किन्तु उस भयङ्कर संग्राम से किसी प्रकार उनके प्राण बच गये ॥४३।४७॥ हे महाराज! ऋष्यशृङ्ग का पुत्र राक्षस अलम्बुष बड़ा मायावी था। वह आपकी ओर से युद्ध करता था। भीमसेन पहले उसके मित्र बक दैत्य को मारकर उसके शत्रु हो चुके थे। शकुनि के भाइयों की मृत्यु देखकर दुर्योधन मन ही मन बहुत भयभीत हुये। उन्होंने क्रुद्ध होकर अलम्बुष के पास जाकर कहा—हे वीर! तू देखो, अर्जुन का पुत्र इरावान् बड़ा मायावी होने के कारण मेरे योद्धाओं को मार रहा है। इसने मेरा बड़ा अप्रिय किया है। तुम भी मायायुद्ध में बड़े चतुर हो। तुम

बाढमित्येवमुक्त्वा तु राक्षसो घोरदर्शनः ।
प्रययौ सिंहनादेन यत्राऽर्जुनसुतो युवा ॥ ५२ ॥
आरूढैर्युद्धकुशलैर्विमलप्रासयोधिभिः ।
वीरैः प्रहारिभिर्युक्तैः स्वैरनीकैः समावृतः ॥ ५३ ॥
हतशेषैर्महाराज द्विसाहस्रैर्हयोत्तमैः ।
निहन्तुकामः समरे इरावन्तं महाबलम् ॥ ५४ ॥
इरावानपि संक्रुद्धस्त्वरमाणः पराक्रमी ।
हन्तुकाममित्रघ्नो राक्षसं प्रत्यवारयत् ॥ ५५ ॥
तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य राक्षसः सुमहाबलः ।
त्वरमाणस्ततो मायां प्रयोक्तुमुपचक्रमे ॥ ५६ ॥
तेन मायामयाः सृष्टा हयास्तावन्त एव हि ।
स्वारूढा राक्षसैर्घोरैः शूलपट्टिशधारिभिः ॥ ५७ ॥
ते संरब्धाः समागम्य द्विसाहस्राः प्रहारिणः ।
अचिराद्गमयामासुः प्रेतलोकं परस्परम् ॥ ५८ ॥
तस्मिंस्तु निहते सैन्ये तावुभौ युद्धदुर्मदौ ।
संग्रामे समतिष्ठेतां यथा वै वृत्रवासवौ ॥ ५९ ॥
आद्रवन्तमभिप्रेक्ष्य राक्षसं युद्धदुर्मदम् ।
इरावानथ संरब्धः प्रत्यधावन्महाबलः ॥ ६० ॥
समभ्याशगतस्याऽऽजौ तस्य खड्गेन दुर्मतेः ।
चिच्छेद कार्मुकं दीप्तं शरावापं च सत्वरम् ॥ ६१ ॥

जहाँ चाहो वहा जा सकते हो। भीमसेन से तुम्हारी घोर शत्रुता है। इसलिए तुम तुरन्त जाकर इरावान् का वध करो ॥४८।५१॥ दुर्योधन के यों कहने पर घोर-रूप राक्षस अलम्बुष सिंहनाद करता हुआ अर्जुन के पुत्र इरावान् के पास जाने के लिए आगे बढा । उस के साथ ऐसे युद्धनिपुण योद्धाओं की सेना भी चली जो निर्मल प्रास नाम के शस्त्रों से युद्ध करते थे ॥५२।५४॥ उधर महाबली इरावान् क्रुद्ध होकर शीघ्रता के साथ उस राक्षस को रोकने चले । इरावान् को आते देखकर महाबली राक्षस अलम्बुष शीघ्रता के साथ माया का प्रयोग करने लगा । इरावान् के साथ जितने घोडे और सेना थी, उतने ही घोडे और उन पर सवार शूल-पट्टिश धारी घोर राक्षस उसने प्रकट किये । दोनों ओर के सवार और घोडे परस्पर लडकर मर गये ॥५५।५८॥ सब सेना नष्ट हो जाने पर, वृत्रासुर और इन्द्र के समान, युद्ध में अजेय दोनों वीर आमने-सामने आये । राक्षस को अपनी ओर आते देखकर महाबली इरावान् भी क्रुद्ध होकर उसकी

स निकृत्तं धनुर्दृष्ट्वा खं जवेन समाविशत् ।
इरावन्तमभिक्रुद्धं मोहयन्निव मायया ॥ ६२ ॥
ततोऽन्तरिक्षमुत्पत्य इरावानपि राक्षसम् ।
विमोहयित्वा मायाभिस्तस्य गात्राणि सायकैः ॥ ६३ ॥
चिच्छेद सर्वमर्मज्ञः कामरूपो दुरासदः ।
तथा स राक्षसश्रेष्ठः शरैः कृत्तः पुनः पुनः ॥ ६४ ॥
संबभूव महाराज समवाप च यौवनम् ।
माया हि सहजा तेषां वयो रूपं च कामजम् ॥ ६५ ॥
एवं तद्राक्षसस्याऽङ्गं छिन्नं छिन्नं बभूव ह ।
इरावानपि संक्रुद्धो राक्षसं तं महाबलम् ॥ ६६ ॥
परश्वधेन तीक्ष्णेन चिच्छेद च पुनः पुनः ।
स तेन बलिना वीरश्छिद्यमान इरावता ॥ ६७ ॥
राक्षसोऽप्यनदद्धोरं स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ।
परश्वधक्षतं रक्षः सुस्राव बहुशोणितम् ॥ ६८ ॥
ततश्चुक्रोध बलवांश्चक्रे वेगं च संयुगे ।
आर्ष्यशृङ्गिस्तथा दृष्ट्वा समरे शत्रुमूर्जितम् ॥ ६९ ॥
कृत्वा घोरं महद्रूपं ग्रहीतुमुपचक्रमे ।
अर्जुनस्य सुतं वीरमिरावन्तं यशस्विनम् ॥ ७० ॥
संग्रामशिरसो मध्ये सर्वेषां तत्र पश्यताम् ।
तां दृष्ट्वा तादृशीं मायां राक्षसस्य दुरात्मनः ॥ ७१ ॥

और दौड़े। राक्षस जब पास पहुँचा तब इरावान् ने तीक्ष्ण खड्ग से उसका धनुष और तरकस काट डाला ॥५९।६१॥ धनुष कट जाने पर वह मायावी राक्षस अत्यन्त क्रुद्ध इरावान् को माया से मोहित सा करता हुआ आकाश में वेग से चला गया। दुर्धर्ष इरावान् भी आकाश में पहुँच गये और बाणों से राक्षस के मर्मस्थलों को काटने लगे। राक्षस श्रेष्ठ अलम्बुष बारम्बार बाणों से अङ्ग कटे जाने पर भी नहीं मरा। वह माया से फिर-फिर जवान और [illegible] बन जाता था। हे राजेन्द्र ! राक्षसों में माया स्वभाव से पैदाइशी होती है, वे अपनी अवस्था और रूप को इच्छा के अनुसार परिवर्तन कर सकते हैं। इसी कारण उस राक्षस के अङ्ग बारम्बार कट जाने पर भी वैसे ही हो जाते थे ॥६२।६६॥ इरावान भी अत्यन्त क्रुद्ध होकर परशु अस्त्र से बारम्बार उस बली राक्षस के अङ्गों को काटने लगा। जैसे कोई वृक्ष काटा जा रहा हो, वैसे काटा जा रहा वह राक्षस गरजने लगा। उसके शरीर से रक्त की धाराएँ बह चलीं। उस राक्षस ने

वर्तमाने तथा रौद्रे संग्रामे भरतर्षभ ।
उभयोः सेनयोः शूरा नाऽमृष्यन्त परस्परम् ॥ ९१ ॥
आविष्टा इव युध्यन्ते रक्षोभूता महाबलाः ।
तावकाः पाण्डवेयाश्च संरब्धास्तात धन्विनः ॥ ९२ ॥
न स्म पश्यामहे कश्चित्प्राणान्यः परिरक्षति ।
संग्रामे दैत्यसङ्काशे तस्मिन्वीरवरक्षये ॥ ९३ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि इरावद्वधे नवतितमोऽध्याय ॥ ९० ॥

युद्ध कर रहे थे। प्रायः द्रोणाचार्य का पराक्रम देख- कर पाण्डव बहुत ही भयभीत हो गये। वे द्रोणाचार्य के प्रहारों से पीडित होकर कहने लगे—आचार्य द्रोण अकेले ही हम सबको और हमारी सेना को नष्ट कर सकते हैं। फिर इस समय तो पृथ्वी के सभी श्रेष्ठ योद्धा उनके साथ हैं। अब वे क्या नहीं कर सकते? ॥८८।९०॥ हे राजेन्द्र ! उस भयानक संग्राम में कोई भी शत्रु के प्रहार से शान्त नहीं रह सकता था। सभी भूतग्रस्त से होकर प्रबल वेग से युद्ध कर रहे थे। देवासुर-संग्राम के समान भयानक उस युद्ध में कोई भी प्राणों का मोह रखकर युद्ध करता नहीं दिखाई देता था ॥९१।९३॥

भीष्मपर्व का नब्बेवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ९० ॥

अथ एकनवतितमोऽध्याय ॥ ९१ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—इरावन्तं तु निहतं दृष्ट्वा पार्था महारथाः ।
संग्रामे किमकुर्वन्त तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ १ ॥
सञ्जय उवाच—इरावन्तं तु निहतं संग्रामे वीक्ष्य राक्षसः ।
व्यनदत्सुमहानादं भैमसेनिर्घटोत्कचः ॥ २ ॥
नदतस्तस्य शब्देन पृथिवी सागराम्बरा ।
सपर्वतवना राजंश्चचाल सुभृशं तदा ॥ ३ ॥
अन्तरिक्षं दिशश्चैव सर्वाश्च प्रदिशस्तथा ।
तं श्रुत्वा सुमहानादं तव सैन्यस्य भारत ॥ ४ ॥
ऊरुस्तम्भः समभवद्वेपथुः स्वेद एव च ।
सर्व एव महाराज तावका दीनचेतसः ॥ ५ ॥

इक्यानवाँ अध्याय ॥ ९१ ॥

धृतराष्ट्र ने पूछा—हे सञ्जय ! युद्ध में मरे हुए इरावान को देखकर फिर पाण्डवों ने क्या किया? ॥१॥ सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! समर में इरावान की मृत्यु देखकर घटोत्कच ने जोर से घोर सिंहनाद किया। उसके गरजने के शब्द से पर्वत, वन, समुद्र आदि सहित पृथ्वी, अन्तरिक्ष, दिशा, विदिशा आदि सब काँपने लगे। वह महाशब्द सुनकर आपके सैनिक लोग काँपने लगे; उनके शरीर में पसीना बहने लगा

सर्वतः समचेष्टन्त सिंहभीता गजा इव ।
नर्दित्वा सुमहानादं निर्घातमिव राक्षसः ॥ ६ ॥
ज्वलितं शूलमुद्यम्य रूपं कृत्वा विभीषणम् ।
नानारूपप्रहरणैर्वृतो राक्षसपुङ्गवैः ॥ ७ ॥
आजघान सुसंक्रुद्धः कालान्तकयमोपमः ।
तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य संक्रुद्धं भीमदर्शनम् ॥ ८ ॥
स्वबलं च भयात्तस्य प्रायशो विमुखीकृतम् ।
ततो दुर्योधनो राजा घटोत्कचमुपाद्रवत् ॥ ९ ॥
प्रगृह्य विपुलं चापं सिंहवद्विनदन्मुहुः ।
पृष्ठतोऽनुययौ चैनं स्रवद्भिः पर्वतोपमैः ॥ १० ॥
कुञ्जरैर्दशसाहस्रैर्वङ्गानामधिपः स्वयम् ।
तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य गजानीकेन संवृतम् ॥ ११ ॥
पुत्रं तव महाराज चुकोप स निशाचरः ।
ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ १२ ॥
राक्षसानां च राजेन्द्र दुर्योधनबलस्य च ।
गजानीकं च सम्प्रेक्ष्य मेघवृन्दमिवोदितम् ॥ १३ ॥
अभ्यधावन्त संक्रुद्धा राक्षसाः शस्त्रपाणयः ।
नदन्तो विविधान्नादान्मेघा इव सविद्युतः ॥ १४ ॥
शरशक्त्यृष्टिनाराचैर्निघ्नन्तो गजयोधिनः ।
भिन्दिपालैस्तथा शूलैर्मुद्गरैः सपरश्वधैः ॥ १५ ॥

और पाओं जकड-से गये । हे राजेन्द्र ! उस समय आपके पक्ष के सब सैनिक सिंह से भयभीत हुए हाथी की तरह दीन भाव से इधर-उधर छिपने लगे ॥२।६॥ राक्षस घटोत्कच वह भयङ्कर शब्द करके, घोर रूप रखकर, शूल हाथ में लिये काल की तरह दौड़ा । उसके साथ विविध अस्त्र-शस्त्र धारण किये अनेक भयानक राक्षस भी चले । इसके अनन्तर भयानक राक्षस घटोत्कच को आते और उसके भय से अपनी सेना को युद्ध से हटते देखकर राजा दुर्योधन धनुष हाथ में लेकर सिंहनाद करते हुए घटोत्कच की ओर चले ॥६।१०॥ वङ्गदेश के राजा दस हजार मस्त हाथियों का दल लेकर दुर्योधन के साथ चले । दुर्योधन को आते देखकर राक्षस घटोत्कच अत्यन्त क्रुद्ध होकर उनकी ओर चला । तब राक्षससेना के साथ दुर्योधन की सेना का घोर युद्ध होने लगा ॥१०।१३॥ शस्त्र धारण किये हुए राक्षसगण घनघटा के समान हाथियों की सेना को आते देख, क्रुद्ध होकर, बादल में बिजली कड़कने का सा शब्द करते हुए दौड़े । वे हाथियों

पर्वताग्रैश्च वृक्षैश्च निजघ्नुस्ते महागजान् ।
भिन्नकुम्भान्विरुधिरान्भिन्नगात्रांश्च वारणान् ॥ १६ ॥
अपश्याम महाराज वध्यमानान्निशाचरैः ।
तेषु प्रक्षीयमाणेषु भग्नेषु गजयोधिषु ॥ १७ ॥
दुर्योधनो महाराज राक्षसान्समुपाद्रवत् ।
अमर्षवशमापन्नस्त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ॥ १८ ॥
मुमोच निशितान्बाणान्राक्षसेषु परन्तप ।
जघान च महेष्वासः प्रधानांस्तत्र राक्षसान् ॥ १९ ॥
संक्रुद्धो भरतश्रेष्ठ पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
वेगवन्तं महारौद्रं विद्युज्जिह्वं प्रमाथिनम् ॥ २० ॥
शरैश्चतुर्भिश्चतुरो निजघान महाबलः ।
ततः पुनरमेयात्मा शरवर्षं दुरासदम् ॥ २१ ॥
मुमोच भरतश्रेष्ठो निशाचरबलं प्रति ।
तत्तु दृष्ट्वा महत्कर्म पुत्रस्य तव मारिष ॥ २२ ॥
क्रोधेनाऽभिप्रजज्वाल भैमसेनिर्महाबलः ।
स विस्फार्य महच्चापमिन्द्राशनिसमप्रभम् ॥ २३ ॥
अभिदुद्राव वेगेन दुर्योधनमरिन्दमम् ।
तमापतन्तमुद्वीक्ष्य कालसृष्टमिवाऽन्तकम् ॥ २४ ॥
न विव्यथे महाराज पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
अथैनमब्रवीत्क्रुद्धः क्रूरः संरक्तलोचनः ॥ २५ ॥

के योद्धाओं को बाण, शक्ति, नाराच, भिन्दिपाल, शूल, मुद्गर, परश्वध आदि से और बड़े-बड़े हाथियों को पर्वतों के शिखरों और वृक्षों से मारने लगे। हे राजेन्द्र ! उस समय देख पड़ा कि राक्षसों के प्रहार से कई एक हाथियों के मस्तक फट गये, कई एक के शरीर कट-फट गये और कई एक के शरीर में रक्त की धारा बहने लगी ॥१६।१७॥ इस प्रकार गजसेना जब नष्ट हो गई और शेष हाथी भाग खड़े हुए तब महाराज दुर्योधन क्रोध के आवेश में जीवन की ममता छोड़कर राक्षसों पर आक्रमण करने और तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे। वे अत्यन्त कुपित होकर मुख्य मुख्य राक्षसों को मारने लगे ॥१८।१९॥ दुर्योधन ने महावीर वेगवान, महारौद्र, विद्युज्जिह्व और प्रमाथी इन चार प्रधान राक्षसों को चार ही बाणों से मार डाला। इसके पश्चात् वे भारी राक्षससेना के ऊपर कठोर बाण बरसाने लगे। हे महाराज ! दुर्योधन का यह अद्भुत कार्य देखकर घटोत्कच बहुत कुपित हुआ। वह वज्रपात के समान घोर शब्द करनेवाला सुदृढ धनुष चढ़ाकर दुर्योधन की

अद्याऽऽनृण्यं गमिष्यामि पितॄणां मातुरेव च ।
ये त्वया सुनृशंसेन दीर्घकालं प्रवासिताः ॥ २६ ॥
यच्च ते पाण्डवा राजंश्छलद्यूते पराजिताः ।
यच्चैव द्रौपदी कृष्णा एकवस्त्रा रजस्वला ॥ २७ ॥
सभामानीय दुर्बुद्धे वहुधा क्लेशिता त्वया ।
तत्र च प्रियकामेन आश्रमस्था दुरात्मना ॥ २८ ॥
सैन्धवेन परामृष्टा परिभूय पितॄन्मम ।
एतेपामपमानानामन्येपां च कुलाधम ॥ २९ ॥
अन्तमद्य गमिष्यामि यदि नोत्सृजसे रणम् ।
एवमुक्त्वा तु हैडिम्बो महद्विस्फार्य कार्मुकम् ॥ ३० ॥
सन्दश्य दशनैरोष्ठं सृक्किणी परिसंलिहन् ।
शरवर्षेण महता दुर्योधनमवाकिरत् ।
पर्वतं वारिधाराभिः प्रावृषीव वलाहक ॥ ३१ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि हैडिम्बयुद्ध एकनवतितमोऽध्याय ॥ ९१ ॥

और कहा ॥२०।२४॥ हे राजेन्द्र ! उस काल सदृश राक्षस को अपनी ओर आते देखकर भी धीर दुर्योधन तनिक भी विचलित नहीं हुए। घटोत्कच ने अत्यन्त क्रोध से दुर्योधन को ललकारकर कहा—"रे दुर्मति क्षत्रिय ! तुमने मेरे पिता और उनके भाइयों को कपट के पाँसों से हराकर बहुत दिन तक प्रवास में रहने के लिए विवश किया। केवल एक धोती पहने हुए रजस्वला द्रौपदी को सभा में बुलाकर क्लेश दिया और उनका अपमान किया, मेरे पिता और चाचा जब वनवास में थे तब तुम्हारे आज्ञाकारी बहनोई नीच प्रकृति सिन्धुराज जयद्रथ ने तुम्हारा प्रिय करने की इच्छा से पाण्डवों का कुछ भी विचार न करके, उनकी अनुपस्थिति में द्रौपदी को बलपूर्वक ले जाकर कष्ट पहुँचाया। तुम्हारे इन सब दुष्कर्मों का फल आज मैं तुमको दूँगा। जो तुम प्राण बचाकर युद्ध से भाग नहीं गये तो अवश्य मैं तुम्हारे प्राण लेकर माता पिता का ऋण चुकाऊँगा" ॥२५।२९॥ वीर घटोत्कच इस प्रकार तीव्र वचन कहकर क्रोध के मारे दातों से होंठ चबाने और होठ चाटने लगा। उसने धनुष चढ़ाकर, मेघ जैसे पर्वत पर जल बरसाते हैं वैसे ही दुर्योधन पर बाण वर्षा करके उनके रथ को छिपा दिया ॥३०।३१॥

भीष्मपर्व का इक्यानवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ९१ ॥

अथ द्विनवतितमोऽध्याय ॥ ९२ ॥

सञ्जय उवाच— ततस्तद्बाणवर्षं तु दुःसहं दानवैरपि ।
दधार युधि राजेन्द्रो यथा वर्षं महाद्विपः ॥ १ ॥

ततः क्रोधसमाविष्टो निःश्वसन्निव पन्नगः ।
संशयं परमं प्राप्तः पुत्रस्ते भरतर्षभ ॥ २ ॥
मुमोच निशितांस्तीक्ष्णान्नाराचान्पञ्चविंशतिम् ।
तेऽपतन्सहसा राजंस्तस्मिन्राक्षसपुङ्गवे ॥ ३ ॥
आशीविषा इव क्रुद्धाः पर्वते गन्धमादने ।
स तैर्विद्धः स्रवन्रक्तं प्रभिन्न इव कुञ्जरः ॥ ४ ॥
दध्रे मतिं विनाशाय राज्ञः स पिशिताशनः ।
जग्राह च महाशक्तिं गिरीणामपि दारिणीम् ॥ ५ ॥
सम्प्रदीप्तां महोल्काभामशनिं ज्वलितामिव ।
समुद्यच्छन्महाबाहुर्जिघांसुस्तनयं तव ॥ ६ ॥
तामुद्यतामभिप्रेक्ष्य वङ्गानामधिपस्त्वरन् ।
कुञ्जरं गिरिसङ्काशं राक्षसं प्रत्यचोदयत् ॥ ७ ॥
स नागप्रवरेणाऽऽजौ बलिना शीघ्रगामिना ।
यतो दुर्योधनरथस्तं मार्गं प्रत्यवर्तत ॥ ८ ॥
रथं च वारयामास कुञ्जरेण सुतस्य ते ।
मार्गमावारितं दृष्ट्वा राज्ञा वङ्गेन धीमता ॥ ९ ॥
घटोत्कचो महाराज क्रोधसंरक्तलोचनः ।
उद्यतां तां महाशक्तिं तस्मिंश्चिक्षेप वारणे ॥ १० ॥

बावनवाँ अध्याय ॥ ९२ ॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज! गजराज जैसे बादल की बूँदों को सहज ही सह लेता है वैसे ही दुर्योधन ने घटोत्कच के प्रहार अनायास सह लिये। अत्यन्त क्रुद्ध होकर, नाग की तरह लम्बी-लम्बी साँसें लेकर, दुर्योधन क्षण भर के लिए चिन्ता में पड़ गये। इसके पश्चात् उन्होंने उस राक्षस को तीक्ष्ण पचीस नाराच बाण मारे। गन्धमादन पर्वत पर कुपित सर्प जैसे गिरें वैसे ही वे बाण सहसा घटोत्कच के ऊपर गिरे ॥१।४॥ हाथी के जैसे मद बहता है वैसे ही घटोत्कच के शरीर से रक्त बहने लगा। उन बाणों से व्यथित और घायल घटोत्कच ने अत्यन्त क्रोधान्ध होकर दुर्योधन को मारने के अभिप्राय से एक बड़ी उल्का के समान प्रज्वलित और पर्वतों को तोड़ डालनेवाली महाशक्ति अपने हाथ में ली ॥४।६॥ घटोत्कच को वह शक्ति तानते देखकर पर्वत सदृश ऊँचे हाथी पर सवार वङ्गदेश के राजा ने अकस्मात् दुर्योधन के रथ के आगे आकर उनको हाथी की आड़ में कर लिया ॥७।९॥ हे राजेन्द्र! महावीर घटोत्कच ने जब देखा कि वङ्गाधिप ने दुर्योधन के रथ को छिपा लिया तब उसने वह महाशक्ति वङ्गराज के हाथी पर ही खींचकर मारी। उस शक्ति की चोट खाकर वह हाथी मुख से रक्त उगलता हुआ,

स तयाऽभिहतो राजंस्तेन वाहुप्रमुक्तया ।
सञ्जातरुधिरोत्पीडः पपात च ममार च ॥ ११ ॥
पतत्यथ गजे चाऽपि वङ्गानामीश्वरो वली ।
जवेन समभिद्रुत्य जगाम धरणीतलम् ॥ १२ ॥
दुर्योधनोऽपि सम्प्रेक्ष्य पतितं वरवारणम् ।
प्रभग्नं च वलं दृष्ट्वा जगाम परमां व्यथाम् ॥ १३ ॥
क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य आत्मनश्चाऽभिमानिताम् ।
प्राप्तेऽपक्रमणे राजा तस्थौ गिरिरिवाऽचलः ॥ १४ ॥
सन्धाय च शितं वाणं कालाग्निसमतेजसम् ।
मुमोच परमक्रुद्धस्तस्मिन्घोरे निशाचरे ॥ १५ ॥
तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य वाणमिन्द्राशनिप्रभम् ।
लाघवान्मोचयामास महात्मा वै घटोत्कचः ॥ १६ ॥
भूयश्च विननादोग्रं क्रोधसंरक्तलोचनः ।
त्रासयामास सैन्यानि युगान्ते जलदो यथा ॥ १७ ॥
तं श्रुत्वा निनदं घोरं तस्य भीमस्य रक्षसः ।
आचार्यमुपसङ्गम्य भीष्मः शान्तनवोऽब्रवीत् ॥ १८ ॥
यथैष निनदो घोरः श्रूयते राक्षसेरितः ।
हैडिम्बो युध्यते नूनं राज्ञा दुर्योधनेन ह ॥ १९ ॥
नैष शक्यो हि संग्रामे जेतुं भूतेन केनचित् ।
तत्र गच्छत भद्रं वो राजानं परिरक्षत ॥ २० ॥

गिर पड़ा और मर गया। वङ्गनरेश स्फूर्ति के साथ हाथी पर से पृथ्वी पर कूद पड़े ॥९।१२॥ उस श्रेष्ठ हाथी की मृत्यु और अपनी सेना का भागना देखकर राजा दुर्योधन को वड़ा दुःख हुआ। अपनी सेना को भागते और पराभव स्वीकार करते देखकर, अभिमान और क्षत्रिय-धर्म के विचार में, दुर्योधन पर्वत की तरह अटल होकर वहीं खड़े रहे। इसके अनन्तर क्रुद्ध होकर उन्होंने एक कालाग्नि के समान चमकीला भयङ्कर तीक्ष्ण वाण धनुष पर चढ़ाकर उस रौद्र राक्षस को मारा ॥१३।१५॥ मायावी राक्षस ने उस वाण के प्रहार को सहज ही निष्फल कर दिया। वह क्रोधान्ध होकर सारी सेना को भयभीत कराता हुआ प्रलयकाल के मेघ के समान घोर सिंहनाद करने लगा ॥१६।१७॥ पितामह भीष्म उस राक्षस का भयानक शब्द सुनकर द्रोणाचार्य के पास जाकर कहने लगे—हे आचार्य! यह राक्षस जैसा घोर शब्द करके गरज रहा है, उससे जान पड़ता है कि दुर्योधन से इसका विकट युद्ध हो रहा है। आपका

चतुर्भिरथ नाराचैरावन्त्यस्य महात्मनः ।
जघान चतुरो वाहान्क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ ४० ॥
पूर्णायतविसृष्टेन पीतेन निशितेन च ।
निर्बिभेद महाराज राजपुत्रं बृहद्बलम् ॥ ४१ ॥
स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थ उपाविशत् ।
भृशं क्रोधेन चाऽऽविष्टो रथस्थो राक्षसाधिपः ॥ ४२ ॥
चिक्षेप निशितांस्तीक्ष्णाञ्छरानाशीविषोपमान् ।
विभिदुस्ते महाराज शल्यं युद्धविशारदम् ॥ ४३ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि हैडिम्बयुद्धे द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

३८॥ महाबली घटोत्कच ने अर्धचन्द्र बाण से सिन्धुराज जयद्रथ की सुवर्णभूषित वराहचिह्नयुक्त ध्वजा काट गिराई । अन्य कई बाणों से उनका धनुष भी काट डाला । क्रोध से लाल नेत्र करके घटोत्कच ने चार नाराच बाणों से अवन्तिराज के रथ के चारों घोड़े मार डाले । फिर कई तीक्ष्ण बाण राजकुमार बृहद्बल को मारे । घटोत्कच के बाणों से अत्यन्त व्यथित होकर पराक्रमी बृहद्बल रथ पर से गिर पड़े । इसके अनन्तर रथ पर सवार राक्षसराज घटोत्कच ने क्रोध से विह्वल होकर विषैले सर्प के समान भयङ्कर तीक्ष्ण बाण मारकर युद्धनिपुण शल्य को भी घायल कर दिया ॥३९।४३॥

भीष्मपर्व का बानवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ९२ ॥



अथ त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

सञ्जय उवाच – विमुखीकृत्य सर्वांस्तु तावकान्युधि राक्षसः ।
जिघांसुर्भरतश्रेष्ठ दुर्योधनमुपाद्रवत् ॥ १ ॥
तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य राजानं प्रति वेगितम् ।
अभ्यधावञ्जिघांसन्तस्तावका युद्धदुर्मदाः ॥ २ ॥
तालमात्राणि चापानि विकर्षन्तो महारथाः ।
तमेकमभ्यधावन्त नदन्तः सिंहसङ्घवत् ॥ ३ ॥
अथैनं शरवर्षेण समन्तात्पर्यवाकिरन् ।
पर्वतं वारिधाराभिः शरदीव बलाहकाः ॥ ४ ॥

तिरानबेवाँ अध्याय ॥ ९३ ॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! राक्षस घटोत्कच इस प्रकार कौरवपक्ष के सब वीरों को युद्धक्षेत्र से हटाकर दुर्योधन को मारने के अभिप्राय से उनकी ओर बढ़ा । आपके पक्ष के सब योद्धा घटोत्कच को महारथी दुर्योधन की ओर जाते देखकर, ऊँचे दृढ़ धनुष खींचकर और सिंहनाद करते हुए उसी

स गाढविद्धो व्यथितस्तोत्रार्दित इव द्विपः ।
उत्पपात तदाऽऽकाशं समन्ताद्वैनतेयवत् ॥ ५ ॥
व्यनदत्सुमहानादं जीमूत इव शारदः ।
दिशः खं विदिशश्चैव नादयन्भैरवस्वनः ॥ ६ ॥
राक्षसस्य तु तं शब्दं श्रुत्वा राजा युधिष्ठिरः ।
उवाच भरतश्रेष्ठ भीमसेनमरिन्दमम् ॥ ७ ॥
युध्यते राक्षसो नूनं धार्तराष्ट्रैर्महारथैः ।
यथाऽस्य श्रूयते शब्दो नदतो भैरवं स्वनम् ॥ ८ ॥
अतिभारं च पश्यामि तस्मिन्राक्षसपुङ्गवे ।
पितामहश्च संक्रुद्धः पञ्चालान्हन्तुमुद्यतः ॥ ९ ॥
तेषां च रक्षणार्थाय युध्यते फाल्गुनः परैः ।
एतज्ज्ञात्वा महाबाहो कार्यद्वयमुपस्थितम् ॥ १० ॥
गच्छ रक्षस्व हैडिम्बं संशयं परमं गतम् ।
भ्रातुर्वचनमाज्ञाय त्वरमाणो वृकोदरः ॥ ११ ॥
प्रययौ सिंहनादेन त्रासयन्सर्वपार्थिवान् ।
वेगेन महता राजन्पर्वकाले यथोदधिः ॥ १२ ॥
तमन्वगात्सत्यधृतिः सौचित्तिर्युद्धदुर्मदः ।
श्रेणिमान्वसुदानश्च पुत्रः काश्यस्य चाऽभिभूः ॥ १३ ॥
अभिमन्युमुखाश्चैव द्रौपदेया महारथाः ।
क्षत्रदेवश्च विक्रान्तः क्षत्रधर्मा तथैव च ॥ १४ ॥

प्रकार घटोत्कच के ऊपर बाण बरसाने लगे, जिस प्रकार वर्षाकाल के मेघ पर्वत पर जल बरसाते हैं ॥१।४॥ महापराक्रमी घटोत्कच, अंकुश-पीड़ित गजराज के तुल्य सैनिकों के बाणों से पीड़ित होकर सहसा गरुड़ के तुल्य आकाश में चला गया और वहाँ जाकर शरद् ऋतु के मेघ के समान जोर से गरजने लगा। उसके सिंहनाद से आकाश, पृथ्वी, दिशा और विदिशा आदि स्थान गूँज उठे ॥५।६॥ धर्मराज युधिष्ठिर ने राक्षस घटोत्कच का विकट सिंहनाद सुनकर भीमसेन से कहा—हे भाई! यह घटोत्कच का भीषण सिंहनाद सुन पड़ता है। इस- [illegible] रथी [illegible] के पुत्रों से युद्ध कर रहा है। ऐसा जान पड़ता है कि यह युद्ध घटोत्कच के लिए अत्यन्त भयानक हो रहा है। वह इस समय सङ्कट में जान पड़ता है। उधर पितामह भीष्म क्रुद्ध होकर पाञ्चालसेना का संहार करने गये हैं। वीर अर्जुन शत्रुओं से युद्ध करके पाञ्चालों की रक्षा कर रहे हैं। हे भाई भीम! इस समय ये दो ही कार्य हैं। तुम शीघ्र ही जाकर प्राणसङ्कट में पड़े हुए घटोत्कच की रक्षा और अर्जुन की सहायता करो ॥७।११॥ धर्मपुत्र युधिष्ठिर की आज्ञा पाकर महावीर भीमसेन अपने सिंहनाद से शत्रुपक्ष के राजाओं को भीत और उद्विग्न करते हुए, पर्वकाल में उमड़ रहे समुद्र की तरह, बड़े वेग से दौड़े।

अनूपाधिपतिश्चैव नीलः स्वबलमास्थितः ।
महता रथवंशेन हैडिम्बं पर्यवारयन् ॥ १५ ॥
कुञ्जरैश्च सदा मत्तैः षट्सहस्रैः प्रहारिभिः ।
अभ्यरक्षन्त सहिता राक्षसेन्द्रं घटोत्कचम् ॥ १६ ॥
सिंहनादेन महता नेमिघोषेण चैव ह ।
खुरशब्दनिपातैश्च कम्पयन्तो वसुन्धराम् ॥ १७ ॥
तेषामापततां श्रुत्वा शब्दं तं तावकं बलम् ।
भीमसेनभयोद्विग्नं विवर्णवदनं तथा ॥ १८ ॥
परिवृत्तं महाराज परित्यज्य घटोत्कचम् ।
ततः प्रववृते युद्धं तत्र तेषां महात्मनाम् ॥ १९ ॥
तावकानां परेषां च संग्रामेष्वनिवर्तिनाम् ।
नानारूपाणि शस्त्राणि विसृजन्तो महारथाः ॥ २० ॥
अन्योन्यमभिधावन्तः सम्प्रहारं प्रचक्रिरे ।
व्यतिषक्तं महारौद्रं युद्धं भीरुभयावहम् ॥ २१ ॥
हया गजैः समाजग्मुः पादाता रथिभिः सह ।
अन्योन्यं समरे राजन्प्रार्थयानाः समभ्ययुः ॥ २२ ॥
सहसा चाऽभवत्तीव्रं सन्निपातान्महद्रजः ।
गजाश्वरथपत्तीनां पदनेमिसमुद्धतम् ॥ २३ ॥
धूम्रारुणं रजस्तीव्रं रणभूमिं समावृणोत् ।
नैव स्वे न परे राजन्समजानन्परस्परम् ॥ २४ ॥
पिता पुत्रं न जानीते पुत्रो वा पितरं तथा ।
निर्मर्यादे तथा भूते वैशसे लोमहर्षणे ॥ २५ ॥

भीमसेन के साथ युद्धमद सत्यधृति, सौचित्ति, श्रेणिमान्, वसुदान, काशिराज तनय अभिभू, द्रौपदी के पाँचों पुत्र अभिमन्यु, क्षत्रदेव, क्षत्रधर्मा और अपनी सेना सहित अनूपाधिपति राजा नील आदि वीर लोग ॥११-१५॥ इन लोगों ने घटोत्कच के पास जाकर उसे युद्ध करनेवाले और सदा मत्त रहनेवाले, छः हजार हाथियों के मध्य में कर लिया। इस प्रकार सब लोग घटोत्कच की रक्षा करने लगे। रथों के पहियों की घरघराहट, सिंहनाद और घोड़ों की टापों के शब्द से पृथ्वी काँपने लगी। आपकी सब सेना पाण्डवसेना का कोलाहल सुनकर भीमसेन के भय से व्याकुल हो उठी। सब सैनिक उत्साहहीन व्याकुल भाव से घटोत्कच को छोड़कर लौट पड़े। इस समय दोनों ओर से घोर युद्ध होने लगा। उस भयङ्कर समर में सब महारथी परस्पर आक्रमण करते हुए विविध शस्त्रों से प्रहार करने लगे। दोनों ओर के घुड़सवार, हाथियों के सवारों से और पैदल योद्धा रथियों से ललकारकर प्राणपण से युद्ध करने लगे। ॥१६-२२॥ उस समय रथों के पहियों से तथा पैदलों, हाथियों और घोड़ों के दौड़ने से धुएँ के रङ्ग

शस्त्राणां भरतश्रेष्ठ मनुष्याणां च गर्जताम् ।
सुमहानभवच्छब्दः प्रेतानामिव भारत ॥ २६ ॥
गजवाजिमनुष्याणां शोणितान्त्रतरङ्गिणी ।
प्रावर्तत नदी तत्र केशशैवलशाद्वला ॥ २७ ॥
नराणां चैव कायेभ्यः शिरसां पततां रणे ।
शुश्रुवे सुमहाञ्छब्दः पततामश्मनामिव ॥ २८ ॥
विशिरस्कैर्मनुष्यैश्च च्छिन्नगात्रैश्च वारणैः ।
अश्वैः सम्भिन्नदेहैश्च सङ्कीर्णाऽभूद्वसुन्धरा ॥ २९ ॥
नानाविधानि शस्त्राणि विसृजन्तो महारथाः ।
अन्योन्यमभिधावन्तः सम्प्रहारार्थमुद्यताः ॥ ३० ॥
हया हयान्समासाद्य प्रेषिता हयसादिभिः ।
समाहत्य रणेऽन्योन्यं निपेतुर्गतजीविताः ॥ ३१ ॥
नरा नरान्समासाद्य क्रोधरक्तेक्षणा भृशम् ।
उरांस्युरोभिरन्योन्यं समाश्लिष्य निजघ्निरे ॥ ३२ ॥
प्रेषिताश्च महामात्रैर्वारणाः परवारणैः ।
अभ्यघ्नन्त विषाणाग्रैर्वारणानेव संयुगे ॥ ३३ ॥
ते जातरुधिरोत्पीडाः पताकाभिरलंकृताः ।
संसक्ताः प्रत्यदृश्यन्त मेघा इव सविद्युतः ॥ ३४ ॥
केचिद्भिन्ना विषाणाग्रैर्भिन्नकुम्भाश्च तोमरैः ।
विनदन्तोऽभ्यधावन्त गर्जमाना घना इव ॥ ३५ ॥

केचिद्धस्तैर्द्विधा च्छिन्नैश्छिन्नगात्रास्तथाऽपरे ।
निपेतुस्तुमुले तस्मिंश्छिन्नपक्षा इवाऽद्रयः ॥ ३६ ॥
पार्श्वैस्तु दारितैरन्ये वारणैर्वरवारणाः ।
मुमुचुः शोणितं भूरि धातूनिव महीधराः ॥ ३७ ॥
नाराचनिहतास्त्वन्ये तथा विद्धाश्च तोमरैः ।
विनदन्तोऽभ्यधावन्त विशृङ्गा इव पर्वताः ॥ ३८ ॥
केचित्क्रोधसमाविष्टा मदान्धा निरवग्रहाः ।
रथान्हयान्पदातींश्च ममृदुः शतशो रणे ॥ ३९ ॥
तथा हया हयारोहैस्ताडिताः प्रासतोमरैः ।
तेन तेनाऽभ्यवर्तन्त कुर्वन्तो व्याकुला दिशः ॥ ४० ॥
रथिनो रथिभिः सार्धं कुलपुत्रास्तनुत्यजः ।
परां शक्तिं समास्थाय चक्रुः कर्माण्यभीतवत् ॥ ४१ ॥
स्वयंवर इवाऽऽमर्दे प्रजह्रुरितरेतरम् ।
प्रार्थयाना यशो राजन्स्वर्गं वा युद्धशालिनः ॥ ४२ ॥
तस्मिंस्तथा वर्तमाने संग्रामे लोमहर्षणे ।
धार्तराष्ट्रं महत्सैन्यं प्रायशो विमुखीकृतम् ॥ ४३ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि सङ्कुलयुद्धे त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

हाथियों के मस्तक तोमर के प्रहार से कट गये थे। वे इधर-उधर चिल्लाते हुए दौड़ते फिरते थे और आकाश में गरजते हुए बादलों के समान जान पड़ते थे। कुछ हाथियों की सूँड़ें कट गईं और कई एक के शरीर घायल हो गये। जिनके पक्ष कट गये हों उन पर्वतों के समान वे हाथी पृथ्वी पर गिरने लगे ॥३४।३६॥ हाथियों ने बड़े-बड़े हाथियों की कोखें दाँतों से फाड़ डालीं। उनके शरीरों से वैसे ही रक्त की धारा बह चली जैसे पर्वत से गेरू आदि धातुएँ बहती हैं। नाराच बाणों से निहत और तोमरों से घायल गरजते हुए हाथी [सवार मारकर गिर जाने से] निरंकुश पर्वत-से देख पड़ने लगे। कुछ मदान्ध हाथी अंकुशहीन होने पर क्रुद्ध होकर इधर-उधर रथों, घोड़ों और पैदलों को रौंदने लगे ॥३७।३९॥ शत्रुपक्ष के घुड़सवारों के प्रास, तोमर आदि शस्त्रों की चोट खाकर घोड़ों के दल इधर-उधर भागने और सब सेना को उद्विग्न करने लगे। वीरवंशों में उत्पन्न क्षत्रिय रथी योद्धा मरने का दृढ़ निश्चय करके, अपनी शक्ति की पराकाष्ठा दिखाते हुए निर्भय होकर रथी योद्धाओं से युद्ध करने लगे। योद्धाओं के लिए वह रणभूमि स्वयंवर की सभा सी हो रही थी। वे विजयकीर्ति या स्वर्गगति प्राप्त करने की इच्छा से [उन्मत्त-से होकर] परस्पर प्रहार करने लगे। हे महाराज! इस संग्राम में दुर्योधन की अधिकांश सेना परास्त होकर भाग खड़ी हुई ॥४०।४३॥

भीष्मपर्व का तिरानवेवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ९३ ॥